भूमिका

अठारह महापुराणों मे यद्यपि यह 'विष्णुपुराण' आकार की दृष्टि से सबसे छोटा है, पर इसका महत्व प्राचीन समय से ही बहुत अधिक माना गया है। अन्यान्य पुराणो में जो पुराण-सूचियाँ मिलती हैं उन सभी मे इसको तृतीय स्थान दिया गया है। संस्कृत के विद्वानो की दृष्टि मे इसकी भाषा ऊँचे दर्जे की साहित्यिक, काव्यगुण सम्पन्न और प्रसादगुणयुक्त मानी गई है। जहाँ तक अनुमान है भाषा और वर्णनशैली की श्रेष्ठता मे भागवत के सिवाय किसी अन्य ग्रंथ की तुलना इससे नही की जा सकती। भूमण्डल का स्वरूप, ज्योतिष, राजवंशो का इतिहास, कृष्ण चरित्र आदि विषयों का इसमे बडे बोधगम्य ढंग से वर्णन किया गया है। कई पुराणो मे जो साम्प्रदायिक खण्डन-मण्डन अथवा विरोध की भावना पाई जाती है, उससे भी यह मुक्त है। धार्मिक तत्वो का इसमें जैसी सरल और सुबोध शैली मे वर्णन किया गया है उसकी जितनी प्रशसा की जाय कम है।

'विष्णुपुराण' की श्लोक संख्या के विषय मे बड़ा मतभेद है। अधिकांश स्थानो मे २३ हजार श्लोक बतलाये गये हैं पर जो ग्रंथ इस समय प्राप्त है उसमे केवल सात हजार श्लोक पाये जाते हैं। इस पर कई विद्वान कहते हैं कि 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' इसी का उत्तरार्ध है। इसको मान लेने पर और 'विष्णु धर्मोत्तर' के नौ हजार श्लोकों को जोड देने पर भी सोलह हजार की संख्या प्राप्त होती है जो तेईस हजार मे सात हजार कम है। इस प्रकार यह एक ऐसी समस्या हो गई है जिसके सम्बन्ध में कोई निर्णयात्मक सम्मति दे सकना असम्भव है। यद्यपि डा० विलसन जैसे विदेशी विद्वान इसको बहुत बाद की कृत्रिम रचना कहकर छुटकारा पा जाते

हैं, पर किसी हिन्दू धर्मानुयायी का इससे संतोष नहीं हो सकता। हम तो इस विषय मे यही कह सकते हैं कि सभव है किसी कारणवश प्राचीन काल मे ही विष्णु पुराण का यह सक्षिप्त सस्करण किसी विद्वान ने पृथक कर दिया हो और मूल बडा ग्रन्थ विदेशियो के आक्रमण के समय नष्ट हो गया हो।

विष्णु-पुराण के वर्ण्य-विषय—

विष्णु पुराण छः अशो मे बँटा है, जिनमें १२६ अध्याय हैं। पहले अश मे काल का स्वरूप, सृष्टि की उत्पत्ति और ध्रुव, पृथु और प्रह्लाद का वृत्तान्त हैं। दूसरा अश लोको के स्वरूप के सम्बन्ध मे है। इसमे पृथ्वी के नौ खण्ड, सात पाताल लोक तथा सात ऊर्द्ध्व लोको का वर्णन है। ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष चक्र, नवग्रह आदि का भी परिचय दिया है। तीसरे मे मन-वन्तर, वेदो की शाखाओं का विस्तार, गृहस्थ-धर्म और श्राद्ध विधि वर्णित है। चौथे अश में सूर्य वश, चन्द्रवश आदि के राजाओ के चरित्र तथा उनकी वशावली वर्णन की गई है। पाँचवा अश, जो पर्याप्त बडा है, श्रीकृष्ण चरित्र तथा उनकी लोकोत्तर लीलाओ से सम्बन्ध रखता है। यह बात उल्लेखनीय है कि जहाँ इसमे राम-चरित्र दस बीस श्लोको मे ही दिया गया है कृष्ण-चरित्र का विस्तार सैकडो पृष्ठ मे है। अन्तिम अश छोटा है और उसमे प्रलय और मोक्ष मार्ग का वर्णन करके ग्रन्थ का उपसहार किया गया है।

इस प्रकार शास्त्रों मे पुराणो के जो पाँचो लक्षण (१) सर्ग (तत्त्वो-त्पत्ति और महाभूतो की सृष्टि), २) प्रतिसर्ग (सृष्टि का प्रारम्भ और विविध प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति) (३) वश (ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न मूल वशो का वर्णन), (४), मन्वन्तर (काल एव समय के खण्ड और कल्प आदि का वर्णन) (५) वशानुचरित्र (ऐतिहासिक राजवशो के विशिष्ट महापुरुषो का परिचय), 'विष्णु पुराण' मे पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बीच-बीच में अध्यात्म विवेचन, सदाचार और धर्म का निरूपण, कलिधर्म आदि उपयोगी विषयो का भी समावेश है। समस्त विषयो का सम्यक अनुपात और आकार में वर्णन करना इस पुराण की विशेषता है। किसी विषय का इतना घना-

इसका विस्तार नहीं किया गया है कि पाठक को पढ़ते-पढ़ते भारस्वरूप जान पड़ने लगे।

पुराण का प्राविर्भाव—

विष्णु पुराण के प्राविर्भाव की कथा भी एक विशेष महत्व रखती है। इसमें दया, क्षमा की वृत्ति का एक उत्तम उदाहरण मिलता है। महर्षि वशिष्ठ के पौत्र पराशरजी को जब ज्ञात हुआ कि उनके पिता को विश्वामित्र जी की प्रेरणा से राक्षस ने खा लिया था तो उन्हें बड़ा रोष आया और उन्होंने राक्षसों के नाश के लिये एक यज्ञ आरम्भ किया, जिसमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म होने लगे। यह देख पितामह वशिष्ठ जी ने उनको समझाया कि तुम्हारे पिता की मृत्यु में राक्षसों का कोई विशेष दोष न था, घटना और भाग्यवश ही उनकी इस प्रकार मृत्यु हो गई। अब तुम इस प्रकार के क्रोध को त्याग दो, क्योंकि साधुओं का मुख्य लक्षण क्षमा ही कहा गया है :—

सञ्चितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधोनाशकरः परः॥
स्वर्गापवर्ग व्यासेध कारणं परमर्षयः।
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव॥

(वि० १-१-१७-१८)

"हे वत्स! मनुष्य अत्यन्त कष्ट और श्रम से जिस यश और तप का संचय करता है यह क्रोध उसका अत्यन्त नाश करने वाला है। इससे महर्षिगण स्वर्ग और मोक्ष को बिगाड़ने वाले इस क्रोध का सर्वदा त्याग ही करते आये हैं। अतः तुम इसके वशीभूत होकर अपना अनहित मत करो।"

पराशर जी ने वृद्धजनों की शिक्षा को स्वीकार करके जब राक्षसों का नष्ट करना बन्द कर दिया तो राक्षस वंश के पूर्वज महर्षि पुलस्त्य जी बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने पराशर जी को पुराण संहिता की रचना कर सकने का वरदान दिया। उसी के फलस्वरूप अवसर आने पर उन्होंने इसका प्रवचन मुनिवर मैत्रेय जी की प्रार्थना पर किया।

वाराह कल्प का वर्णन—

जिस काल में हम सब रह रहे हैं उसका नाम शास्त्रों में 'वाराह कल्प' कहा गया है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे हजार 'चतुर्युग' का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे ही तीन सौ साठ दिनों की ब्रह्मा की परमायु होती है। शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो चुकी है और आधी आयु में यह पद्म नामक महाकल्प आरम्भ हुआ है जिसका प्रथम कल्प'वाराह' नाम का इस समय चल रहा है। इसका वर्णन करते हुए 'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि जिस प्रकार अन्य कल्पों में नारायण ने मत्स्य,कूर्म आदि का रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था उसी प्रकार इस कल्प में उन्होंने जल में डूबी हुई पृथ्वी को बाहर लाकर सृष्टि रचना के उपयुक्त बनाने के लिये 'वेदयज्ञमय वाराह' शरीर धारण किया। जब वे इस रूप में पृथ्वी के सम्मुख प्रकट हुए तो वह उनकी स्तुति करते हुये कहने लगी—

"हे कमलनयन भगवन्! आपको नमस्कार है, आज आप इस पाताल लोक से मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकाल में मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। मेरे तथा अन्य महाभूतों के उपादान कारण आप ही हैं। परमात्मा स्वरूप! आपको नमस्कार है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप! आपको नमस्कार है। काल स्वरूप! आपको नमस्कार है। प्रभो! जगत की सृष्टि, पालन संहार के लिये आप ही ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का रूप धारण करने वाले हैं। गोविन्द! जगत के एकार्णव में मग्न हो जाने पर सबको उदरस्थ करके अन्त में आप ही उस जल में शयन करते हैं।" (वि० पु० १—४)

इसी प्रकार आगे चलकर सनन्दन आदि योगीश्वरों ने वाराह भगवान की स्तुति करते हुए कहा—"जगत्पते! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एक मात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यह आपकी ही महिमा है जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत व्याप्त है। यह जो कुछ भी मूर्तिमान जगत दिखाई देता है, वह ज्ञान स्वरूप आपका ही शरीर है। इस सम्पूर्ण

ज्ञान स्वरूप जगत को अज्ञानी लोग अर्थ रूप (वास्तविक) समझते हैं, अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागर में भटकते रहते हैं। परमेश्वर! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञानवेत्ता हैं, वे इस सम्पूर्ण संसार को आपका ज्ञानात्मक रूप ही देखते हैं।" (वि० पु० १—४)

— इस वर्णन से जगत के आदिकारण तथा उसके सत्य-स्वरूप पर जो प्रकाश पड़ता है वही समस्त ज्ञान-विज्ञान का अन्तिम निष्कर्ष है। सृष्टि की रचना में चाहे कितनी भी विविधता क्यों न दिखलाई पड़ती हो, संसार में कितना भी संघर्ष क्यों न अनुभव होता हो, जन्म और मरण, उत्पत्ति और नाश में कितना ही अन्तर क्यों न जान पड़ता हो; पर ज्ञानी को स्पष्ट यह दिखायी देता है कि इन समस्त विविधता, भिन्नता के मूल में एकता विद्यमान है। विश्व भर में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है या अनुभव में आता है उस सबका मूल उद्गम एक ही है। पुराणकार ने इस तथ्य को वाराह भगवान की कथा के रूप में प्रकट किया है। अन्य लोग वैज्ञानिक शब्दावली में इसका निरूपण करते हैं पर वास्तविक तात्पर्य सबका यही है कि समस्त जगत का मूल कारण एक ही है। उसी से यह बार-बार उत्पन्न होता और वृद्धि को प्राप्त होता है और अन्त में उसी में लीन हो जाता है।

ध्रुव आख्यान—

विष्णुपुराण का ध्रुव आख्यान बड़ा सुन्दर और शिक्षाप्रद है। संसार में मनुष्य यदि कोई महान कार्य करना चाहता है, अपनी सामान्य स्थिति से उठकर आत्मोद्धार का अभिलाषी है तो उसका एक मात्र आधार तप—अनासक्त भाव से कर्तव्य पालन ही है। अपने उदर पालन के लिये, स्त्री, बच्चे और परिवार के भरण-पोषण के लिये तो सभी को परिश्रम करना पड़ता है, इसके लिये मनुष्य अनुचित मार्ग का भी आश्रय लेते हैं, पर जो किसी प्रकार की महानता, लोकोत्तर पदवी का इच्छुक है, उसको इस स्वार्थमयी स्थिति से अवश्य ही ऊँचा उठना होता है। उसे लोक, समाज, संसार के हित की भावना से श्रम करना पड़ता है, उसका प्रतिफल कैसा भी क्यों न मिले। जब

मनुष्य अपने को इस विशाल संसार का एक अंग मात्र समझ लेता है और सबके हित मे अपना हित मानने लगता है तो उसकी शक्ति अनन्त गुनी बढ़ जाती है और वह बड़े-बड़े दुस्तर कार्यों का भी सरलता से पूरा कर सकता है।

ध्रुव का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। वह अपने को एक राजा का पुत्र अथवा किसी एक माता का बेटा समझने के बजाय व्यापक रूप मे देखता था। इसीलिये उसे अपनी विमाता अथवा सौतेले भाई से किसी प्रकार का द्वेष नही हुआ, वरन् उसने अपना उद्धार अपने पुरुषार्थ से करने का निश्चय किया। वह सासारिक सम्पदा और वैभव को नाशवान समझकर आत्मिक उत्कर्ष का ही अभिलाषी था और इसलिये उसने अपने को ससार की सर्वव्यापक और नियामक शक्ति में मिला देने का प्रयत्न किया। वह इस तथ्य को कहाँ तक हृदयगम कर चुका था, यह उन शब्दो से प्रकट होता है जो उसने भगवान के प्रकट होने पर उनकी स्तुति करते हुए कहे—

'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहकार और मूल प्रकृति—ये सब जिनके रूप है उन भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अति शुद्ध, सूक्ष्म, सर्व व्यापक हैं और प्रधान से भी परे जिनका रूप है उन गुण भोक्ता परम पुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभो आप हजारों मस्तकों वाले, हजारो नेत्र वाले, हजारो चरणो वाले परम पुरुष हैं, आप सर्वत्र व्याप्त हैं। भूत और भविष्यत् जो कुछ पदार्थ हैं, वे सब आप ही हैं। विराट, स्वराट, सम्राट और आदि पुरुष (ब्रह्मा) आदि भी सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत आपके स्वरूप भूत ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत हैं। जिस प्रकार नन्हे से बीज मे बड़ा भारी वट वृक्ष रहता है उसी प्रकार प्रलय काल मे यह सम्पूर्ण जगत बीज स्वरूप आप मे ही लीन रहता है। जिस प्रकार बीज से अकुर रूप मे प्रकट हुआ वटवृक्ष बढकर अत्यन्त विशाल, विस्तारयुक्त हो जाता है उसी प्रकार सृष्टिकाल मे यह जगत आप मे से ही प्रकट होकर फैल जाता है। (वि० पु० १—१२)

मानव जाति की प्रगति के उन्नायक-महाराज पृथु—

कहा गया है कि विष्णु भक्त ध्रुव के वंश में ही कुछ पीढ़ियों के पश्चात् वेन नाम का एक ऐसा राजा उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त निरंकुश था और स्वयं को ही ईश्वर बतलाकर सब प्रकार के धर्म-कर्त्तव्यों पर प्रतिबंध लगाता था। उसने प्रजा को आज्ञा दी कि कोई यज्ञ, दान, हवन आदि न करे। जब देश के ज्ञानी जनों ने उसे ऐसे धर्म विरुद्ध और जनता को कर्तव्य भ्रष्ट करने वाले कार्यों से रोकने का प्रयत्न किया तो वह और भी उद्दण्डता का परिचय देने लगा इस पर प्रजा के हित चिन्तक व्यक्तियों ने उसका अन्त कर दिया और उसके पुत्र पृथु को शासनाधिकारी बनाया। वेन के कुशासन के कारण जो अराजकता पैदा हो गई थी उसके कारण काफी समय तक देश में अव्यवस्था फैली रही और जीवन निर्वाह के अधिकांश साधन नष्ट हो गये। उस समय तक जन साधारण वन और जंगलों की प्राकृतिक उपज पर ही निर्वाह करते थे। पृथु ने देखा कि यह 'रोज कुंआ खोदने' का तरीका बड़ा अस्थायी है और इससे चाहे जब जीवन निर्वाह की सामग्री का अभाव हो सकता है। अतः उसने भूमि को समतल कराके उसे जोतने बोने का क्रम आरम्भ किया, जिससे पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री प्राप्त हो सके। इस स्थिति का वर्णन करते हुए पराशर जी ने बतलाया है—

"उस समय अन्न, गोपालन, कृषि और व्यापार का कोई क्रम न था। यह सब वेन पुत्र पृथु के समय से ही आरम्भ हुआ है। जहाँ-जहाँ भूमि समतल थी, वहीं-वहीं पर प्रजा ने निवास करना पसन्द किया। उस समय तक प्रजा का आहार केवल फल मूलादि ही था, वह भी पेड़-पौधों के नष्ट हो जाने से बड़ा दुर्लभ हो गया था। इस प्रकार भूखों मरती प्रजा को प्राणदान करने के कारण महाराज पृथु भूमि के पिता हुए और सर्वभूतधारिणी धरा का 'पृथिवी' का नाम मिला।" (वि० पु० १—१३)

अधर्म पर धर्म की विजय—

इस संसार में धर्म और अधर्म—सतोगुण और तमोगुण का संघर्ष

अनादि काल से चला आया है। एक परमार्थ, परोपकार करण का मार्ग ग्रहण करके आत्मा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है और दूसरा अन्याय, अत्याचार क्रूरता के द्वारा भी अपने स्वार्थ साधन, वैभव-विलास में ही रत रहता है। इस प्रकार के दो मनुष्यों का टकरा जाना स्वाभाविक ही है। यद्यपि परमार्थ मार्ग का पथिक किसी का अनहित नहीं चाहता, वह अत्याचारी की भी कल्याण-कामना ही करता है, पर जो क्रूर बुद्धि होता है, वह तो कभी सन्तुष्ट ही नहीं होता, वह अपने हितकर्ता के साथ भी बुराई करने को तैयार रहता है। इसी का एक परमोज्ज्वल उदाहरण 'विष्णु पुराण' के प्रह्लाद-आख्यान में मिलता है।

प्रह्लाद का पिता हिरण्यकशिपु एक ऐसा ही दमन नीति में विश्वास रखने वाला सम्राट था। कहा जाता है कि उसने बहुत बड़ी शक्ति एकत्रित करके 'त्रिलोकी' को वशीभूत कर लिया था। उसके भय से 'देवता' (सज्जन पुरुष) इधर-उधर जान बचाते मारे-मारे फिरते थे। वह अपने को ही संसार का कर्ता-धर्ता, विधाता मानता था। जो कोई विश्व संचालक परमात्मा का नाम लेता था वहीं उसे अपना शत्रु जान पड़ता था।

पर हिरण्यकशिपु का बेटा प्रह्लाद ठीक इसके विपरीत स्वभाव का था। वह परम ईश्वर भक्त था और संसार के प्रत्येक प्राणी तथा पदार्थ में उसी के रूप का दर्शन करता था। इससे पिता पुत्र से असन्तुष्ट रहता था और अन्त में यह दुर्भाव यहाँ तक बढ़ गया कि वह उसको अपना परम शत्रु मानकर नष्ट करने पर उतारू हो गया। पर समदर्शी प्रह्लाद ने कभी उसके प्रति द्वेष भाव अपने मन में न आने दिया और वह उसके सब अत्याचारों को उसी परमात्म– शक्ति पर भरोसा रखकर सहन करता गया। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को हर तरह से अपने विचारों का अनुयायी बनाने का प्रयत्न किया पर वह सदा यही कहता रहा—

"विषयों का जितना-जितना संग्रह किया जाता है, उतना ही वे मनुष्य के चित्त में दुःख बढ़ाते हैं। जीव अपने मनको प्रिय लगने वाले

बन्धों को जितना ही बढ़ाता है, उतने ही उसके हृदय में शोक रूपी शल्य (काँटे) गड़ते जाते हैं। घर में जो धन, धान्यादि होते हैं, मनुष्य के न रहने पर भी रहते हुए, उसके चित्त में बने रहते हैं, और उनके नाश की आशंका उसे दुःख देती रहती है। इस प्रकार जीते जी तो वह यहाँ महान दुःख पाता है, मरने पर भी यम यातनाओं और गर्भ वास में उसे उग्र कष्ट भोगना पड़ता है। सारा संसार इसी प्रकार दुःखमय है। इसलिये इस संसार समुद्र के दुःखों से बचाने वाले एक मात्र भगवान ही हैं।"

"मनुष्य सोचता है कि 'अभी तो बालक हूँ, इच्छानुसार खेल कूद लूँ, युवावस्था आने पर कल्याण साधन का प्रयत्न करूँगा। फिर युवा होने पर कहता है कि अभी तो मैं संसार-सुख भोग लूँ बुढ़ापे में धर्मध्यान करूँगा और जब वृद्ध हो जाता है तो अनुभव करता है अब तो मैं शक्तिहीन हो गया, मेरी इन्द्रियाँ कर्मों में प्रवृत्त ही नहीं होतीं शरीर के शिथिल हो जाने पर मैं क्या कर सकता हूँ? सामर्थ्य रहते तो मैंने कुछ किया ही नहीं।' इस प्रकार वह कभी कल्याण पथ पर अग्रसर नहीं हो पाता और केवल भोग तृष्णा में ही व्याकुल रहता है। (वि० पु० १—१७)

भोगवादी हिरण्यकशिपु को प्रह्लाद की यह त्याग-भावना विष तुल्य प्रतीत होती थी क्योंकि उसकी सचाई के कारण अनेक लोगों पर उसका प्रभाव पड़ता जाता था और उसके प्रजाजनों तथा नौकर-चाकरों में से बहु-संख्यक भीतर ही भीतर उसके विरोधी बनते जाते थे। इससे उसने पिता-पुत्र के सम्बन्ध को भूलकर प्रह्लाद को अपने मार्ग से हटा देने का दृढ़ निश्चय कर लिया और जो कुछ उसके वश में था उसे मारने के लिये सब कुछ किया। पर जो व्यक्ति मानव-शक्ति से ऊपर किसी महान शक्ति के सहारे अपने को छोड़ देता है और कर्तव्य पालन के अतिरिक्त किसी अन्य दिशा में दृष्टिपात नहीं करता वह एक प्रकार से अमर हो जाता है। उस अविनाशी तत्व की गोद में अपने को समर्पण कर देने वाला स्वयं भी नष्ट होने के भय से मुक्त हो जाता है। इसलिए हिरण्यकशिपु के सब कुचक्र विफल सिद्ध हुए और

जैसा कहा गया है कि "तलवार का आश्रय लेने वाले तलवार से ही नष्ट हो जाते हैं" अपनी द्वेषाग्नि मे वह स्वय ही जल-भुन कर भस्म हो गया।

अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन—

यद्यपि यह भक्ति प्रधान पुराण है पर इसके रचियता ने अन्य मतो और सम्प्रदायों के साथ भी उदारता परिचय दिया है। भक्ति का सिद्धान्त द्वैतवाद के अन्तर्गत ही रह सकता है, क्योंकि भक्त कभी अपने को भगवान के तुल्य नही मान सकता और न जीव को परमात्मा से पृथक समझे बिना पूजा, उपासना, स्तुति, भजन आदि का कोई अर्थ हो सकता है। पर इसमे जड भरत के उपाख्यान मे अद्वैत सिद्धान्त का पूर्ण रूप से प्रतिपादन किया है। जब सौवीर नरेश ने जड भारत से सत्य धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की तो उसने कहा—

"राजन् तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ? हे भूपते! श्रेय तो सब अपरमार्थिक ही हैं। जो पुरुष देवताओ की आराधना करके धन, सम्पति, प्रजा और राज्यादि की इच्छा करता है उसके लिये तो वे श्रेय ही हैं। जिसका फल स्वर्ग लोक की प्राप्ति है, वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय हैं, किन्तु प्रधान श्रेय तो उस फल की इच्छा न करने में ही है। अतः राजन योगयुक्त युक्त पुरुषो को, प्रकृति आदि से अतीत उस आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये क्योंकि उस परमात्मा का सयोगरूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है।

"इस प्रकार श्रेय तो सैकडों-हजारो प्रकार के हैं, किन्तु ये सब परमार्थ नही है। यदि धन परमार्थ हो तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों किया जाता है? तथा इच्छित भोगो की प्राप्ति के लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है? अतः वह परमार्थ नही है। यदि पुत्र को परमार्थ कहा जाय तो वह अपने पिता का परमार्थ है और उसका पिता भी अपने पिता का परमार्थ होगा। अतः इस चराचर जगत मे पिता का कार्य रूप पुत्र भी परमार्थ नही है। यदि ससार मे राज्य आदि की प्राप्ति को परमार्थ कहा जाय, तो ये कभी रहते हैं और कभी

हीं रहते । अत परमार्थ भी अपगमापायी हो जायगा । यदि वेद त्रयी से सम्पन्न होने वाले *यज्ञ कर्म को परमार्थ मानते हो तो* उसके विषय में मैं जो कहता हूँ सो सुनो । नृप ! जो वस्तु कारण रूपा मृत्तिका का कार्य होती है वह कारण की अनुगामिनी होने से मृत्तिका रूप ही जानी जाती है । अत-जो क्रिया समिधा, घृत और कुशा आदि नाशवान द्रव्यों से सम्पन्न होती है, वह भी नाशवान ही होगी । परमार्थ को तो प्राज्ञ पुरुष अविनाशी बतलाते हैं, पर कर्म तो, वह कैसा भी हो, नाशवान द्रव्यों से सम्पन्न होने के कारण नाशवान ही होगा, इसमें सन्देह नहीं ।

"अत राजन् ! निस्सन्देह य सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं । अब जो परमार्थ है वह मेरे द्वारा संक्षेप में सुनो । आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, वह जन्म, वृद्धि से रहित, सर्वव्यापी और अव्यय है । राजन्, वह परम ज्ञानमय है । नाम, रूप और जाति आदि से उसका संयोग न कभी हुआ है, न है और न होगा । वह आत्मा अपने और अन्य प्राणियों के शरीर में विद्यमान रहते हुये भी एक ही है—इस प्रकार का जो विशेष ज्ञान है वही परमार्थ है । जिस प्रकार अभिन्न भाव से व्याप्त एक ही वायु बाँसुरी के अलग अलग छिद्रों में होकर निकलने के कारण षड्ज आदि अनेक भेद हो जाते हैं, उसी प्रकार एक ही परमात्मा के देवता, मनुष्य, पशु आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं । एक रूप आत्मा के जो नाना भेद हैं वे बाह्य देहादि की कर्म प्रवृत्ति के कारण ही हुये हैं ।" (वि० पु० २-१४)

यही वेदान्त के महान सिद्धान्त का सार है । आधुनिक विज्ञान भी अब प्रगति करते-करते इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि संसार में केवल एक ही तत्व है, उसे चाहे किसी नाम से पुकारो । पर यह सिद्धान्त चरितार्थ तभी हो सकता है जब हम उसके अनुसार व्यवहार भी करें । वर्तमान समय में हमारे देश के जो 'ब्रह्मज्ञानी' कहलाने वाले व्यक्ति जगत को *'मिथ्या'* ही बतलाते रहते हैं पर एक पैसे के लिए भी बेईमानी करने को तैयार हो जाते हैं, अपने को समर्थ बतलाकर हर तरह के दुराचार में प्रवृत्त रहते हैं, उनको 'वेदान्ती' कहना इस शब्द की विडम्बना मात्र है । 'विष्णु पुराण' के उपरोक्त उपदेश के अनुसार तो

'परमार्थी' अथवा 'आत्म ज्ञानी' वही है, जो प्राणी मात्र को अपना ही एक अंश समझे और जब आवश्यकता पड़े धन, सम्पत्ति को ही नहीं शरीर को भी तिनके के समान त्यागदे। आत्मज्ञान अथवा अध्यात्मवाद की परीक्षा बातों से नहीं व्यवहार से ही की जा सकती है।

भक्ति का सच्चा स्वरूप—

पर ज्ञान और भक्ति का यह विवाद भी केवल बाह्य विषयों को महत्व देने वाले व्यक्तियों द्वारा उठाया जाता है, नहीं तो तत्व दृष्टि रखने वालों के लिये दोनों ही मार्ग कल्याणकारी हैं। प्राचीन मनीषियों ने इनका प्रचार मनुष्यों की प्रवृत्ति के भेद को देखकर किया है क्योंकि संसार में [illegible] और कोमल प्रकृति का भेद पाया ही जाता है। पर इससे व्यवहार में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अपने विश्वास के अनुसार व्यवहार करने वाला व्यक्ति, द्वैत और अद्वैत के विवाद में बिना पड़े हुये भी जीवन के सत्य-मार्ग को जान लेता है और उसी से उसका आत्म-कल्याण हो जाता है। जन्म भर सन्यासी रहकर ज्ञान-चर्चा करने वाले 'साधु' की अपेक्षा अपने कुकर्मों पर हृदय से पश्चात्ताप करने वाली वेश्या को मरणोपरान्त उच्चगति प्राप्त होने वाले आख्यान के अनुसार भगवान 'कथनी' के बजाय 'करनी' को ही अधिक महत्व देते हैं। विष्णु पुराणान्तर्गत 'यम-गीता' में यही तथ्य प्रतिपादित किया गया है।

जब यमराज ने अपने एक दूत को यह आदेश दिया कि "भगवान मधुसूदन के शरणागत व्यक्तियों को छोड़ देना।" तो उस दूत ने हरि भक्तों के लक्षण पूछे। उसके उत्तर में यमराज ने कहा—

"जो मनुष्य अपने वर्ण-धर्म पर स्थिर रहते हुये सुहृद और विपक्षियों के प्रति समान भाव रखता है, बलात्कार से किसी का द्रव्य हरण नहीं करता, न किसी जीव की हिंसा ही करता है, उस निर्मल चित्त व्यक्ति को भगवान का भक्त जानो। जिस पवित्र हृदय वाले का चित्त कलि-कल्मष रूप मल से मलिन नहीं हुआ है और जिसने अपने अन्तः प्रदेश में सर्वदा श्री जनार्दन को बसा रखा है उसे भगवान का अतीव भक्त समझो। जो एकान्त में पड़े हुये दूसरे के सोने

को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि द्वारा तृण के समान समझता है, जो समस्त जीवों का प्रिय, हितवादी तथा अभिमान और माया से रहित होता है, उसके हृदय में भगवान वासुदेव सदा विराजमान रहते हैं।

"दूत ! यम और नियम का पालन करने से जिनकी पाप राशि दूर हो गई है जिनमें गर्व, अभिमान और मात्सर्य का लेश भी नहीं रहा है, उन मनुष्यों को तुम दूर से ही त्याग देना। जो पुरुष दूसरों का धन हरण करता है, जीवों को पीड़ा पहुंचाता है तथा मिथ्या और कटु भाषण करता है, उस दुष्ट बुद्धि मनुष्य के हृदय में भगवान कभी टिक नहीं सकते। जो कुमति दूसरों का वैभव देख नहीं सकता, दूसरों की निन्दा करता है, सज्जनों का अपकार करता है, सम्पन्न होकर भी न तो भगवान की पूजा करता है न दीन जनों की सहायता करता है, उस अधम मनुष्य के हृदय में भगवान जनार्दन का निवास कभी नहीं हो सकता।" (वि० पु० ३-७)

सच्चे भक्त का प्रथम लक्षण यही है कि वह प्राणी मात्र में भगवान का निवास समझकर उनका किसी प्रकार का अपकार न करे और सेवा के लिये सदैव तत्पर, रहे। यद्यपि शास्त्र के कोरे शब्दों के पीछे दौड़ने वाले 'धर्म' को निम्न स्थान देते हैं, पर वास्तविकता की दृष्टि से केवल मुख से 'आत्मा की समानता, की बात कहने वालों की अपेक्षा उस सिद्धान्त को व्यवहार रूप में पूरा करके दिखाने वाले अधिक उच्च माने जायेंगे।

मानव-धर्म का परिचय—

इस प्रकार का परोपकार और सहानुभूति पूर्ण सद्व्यवहार साधु और भक्तों का ही लक्षण नहीं, वरन् मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। उसको उचित है कि वह जिस समाज में रहता है उसका सदैव हित चिन्तन करता रहे और किसी से साथ अप्रिय व्यवहार न करे। प्रत्येक मनुष्य समाज का एक अंग होता है और उसकी भलाई बुराई का प्रभाव सभी पर पड़ता है। इसलिये मनुष्य का धर्म है कि स्वयम् श्रेष्ठ बने और दूसरों को भी श्रेष्ठता का मार्ग दर्शन करे। विष्णु पुराण में चारों वर्णों के धर्मों का सामान्य निरूपण करते हुए कहा है—

"जो मनुष्य दूसरो की निन्दा, चुगली अथवा मिथ्या भाषण नही करता तथा कभी ऐसा वचन नहीं बोलता जिससे दूसरों को खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान केशव प्रसन्न रहते हैं। जो पुरुष दूसरों की स्त्री, धन और हिंसा में रुचि नही करता उससे सर्वदा ही भगवान सन्तुष्ट रहते हैं। जो मनुष्य किसी प्राणी को अथवा वृक्षादि किसी देहधारी को पीडित अथवा नष्ट नहीं करता उससे भगवान प्रसन्न रहते हैं। जो मनुष्य स्वयं अपने और अपने पुत्रों के समान ही समस्त प्राणियों का हितचिन्तक होता है वह सुगमता से श्रीहरि को प्रसन्न कर लेता है। जिसका चित्त राग-द्वेषादि से दूषित नहीं है उससे भगवान सदा ही सन्तुष्ट रहते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्राणियो पर दया, सहनशीलता, अमानिता, सत्य, शौच, मगल-कामना, प्रियवादिता, मैत्री, निष्कामता, अकृपणता और किसी का दोष न देखना—ये सब वर्णों के सामान्य नियम हैं। (वि० पु० ३-८)

इसी प्रकार गृहस्थों के सदाचार का वर्णन करते हुये कहा है 'जो जितेन्द्रिय दोष के समस्त हेतुओं को त्याग देता है उसके धर्म, अर्थ और काम की थोड़ी-सी भी हानि नही होती। जो विद्या विनय सम्पन्न, सदाचारी, प्राज्ञ मनुष्य पापी के प्रति भी पापमय व्यवहार नही करता तथा जिसका अन्तःकरण मैत्री-भावना से द्रवीभूत रहता है, मुक्ति उसकी मुट्ठी मे रहती है। जो वीत-राग महापुरुष कभी काम, क्रोध और लोभादि के वशीभूत नहीं होते तथा सदैव सदाचार में स्थित रहते हैं, उनके प्रभाव से ही पृथ्वी टिकी हुई है। अतः ज्ञानी मनुष्य को वही सत्य कहना चाहिये जो दूसरो के लिये हितकारी और प्रसन्नता दायक हो। यदि किसी सत्य बात के कहने से दूसरे को दुःख होता हो तो मौन रहे। यदि प्रिय वाक्य को भी अहितकर समझे तो उसे न कहे, हितकर वाक्य ही कहना अच्छा है, भले ही वह अत्यन्त अप्रिय क्यो न लगे। जो कार्य इहलोक और परलोक मे प्राणियो के हित का साधक हो मतिमान पुरुष मन, वचन, कर्म से उसी का आचरण करे।" (वि० पु० ३–१२)

सत्ता से मदान्ध राजागण—

चौथे अंश मे प्राचीन काल के विविध राजवंशो और राजाओ का वृतान्त

लिखते हुये ग्रन्थ में कलियुगी राजाओं का जो वर्णन किया है, वह प्राचीन और अर्वाचीन सभी शासकों के लिये एक उपयोगी चेतावनी है। राजा का धर्म प्रजा का हित साधन और रक्षा करना ही है। जिसको शासन के उच्च पद पर बैठाकर सम्मानित किया जाता है उसके ऊपर एक बहुत बड़े उत्तरदायित्व का भार भी आ जाता है। जो उस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये अपने सुख, स्वार्थ, लाभ की चिन्ता न करके अपनी समस्त इन्द्रियों तथा साधनों को जनता के कल्याणार्थ लगा देता है, इस कार्य की पूर्ति के लिये प्राणों को देने में भी संकोच नहीं करता वही सच्चा राजा या शासक कहा जा सकता है। जो इसके विपरीत आचरण करता है, अपने वैभव-विलास की वृद्धि के लिये प्रजा को त्रास देता है, पीड़ित करता है, वह अपने पद को कलंकित करने वाला है। ऐसे राजाओं का वर्णन करते हुये पुराणकार कहते हैं—

"इस हेय शरीर के मोह से अन्धे हुये बहुसंख्यक ऐसे भूपतिगण हो गये हैं, जिन्होंने अपने राज्यभूमि से ही ममता की थी।" यह पृथिवी किस प्रकार अचल भाव से मेरी, मेरे पुत्र की अथवा मेरे वंश की होगी—इसी चिन्ता से व्याकुल हुये इन सब राजाओं का अन्त हो गया। इस प्रकार अपने को जीतने के लिये राजाओं को अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पों के रूप में मानो हँस रही है। वह कहती है—

'अहो! बुद्धिमान होते हुये भी इन राजाओं को यह कैसा मोह हो रहा है, जिसके कारण ये बुलबुले के समान क्षणस्थायी होते हुये भी अपनी स्थिरता में इतना विश्वास रखते हैं। ये लोग पहले अपने घर को ही जीतते हैं, फिर मन्त्रियों को, इसके अनन्तर क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओं को जीतना चाहते हैं। 'इसी क्रम से हम समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथिवी को जीत लेंगे, ऐसी बुद्धि से मोहित हुये ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्यु को नहीं देखते। यदि समुद्र से घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल जीत कर अपने वश में कर लिया जाय तो भी मनोजय के सामने इसका क्या मूल्य है? क्योंकि आत्मा का उद्धार तो मनोजय से ही हो सकता है। जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये और जिसे साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको (पृथिवी को) ये राजा

लोग अत्यन्त मूर्खता के कारण जीत लेना चाहते हैं। जिनके चित्त में लोभ समाया हुआ है, उन पिता, पुत्र और भाइयों में अत्यन्त मोहान्धता के कारण पृथिवी के लिये ही परस्पर कलह होता है। जो-जो राजा लोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभी की ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह पृथ्वी मेरी है—यह सारी की सारी मेरी ही है और मेरे पीछे भी यह सदा मेरी सन्तान की ही रहेगी। इस प्रकार राज्य और भूमि में ममता रखने वाले एक के पीछे एक राजाओं को सब कुछ छोड़कर मृत्यु के मुख में जाते हुये देखकर भी न जाने कैसे उनके उत्तराधिकारी अपने हृदय में फिर वैसी ही ममता को स्थान देते हैं? जो राजा लोग दूतों के द्वारा अपने शत्रुओं से इस प्रकार कहलाते हैं कि "यह पृथिवी मेरी है, तुम लोग इसे तुरन्त छोड़कर चले जाओ, उन पर मुझे (पृथिवी को) बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ों पर दया भी होती है।"

जो मनोदशा पुराणकार ने छोटे बड़े राजाओं की लिखी है, वही आज भी अधिकांश शासकों की देखने में आती है। यद्यपि अब राजाओं का नाम मिट चला है, सिंहासन पर बैठकर और मुकुट लगाकर भाट और बन्दीजनों के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने की प्रथा भी बन्द हो गई है, तो भी उनका स्थान एक अन्य सत्ताधारी श्रेणी ने ले रखा है जो शासनाधिकार को अपनी बपौती समझते हैं और हर तरह के छल-बल, कपट द्वारा उस पर अपना अधिकार बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। ये लोग भूमि को तो नहीं, पर भूमि से प्राप्त होने वाले समस्त साधनों-सम्पत्ति को अपने ही अधिकार में रखना चाहते हैं, और इ के लिये साधन-विहीन जनता पर तरह-तरह के अन्याय करने में आगा-पीछा नहीं करते। यद्यपि वे यह भी जानते हैं और कहते हैं कि "यह लक्ष्मी चंचला है। आज तक कभी किसी के पास चिरकाल तक नहीं ठहरी," तो भी इसकी ममता में वे ऐसे फँसे रहते हैं कि लोक-परलोक के बिगड़ने का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। ऐसे लोगों के लिये परलोक में कोई आशा होती ही नहीं क्योंकि जो 'माया' (लक्ष्मी) के लिये अपना सर्वस्व-आत्मा तक अर्पण कर देते हैं फिर उनका 'राम' तक पहुँचना असम्भव ही होता है।

वर्तमान शासकों में एक दोष पहले राजाओं की अपेक्षा भी अधिक देखने

मे आती है। राजाओं पर कुछ उत्तरदायित्व समझा जाता था और राज्य की हानि को निजी हानि समझने के कारण वे प्रजा को सन्तुष्ट रखने, उसकी रक्षा करने की चिन्ता भी रखते थे। पर आज कल के शासक या नेता अस्थायी होने के कारण इस प्रकार की चिन्ता से भी मुक्त होते हैं और यदि वास्तव मे वे धर्मनिष्ठ, कर्तव्यपरायण और निस्स्वार्थी नही हुये तो स्वार्थ साधन मे सलग्न होकर देश और समाज के पतन के कारण बन जाते हैं।

श्रीकृष्ण-चरित्र की विशेषताएँ—

पाँचवे अश में आरम्भ से अन्त तक कृष्ण चरित्र का वर्णन है। यद्यपि भगवान कृष्ण के महान चरित्रो का वर्णन 'भागवत' और 'महाभारत' मे विस्तार से पाया जाता है, पर विष्णु पुराण मे भी उनके लोकोत्तर कर्मों का बडी उत्तमता से वर्णन किया गया है। कृष्णजी के जन्म से पूर्व इस देश मे सैनिकवाद का दौर दौरा हो गया था और प्रत्येक राजा अपनी सेना की सख्या अधिक से-अधिक बढाकर दूसरो के राज्य को जीत लेने के लिये आतुर हो रहा था। इसके फल से सामान्य जनता की बडी दुर्दशा हो रही थी। उसका शोषण और जीवन-निर्वाह के साधनो का अपहरण दिन पर दिन बढता जाता था। सेना और युद्धो के लिये एक तरफ तो प्रजा को राजा की आज्ञानुसार सब साधन जुटाने पडते थे और दूसरी तरफ युद्धो के कारण कृषि-व्यापार आदि के कार्यों मे बाधा पडती थी और लोगो को इधर-से-उधर भागते फिरना पडता था। इससे सर्व साधारण के कष्ट बहुत बढ गये थे।

इन अन्याय पूर्ण कष्टो को सहन करते-करते जब जन-मानस अत्यन्त क्षुब्ध हो गया, तो उसकी सामूहिक भावना ही मानो पृथिवी का रूप धारण कर ब्रह्माजी की शरण मे उपस्थित हुई और उसने कहा—

"इस समय काल नमि आदि शक्तिशाली दैत्यगण मर्त्य लोक पर अधिकार जमा कर दिन-रात जनता को क्लेश पहुँचा रहे हैं। वह कालनेमि ही उग्रसेन के पुत्र महान असुर कस के रूप मे उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलि का पुत्र अति भयकर बाणासुर आदि दैत्य उत्पन्न

हो गये हैं तथा अन्य भी जो महा बलवान् दुरात्मा राक्षस राजाओं के घर में उत्पन्न हो गये हैं, मैं उनकी गणना नही कर सकती। दिव्य मूर्तिधारी ! देवगण ! इस समय मेरे ऊपर परम शक्तिशाली और अहंकारी दैत्यराजो की अनेक अक्षौहिणी सेनायें हैं। अमरेश्वरो ! मै आपको बतला देना चाहती हूँ कि अब उनके भार से अत्यन्त पीडित होने के कारण मुझमे अपने को धारण करने की शक्ति भी नही रह गयी है। अतः महाभागगण ! आप लोग मेरा भार उतारिये जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातल को न चली जाऊँ।"

उपरोक्त उद्धरण मे देश और समाज की स्थिति का जो चित्र खींचा गया है उसमे अस्वाभाविक और असम्भव कुछ भी नही है। आज भी संसार ठीक ऐसी ही स्थिति मे होकर गुजर रहा है। आज एक देश मे ही नहीं, वरन् संसार भर में सैनिक वाद का इतना अधिक दौरदौरा है और राष्ट्रों की संहारक शक्ति इतनी बढ गई है कि संसार किसी भी समय नष्ट हो सकता है। इस समय जनता की कमाई का आधा भाग तो इसी सैनिक तैयारी मे खर्च हो जाता है और इसलिये सर्वत्र लोगो को अभावजनित कष्ट सहन करना पडता है। आज भी जनता तरह तरह के करो के भार से उसी प्रकार कराह रही है जैसी कि कंस के युग मे थी। उस समय यद्यपि गौओं की संख्या हर जगह हजारो और लाखो थी और कहने के लिए दूध की नदियाँ बहती थी, पर तब भी अनेक बालकों को थोडे से दूध के लिए भी तरसना पडता था। कारण यही था कि राज्य के करो को अदा करने के लिये अधिकांश दूध का मक्खन और घी बनाकर बडे नगरो मे भेज दिया जाता था, जिससे सामान्य जनता को छाछ के अतिरिक्त दूध का एक छोटा अंश भी मिलना कठिन हो गया था।

भगवान कृष्ण ने जन्मकाल से ही ग्रामों मे निवास करके इस तथ्य की वास्तविकता को भली प्रकार समझ लिया और कुछ बडे होते ही जनता में इसके विरोधी भाव फैलाने आरम्भ कर दिये। वे सक्रिय रूप से भी दूध और मक्खन को नगरों मे भेजे जाने का प्रतिबन्ध करते थे। इन्ही कारणों से

कंस और उसके अधिकारी गण कृष्ण जी से शत्रुता मानने लगे और उन्होंने छल-बल से अनेक बार उनकी हत्या के लिए प्रयत्न किये। पर अपनी लोकोत्तर प्रतिभा और शक्ति के द्वारा उन्होंने शत्रु के गुप्त और प्रकट सभी आक्रमणों को सहज मे विफल कर दिया। उनके ये कार्य साधारण जनता मे चमत्कारों की तरह प्रसिद्ध हो गये और अन्त मे जब उन्होंने कंस को मारकर उसके अन्यायी शासन का अन्त कर दिया और छोटे-बड़े सभी लोग दमन और अत्याचारों से छुटकारा पा गये तो कृष्ण जी एक महान् दैवी शक्ति के रूप में पूजे जाने लगे।

श्री कृष्ण ने निरंकुश तथा सैनिक शक्ति में विश्वास रखने वाले शासकों के अन्त करने का मानो बीड़ा उठा लिया था, इसलिए कंस के पश्चात् वे उसके श्वसुर जरासन्ध का, जो उस समय भारत मे सबसे बड़ा सम्राट शासक था, मुकाबला करते रहे। यद्यपि जरासन्ध की सैन्य शक्ति बहुत अधिक थी, विष्णुपुराण के अनुसार उसने पहली ही बार २३ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया था, पर श्री कृष्ण ने जनता में जागृति के भाव फूँककर उसके विरुद्ध एक-ऐसा सुदृढ़ संगठन तैयार कर दिया कि उसकी सैन्य शक्ति विशेष कारगर सिद्ध नहीं हुई और अन्त मे श्री कृष्ण ने युक्ति पूर्वक उसको नष्ट कर दिया।

कालिय दमन का उद्देश्य—

विष्णु पुराण' मे कालिय-दमन का जैसा वर्णन किया है, उससे भी भगवान कृष्ण की लोक कल्याण की भावना प्रकट होती है। कहा जाता है कि जब नन्द जी ने कंस के आतङ्क से बचने लिये गोकुल छोड़कर वृन्दावन में अपना निवासस्थान बनाया तो वहाँ यमुना जी के निकट ही कालिय नाग रहता था। वह अत्यन्त क्रूर था और उसके कारण वह स्थान सब प्रकार के जीवधारियों से शून्य हो गया था। श्री कृष्ण के साथी ग्वाल बालों और गौओं को भी उससे भय रहता था। जो कोई भूल से उसके आस पास जा निकलता उसी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता। उसकी 'विषाग्नि'

के फैलने से किनारे के वृक्ष भी जल गये थे। जब श्री कृष्ण ने यह सब देखा और कालिय के वहाँ रहने के कारण मनुष्यों और पशुओं के कष्टों पर विचार किया तो उन्होंने उसे वहाँ से हटाने का निश्चय कर लिया। इस उद्देश्य से जब वे कालिय के निवास स्थान के निकट पहुँचे तो उसका वर्णन पुराणकार के शब्दों में ही सुनिये—

"मृत्यु के दूसरे मुख के समान उस महाभयंकर कुण्ड को देखकर भगवान मधुसूदन ने विचार किया, इसमें दुष्टात्मा कालिय नाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है। इसने समुद्रगामी की सम्पूर्ण यमुना का जल दूषित कर दिया है, जिससे वह प्यासे मनुष्यों और पशुओं के भी काम नहीं आता। अतः इस नागराज का दमन अवश्य करना चाहिए जिससे व्रजवासी लोग निर्भय होकर सुखपूर्वक रह सकें। ऐसा विचार कर वे पास के ही ऊँची शाखाओं वाले एक कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर अपनी कमर कसकर वेगपूर्वक नागराज के कुण्ड में कूद पड़े।

तब श्री कृष्ण ने नागराज के द्वार पर अपनी भुजाओं को ठोका, उनका शब्द सुनते ही नागराज बाहर आ गया। उसके नेत्र क्रोध से कुछ ताम्र वर्ण हो रहे थे, मुखों से अग्नि कि लपटें निकल रही थी और वह महाविषैले अन्य वायु भक्षी सर्पों से घिरा हुआ था। उसके साथ में मनोहर हारों से भूषित और कुण्डलों की कान्ति से सुशोभित सैकड़ो नाग पत्नियाँ थी। तब सर्पों ने कुण्डलाकार होकर श्री कृष्ण को अपने शरीरों से बाँध लिया और वे विषाग्र ज्वाला से व्याप्त अपने मुखों से उन्हें काटने लगे।

"गोपगण के मुख से कृष्ण जी के 'काली दह' में कूदने का समाचार सुनकर यशोदा, और अनेक गोपियाँ, नन्द जी और गोपगण तथा अद्भुत विक्रम शाली बलराम जी भी शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। जब उन्होंने कृष्ण जी को सर्प के चुंगल में फँसे देखा तो यशोदा और नन्द जी चेतना शून्य होने लगे। सभी गोप, गोपी भी शोकाकुल होकर रोने लगे।

'उनकी यह दशा देखकर रोहिणी नन्दन बलराम जी ने संकेत से
ो कृष्ण से कहा—'देव देवेश्वर, क्या आप अपने अनन्त रूप को नहीं
ानते ? फिर किस लिये यह अत्यन्त मानव भाव व्यक्त कर रहे हैं।' बलराम
ी का संकेत समझकर, मधुर मुस्कान से अपने ओष्ठ सम्पुट खोलते हुए
ृष्ण जी ने उछलकर अपने को सर्प के बन्धन से छुड़ा लिया और फिर दोनों
ाथों से सर्प का बीच का फण झुका कर उसी पर चढ़कर बड़े वेग से नाचने
लगे। उनके चरणों की धमक से कालिय का प्राण मुख में आ गया। वह
अपने जिस फण को उठाता उसी पर कूदकर भगवान उसे झुका देते। कृष्ण
की भ्रान्ति, रेचक, दण्डपात नाम की नृत्य-गतियों द्वारा ताड़न से वह
महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुत सा रुधिर वमन किया।

अन्त में नाग पत्नियों के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण ने उसे छोड़ा
और आदेश दिया कि वह यमुना जी को छोड़कर समुद्र में चला जाय। कई
व्याख्याकारों ने इस 'काली नाग' की लीला का अर्थ मानव शरीर में मूलाधार
स्थित कुण्डलिनी शक्ति का साधन करने से लगाया है। जिस
समय कुन्डलिनी को जाग्रत किया जाता है उस समय वह भी बड़े उग्र
रूप में उठती है और साधक को हिलाकर रख देती है। यह भी सम्भव है कि
'कालिय' व उसकी नाग जाति का कोई बलशाली मुखिया हो। ये लोग उस
समय आर्यों द्वारा हटाये जाकर वनों और भूगर्भ स्थित आवासों में रहते थे और
वहीं अवसर पाकर लूट-मार आक्रमण की तैयारी करते रहते थे। ऐसी दशा में
वृन्दावन में नई बस्ती स्थापित करने पर उसके आस-पास के प्रदेश को
निष्कण्टक करना श्री कृष्ण के लिये लिये आवश्यक ही था।

लोक प्रिय नेता के रूप में—

श्रीकृष्ण के चरित्र की अविवादित घटनायें उनको एक लोक प्रिय
नेता के रूप में ही प्रकट करती हैं। उनमें निस्वार्थ सेवा भाव के साथ ही
जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का स्वाभाविक गुण था। वे जहाँ
कहीं भी रहे अथवा जिस किसी स्थान में गये वहीं पर जन साधारण ने

उनका सप्रेम स्वागत किया और सहयोग दिया। यदि ऐसा न होता तो वे गोकुल, वृन्दावन जैसे सामान्य ग्रामो मे गोप जाति के साथ रहते हुए कंस, जरासंध, शिशुपाल के समान बड़े-बड़े सम्राटो का मुकाबला नही कर सकते थे। कंस वध के अवसर पर मथुरा मे एक विद्रोही की हैसियत से जाने पर भी उनको अधिकांश प्रजाजनों तथा कंस के अनेक पार्षदो का सहयोग प्राप्त हुआ।

कंस को भगवान कृष्ण ने जिस प्रकार अनायास ही मार दिया उससे यह भी प्रकट होता है कि उसके कठोर और अन्यायपूर्ण शासन से उसके प्रजाजन और बहुत से राज्याधिकारी भी विरक्त हो गये थे। उसने अपने पिता उग्रसेन को कैद करके राज्य सिंहासन हथिया लिया था, इससे उसके परिवार और वंश के सदस्यो मे भी असन्तोष की भावना उत्पन्न हो गई थी। श्रीकृष्ण ने एक चतुर राजनीतिज्ञ की भाँति इस परिस्थिति का लाभ उठाया और उसके निकटवर्ती सेवको और कर्मचारियो को भी अपना सहयोगी बना लिया। मथुरा मे कंस के माली तथा दासी कुब्जा ने उनका जिस प्रकार स्वागत किया तथा नगर के नर नारी उनको देखकर जिस प्रकार प्रसन्न हुए, उससे यह ज्ञात होता है कि उनमे सबसे मैत्रीभाव स्थापित कर लेने तथा व्यवहार कुशलता का गुण पूर्ण मात्रा मे विद्यमान था।

पर इतना प्रभाव तथा सामर्थ्य होने पर भी उनमें स्वार्थपरता अथवा अनुचित महत्वाकांक्षा का दोष तनिक भी न था। इस प्रकार एक बड़े राजा को पराभव कर देने पर यदि वे चाहते तो स्वयं राज्य के अधिकारी बन सकते थे, पर उन्होंने उसी समय राजा उग्रसेन को बन्धनमुक्त करके सिंहासन पर बैठाया और उनकी सब प्रकार से सहायता और रक्षा करने का आश्वासन दिया। इसका वर्णन करते हुए पुराणकर्ता ने लिखा है—

"तदनन्तर श्री मधुसूदन ने जिनका पुत्र मारा गया है, उन राजा उग्रसेन को बन्धनमुक्त किया और उन्हें अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

कृष्ण द्वारा राज्याभिषिक्त होकर यदु श्रेष्ठ राजा उग्रसेन ने अपने पुत्र तथा
र भी जो लोग वहाँ मारे गये थे उन सब के और्ध्वदैहिक कर्म किये। और्ध्व-
दक कर्मों से निवृत्त होने पर सिंहासनारूढ उग्रसेन से श्रीहरि बोले 'हे विनो!
ारे योग्य जो सेवा हो उसके लिये हमें निश्शंक होकर आज्ञा दीजिए। ययाति
शाप होने से यद्यपि हमारा वंश राज्य का अधिकारी नहीं है तथापि इस
मय मुझ दास के रहते हुए, राजाओं को तो क्या आप देवताओं को भी आज्ञा
सकते हैं।"

ीकृष्ण की राजनीति—

शीघ्र ही ऐसा अवसर आ गया कि श्रीकृष्ण को उग्रसेन की रक्षा के
लए प्रयत्नशील होना पड़ा। कंस मगध के सम्राट जरासंध का जामाता था।
ब उसकी विधवा पत्नी रोती-पीटती अपने पिता के समीप गई तो वह कृष्ण
ौर समस्त यदुवंशियों पर बड़ा कोधित हुआ और एक विशाल सेना लेकर
थुरा पर चढ़ दौड़ा। उसके साथ श्रीकृष्ण और बलराम के संग्राम का वर्णन
रते हुये बतलाया है—

"तब महाबली राम और जनार्दन यदुवंशियों की थोड़ी-सी सेना लेकर
गर से बाहर आये और जरासंध की सेना से भिड़ गये। उन्होंने अपने पुरा-
न अस्त्रों को स्मरण किया और उनके द्वारा शीघ्र ही मगधराज को हराकर
मथुरापुरी में चले आये। यद्यपि जरासंध की सेना हार गई थी, तो भी वह
जीवित लौट गये इससे कृष्णजी ने अपनी विजयको अपूर्ण समझा। इसी प्रकार
जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया पर उसे सदैव हार कर
वापस ही जाना पड़ा। उस समय यदुवंशियों की सेना उसके मुकाबिले में बहुत
थोड़ी थी, पर तो भी वह उसे निरन्तर पराजित करती रही, इसका कारण भग-
वान के अवतार श्रीकृष्ण का माहात्म्य ही था। जो महापुरुष केवल अपने संकल्प
मात्र संसार को नष्ट कर सकते हैं, उनके लिये जरासंध की सेना का नाश कर
देना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर उन्होंने मानव धर्म का पालन करने की दृष्टि

से साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति का सहारा लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति की। इतना ही नहीं अवसर देख कर वे भाग भी जाते थे।" (वि० ५-२२)

जरासंध के साथी कालयवन के आक्रमण के समय उन्होंने इसी नीति का आश्रय लिया। उन्होंने देखा कि इन लगातार युद्धों के कारण यदुवंशियों की स्थिति सम्हल नहीं पाती और समस्त शक्ति इन झगड़ों में ही खर्च हो जाती है। तब उन्होंने मथुरा से हट कर बहुत दूर समुद्र के किनारे द्वारका को बसाकर वहाँ यादवों का राज्य स्थापित किया। इस प्रकार अपनी राजधानी को सुरक्षित बनाकर वे मथुरा चले आये और कालयवन को युक्ति से पराजित करने की योजना करने लगे। वे मथुरा से बाहर बिना कोई शस्त्र लिये निकल आये। कालयवन उनको इस प्रकार अरक्षित देखकर पकड़ने को दौड़ा तो वे भी भागने लगे और भागते-भागते उस गुफा में आ घुसे जिसमें प्राचीन समय का राजा मुचुकुन्द दैवी निद्रा में सोया था। वह स्वयं गुफा में छुप गये और जब कालयवन भीतर आया तो मुचुकुन्द को ही कृष्ण समझ कर लात से मार दिया। मुचुकुन्द कोपपूर्वक उठ बैठा और उसके द्वारा कालयवन मारा गया।

श्रीकृष्ण की राजनीतिज्ञता का और निरंकुश शासकों के प्रति विरोध भावना का चरम रूप महाभारत में देखने में आता है। उसमें वे भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ राजनीति विशारद और जनता के हित चिन्तक के रूप में प्रकट हुए हैं। उस काल में साम्राज्यवाद दिनपर दिन प्रबल होता जाता था और जिस प्रकार हम वर्तमान समय में संसार के राष्ट्रों को दो परस्पर विरोधी दलों में बँटा देखते हैं उसी प्रकार उस जमाने में भी भारत के राजागण दो भागों में बँट गये थे जिनमें से एक का नेतृत्व पाँचालपति द्रुपद और दूसरे का कुरुसाम्राज्य का अधिपति दुर्योधन कर रहा था। भगवान कृष्ण इस साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे क्योंकि इसके द्वारा जनता का अतिशय शोषण और उत्पीड़न होता था। लोग असंतुष्ट होते हुए भी राजाओं की सैनिक शक्ति के भय से उनके अन्यायों का प्रतिरोध न कर पाते थे। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लेकर इस राजनैतिक गुटबन्दी की बहुत कुछ तोड़-फोड़ की और पाण्डवों का समर्थन एवं ऐसा दल

यार कर दिया जिससे दुर्योधन की बढ़ती हुई साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाएं र-चूर हो गई।

अनेक आलोचकों के मत से महाभारत का संग्राम भारतवर्ष की महा-ता को नष्ट करने वाला था और इसके लिए वे श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हैं। र वास्तव में उनका उद्देश्य युवावस्था से दमनकारी सैनिकवाद के थान पर जनतन्त्रीय शासन की स्थापना करना था और महाभारत काल से बौद्ध ग के उदय तक हमको जो किसी बड़े सम्राट या साम्राज्य का उल्लेख नहीं मिलता उसका कारण भगवान कृष्ण की उपर्युक्त नीति ही थी। उस युग में समस्त देश व्यापी एक जनतन्त्र शासन स्थापित हो सकने की परिस्थितियाँ और साधन तो उत्पन्न नहीं हुये तो भी कुछ समय बाद बड़े-बड़े स्थानीय जन-तन्त्र अस्तित्व में आये और सैकड़ों,हजारों वर्ष तक उनमें जनता स्वतन्त्रताकी सांस लेती हुई निवास करती रही। भगवान कृष्ण का यह लोक नेता का रूप ही उनके वास्तविक महत्व का परिचायक है और उन्होंने गीता के "यदा यदादि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" वाले श्लोक में 'अधर्म' का नाश करके 'धर्म' की स्थापना की जो प्रतिज्ञा की है, उसको सार्थक बनाने वाला उनका यही कार्य है।

विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण चरित्र का उपसंहार करते हुये व्यास जी ने भी उनका ऐसा ही महत्व बतलाया है। उन द्वारिकावासी प्रभु के स्वर्गारोहण के उपरान्त जब अर्जुन उनकी सहस्रा आश्रिताओं को लेकर हस्तिनापुर जा रहा था तो उसे लुटेरों ने लूट लिया और वह उनका कुछ भी प्रतिकार न कर सका। अपनी इस हीनता पर उसे बड़ी ग्लानि हुई और उसने अपनी मनोव्यथा व्यासजी को बतलायी। उसने कहा कि "मैंने महाभारत संग्राम में भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे अद्वितीय महारथियों को हरा दिया, पर आज थोड़े से लाठी लेकर लड़ने वाले अहीरों का भी सामना न कर सका। इससे विदित होता है कि श्रीकृष्ण ही मेरी सच्ची शक्ति थे और उन्हीं के प्रभाव से हम इतनी बड़ी सफलता प्राप्त कर सके थे।" व्यासजी ने उसकी बात का समर्थन और श्री कृष्ण का महत्व प्रकट करते हुए कहा—

"धनंजय ! तुमने श्रीकृष्ण चन्द्र का जैसा महात्म्य कहा वह सब सत्य ही है क्योंकि कमलनयन श्रीकृष्ण साक्षात् काल स्वरूप ही थे। उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही अवतार लिया था। जब पृथ्वी ने भाराक्रान्त होकर भगवान की प्रार्थना की तो श्री जनार्दन स्वयं ही यहाँ आये। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया। पार्थ! अब शेष बचे वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुल का भी उपसंहार हो गया। अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकने पर भगवान स्वेच्छानुसार चले गये। इसलिये तुम अपनी पराजय से दुःखी न हो। यह सब उन भगवान की लीला का ही कौतुक है कि तुम अकेले ने कौरवों को नष्ट कर दिया और फिर स्वयं अहीरों से पराजित हो गये।" (वि० पु० ५-३८)

शूद्रों और स्त्रियों की श्रेष्ठता—

षष्ठम अंश के दूसरे अध्याय में एक अद्भुत कथा है कि 'एक बार मुनियों में परस्पर पुण्य के विषय में यह वार्तालाप हुआ कि 'किस समय में थोड़ा पुण्य भी महान फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं' वे मुनिगण जब स्वयं इसका निश्चय न कर सके तो संदेह को मिटाने के लिये महामुनि व्यास जी के पास गये—

"उस समय व्यास जी गंगा में स्नान कर रहे थे। उन्होंने एक बार जल से थोड़ा उठकर उन मुनिजनों को सुनाते हुए—कलियुग ही श्रेष्ठ है—शूद्र ही श्रेष्ठ है यह वचन कहा। यह कहकर उन्होंने फिर जल में डुबकी लगा ली। दूसरी बार खड़े होकर फिर कहा—'स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं उनसे अधिक धन्य और कौन है ?' तदनन्तर जब व्यास जी स्नान-कर्म समाप्त करके मुनियों के समीप पहुँचे और यथायोग्य अभिवादनादि के पश्चात् अपने आसनों पर बैठ गये तो उन्होंने पूछा—'आप लोग कैसे पधारे हैं ?'

"मुनियों ने कहा—भगवन् ! पहले तो हमें यह बताइये कि आपने स्नान करते हुए जो कई बार यह कहा कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है, स्त्रियाँ ही साधु हैं सो क्या बात है ?"

"व्यास जी ने कहा; द्विजगण ! जो फल सतयुग में दस वर्ष तपस्या करने से मिलता है, उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में केवल एक दिन-रात में ही प्राप्त कर सकता है। इसी कारण मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा। द्विजातियों को पहले ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुये वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त परिश्रम तथा कष्ट से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु जिसे केवल मन्त्रहीन पाक-यज्ञ का ही अधिकार है वह शूद्र केवल सेवा-धर्म का पालन करके ही सद्गति प्राप्त कर लेता है इसलिए वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। इसी प्रकार पुरुषों को अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये धन से ही सर्वदा सुपात्र को दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिए। इस द्रव्य के उपार्जन और रक्षण में महान दुःख भोगना पड़ता है तब जाकर उनको प्राजापत्य आदि शुभ लोकों की प्राप्ति होती है। परन्तु स्त्रियां तो तन-मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं, इसीसे मैंने उनको 'साधु' कहा। (वि० पु० ६—२)

पुराण रचयिता ने इस कथानक द्वारा उन लोगों का समाधान कर दिया है जो कलियुग, अपनी जातीय हीनता अथवा साधनों की कमी का बहाना बतलाकर कर्तव्य पालन से विमुख रहते हैं। उन्होंने बतला दिया है कि न कोई जमाना बुरा होता है, न कोई जाति छोटी होती है, न कोई दर्जा निकृष्ट होता है, यदि मनुष्य व्यर्थ के झगड़ों में न पड़कर सच्चे मन से अपने कर्तव्य का पालन करता रहे। भगवान धन, दौलत, प्रतिष्ठा, विद्वता, मान-सम्मान के भूखे नहीं वे केवल भावना की कदर करते हैं। यही कारण है कि किसी सम्राट के एक लाख दान की अपेक्षा एक दीन हीन का एक पैसे का दान उनको अधिक बड़ा जान पड़ता है। इसी हार्दिक श्रद्धा और प्रेम को देखकर उन्होंने राजसी व्यंजनों के बजाय शबरी के बेरों और विदुर के साग का भोग अत्यधिक प्रेम से लगाया। इसी आधार पर वे बड़े-बड़े धर्मध्वजी विप्रों के बजाय नरसी और तुकाराम, कबीर और रैदास जैसे श्रमजीवी भक्तों के अधिक निकट पहुंच गए।

वर्तमान समय मे भी ऊँच-नीच की दूषित मनोवृत्ति समाज का बा मनहित कर रही है। यद्यपि इस समय छोटी-बडी जाति का भेद कुछ शिथिल प गया है पर उससे भी अधिक दूषित-धनी-गरीब के भेद ने उसका स्थान ले लिय है। आज धन की ही पूजा प्रतिष्ठा और सम्मान हो रहा है। गरीब व्यक्ति च जैसा सज्जन, सत्कर्म करने वाला, सेवा भावी क्यों न हो उसको आगे ब का, ऊँचा उठने का, प्रतिष्ठित पद पाने का अवसर नहीं मिलता जबकि अन दोष और दुर्गुणों के भडार धनपात्र व्यक्ति रुपये के जोर से ही समाज मुखिया और नेता बन बैठते हैं। यह प्रवृत्ति भगवान और धर्म के आदेशों विपरीत है और जब तक इसे बदला न जायगा ससार दिन पर दिन विपत्ति के दलदल मे ही फँसता चला जाय।

स्त्रियों का महत्व भी स्पष्ट है। वे सच्चे अर्थों में समाज की निर्मात्र होती हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपना प्रारम्भिक जीवन उनकी गोद में ही बिताना पडता है और जैसा उनका स्वभाव, व्यवहार, आचार-विचार होता है उसका प्रभाव मनुष्यो पर अवश्य पडता है। वर्तमान समय के बाल-मनो विज्ञान के ज्ञाताओ के अनुसार तो बच्चा जन्म लेने के साथ ही सीखने लगत है और प्रारम्भिक दो-तीन वर्षों में उसके भावी जीवन का अधिकाश मे निर्माण हो जाता है। अर्थात् उस छोटी अवस्था मे उसके ऊपर जो सस्कार पडते हैं वे फिर आजीवन कठिनता से बदलते है और उन्ही के अनुसार वह अच्छी बुरी जीवन-धाराओ को अपनाता है। अगर स्त्री अपने इसी एक कर्तव्य का वास्त विक रूप में पालन कर सके तो वह समाज का इतना बडा कार्य सिद्ध करत है, जिसका बदला किसी प्रकार नहीं दिया जा सकता। इसी को महर्षि व्यास ने 'पति की हितकारिणी' बनने का नाम दिया है, क्योंकि भावी सतान का सत्पात्र (सपूत) होना मनुष्य का सबसे बडा सौभाग्य है। पर इसके लिये स्त्री को सुयोग्य होना आवश्यक है। मूर्खा और अविकासित स्त्री तो सतान का निर्माण करने के बजाय उसका सत्यानाश कर देती है जिससे अनेक बार तो यही कहना पडता है कि ऐसे 'पुत्रवान' होने से तो 'निपुत्री' रहना ही

अच्छा। विष्णु पुराण के मतानुसार स्त्रियाँ धन्य अवश्य हैं क्योंकि वे समाज के लिये परम उपकारी हैं। यदि वे अपने कर्तव्य का समुचित पालन न करें तो मानव समाज उन्नत और सुसंस्कृत बन ही नहीं सकता।

मानव-जन्म की सार्थकता—

'विष्णु पुराण' के अन्तिम तीन अध्यायों में आध्यात्मिक चर्चा करते हुए मनुष्य को प्राप्त होने वाले त्रिविध ताप, परमार्थ-विद्या और ब्रह्मयोग का परिचय कराया गया है, जिससे मनुष्य संसार-चक्र और भव बन्धनों से छुटकारा पाकर अपने सत्य स्वरूप में अवस्थित हो सकता है। मानव जीवन को सब वेद, शास्त्र तथा ज्ञानी जनों ने बहुत बड़ा लाभ बतलाया है, एक ऐसा लाभ जिसके लिये देवगण भी लालायित रहते हैं। पर यह लाभ प्राप्त तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने स्वरूप और कर्तव्यों को समझे और माया-मोह के फन्दे से बचकर अपना वास्तविक कर्तव्य पालन करे। जो ऐसा नहीं करता, इसके विपरीत मार्ग पर चलता है, तो उसके लिये यह एक महान बन्धन, पतन का साधन भी बन सकता है। इस प्रकार इस मानव जीवन को स्वर्गीय या नारकीय बनाना हमारे अपने ही हाथ में है। जो व्यक्ति इस तत्व को जाने बिना अन्धे की तरह जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करता है वह शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तीनों तरह के तापों में ग्रसित होकर सुख की तुलना में कष्ट ही अधिक उठाता है। इन तीनों तरह के तापों का वर्णन करते हुए पुराणकार कहते हैं—

"शारीरिक ताप के कितने ही भेद हैं, वह सुनो। शिरोरोग, प्रतिश्याय (पीनस) ज्वर, शूल, भगदर गुल्म, अर्श (बवासीर), शोथ, श्वास, नेत्ररोग, अतिसार, कुष्ठ आदि शारीरिक कष्ट भेद से देहिक ताप कितने ही प्रकार के हैं। अब मानसिक तापों को सुनो—काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या, और मात्सर्य आदि भेदों से मानसिक ताप के अनेक भेद हैं। आध्यात्मिक तापों के भी इसी प्रकार कितने ही भेद हैं। मनुष्यों को जो कष्ट जगनी पशु पक्षी, पिशाच, सर्प, बिच्छू, राक्षस आदि

से प्राप्त होता है, वह आधिभौतिक कहा जाता है। और शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, बाढ़, विद्युत्पात आदि से प्राप्त दुःख आधिदैविक कहे जाते हैं।

"इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक जीव अनेकों दुखो को भोगता है। अज्ञान रूप के अन्धकार से आवृत्त होकर मूढ़हृदय पुरुष यह नही जानता कि 'मैं कहाँ से आया हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? मेरा स्वरूप क्या है ? मैं किस बंधन से बँधा हुआ हूँ ? इस बन्धन का क्या कारण है ? अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है ? मुझे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए ? क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए ? धर्म क्या है अधर्म क्या है ? किस अवस्था मे मुझे किस प्रकार रहना चाहिए ? मेरा क्या कर्तव्य है ? अथवा क्या गुण और क्या दोष है ? इस प्रकार पशु के समान, विवेक-शून्य, उदर और इन्द्रिय के भोगों मे आसक्त पुरुष अज्ञान-जनित महान दुःख भोगते हैं।" (वि० पु० ६-५)

इन प्रकार केवल स्वार्थ परायण जीवन व्यतीत करने वाला इस लोक और परलोक मे दुख ही पाता है। यदि वह कभी सुख का भी अनुभव करता है तो वह क्षणिक और भ्रम-युक्त होता है। जैसे शराब के नशे मे मनुष्य बड़ा 'मजा' समझता है और आरम्भ मे बड़ी प्रसन्नता भी प्रकट करता है, पर उसका परिणाम बदहवास होकर इधर-उधर गिरना और अपमानित होना ही होता है। परलोक मे भी ऐसे पाप-परायण व्यक्तियो की अत्यन्त दुर्गति होती है क्योंकि दूषित मनोवृत्तियो के कारण उनकी आत्मा और सूक्ष्मदेह वहाँ भी वैसे ही कष्ट अनुभव करती रहती है। इस प्रकार बार-बार मरना और जीना और गर्भावस्था, जरावस्था तथा मरणकाल के कष्ट सहना कभी मानव जन्म की सार्थकता नही मानी जा सकती।

निष्काम कर्म और ज्ञान-मार्ग—

इसलिये शास्त्रों का उपदेश यही है कि इस ससार के पदार्थों मे अधिक ममता रखने और स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति, घर, भूमि आदि की प्राप्ति और रक्षा मे ही सलग्न रहने से मनुष्य को कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। ये पदार्थ

जितना सुख देते हैं उससे अधिक दु:ख का कारण होते हैं। इस कारण आत्म कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को इनमें कभी आसक्त नहीं होना चाहिए, वरन् इनका सम्बन्ध कर्तव्य रूप ही मानना चाहिए। इसके लिए पुराणकार ने दो मार्ग ही हितकारी बतलाये हैं, एक निष्काम कर्म-योग और दूसरा ज्ञान-योग, इसकी विवेचना करते हुये उन्होंने कहा है—

"ज्ञान दो प्रकार का है—शास्त्रजन्य और विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्र-जन्य है और परब्रह्म का बोध विवेकजन्य। अज्ञान घोर अंधकार के समान है। उसको नष्ट करने के लिये इन्द्रियोद्भवज्ञान दीपकवत् और विवेकज-ज्ञान सूर्य के समान है। इस विषय में भगवान मनु ने कहा है, कि शब्द ब्रह्म (शास्त्र-जन्य ज्ञान) में निपुण हो जाने पर जिज्ञासु विवेकजन्य ज्ञान के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अथर्ववेद के अनुसार भी विद्या दो प्रकार की है—परा और अपरा। परा से अक्षर (सच्चिदानन्द) ब्रह्म की प्राप्ति होती है और अपरा वेदत्रयी रूपा है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, सर्वगत, नित्य, भूतों का आदिकारण, स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है, जिसे पंडित-जन ज्ञान-नेत्रों से देखते हैं, वह परम धाम ही अक्षर ब्रह्म है। मुमुक्षु जनों को उसी का ध्यान रखना चाहिये। वही वेद वचनों से प्रतिपादित भगवान् विष्णु का अति सूक्ष्म परम पद है। इसका ज्ञान और सान्निध्य प्राप्त करने के दो साधन स्वाध्याय और योग हैं। स्वाध्याय से योग का और योग से स्वाध्याय का आश्रय करे, क्योंकि एक दूसरे के सहायक होने से ये दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति से परमात्मा जाने जाते हैं।"

(वि० पु० ६-५)

उपरोक्त उद्धरण में पुराणकार ने कर्म और ज्ञान का जो समन्वय किया है, वही अधिकांश बुद्धिवादी विद्वानों का अभिमत है। जो लोग इन दोनों मार्गों में भेद उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं और इस सम्बन्ध में 'शास्त्रार्थ' करने को उद्यत रहते हैं, उनकी विद्या को तोते के समान रटी हुई और पेट को भरने के साधन स्वरूप ही समझना चाहिए। मनुष्य का काम न तो कोरे ज्ञान से चल

सकता है और न विवेक शून्य कर्म से। पहली प्रकार के मनुष्य यदि रोगी, दव और समाज पर भारस्वरूप होते हैं तो दूसरी श्रेणी के पशु-स्तर का जीवन बिता कर विकास और उत्थान के अयोग्य बन जाते हैं। इसलिये लेखक का यह मत बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य को अपने जीवन की सफलता के लिये कर्म और ज्ञान परा और अपरा विद्या का समन्वय बनाये रखना अनिवार्य है। एक तरफ जहा सासारिक कर्तव्यो का पालन करके, समस्त सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों के साथ यथायोग्य व्यवहार करके सुख, सफलता प्राप्त करना प्रशसनीय है, वहाँ दूसरी ओर आत्म-कल्याण का ध्यान रखकर शास्त्रों का चिन्तन, मनन, उपासना, त्याग, तप, सेवा के मार्ग मे भी अग्रसर होते रहना आवश्यक है।

ऐसे धर्म-पालन के लिए यह आवश्यक नही कि मनुष्य सर्वस्व त्यागी बनकर और जङ्गलो मे जाकर रहने लगे अथवा छापा-तिलक लगाकर, भभूत रमाकर, वस्त्रत्याग कर 'साधू' या 'जोगी' बन जाय। यह मार्ग तो इस समय घोर पतनकारी सिद्ध हो रहा है। ऐसे 'त्यागी बाबा' और 'तपसी महाराज' तो प्राय. साधारण गृहस्थी-जन के अपेक्षा भी कही अधिक प्रपच मे फँसे और निकृष्ट कर्म करते दिखलाई पडते हैं। वे ससार का उपकार करने की बजाय अपकार ही अधिक करते हैं और इस प्रकार निष्पक्ष लोगो की निगाह मे 'धर्म' और 'ज्ञान' को उपहास तथा निन्दा का विषय बनाते हैं। इसलिये परमार्थ और मोक्ष का मार्ग भी लौकिक कर्तव्यो का पालन करते हुए ही अधिक सुगमता और निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है। पुराणकार ने आगे चल कर खाण्डिक्य और केशिध्वजजी की कथा में यह स्पष्ट भी कर दिया है कि श्रेष्ठता अपने-अपने कर्तव्यो को पालन करते रहने और सत्य-व्यवहार की ही है। ऐसा व्यक्ति चाहे घर मे रहे या वन मे, उसको भगवान की प्राप्ति निश्चित ही है। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर इस पुराण मे भारतवर्ष को स्वर्ग से भी बढकर बतलाया है, क्योंकि यह ऐसी कर्म भूमि है जहाँ मनुष्य निष्काम भाव से कर्तव्य पालन करके स्वर्ग और अपवर्ग, स्वार्थ और परमार्थ दोनो की सिद्धि कर सकता है। पुराणलेखक अपनी ललित भाषा मे कहते हैं

गायन्ति देवा: किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात् ॥
कर्माण्यसकल्पितत्फलानि सनस्य विष्णौ परमात्मभूते ।
प्रवाप्य ता कर्म महीमनन्ते तास्मिल्लँय ये त्वमला प्रयान्ति ॥
(वि० पु० २,३।२४-२५)

भारतभूमि की महिमा पर मुग्ध होकर कवि कहता है कि यही एक ऐसा देश है जहा पर मनुष्य कर्म करते हुये भी उनके लिए 'अपनत्व' का अहकार नहीं करते वरन् उसके फल को ईश्वरार्पित करके स्वय निर्लेप बने रहते हैं। यही कारण है कि स्वर्गके देवता भी यही गाते रहते हैं कि भारतभूमि बडी सौभाग्य शालिनी है जहा स्वर्ग और अपवर्ग दोनो का समन्वय किया जा सकता है। निसन्देह उसमें जन्म लेने वाले धन्य हैं।

× × × × ×

'विष्णु पुराण' वास्तव मे पुराण-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। विषय-निर्वाचन, तथ्यो का निरूपण, वर्णन शैली का सरल और स्वाभाविक होना, भाषा का सौष्ठव और लालित्य आदि जितने गुण इस अपेक्षाकृत अल्प विस्तार वाले पुराण मे भर दिये गये हैं उन्हे देख कर 'गागर मे सागर' की उक्ति ही स्मरण हो आती है। हमारा विश्वास है कि इस पुराण को पढकर पाठकों के मन में से उन बहुत सी धारणाओं का अन्त हो जायगा जिनको बहुत से स्वयम्भू आलोचक, जिन्होंने कभी एक भी पुराण को पूरा न पढा होगा, समय-समय पर पुराणों के विरुद्ध प्रकट किया करते हैं।

हम यह नहीं कहते कि सब पुराण या उनमे दिये गये सब विषय उच्च-कोटि के उपयोगी और निर्दोष हैं। सभी प्राचीन ग्रन्थों की तरह पुराणों में भी समय-समय काफी मिलावट की गई है। विदेशी आक्रमणो के समय उनम से अनेक नष्ट हो गये और फिर उनको इधर-उधर से सामग्री सग्रह करके फिर से प्रस्तुत किया गया। इससे अनेक परिवर्तन, परिवर्द्धन उनमें होते ही रहे।

अनेक स्वार्थीजनों ने उनमें से अपने लाभ की दृष्टि से तीर्थ, दान आदि की महिमा अप्रासंगिक रूप से भर दी, कही श्राद्धो का विशाल विधि-विधान ही शामिल कर दिया गया। इस प्रकार बहुसंख्यक अनावश्यक, अनुपयोगी और अनेक दूषित विषय भी पुराणो मे शामिल कर दिये गये हैं। पर इस आधार पर उनका सर्वथा बहिष्कार करना बुद्धिमानी की बात नही है। अनेको काम की महत्व की बातें भी हैं, अनेक प्राचीन तथ्यो का पता उनके द्वारा लगाया जा सकता है, इसलिये उनका संशोधन, परिमार्जन करके, उनकी उपयोगी बातो का संग्रह करना, उनसे लाभान्वित होना ही सर्वथा उचित है।

'विष्णु पुराण' का कलेवर पहले से ही अल्प था और लोकप्रिय होने के कारण उसका सर्वोपयोगी रूप भी विकृत होने से बच गया, इसलिए उसे पूर्ण रूप मे यथातथ्य प्रकाशित किया गया है।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय सूची

प्रथम अंश

द्वितीय अंश

तृतीय अंश

चतुर्थ अंश



ॐ

श्रीविष्णुपुराण

प्रथम अंश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

पहला अध्याय

ॐ पराशरं मुनिवरं कृतपौर्वाह्णिकक्रियम् ।
मैत्रेयः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥१॥
त्वत्तो हि वेदाध्ययनमधीतमखिलं गुरो ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि तथाङ्गानि यथाक्रमम् ॥२॥
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मामन्ये नाकृतश्रमम् ।
वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु प्रायशो येऽपि विद्विषः ॥३॥
सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत् ।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥४॥
यन्मयं च जगद्ब्रह्मन्यतश्चैतच्चराचरम् ।
लीनमासीद्यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥५॥

श्री सूतजी ने कहा—जब मुनि श्रेष्ठ पाराशरजी पूर्वाह्णिक
कर्म करके अपने आसन पर विराजमान हुए तो मैत्रेय ऋषि

ने उनको प्रणाम अभिवादन करके पूछा— हे गुरुदेव आपके सर्व रहकर मैंने समस्त वेद-वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है ॥१-२॥ आपके अनुग्रह से पण्डितजन भी यह नहीं कह सकते कि 'मैंने शास्त्राध्ययन में श्रम नहीं किया है।' मेरे विरोधी भी ऐसा नहीं कह सकते हैं ॥३॥ हे धर्मज्ञ ! अब मैं आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि यह जगत जिससे उत्पन्न हुआ है, यह समस्त चराचर जिसमें लीन था, जिससे प्रकट हुआ है, जिसमें लय होगा, उसका मूल स्वरूप क्या है ? ॥४-५॥

यत्प्रमाणानि भूतानि देवादीना च सम्भवम् ।
समुद्रपर्वताना च सस्थान च यथा भुवः ॥६॥
सूर्यादीना च सस्थान प्रमाण मुनिसत्तम ।
देवादीना तथा वशान्मनून्मन्वन्तराणि च ॥७॥
कल्पान् कल्पविभागाश्च चातुर्युगविकल्पितान् ।
कल्पान्तस्य स्वरूपञ्च युगधर्माश्च कृत्स्नशः ॥८॥
देवर्षिपार्थिवाना च चरित यन्महामुने ।
वेदशाखाप्रणयन यथावद्व्यासकर्तृकम् ॥९॥
धर्मांश्च ब्राह्मणादीना तथा चाश्रमवासिनाम् ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं त्वत्तो वासिष्ठनन्दन ॥१०॥
ब्रह्मन्प्रसादप्रवण कुरुष्व मयि मानसम् ।
येनाहमेतज्जानीयां त्वत्प्रसादान्महामुने ॥११॥
साधु मैत्रेय धर्मज्ञ स्मारितोऽस्मि पुरातनम् ।
पितु पिता मे भगवान् वसिष्ठो यदुवाच ह ॥१२॥
विश्वामित्रप्रयुक्तेन रक्षसा भक्षित पुरा ।
श्रुतस्तातस्ततः क्रोधो मैत्रेयाभून्ममातुल ॥१३॥
ततोऽह रक्षसा सत्रं विनाशाय समारभम् ।
भस्मीभूताश्च शतशस्तस्मिन्सत्रे निशाचरा ॥१४॥

आकाश आदि पञ्च महाभूतों की स्थिति, देवताओं की उत्पत्ति, समुद्र, पर्वत और पृथ्वी की दशा, सूर्य आदि ग्रहों का संस्थान और परिमाण, देवताओं का वंश, मनु और मन्वन्तरों का वर्णन, कल्पों और युगों का स्वरूप, कल्पान्तर, सम्पूर्ण युगों के धर्म, देवर्षि और राजाओं के चरित्र, व्यासजी द्वारा वेदों की विभिन्न शाखाओं का प्रणयन आदि का वर्णन भी मैं सुनना चाहता हूँ ॥६–६॥

हे शक्तितनय ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णों और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमों के धर्म मैं आपसे जानना चाहता हूँ। हे ब्रह्मन् ! आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे मैं इन समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकूँ ॥ १०–११ ॥ पाराशर जी बोले—हे धर्मज्ञ मैत्रेय ! तुमने पुराने विषयों की अच्छी याद दिलाई। पितामह वसिष्ठ ने जो कुछ कहा था वह सब अब मुझे स्मरण हो रहा है ॥ १२ ॥ हे मैत्रेय ! जब मैंने यह सुना था कि विश्वामित्र द्वारा प्रेरित राक्षस ने पिताजी को भक्षण कर लिया, तो मुझे अत्यन्त क्रोध हुआ था और मैंने राक्षसों के विनाशार्थ यज्ञ प्रारम्भ कर दिया जिसमें सैकड़ों हजारों राक्षस प्रतिदिन भस्म होने लगे ॥१३–१४॥

ततः सङ क्षीयमाणेषु तेषु रक्षस्स्वशेषतः ।
मामुवाच महाभागो वसिष्ठो मत्पितामह. ।१५।
अलम् त्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जहि
राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं हि तत्।१६।
मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः ।
हन्यते तात कः केन यत. स्वकृतभुक्पुमान् ।१७।
सञ्चितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवै. ।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकर. पर ।१८।
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः ।
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ।१९।

अलं निशाचरैर्दग्धैर्दीनैरनपराधिभिः ।
सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः ॥२०॥
एवं तातेन तेनाहमनुनीतो महात्मना ।
उपसंहृतवान्सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् ॥२१॥

जब इस प्रकार अनेकों राक्षस नष्ट हो गए तब मेरे पितामह महाराज वसिष्ठ जी ने आकर कहा—वत्स—अत्यन्त क्रोध करना ठीक नहीं होता, अतः उसको शांत करो । राक्षसों का कोई दोष नहीं है तुम्हारे पिता का प्रारब्ध ऐसा ही था ॥ १५–१६ ॥ मूढ़ व्यक्ति ही क्रोध किया करते हैं, ज्ञानीजन ऐसा नहीं करते । हे प्रिय ! कोई किसी का वध नहीं करता है, क्योंकि सब अपने - अपने कृतकर्मों का फल भोग किया करते हैं ॥ १७ ॥ यह भी समझो कि मनुष्य अत्यन्त परिश्रम करके यश और तपस्या का सञ्चय करता है, पर क्रोध में वह सहज ही में नष्ट हो जाते हैं । इसलिए ज्ञान के भण्डार ऋषिगण स्वर्ग और मोक्ष में बाधा स्वरूप क्रोध का परित्याग कर देते हैं । इसलिए हे तात ! तुम भी क्रोध के वशीभूत मत हो ॥ १८–१९ ॥ बिना किसी दोष के समस्त निशाचरों को भस्म करना निरर्थक है, इसलिए अब अपने इस यज्ञ से निवृत्त हो, क्योंकि साधुओं का भूषण क्षमा ही है ॥ २० ॥ पितामह महोदय के इस प्रकार उपदेश करने पर मैंने उनका आदेश शिरोधार्य करके उसी समय यज्ञ का उपसंहार कर दिया ॥२१॥

ततः प्रीतः स भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
सम्प्राप्तश्च तदा तत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥२२॥
पितामहेन दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः ।
मामुवाच महाभागो मैत्रेय पुलहाग्रजः ॥२३॥
वैरे महति यद्वाक्याद् गुरोरद्याश्रिता क्षमा ।
त्वयातस्मात्समस्तानिभवाञ्छास्त्राणि वेत्स्यति ॥२४॥
सन्ततेर्न ममोच्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः ।
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्य महावरम् ॥२५॥

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति ।
देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ।२६।
प्रवृत्ते च निवृत्ते च कर्मण्यस्तमला मतिः ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धा तव वत्स भविष्यति ।२७।
ततश्च प्राह भगवान्वसिष्ठो मे पितामहः ।
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ।२८।

इस पर महामुनि वसिष्ठ मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी बीच में ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य जी वहाँ आ पहुँचे ॥२२॥ पिताजी ने उनको अर्घ्यदान दिया और पुलस्त्य जी आसन पर बैठकर मुझ से कहने लगे—"अत्यन्त वैरभाव होने पर भी तुमने जो गुरुजनों के वचन को स्वीकार करके क्षमा कर दिया इससे तुमको समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो जायगा ॥ २३–२४ ॥ पुलस्त्य जी आगे कहने लगे—"क्रोध करने पर भी तुमने जो मेरे वंश का मूलोच्छेद नहीं किया उसके लिए मैं तुमको यह विशेष वर प्रदान करता हूँ कि तुम पुराण-संहिताओं के रचयिता होगे, देवता और परमार्थ तत्व को यथावत् जान सकोगे और मेरे प्रसाद से प्रवृत्ति और निवृत्ति मूलक धर्म में तुम्हारी बुद्धि निर्मल और असंदिग्ध रहेगी" ॥ २५–२६–२७ ॥ तत्पश्चात् मेरे पितामह भगवान वसिष्ठ ने कहा-"पुलस्त्य जी ने तुम से जो कहा है वह समस्त सत्य होगा" ।२८।

इति पूर्वं वसिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता ।
यदुक्तं तत्स्मृतिं याति त्वत्प्रश्नादखिलं मम ।२९।
सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते ।
पुराणसंहितां सम्यक्तां निबोध यथातथम् ।३०।
विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ।३१।

हे मैत्रेय ! पूर्वकाल में वसिष्ठ जी और बुद्धिमान पुलस्त्य जी ने इस प्रकार जो कहा था वह सब इस समय तुम्हारे प्रश्न करने से मुझे स्मरण हो आया ॥२९॥ अतएव अब मैं तुम्हारे द्वारा जिज्ञासित पुराण-

सहिता पूर्ण रूप से बतलाता हूँ, तुम सम्यक्तया उसे श्रवण करो ॥ ३० ॥ यह समस्त जगत विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उन्ही में स्थित है। इसकी स्थिति और संयम के कर्ता वही हैं और वस्तुतः वे ही जगत् रूप हैं ॥३१॥

दूसरा अध्याय

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ।१।
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ।२।
एकानेकरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे ।३।
सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः ।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।४।
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ।५।
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः ।
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ।६।
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्।
प्रणम्य जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ।७।
कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः ।
पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ।८।

पाराशर जी कहने लगे—अविकार, शुद्ध तीनों काल में अविनाशी परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्वविजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शंकर के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सृष्टि-स्थिति-विनाश करने वाले वासुदेव को नमस्कार है ॥१–२॥ एकानेक स्वरूप स्थूल-सूक्ष्ममय

कार्यकारणभूत, मुक्तिदाता विष्णु को नमस्कार है। इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय के मूलभूत, जगन्मय परमात्मा विष्णु को नमस्कार है ॥३–४॥ विश्वाधार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सब प्राणियों में स्थित अक्षर, पुरुषोत्तम, ज्ञान स्वरूप, वास्तव में अत्यन्त निर्मल किन्तु, भ्रांतिवश स्थूल रूप में दृश्यमान, कालस्वरूप, जन्मशून्य, अच्युत जगदीश्वर विष्णु को प्रणाम करके मैं उस समस्त कथानक को कहता हूँ जिसको पद्मयोनि भगवान ब्रह्मा जी ने दक्षादि महामुनियों के प्रश्न करने पर कहा था ॥५–८॥

तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे ।
सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च ॥९॥
परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः ।
रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ॥१०॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः ।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् ॥११॥
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥१२॥
तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥१३॥
तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥१४॥

दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा के तट पर पितामह का कथन राजा पुरुकुत्स को सुनाया था, पुरुकुत्स ने उसे सारस्वत से कहा और सारस्वत से मैंने सुना ॥९॥ परात्पर आत्मसंस्थित परमात्मा, जो कि रूप, वर्ण, निर्देश से रहित है, अपक्षय विनाश–परिणाम–वृद्धि–जन्म से रहित है, और जिसके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि वह "सदा है" वही इस जगत में सर्वत्र व्याप्त है और समस्त जगत उसमें वास करता है, इसीलिये वासुदेव कहा जाता है ॥१०—१२॥ वह ब्रह्म जन्मशून्य,

नित्य स्वरूप, अक्षय, अव्यय, सर्वदा एक रूप, माया तथा उसके गुणों से रहित और निर्मल है ॥ १३ ॥ व्यक्त (महदादि), अव्यक्त (माया) पुरुष और काल इन चारो रूपो मे वही स्थित है ॥१४॥

परस्य ब्रह्मणो रूप पुरुष. प्रथम द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥१५॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालाना परम हि यत् ।
पश्यन्ति सूरय शुद्ध तद्विष्णो परम पदम् ॥१६॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागश ।
रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतव ॥१७॥
व्यक्त विष्णुस्तथाव्यक्त पुरुष काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टा तस्य निशामय ॥१८॥
अव्यक्त कारण यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमै ।
प्रोच्यते प्रकृति सूक्ष्मा नित्य सदसदात्मकम् ॥१९॥
अक्षय्य नान्यदाधारममेयमजर ध्रुवम् ।
शब्दस्पर्शविहीन तद्रूपादिभिरसहितम् ॥ २० ॥
त्रिगुण तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् ।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद्व्याप्त वै प्रलयादनु ॥२१॥

हे द्विज ! परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष होता है दूसरा तथ तीसरा व्यक्त और अव्यक्त है और चौथा रूप काल है । ज्ञानीजन इन चारो मे जो शुद्ध और परम–सार वस्तु है उसी का अनुभव करते हैं और वही विष्णु का परम पद अथवा परमरूप है ॥ १५—१६ ॥ पूर्वोक्त प्रधान आदि रूप ही विभागानुसार समस्त सृष्टि–स्थिति–प्रलय के उद्भव और प्रकट होने का कारण है ॥ १७ ॥ विष्णु भगवान जो पुरुष आदि रूपो में प्रकट होते हैं, उसको बालकों के खेल की तरह ही समझना चाहिए ॥ १८ ॥ ऋषिगण अव्यक्त कारण रूप प्रधान को ही सूक्ष्म प्रकृति के नाम से पुकारते हैं । यही अव्यक्त, अक्षय, अन्य आश्रय, अनन्त, अजर, निश्चल, शब्द-स्पर्श विहीन, रूप रहित त्रिगुणमय ही

जगत का कारण है। यह स्वयं अनादि है। सृष्टि के पहले और प्रलय के पश्चात् सर्वत्र वही एक ही तत्त्व व्याप्त रहता है ॥१९—२१॥

वेदवादविदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः ।
पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम् ॥२२॥
नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-
र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥२३॥
विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र ।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ॥२४॥
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत् ।
तस्मात्प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥२५॥
अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते ।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥२६॥
गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते ।
कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्तते ॥२७॥
ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः ।
सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥२८॥
प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः ।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥२९॥

हे विद्वान्! वेदों के ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति इस प्रधान को ही लक्ष्य करके निम्नलिखित श्लोक द्वारा उसका वर्णन किया करते हैं। "प्रलय काल में दिन-रात्रि, आकाश-भूमि, अन्धकार-प्रकाश कुछ भी न था। उस समय केवल प्रधान, ब्रह्म और पुरुष मात्र ही था" ॥२२—२३॥ हे द्विज! प्रधान और पुरुष ये दोनों रूप उपाधि

रहित विष्णु के स्वरूप से पृथक है । ये दोनों सृष्टि आरम्भ होने के समय पृथक हो जाते हैं और प्रलय काल में एक अव्यक्त रूप में लय हो जाते है ॥२४॥ महाप्रलय के समय समस्त विश्व प्रकृति में अन्त निहित रहता है इसलिए उसे प्राकृत-प्रलय कहते हैं ॥ २५ ॥ कालरूप भगवान अनादि है, इनका कोई अन्त नहीं है । इसलिए सृष्टि-स्थिति और प्रलय के क्रम का भी कभी अन्त नहीं होता, वे प्रवाह रूप से बराबर होते रहते हैं ॥ २६ ॥ हे मैत्रेय ! प्रलय काल में सत्व-रज तम की निष्क्रिय अवस्था होकर गुणसाम्य हो जाता है और पुरुष प्रकृति से पृथक अवस्था में रहने लगता है, तब भी भगवान विष्णु का वह काल स्वरूप बना रहता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर सृष्टि काल के आजाने पर ब्रह्म परमात्मा, जगन्मय सर्वगामी, सर्वभूतेश्वर, सर्वात्मा परमेश्वर ने स्वय की इच्छानुसार परिणामी प्रकृति और अपरिणामी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको सृष्टिकार्य के लिए क्षोभित और प्रेरित किया ।२८-२९॥

यथा सन्निधिमात्रेण गध क्षोभाय जायते ।
मनसो नोपकर्तृ त्वात्तथासौ परमेश्वरः ।३०।
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तम ।
स सकोचविकासाभ्या प्रधान वेऽपि च स्थिट ।३१।
विकासाणुस्वरूपैश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा ।
व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णु सर्वेश्वरश्वर ।३२।
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ।
गुणव्यञ्जनसम्भूति सर्गकाले द्विजोत्तम ।३३।
प्रधानतत्त्वमुद्भू त महान्त तत्समावृणोत् ।
सा त्त्वको राजसश्चव तामसश्च त्रिधा महान् ३४
प्रधानतत्त्वेन सम त्वचा बीजमिवावृतम् ।
वैकारिस्तजसश्च भूतादिश्चैव तामस ।३५।

पर इस कार्य मे परमेश्वर की कोई क्रियाशीलता नही होती । जैसे गन्ध के समीप होने से मन में चञ्चलता उत्पन्न होती है, परमेश्वर

का यह क्षोभ (जनकत्व) उसी प्रकार का होता है । वास्तव में वे परमेश्वर ही सङ्कोच और विकास द्वारा क्षुभित होने वाले और क्षोभ करने वाले हैं और वे ही प्रधान प्रकृति के रूप में रहते हैं ॥ ३०—३१ ॥ आकाश आदि पञ्चभूत, ब्रह्मा आदि समस्त जीव और व्यक्त सृष्टि के रूप में भी वे परमेश्वर ही रहते हैं ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तम ! सृष्टिकाल उपस्थित होने पर पुरुष द्वारा अधिष्ठित उस गुणसाम्य से गुणव्यञ्जन अर्थात् महत्तत्व उत्पन्न हुआ । महत्तत्व तीन प्रकार का होता है— सात्विक, राजस और तामस । जिस प्रकार बीज छिलके से ढका रहता है उसी प्रकार यह महत्तत्व भी प्रधान तत्व से सर्वत्र व्याप्त रहता है ॥ ३३—३५ ॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत ।
भूतेन्द्रियाणां हेतुः स त्रिगुणत्वान्महामुने ।३६।
यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ।३७।
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् ।३८।
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ।३९।
आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ।४०।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रं तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ।४१।
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च ।४२।
रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ।४३।

महत्तत्व से वैकारिक अर्थात् सात्विक, तेजस (राजस) और भूतादि (तामस) इन तीन प्रकार के अहङ्कार तत्व की उत्पत्ति हुई। अहङ्कार त्रिगुणात्मक होने के कारण ही भूत, इन्द्रिय और देवताओं के उद्भव का कारण होता है ॥ ३६॥ जिस प्रकार प्रधान तत्व द्वारा महत्तत्व आवृत होता है उसी प्रकार अहङ्कार महत्तत्व से आवृत्त रहता है। तामस अहङ्कार ने क्षुभित—कार्योन्मुख होकर शब्द तन्मात्रा और शब्द तन्मात्रा से शब्द गुण वाले आकाश की सृष्टि की और दोनों को आवृत कर लिया। आकाश ने क्षुभित होकर स्पर्श तन्मात्रा की सृष्टि की और उससे स्पर्श गुण विशिष्ट बलवान वायु की उत्पत्ति हुई और आकाश ने वायु को आवृत कर लिया ॥ ३७—३९॥ इसके पश्चात् वायु क्षुभित होने पर उसमें से रूपमात्र और ज्योति उत्पन्न हुई ज्योति का गुण रूप है ज्योति वायु द्वारा आवृत हुई। ज्योति के क्षुभित होने पर रसमात्र उत्पन्न हुआ। उससे रस विशिष्ट जल का जन्म हुआ और वह ज्योति द्वारा आवृत हुआ। जल के क्षुभित होने पर गन्ध मात्र की सृष्टि हुई, उससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई जिसका विशेष गुण गन्ध है ॥ ४०-४३ ॥

सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः।
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता ।४४।
तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते।
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषिणः।४५
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात्।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।४६।
एकादश मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः।
त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पञ्चमम्४७
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज।
पायूपस्थौ करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पञ्चमी ।४८।

विसर्गशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषां च कथ्यते ।
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी यथा । ४९ ।

इन आकाश आदि भूतों में शब्द आदि की मात्रा होती है, जिसमें उसे तन्मात्रा कहा जाता है। सब तन्मात्राओं को 'अविशेष' माना जाता है। उनको शान्त, घोर या मूढ़ आदि विशेषण नहीं लगाये जाते। यह केवल तामस अहङ्कार से समस्त भूतों की सृष्टि होती है। दस इन्द्रियों को तैजस अथवा राजस अहङ्कार से उत्पन्न कहा जाता है। और इन्द्रियों के दस देवताओं को वैकारिक अर्थात् सात्विक अहङ्कार से उत्पन्न माना गया है ॥४४—४५॥ ग्यारहवीं इन्द्रिय मन जिसके देवता चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र आदि को कहा गया है। हे द्विज! श्रोत्र, चर्म, चक्षु, जिह्वा और नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जो शब्दादि को ग्रहण करने की शक्ति और बुद्धि रखती हैं। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और जिह्वा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं जिनका काम मल मूत्र विसर्जन, शिल्प, गति और बोलना है ॥ ४७—४९ ॥

हे ब्रह्मन् ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी एक से एक अधिक सत्ता में शब्दादि गुणों से युक्त हैं। इनको शान्त घोर, मूढ होने के कारण 'विशेष' कहा जाता है। इन पंच तत्वों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ हैं, इसलिए वे परस्पर में बिना मिले हुये संसार की रचना नहीं कर सकते इसलिए वे एक दूसरे से संयोग करने वाले होकर, एक ही लक्ष्य वाले महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के सभी रूपों ने 'पुरुष' से अधिष्ठित होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रह से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की। ।।५०—५३।। हे महाबुद्धिमान ! वह जल के बुलबुल के समान गोलाकार तथा महान प्राकृत अण्ड पंच भूतों की सहायता से क्रमशः बढ़ता गया। अव्यक्त रूप जगत्पति भगवान विष्णु व्यक्त रूप होकर इस अण्ड में निवास करने लगे ।।५४—५६।।

मेरुरुल्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्सुमहात्मनः ।५७।
साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवद्विप्र सदेवासुरमानुषः ।५८।
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ।५९।
अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान् ।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव ।६०।
जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः ।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्त्तते ।६१।
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
सत्वभृद्भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ।६२।
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ।६३।

सुमेरु पर्वत इस गर्भ रूप अण्ड की उल्व (गर्भ-वेष्टन), अन्यान्य पर्वत जरायु और समस्त समुद्र उसके गर्भोदक हुए। हे विप्र! इसी अण्ड से पर्वतो सहित समस्त द्वीप, समस्त समुद्र और देव, असुर मनुष्य तथा अन्य समस्त प्राणी उत्पन्न हुए ॥५७—५८॥ उस अण्ड मे जल अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि (तामस अहङ्कार पूर्व-पूर्व की अपेक्षा दस गुणा बाहर से आवृत्त किये हुए था। ये सब भूतादि महत्तत्त्व से आवृत्त थे और सबके सहित महत्तत्त्व अव्यक्त से आवृत था। जैसे नारियल के भीतर की गिरी बाहर के खोल और छिलके से घिरी हुई होती है उसी प्रकार यह ब्रह्माड सात प्राकृत आवरणो से आवृत रहता है ॥५९—६०॥ विश्वेश्वर भगवान रजोगुण का अवलम्बन करके स्वय ब्रह्मा होकर सृष्टि कार्य मे प्रवृत्त हुये। अतुलित पराक्रम से भगवान विष्णु सत्वगुण का अवलम्बन करके कल्प-काल तक युग-युग मे सकल सृष्टि का पालन करते है। तत्पश्चात जब कल्प का अन्त होता है तब ही भगवान तमोगुण सम्पन्न होकर अति भीषण रूप म समस्त भूतो को भक्षण कर लेते हैं ॥६१—६३॥

भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते ।
नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ।६४।
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टि करोति ब्रह्मरूपधृक ।६५।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणी ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स सज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दनः ।६६।
स्रष्टा सृजति चात्मान विष्णु पाल्य च पाति च ।
उपसंहृयते चान्ते सहर्ता च स्वय प्रभुः ।६७।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्य हि यज्जगन् ।६८।
स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोव्ययः ।
सर्गादिक तु तस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ।६९।
स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।
ब्रह्माद्यवस्था भिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ।७०।

जब सब भूतों को उदरस्थ कर लेते हैं और जगत एकार्णव हो जाता है तब वे भगवान शेष शैया पर शयन करने लगते हैं। फिर जागने पर ब्रम्हा का रूप धर कर नई सृष्टि करते हैं ये एक मात्र भगवान जनार्दन ही सृष्टि-स्थिति और प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नामों को ग्रहण करते है ॥६४—६६॥ भगवान ब्रह्मा होकर स्वयं की सृष्टि करते हैं, विष्णु होकर अपना ही पालन करते हैं। और अन्त में रुद्र होकर अपना ही सहार करते हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश समस्त इन्द्रियों और अन्तःकरण युक्त जगत उस भगवान का ही विस्तृत रूप है। जब वे अव्यय हरि ही सब भूतों के रूप में हैं, वे ही विश्व रूप है तब सृष्टि रचना आदि सब कुछ उन्हीं के लिये है। वे ही सृजन किये जाते हैं, वे ही सृष्टि कर्ता हैं, वे ही पालन और भक्षण करते हैं, वे ही पाले जाते हैं और वे ही ब्रह्मा आदि की अवस्था में सब रूपों में व्याप्त होते हैं। अतएव भगवान विष्णु ही वरिष्ठ, वरद और वरेण्य हैं ॥ ६७—७० ॥

तीसरा अध्याय

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः।
कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोऽभ्युपगम्यते। १।
शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।२।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता।
तन्निबोध यथा सर्गे भगवान्सम्प्रवर्तते।३।
नारायणाख्यो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन्नित्यमेवोपचारतः।४।
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते।५।

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम् ।६।
अन्येषां चैव जन्तूनां चराणामचराश्च ये।
भूभूभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम ।७।
काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम।
काष्ठात्रिंशत्कला त्रिंशत्कला मौहूर्तिको विधिः।८।
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः।९।

मैत्रेय ने पूछा कि जो परमात्मा निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और अमल है उसको सृष्टि का कर्ता कैसे माना जाय? ॥१॥ पाराशरजी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार समस्त भाव रूप पदार्थों की शक्ति बिना तर्क के मानली जाती है, जिस प्रकार अग्नि में उष्णता होना उसका स्वभाव सिद्ध गुण है, उसी प्रकार भगवान का सृष्टिकार्य में सम्बन्ध है उसे मैं भली प्रकार समझाता हूँ ॥२—३॥ जैसे यह कहा जाता है कि नारायण नाम वाले लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुये यह एक उपचार-रूप से है। ब्रह्मा की आयु ब्राह्म वर्ष के हिसाब से सौ वर्ष की बतलाई गई है। इन सौ वर्षों का नाम 'पर' होता है और इसके दूसरे अर्द्धांश का नाम परार्द्ध कहा जाता है ॥४—५॥ हे निष्पाप, मैंने तुमको विष्णु का जो काल स्वरूप बतलाया है उसके द्वारा ब्रह्मा, अन्य प्राणी, पृथ्वी तथा अन्य भूतों सागर आदि का परिमाण श्रवण करो ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला की एक घड़ी होती है और दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त का मनुष्यों का एक दिन-रात्रि होता है। तीस दिन-रात्रि का एक महीना होता है जिसमें दो पखवारे होते हैं ।७-९॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ।१०।

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ।११।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः ।१२।
तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वा तत्राभिधीयते ।
सन्ध्यांशश्चैव तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ।१३।
सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालोमुनिसत्तम ।
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः ।१४।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ।
प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने ।१५।

छः महीनों का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है। इनमें से दक्षिण अयन में देवताओं की रात्रि और उत्तर अयन में उनका दिन होता है। देवताओं के परिमाण से बारह हजार वर्षों के सतयुग, त्रेता आदि चारों युग होते हैं। उनके विभागों का हिसाब इस प्रकार है ।।१०—११।। प्राचीन तत्व के ज्ञाता इन चार युगों के परिमाण को क्रमशः चार, तीन, दो और एक सहस्र वर्षों का बतलाते हैं। प्रत्येक युग की सन्ध्या का परिमाण क्रम से चार तीन दो और एक सौ वर्ष का होता है और सन्ध्यांश (युग के समाप्त होने के पश्चात का समय) भी इतना ही होता है ।।१२—१३।। सन्ध्या से लेकर सन्ध्यांश के बीच तक जितना समय व्यतीत होता है, उसी को सतयुग त्रेता आदि कहा जाता है। हे मुनिवर सतयुग, त्रेता द्वापर, कलियुग इन चारों युगों में एक हजार बार बीत जाने अर्थात चार हजार युगों का जितना समय होता है उसे ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है ।।१४—१५।।

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ।
भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ।१६।

ताप से व्यथित होकर जनलोक में चले जाते हैं ।।२३।।

एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
भोगिशय्यां गतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।२४।
जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः ।
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः।२५।
एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च यत् ।
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ।२६।
एकमस्य व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ ।
तस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः।२७।
द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः ।२८।

इसके पश्चात् तीनों लोक का एक रूप हो जाता है, नारायण स्वरूप ब्रह्मा तीनों लोकों को ग्रसित कर शेषशैया पर शयन करने लग जाते हैं ।।२४।। तब जन लोक निवासी योगियों द्वारा चिन्तमान ब्रह्माजी ब्रह्म-दिन के बराबर वर्षों तक ही रात व्यतीत करते हैं । इसके पश्चात फिर सृष्टि होती है ।।२५।। इसी प्रकार दिन-रात्रि के परिमाण से पक्ष, मास आदि की गिनती से ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । ऐसे सौ वर्षों की ब्रह्मा की परमायु होती है । हे निष्पाप द्विज ! इस समय तक ब्रह्मा का एक परार्द्ध व्यतीत हो चुका है और उसके अन्त में पद्म नामक महाकल्प पूर्ण हो चुका है । द्वितीय परार्द्ध का यह प्रथम कल्प वराह के नाम से कहा जाता है ।।२६—२८।।



पूर्व अयन (निवासस्थान) होता है वे नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं। ॥४–५–६॥ जगत को जलमय देखकर उन प्रभु ने पृथ्वी के जलान्तगत होने का अनुमान किया और उसके उद्धार की कामना की॥ ७॥

अकरोत्स्वतनूमन्या कल्पादिषु यथा पुरा।
मत्स्यकूर्मादिका तद्वद्वाराह वपुरास्थित. ।८।
वेदयज्ञमय रूपमशेषजगतः स्थितौ।
स्थित. स्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः।
जनलोकगतैस्सिद्धैस्सनकाद्यैरभिष्टुत. ।
प्रविवेश तदा तोयमात्माधारो धराधरः ।१०।
निरीक्ष्य त तद देवी पातालतलमागतम्।
तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धरा ।११।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर।
मामुद्धरास्मादद्य त्व त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता ।१२।
त्वयाहमुद्धृता पूर्वं त्वन्मयाहं जनार्दन।
तथान्यानि च भूतानि गगनादीन्यशेषत. ।१३।
नमस्ते परमात्मात्मन्पुरुषात्मन्नमोऽस्तु ते।
प्रधान व्यक्त भूताय कालभूताय ते नम ।१४।

तब उन अशेष जगत के मूलभूत, स्थिरात्मा, सर्वात्मा, परमात्मा आत्माधार, धराधर, प्रजापति ने जिस प्रकार पूर्व कल्पों में मत्स्य, कूर्म आदि का रूप धारण किया था उसी प्रकार वेद-यज्ञमय वराह का शरीर अवलम्बन करके जन लोक स्थित सिद्ध गणों द्वारा स्तुत होते हुए जल के भीतर प्रवेश किया॥ ८–१०॥ उस समय वसुन्धरा देवी ने उनको पाताल में आया हुआ देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगी॥ ११॥ पृथ्वी ने कहा हे सर्वभूत! तुमको नमस्कार है शङ्ख-गदाधर! तुमको नमस्कार। आपने पहले भी मेरा उद्धार किया था आज भी इस पाताल तल से मुझे निकालिये। आप तो पृथ्वी से आकाश तक समस्त भूतों के रचयिता हैं। हे परमात्मन्! आपको नमस्कार।

पुरुषात्मन ! आपको नमस्कार। आप प्रधान, व्यक्त रूप एवं काल स्वरूप को नमस्कार ॥ ११--१४ ॥

त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ॥१५॥
सम्भक्षयित्वा सकलं जगत्येकार्णवीकृते ।
शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥१६॥
भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन ।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥१७॥
त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः ।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥१८॥
यत्किञ्चिन्मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः ।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव ॥१९॥
त्वन्मयाहं त्वदाधारा त्वत्सृष्टा त्वत्समाश्रया ।
माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्ते ततो हि माम् ॥२०॥

हे प्रभो ! सृष्टि आदि के लिए आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र का स्वरूप धारण करते हो, तुम ही सर्व भूतों के कर्त्ता हो, तुम ही रक्षा करने वाले और तुम ही विनाश करने वाले हो ॥१५॥ हे गोविन्द ! जगत के जलमय होने पर सबको भक्षण करके तुम ही मनीषियों द्वारा चिन्त्यमान होकर शयन करते रहते हो ॥ १६ ॥ आपके परम तत्त्व को तो कोई जान नहीं सकता, अतः अवतार में जैसा प्रकट होता है उसी की देव-गण अर्चना करते हैं ॥ १७ ॥ हे परब्रह्म ! तुम्हारी ही आराधना करके मोक्षकामी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करते हैं। वासुदेव की आराधना के बिना कौन मोक्ष पा सकता है ? ॥ १८ ॥ जो कुछ मन से ग्रहण किया जा सकता है, जो कुछ नेत्रों से ग्रहण किया जा सकता है और जो कुछ बुद्धि से जाना जा सकता है वह सब आपका ही रूप है ॥ १९ ॥ मैं भी आप ही से प्रकट हूँ, आपके ही आधार पर हूँ, आपकी ही बनाई हूँ, आपकी ही आश्रित हूँ इसलिये लोग मुझे माधवी कहते हैं ॥ २० ॥

जयाखिलज्ञानमय जय स्थूलमयाव्यय ।
जयानन्त जयाव्यक्त जय व्यक्तमय प्रभो ।२१।
परापरात्मन्विश्वात्मञ्जय यज्ञपतेऽनघ ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्नयः ।२२।
त्वं वेदास्त्वं तदङ्गानि त्वं यज्ञपुरुषो हरे ।
सूर्यादयो ग्रहास्तारा नक्षत्राण्यखिलं जगत् ।२३।
मूर्तामूर्तमदृश्यं च दृश्यं च पुरुषोत्तम ।
यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर ।
तत्सर्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ।२४।
एवं संस्तूयमानस्तु पृथिव्या धरणीधरः ।
सामस्वरध्वनिः श्रीमाञ्जगर्ज परिघर्घरम् ।२५।
ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान् ।२६।
उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहतं तत्सम्भवाम्भो जनलोकसंश्रयान् ।
प्रक्षालयामास हि तान्महाद्युतीन् सनन्दनादीनपकल्मषान् मुनीन् ।२७।
प्रयान्ति तोयानि खुराग्रविक्षत रसातलेऽधः कृतशब्दसन्तति ।
श्वासानिलास्ताः परितः प्रयान्ति सिद्धा जने ये नियता वसन्ति ।२८।

हे अखिल ज्ञानमय ! आपकी जय हो, हे स्थूलमय अव्यय ! आप की जय हो, जय अनन्त, जय अव्यक्त, जय व्यक्तमय ! प्रभो परमात्मन ! विश्वात्मन ! आप जययुक्त हो। हे अनघ यज्ञपते ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं, आप ही अग्नि स्वरूप हैं ॥ २१-२२ ॥ हे हरे ! आप ही वेद हैं, आप ही वेदाङ्ग हैं, आप ही यज्ञ-पुरुष हैं। सूर्यादि ग्रह, तारा, नक्षत्रादि युक्त समस्त जगत आप ही हो ॥ २३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! इस समय मैंने मूर्त अमूर्त, अदृश्य दृष्टि जो कुछ कहा है अथवा नहीं कहा है, वह सब तुम ही हो, तुमको नमस्कार। हे परमेश्वर ! हे भूयो भूयो आपको नमस्कार ॥ २४ ॥ पाराशर जी कहने लगे पृथ्वी द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर साम स्वर ध्वनि वाले महाप्रभु

धरणीधर घर्घर शब्द करके गर्जने लगे। तत्पश्चात् कमल पत्र के समान स्निग्ध-श्याम प्रफुल्ल पद्मलोचन महावाराह पृथ्वी को दाँत पर उठाकर महान नीलाचल के समान रसातल से ऊपर आये ॥ २५–२६ ॥ ऊपर उठते समय उनके मुँह से जो वायु निकली उससे ताड़ित होकर जल-राशि जनलोक स्थित निष्पाप सनन्दन आदि मुनियों तक पहुँची और उनको प्रक्षालित कर दिया। नीचे की ओर उस जलराशि ने क्षण में फटने की तरह रसातल में प्रवेश किया। उस वायु के वेग से जनलोक में निवास करने वाले सिद्ध गण इधर-उधर क्षिप्त होकर विचलित हो गये। २८।

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं विगृह्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयः स्तुवन्ति ।२९।
तं तुष्टुवुस्तोषपरीतचेतसो लोके जने ये निवसन्ति योगिनः ।
सनन्दनाद्या ह्यतिनम्रकन्धरा धराधरं धीरतरोद्धतेक्षणम् ।३०।
जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक् ।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वर त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम् ।३१।
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे ।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ।३२।
विलोचने रात्र्यहनी महात्मन्सर्वाश्रयं ब्रह्म परं शिरस्ते ।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राणं समस्तानि हवींषि देव ।३३।
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे ।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन्भगवन्प्रसीद ।३४।
पदक्रमाक्रान्तभुवं भवन्तमादिस्थितं चाक्षर विश्वमूर्ते ।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि चराचरस्य ।३५।

पृथ्वी को धारण करके जल से भीगे हुए और कम्पित काय उन महावराह के वेदमय शरीर में मुनियों ने आश्रय ग्रहण किया। तब वे जनलोक निवासी सनन्दादि मुनिगण आनन्द पूर्वक मन्द करण से अत्यन्त नम्रता से कुछ कर उन उदार नयन धरणीधर की स्तुति करने लगे।

॥ २९-३० ॥ हे ब्रह्मा आदि ईश्वरों के परमेश ! गदा-शंख-असि-चक्र के धारण करने वाले प्रभु ! केशव ! आपकी जय हो । आप सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्त्ता ईश्वर हो, परम पद आपसे भिन्न नहीं है ॥ ३१ ॥ हे यूप-दंष्ट्र यज्ञ-पुरुष ! आपके चारों पैर ही वेद स्वरूप हैं, दांत यज्ञ हैं, मुख अग्नि कुण्ड है, आपकी जिह्वा हुताशन है, समस्त रोम दर्भ (कुश) हैं, महात्मन ! आपके दोनों नेत्र ही दिन-रात्रि हैं, मस्तक सर्वाश्रय ब्रह्मपद है, गर्दन पर की बखार अशेष सूक्त (पुरुष-सूक्त आदि) और घ्राण हवि है। हे स्रुक्तुण्ड ! हे सामस्वर धीरनाद ! यज्ञाग्नि ! अखिल सत्र सन्धि ! आपके दोनों कान इष्टापूर्त कर्म हैं। हे देव ! सनातन भगवन प्रसन्न हों ! ॥३२-३३-३४ ॥ हे अक्षर विश्वमूर्ति ! आपके चरणों से पृथ्वी व्याप्त है । हम आपको विश्व का आदि और स्थिति के रूप में जानते हैं ॥ ३५ ॥

दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद्भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते ।
विगाहतः पद्मवनं विलग्नं सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम् ॥३६॥
द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव ।
व्याप्तं जगद्व्याप्तिसमर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभो भव त्वम् ॥३७॥

परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते ।
तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम् ॥३८॥
यदेतद् दृश्यते मूर्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव ।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः ॥३९॥
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः ।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसम्प्लवे ॥४०॥
ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् ।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर ॥४१॥
प्रसीद सर्व सर्वात्मन्वासाय जगतामिमाम् ।
उद्धारोर्वीममेयात्मन् शन्नो देह्यब्जलोचन ॥४२॥

युक्त कमलपत्र की तरह दिखाई दे रहा है ॥ ३६ ॥ हे अतुल प्रभाव ! पृथ्वी और आकाश के बीच अन्तरिक्ष मे तुम्हारा शरीर ही व्याप्त है। हे जगद व्यापि समय दीप्ति ! आप विश्व के हित म निमित्त हो। हे जगत्पत ! आप ही एक मात्र परमार्थ हो और कोई नही है। यह चराचर जिसके द्वारा व्याप्त हो रहा है वह आपकी ही महिमा है ॥ ३७-३८ ॥ आप ज्ञानात्मा हो और जो आपकी मूर्ति दृष्टिगोचर होती है वह आपका ही ज्ञानमय रूप ही है। पर ज्ञानरहित व्यक्ति जगत को भौतिक दृष्टि से ही देखते हैं। जिनकी बुद्धि कच्ची है व ही इस ज्ञान स्वरूप अखिल जगत को स्थूल रूप मे देखते है। और संसार सागर मे डूबते उतराते रहते है ॥ ३९-४० ॥ हे परमेश्वर ! जो ज्ञानविद् शुद्ध चेता हैं, वे समस्त जगत को तुम्हारा ज्ञानात्मक रूप ही मानते है ॥ ४१ ॥ हे सर्वात्मन ! हे जग दात्मन ! जगत के निवास के लिये पृथ्वी का उद्धार करके हम सबको सुखी करो ॥ ४२ ॥

सत्त्वोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथ्वीमिमाम् ।
समुद्धर भवायेश शन्नो देह्यब्जलोचन ।४३।
सर्गप्रवृत्तिर्भवतो जगतामुपकारिणा ।
भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शन्नो देह्यब्जलोचन ।४४।
एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महीधर ।
उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भसि ।४५।
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वात्तु देहस्य न मही याति सम्प्लवम् ।४६।
ततः क्षितिं समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ।
यथाविभागं भगवाननादि परमेश्वर ।४७।
प्राक्सर्गदग्धानखिलान्पर्वतान्पृथ्वीतले ।
अमोघेन प्रभावेण ससर्जामोघवाञ्छित ।४८।
भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपान्यथातथम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ।४९।

हे भगवन गोविन्द ! आप सत्वयुक्त हुए हो, उद्भव के लिए पृथ्वी का उद्धार करो। हे अज लोचन ईश्वर ! हमारा कल्याण करो। आपकी सृष्टि रचना जगत के लिए उपकारिणी हो ॥ ४३-४४ ॥ पाराशर जी ने कहा— परमात्मा धरणीधर ने इस प्रकार की स्तुति सुन कर शीघ्रतापूर्वक भूमि को ऊँचा उठाया और महासमुद्र को हटाया ॥४५॥ अपने बृहत आकार को लेकर पृथ्वी जल के ऊपर एक बड़ी नाव के समान तैरने लगी ॥ ४६ ॥ तत्पश्चात अनादि परमेश्वर ने पृथ्वी को समतल करके पर्वतों का यथास्थान स्थापित किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने अपने अमोघ प्रभाव से पूर्व काल में दग्ध हुए पर्वतों को पृथ्वी तल पर फिर से सृष्टि की ॥ ४८ ॥ फिर सातों द्वीपों के रूप में पृथ्वी को यथा तथा विभाजित करके समस्त लोकों की कल्पना की ॥ ४९ ॥

ब्रह्मरूपधरो देवस्ततोऽसौ रजसा वृत ।
चकार सृष्टि भगवाञ्चतुर्वक्त्रधरो हरिः ।५०।
निमित्तमात्रमेवासौ सृज्यानां सर्गकर्मणि ।
प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तय ।५१।
निमित्तमात्रं मुक्त्वैव नान्यत्किञ्चिदपेक्षते ।
नीयते तपतां श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ।५२।

तत्पश्चात रजोगुण से युक्त भगवान चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना प्रारम्भ की ॥ ५० ॥ वे इस सृष्टि कार्य में निमित्त मात्र ही हुए क्योंकि समस्त वस्तुओं की रचना में उनकी निजी शक्ति ही मुख्य कारण रूप होती है ॥ ५१ ॥ हे तपस्वी श्रेष्ठ ! सृजन कार्य के लिये और किसी कार्य की अपेक्षा नहीं जान पड़ती। समस्त वस्तुएँ अपनी शक्ति से उद्भव को प्राप्त होती हैं ॥ ५२ ॥



पाँचवाँ अध्याय

यथा ससर्ज देवोऽसौ देवर्षिपितृदानवान् ।
मनुष्यतिर्यग्वृक्षादीन्भूव्योमसलिलौकसः ।।१।।
यद्गुणं यत्स्वभावं च यद्रूपं च जगद् द्विज ।
सर्गादौ सृष्टवान्ब्रह्मा तन्ममाचक्ष्व कृत्स्नशः ।।२।।
मैत्रेय कथयाम्येतच्छृणुष्व सुसमाहितः ।
यथा ससर्ज देवोऽसौ देवादीनखिलान्विभुः ।।३।।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।।४।।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।।५।।
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ।।६।।
मुख्या नगा यतः प्रोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ।।७।।
तं दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ।।८।।

मैत्रेय ने प्रश्न किया—"हे द्विज श्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ने जिस प्रकार देवर्षि, पितृ, दानव, मनुष्य, तिर्यक, वृक्ष आदि तथा पृथ्वी, आकाश तथा जल में रहने वाले प्राणियों की रचना और आरम्भ में जगत को जैसे गुण का, जिस स्वरूप का, जिस स्वभाव का बनाया उसको समझा कर कहिये" ।। १—२ ।। पराशर ने कहा— "प्रभु ने जिस प्रकार देवादि समस्त सृष्टि रचना की, मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान-होकर सुनो ।। ३ ।। पूर्वकाल के कल्पों में जिस प्रकार सृष्टि बनी थी उसके विषय में सोचते-सोचते ब्रह्माजी अबुद्धि से तमोमयसर्ग को प्रादुर्भूत किया ।। ४ ।। अर्थात् उससे तम, मोह महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र इस पञ्चपर्वा अविद्या का प्रादुर्भाव हुआ । इस सृष्टि में अप्रतिबोध, बहिरन्त प्रकाश का संवृतात्मा (मूढ स्वभाव) और नगात्मक

पाँच प्रकार की सृष्टि प्रकट हुई । ब्रह्माजी की सृष्टि सब से प्रथम ना (स्थावर) रचना ही हुई जिससे उसका नाम मुख्य-सर्ग पड गया ॥ ५-६ ॥ पर उसे कार्य-साधन में असमर्थ देख कर उन्होंने अन्य प्रकार की रचना का ध्यान किया ॥७—८॥

तस्याभिध्यायत सर्गस्तिर्यक् स्रोताभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यकप्रवृत्तिस्स तिर्यक्स्रोतास्नतः स्मृत ॥६॥
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिन ॥१०॥
अहङ्कृता अहम्माना अष्टाविंशद्वधात्मका ।
अन्त. प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च परस्परम् ॥११॥
तमप्यसाधक मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्ध्वमवर्तत ॥१२॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवा. स्मृताः ॥१३॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु स स्मृत ।
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥१४॥
ततोऽन्य स तदा दध्यौ साधक सर्गमुत्तमम् ।
असाधकास्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥१५॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तत ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधक ॥१६॥

तब उन्होंने तिर्यक जीवों की रचना की । इस रचना में प्राणी आहार संग्रह द्वारा जीवित रहते थे इसलिए इसका नाम तिर्यक ना 'तिर्यक स्रोता' पड़ा ॥ ६ ॥ ये सब अविवेकी में तमोमय, अनुसधान शून्य, उत्पथ ग्राही, अज्ञान को ही ज्ञान समझने वाले, अहंकृत, अह म्मान, अट्ठाविंशवधात्म, अन्त प्रकाश और परस्पर में आवृत ॥ १०—११ ॥ इस रचना को भी कायक्षम न देखकर तीसरी रचना की जो ऊर्ध्ववासी, ऊर्ध्वस्रोता और सात्त्विक थे । ब्रह्मा जी का य

तीसरा सर्ग देव-सर्ग के नाम से पुकारा गया । इससे ब्रह्मा जी को सन्तोष हुआ और इसे उन्होंने पसन्द भी किया । फिर उन्होंने पहली रचनाओं का कार्यक्रम न देखकर, कार्य करने योग्य रचना का ध्यान किया और अव्यक्त (माया) से अर्वाक्स्रोता (मनुष्यों) को प्रादुर्भूत किया । जिसका आशय यह है कि ये नीचे की ओर जाने वाले आहार से जीवित रहते थे ॥१२—१६॥

यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥१७॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु ते ॥१८॥
इत्येते कथिताः सर्गाः षडत्र मुनिसत्तम ।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥१९॥
तन्मात्राणां द्वितीयश्च भूतसर्गो हि स स्मृतः ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥२०॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥२१॥
तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यः स उच्यते ।
तदूर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥२२॥

यह सृष्टि अधिक प्रकाश वाले, तमोद्रिक्त और रजोधिक थे । इसी कारण मनुष्य विशेष दुःख अनुभव करने वाले, विशेष कार्य करने वाले बहिरन्तः प्रकाशक और कार्य साधक हुए ॥ १७-१८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार यह छः प्रकार की सृष्टि कही गई । महत्तत्व ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि कही जाती है । दूसरी सृष्टि तन्मात्राओं की है जिसको भूत-सर्ग कहा जाता है । तीसरा सर्ग वैकारिक है जिसको ऐन्द्रियिक भी कहा जाता है ॥ १९—२० ॥ ये तीनों सर्ग अविद्या नाम वाली प्रकृति से उत्पन्न होते हैं । मुख्य स्थावर सर्ग चौथा है, तिर्यक योनि वाला पाँचवा और ऊर्ध्वस्रोता अथवा देव-सर्ग छठा है ॥२१—२२॥

ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।२३।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।२४।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ।२५।
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ।
सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।२६।
संक्षेपात्कथितः सर्गो देवादीनां मुने त्वया ।
विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ।२७।
कर्मभिर्भाविताः पूर्वैः कुशलाकुशलैस्तु ताः ।
ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः संहारे ह्युपसंहृताः ।२८।
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तु ताः ।२९।
ततो देवासुरपितृन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ।३०।

तदनन्तर अर्वाक् स्रोता नामक मनुष्य-सर्ग सातवाँ है। आठवें सर्ग का नाम अनुग्रह है जो सात्विक और तामस होता है। ये पाँच सर्ग वैकृत तथा पहले तीन प्राकृत कहे जाते हैं। इस प्रकार प्राकृत तथा वैकृत सर्ग आठ प्रकार के होते हैं और सनत्कुमार आदि का सर्ग नवम है ॥ २३—२४ ॥ ये ही समस्त सर्ग जगत के मूल हेतु हैं। प्रजापति की रचना के इन नौ सर्गों का विवरण तुमको सुना दिया गया, अब जगदीश्वर की सृष्टि के विषय में तुम क्या सुनना चाहते हो? मैत्रेय ने कहा—'हे मुनिवर! आपने संक्षेप में देवादि की सृष्टि के विषय में बतलाया। मैं इस विषय को विस्तार पूर्वक आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ २५ ॥ पराशर ने कहा—'प्रलय के समय जब प्रजा का संहार होता है तब भी उसमें भली बुरी बुद्धि का संस्कार बना रहता है, उनकी कर्मानुसारिणी बुद्धि उनको एक दम नहीं त्याग देती है।

हे ब्रह्मन ! ब्रह्मा द्वारा नवीन सृष्टि किये जाने के समय देवता आदि और स्थावर आदि चारों तरह की प्रजा बुद्धि के संस्कार सहित उत्पन्न होती है। यह सब मानस प्रजा होती है, क्योंकि ब्रह्मा के ध्यान से ही उसकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् वह देव, असुर, पितृ और मनुष्य-इन चार प्रकार अन्त. संज्ञक प्रजा की रचना के लिए अपने शरीर की योजना करते हैं ॥२६-३०॥

युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः । ३१ ।
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
सा तु त्यक्ता तनुस्तेन मैत्रेयाभूद्विभावरी ।३२।
सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ।
सत्त्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ।३३।
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्दिनम् ।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ।३४।
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ।३५।
उत्ससर्ज ततस्तां तु पितृन्सृष्ट्वापि स प्रभुः ।
सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ।३६।

इस प्रकार सृष्टि किये जाने वालों के ग्रहण, से मिलकर प्रजा-
[illegible] युक्तात्मा हो गया। उसमें से तमोगुण की मात्रा बढ़ने से जाँघों से सर्वप्रथम असुर गणों की उत्पत्ति हुई ॥ ३१ ॥ तब उसने तमो-[illegible]त्मक तनु (तमोमय भाव) को त्याग दिया और उस त्यागे हुए [त]मोगुण से रात्रि बन गई ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् ब्रह्मा अन्य देह (सात्विक [भा]व) में स्थित हो अपने मुख से सत्त्व-गुण युक्त देवों की सृष्टि की ॥ ३३ ॥ जब उसने उस देह का त्याग कर दिया तो उसका दिन बन [ग]या। इसीलिए असुर गण रात्रि में और देवता दिन में बलवान होते [हैं] ॥ ३४ ॥ फिर उस सत्वमात्रात्मक अन्य देह धारण करके बगल में से

पितृों को उत्पन्न किया। तब उसने उस देह को भी त्याग दिया और उससे दिन तथा रात्रि के मध्य सन्ध्या का आविर्भाव हुआ॥ ३५-३६॥

रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनुं ततः।
रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम। ३७।
तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः।
ज्योत्स्ना समभवत्सापि प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ।३८।
ज्योत्स्नागमे तु बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा।
मैत्रेय सन्ध्यासमये तस्मादेते भवन्ति वै ।३९।
ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि तु ।४०।
रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्।
ततः क्षुद् ब्रह्मणो जाता जज्ञे कामस्तया ततः ।४१।
क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद्भगवास्ततः।
विरूपा श्मश्रुला जातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम् ।४२।
मैवं भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते।
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात् ।४३।
अप्रियेण तु तान्दृष्ट्वा केशाः शीर्यन्त वेधसः।
हीनाश्च शिरसो भूमः समारोहन्त तच्छिर ।४४।

हे द्विज सत्तम ! तब उसने रजोगुण युक्त अन्य देह ग्रहण की और उससे रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यों का आविर्भाव हुआ। जब प्रजापति ने उस देह का त्याग किया तो उसकी चाँदनी बन गई और उसका नाम प्रातःकाल हो गया॥ ३७-३८॥ मैत्रेय! इसीलिए तमाम मनुष्य प्रातःकाल में और पितृगण सन्ध्या काल में बलशाली रहते हैं॥ ३९॥ तीन गुणों में आश्रित ज्योत्स्ना, रात्रि, दिवस और सन्ध्या—ये चारों प्रभु-ब्रह्मा के शरीर हैं॥ ४०॥ फिर रजोगुण समन्वित अन्य देह ग्रहण करके ब्रह्मा से भूख और काम की उत्पत्ति हुई॥ ४१॥ जब भगवान ने विरूप, बढ़े हुये दाढ़ी

वाले भूखे प्राणियो की सृष्टि की तो वे प्रभु को ही खाने को दौड़े। उनमे से जिसने कहा कि "अरे ऐसा मत करना, इसकी रक्षा करो"—उनका नाम राक्षस हुआ और जिन्होंने कहा—"खाते हैं" उनका नाम यक्ष हुआ।। ४२—४३ ।। इन अप्रिय जीवो से असंतुष्ट होकर विधाता के शिर के सब बाल गिर कर फिर से मस्तक पर चढ़ गये ।।४४।।

सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः ।
ततः क्रुद्धो जगत्स्रष्टा क्रोधात्मनो विनिर्ममे ।४५।
वर्णेन कपिशेनोग्रभूतास्ते पिशिताशनाः ।
गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात् ।४६।
पिबन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्ते न ते द्विज ।
एतानि सृष्ट्वा भगवान्ब्रह्मा तच्छक्तिचोदित. ।४७।
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ।
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान् ।४८।
सृष्टवानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापति. ।
पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान्रासभान्गवयान्मृगान् ।४९।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्यांश्च जातयः ।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।५०।
त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ द्विजोत्तम ।
सृष्ट्वा पश्वोषधी. सम्यग्युयोज स तदाध्वरे ।५१।

इस प्रकार 'सर्पण' (शिर पर चढ़ने) की क्रिया से सर्प उत्पन्न हुए और हीनता के कारण उनका नाम अहि भी पड़ा और जगत् स्रष्टा ने क्रोधित होकर उनका स्वभाव भी क्रोध युक्त बना दिया ।। ४५ ।। वे भूरे रङ्ग के, उग्र स्वभाव के और मांस खाने वाले थे। फिर उसी समय उनके शरीर से गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई ।। ४६ ।। वे प्राणी 'गो' (वाक्य और गीत) तथा 'धयन' (उच्चारण व गान) करते करते पैदा हुये इसलिए गन्धर्व कहलाये ।। ४७ ।। तब भगवान ब्रह्मा ने इस शक्ति से प्रेरित होकर स्वच्छन्दता पूर्वक 'वय.' अङ्ग से वया (पक्षी)

वक्ष से भेड और मुख से बकरे को उत्पन्न किया। प्रजापति ने पेट और दोनों बगलों से गौ जाति, दोनों पैरों से घोड़ा, हाथी, शरभ, गवय हिरन, ऊँट, अश्वतर आदि अनेक प्राणियों की सृष्टि की। उनके रोमें से फल मूल वाली वनस्पतियाँ बन गई ॥ ४८—५० ॥ हे द्विज ! उन्होंने कल्प के आदि में 'पशु औषधि' की उत्पत्ति करके त्रेता के आरम्भ से यज्ञ में उनकी योजना की ॥५१॥

गौरजः पुरुषो मेषश्चाश्वाश्वतरगर्दभाः ।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ।५२।
श्वापदा द्विखुरा हस्ती वानरा. पक्षिपञ्चमाः ।
औदकाः पशवः षष्ठा. सप्तमास्तु सरीसृपाः ।५३।
गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोम रथन्तरम् ।
अग्निष्टोम च यज्ञाना निर्ममे प्रथमान्मुखात् ।५४।
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदश तथा ।
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ।५५।
सामानि जगतीछन्द स्तोम सप्तदश तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् ।५६।
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं च वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ।५७।

गाय, बकरा, भेड, घोड़ा, खच्चर, गधा ये सब ग्राम्य पशु कहलाते हैं और श्वापद (सिंह आदि), दो खुर वाले, हाथी, बन्दर, पक्षी उदक (कछुआ आदि) और रेंगने वाले (सर्प आदि) जङ्गली प्राणी कहे जाते हैं ॥ ५२—५३ ॥ ब्रह्माजी ने अपने प्रथम मुख से गायत्री, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर और अग्निष्टोम का निर्माण किया। दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पञ्चदश, त्रिष्टुप छन्दस्तोम, बृहत्साम और उक्थ की सृष्टि की। पश्चिम मुख से समस्त सामवेद सप्तदश जगती छन्दस्तोम, वैरूप और अतिरात्र को रचा। उत्तर मुख से

इन्होंने मनुष्य पदलोम, मयूरों से सोम प्रस्तर और वैराज की सृष्टि की ॥ ५४—५७ ॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
देवासुरपितॄन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः ।५८।
ततः पुनः ससर्जादौ संकल्पस्य पितामहः ।
यक्षान् पिशाचान्गन्धर्वान् तथैवाप्सरसां गणान् ।५९।
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ।६०।
तत्ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रभुः ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।६१।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।६२।
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः ।
नानात्वं विनियोगं च धातैव व्यसृजत्स्वयम् ।६३।
नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ।६४।
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै ।
तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् ।६५।
यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।६६।
करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः ।
सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः ।६७।

आदिकृत भगवान प्रजापति देव ने इस प्रकार अपने शरीर से ही समस्त छोटे-बड़े जीवों की सृष्टि की । उन्होंने देव, असुर, पितृ और मनुष्यों की रचना करके कल्प के आदि में ही यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, उरग आदि ं

युक्त प्रवाह रूप, नित्य तथा अनित्य, स्थावर-जङ्गममय इस समस्त जगत की रचना की। इनमे से जिसके कर्म पुरानी सृष्टि में जिस प्रकार के थे, फिर से उत्पन्न किये जाने पर भी वे उसी को प्राप्त होने लगे। ॥५८—६१॥ उन जीवो हिंसा-अहिंसा, कोमल-कठोर, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य आदि के भाव प्राप्त होने लगे और उन्हीं मे उनकी अभिरुचि होने लगी ॥६३॥ इस प्रकार उस विधाता ने ही इन्द्रियार्थ (आहार सम्बन्धी) भूत (जीव) और शरीर सम्बन्धी विविध प्रकार की व्यवस्थायें पैदा कर दी ॥ ६४ ॥ उन्होंने वेदानुकूल देवादि प्राणियों के नाम और कार्य विभाग का निरूपण किया, समस्त ऋषियों को तथा नियोग और वेदों के निर्देशानुसार नाम दिया। जिस प्रकार ऋतुओं के बदलने पर पहले के समान ही ऋतुओ के चिह्न दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार युग के आदि मे देव आदि की उत्पत्ति पूर्ववत् हुआ करती है। कल्प के आदि मे ब्रह्मा जी सर्जन शक्ति से युक्त होकर इसी तरह जगत की रचना किया करते हैं ॥ ६५-६७ ॥



छठवाँ अध्याय

अर्वाक्स्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः।
ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ॥१॥
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणाश्च प्रजापतिः।
यच्च तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥२॥
सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत्।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ॥३॥
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन्।
रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ॥४॥

पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम ।
तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ।५।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ।६।
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै ।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ।७।
यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ।८।

मैत्रेय ने पूछा — हे महामुने ! आपने ब्रह्माजी द्वारा अर्वाक् स्रोत मनुष्यों की उत्पत्ति की बात कही, उसे विस्तार पूर्वक कहिये । उनको किन गुणों से युक्त करके समस्त वर्णों की रचना की ? उन वर्णों के जो कर्तव्य कर्म हैं उनका भी वर्णन कीजिये ।।१-२।। पराशर जी ने कहा— हे द्विज-श्रेष्ठ ! सत्ययुक्त जगतकर्ता ब्रह्माजी के मुख से प्रथम सत्व गुणयुक्त प्राणियों ने जन्म ग्रहण किया ; छाती से रजोगुणयुक्त प्रजा उत्पन्न हुई और उरु से रज तथा तम से युक्त प्राणी उत्पन्न हुए ।।३-४।। इनके साथ ही पैरों से तम प्रधान लोगों की उत्पत्ति हुई । ये ही सब मिलाकर चारों वर्ण बन गये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः मुख, वक्षस्थल, उरु, पैरों से उत्पन्न हुए ।।५-६।। हे महाभाग ! ब्रह्माजी ने यज्ञ के सभी प्रकार साधित होने के उद्देश्य ही इन चारों वर्णों की रचना की । देव गण यज्ञ से संतुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं, इससे यज्ञ कल्याण का मूल है ।। ७-८ ।।

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैस्सदा
विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः [illegible]
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने ।
यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ।
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थिताः ।
सम्यक्छ्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसत्तम ।११।
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।

स्वगुणातिशयोदितैर्यशोभि-
र्जगदावर्जनदृष्टशक्तियोगः ।
रचनागुणमात्रसत्कृतेषु
ज्वलयत्येव परेष्वमर्षवह्निम् ॥ ४ ॥

प्रसह्य चैनं शास्त्रयुक्त्याभिभवितुमशक्ता धर्मप्रसङ्गममृष्यमाणाश्च राज्ञस्तेन तेन क्रमेण राजानं बोधिसत्त्वं प्रति विग्राहयामासुः—नार्हति देवो बोधिपरिव्राजके विश्वासमुपगन्तुम् । व्यक्तमयं देवस्य गुणप्रियतां धर्माभिमुखतां चोपलभ्य व्यसनप्रतारणश्लक्ष्णशठमधुरवचनः प्रवृत्तिसंचारणहेतुभूतः कस्यापि प्रत्यर्थिनो राज्ञो निपुणः प्रणिधिप्रयोगः । तथा हि धर्मात्मको नाम भूत्वा देवमेकान्तेन कारुण्यप्रवृत्तौ ह्रीदैन्ये च समनुशास्ति, अर्थकामोपरोधिषु च क्षत्रधर्मबाह्येष्वासन्नापनयेषु धर्मसमादानेषु दयानुवृत्त्या च नाम ते कृत्यपक्षमाश्वासनविधिनोपगृणीते प्रियसंस्तवश्चान्यराजदूतैः । न चायमविदितवृत्तान्तो राजशास्त्राणाम् । अतः साशङ्कान्यत्र नो हृदयानीति । अथ तस्य राज्ञः पुनर्भेदोपसंहितं हितमिव बहुभिरुच्यमानस्य बोधिसत्त्वं प्रति परिशङ्कासंकोचितस्नेहगौरवप्रसरमन्यादृशं चित्तमभवत् ।

पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम ।
तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ॥५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥६॥
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै ।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥७॥
यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥८॥

मैत्रेय ने पूछा — हे महामुने ! आपने ब्रह्माजी द्वारा अर्वाक् स्रोत मनुष्यों की उत्पत्ति की बात कही, उसे विस्तार पूर्वक कहिये। उनको किन गुणों से युक्त करके समस्त वर्णों की रचना की ? उन वर्णों के जो कर्तव्य कर्म हैं उनका भी वर्णन कीजिये ॥१-२॥ पराशर जी ने कहा— हे द्विज-श्रेष्ठ ! सत्ययुक्त जगतकर्ता ब्रह्माजी के मुख से प्रथम सत्व गुणयुक्त प्राणियों ने जन्म ग्रहण किया। छाती से रजोगुणयुक्त प्रजा उत्पन्न हुई और उस ने रज तथा तम से युक्त प्राणी उत्पन्न हुए ॥३-४॥ इनके साथ ही पैरों से तम प्रधान लोगों की उत्पत्ति हुई। ये ही सब मिलाकर चारों वर्ण बन गये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः मुख, वक्षस्थल, उरु, पैरों से उत्पन्न हुए ॥५-६॥ हे महाभाग ! ब्रह्माजी ने यज्ञ के भली प्रकार साधित होने के उद्देश्य ही इन चारों वर्णों की रचना की। देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं, इससे यज्ञ कल्याण का मूल है ॥७-८॥

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैस्सदा ।
विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥९॥
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने ।
यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥१०॥
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थिताः ।
सम्यक्छ्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसत्तम ॥११॥
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।

युक्त प्रवाह रूप, नित्य तथा अनित्य, स्थावर-जङ्गममय इस समस्त जगत की रचना की। इनमें से जिसके कर्म पुरानी सृष्टि में जिस प्रकार के थे, फिर से उत्पन्न किये जाने पर भी वे उसी को प्राप्त होने लगे। ॥५८—६१॥ उन जीवों हिंसा-अहिंसा, कोमल-कठोर, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य आदि वे भाव प्राप्त होने लगे और उन्हीं से उनकी अभिरुचि होने लगी ॥६३॥ इस प्रकार उस विधाता ने ही इन्द्रियार्थ (आहार सम्बन्धी) भूत (जीव) और शरीर सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की व्यवस्थायें पैदा कर दी ॥ ६४ ॥ उन्होंने वेदानुकूल देवादि प्राणियों के नाम और कार्य विभाग का निरूपण किया, समस्त ऋषियों को तथा नियोग और वेदों के निर्देशानुसार नाम दिया। जिस प्रकार ऋतुओं के बदलने पर पहले के समान ही ऋतुओं के चिह्न दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार युग के आदि में देव आदि की उत्पत्ति पूर्ववत् हुआ करती है। कल्प के आदि में ब्रह्मा जी सर्जन शक्ति से युक्त होकर इसी तरह जगत की रचना किया करते हैं ॥ ६५-६७ ॥



छठवाँ अध्याय

अर्वाक्स्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः ।
ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ।१।
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणाश्च प्रजापतिः ।
यच्च तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ।२।
सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत् ।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ।३।
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन् ।
रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ।४।

पङ्क्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम ।
तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ।५।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ।६।
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै ।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ।७।
यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः ।
आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ।८।

मैत्रेय ने पूछा — हे महामुने ! आपने ब्रह्माजी द्वारा अर्वाक् स्रोत मनुष्यों की उत्पत्ति की बात कही, उसे विस्तार पूर्वक कहिये । उनको किन गुणों से युक्त करके समस्त वर्णों की रचना की ? उन वर्णों के जो कर्त्तव्य कर्म हैं उनका भी वर्णन कीजिये ॥१-२॥ पराशर जी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! सत्ययुक्त जगतकर्ता ब्रह्माजी के मुख से प्रथम सत्व गुणयुक्त प्राणियों ने जन्म ग्रहण किया ; छाती से रजोगुणयुक्त प्रजा उत्पन्न हुई और उस मे रज तथा तम से युक्त प्राणी उत्पन्न हुए ॥३-४॥ इनके साथ ही पैरों से तम प्रधान लोगों की उत्पत्ति हुई । ये ही सब मिलाकर चारो वर्ण बन गये । ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य और शूद्र क्रमशः मुख, वक्षस्थल, उरु, पैरों से उत्पन्न हुए ॥५-६॥ हे महाभाग ! ब्रह्माजी ने यज्ञ के भली प्रकार साधित होने के उद्देश्य ही इन चारो वर्णों की रचना की । देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं, इससे यज्ञ कल्याण का मूल है ॥ ७-८ ॥

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैस्सदा ।
विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ।९।
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने ।
यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ।१०।
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थिताः ।
सम्यक्छ्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसत्तम ।११।
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।

शुद्धान्तःकरणाः शुद्धाः कर्मानुष्ठाननिर्मलाः ।१२।
शुद्धे च तासां मनसि शुद्धेऽन्तः संस्थिते हरौ ।
शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति विष्णवाख्यं येन तत्पदम् ।१३।
ततः कालात्मको योऽसौ स चांशः कथितो हरेः ।
स पातयत्यघं घोरमल्पमल्पाल्पसारवत् ।१४।
अधर्मबीजमुद्भूतं तमोलोभसमुद्भवम् ।
प्रजासु तासु मैत्रेय रागादिकमसाधकम् ।१५।

अपने-अपने धर्म में सम्पन्न विशुद्धाचरण वाले और सन्मार्ग गामी मनुष्यों द्वारा वास्तव में यज्ञ साधन होता है। यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थिति को पा सकते है ॥९ १०॥ ब्रह्मा ने चतुर्वर्णों की व्यवस्था के निमित्त ही श्रद्धाचार सम्पन्न, स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाली और बाधाओं से रहित प्रजा की सृष्टि की ॥११-१२॥ क्योंकि मन के शुद्ध होने और शुद्ध अन्तःकरण में भगवान के स्थित होने पर शुद्ध ज्ञान पैदा होता है और उसके द्वारा वे विष्णु के पद को देखने में समर्थ होते है। ॥१३॥ हे मैत्रेय ! इसके पश्चात् जो भगवान के कालात्मक अंश की बात कही गई है, तदनुसार इस प्रजा में अधर्म से उत्पन्न तमोमय लोभ थोड़ा थोड़ा करके और पाप का संचार कर देता है ॥१४-१५॥

ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ।
रसोल्लासादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति याः ।१६।
तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने पातके ।
द्वन्द्वाभिभवदुःखार्तास्ता भवन्ति ततः प्रजाः ।१७।
ततो दुर्गाणि ताश्चक्रुर्धान्वं पार्वतमौदकम् ।
कृत्रिमं च तथा दुर्गं पुरखर्वटकादिकम् ।१८।
गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रुः पुरादिषु ।
शीतातपादिबाधानां प्रशमाय महामते ।१९।
प्रतीकारमिमं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः ।
वार्तोपायं ततश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ।२०।

व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाश्चाणवस्तिलाः ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाः सतीनकाः ।२१।
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ।
आढक्यश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ।२२।

इसके फलस्वरूप उनमें कार्य की सहज सिद्धि और रसोल्लास आदि अष्ट सिद्धि उचित रूप में उत्पन्न नहीं होती है। इन सिद्धियों के क्षीण होने तथा पापों के बढ़ने से समस्त प्रजा तरह तरह के दुखों से व्यथित होती है। ।।१६-१७।। तब उन्होंने वृक्षों में, पर्वतों में और जल के समीप स्वाभाविक रक्षा स्थान अथवा कृत्रिम दुर्ग, पुर, खर्वटक स्थापित किये और शीत ताप आदि की बाधा से बचने के लिये वहाँ पर घर आदि बनाये ।।१८-१६।। जब लोगों ने इस प्रकार शीत आदि में अपनी रक्षा की व्यवस्था करली तो उन्होंने खेती हस्तकला की विधियाँ निकाली जिससे जीवन निर्वाह हो सके ।।२०।। हे मुने! धान, जौ, गेहूं, अनु, तिल, प्रियगु, उदार, कोरदूष, सीनक, उर्द, मूँग, मसूर निष्पाव कुलथी आढक्य चना और सन ये सत्तरह ग्राम्य औषधि हैं ।।२१-२२।।

इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयो मुने ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।२३।
व्रीहयस्सयवा माषा गोधूमाश्चाणवस्तिलाः ।
प्रियङ्गुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थकाः ।२४।
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिलाः सगवेधुकाः ।
तथा वेणुयवाः प्रोक्तास्तथा मर्कटका मुने ।२५।
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
यज्ञनिष्पत्तये यज्ञस्तथासां हेतुरुत्तमः ।२६।
एताश्च सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम् ।
परावरविदः प्राज्ञास्ततो यज्ञान्वितन्वते ।२७।
अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां मुनिसत्तम ।
उपकारकरं पुंसां क्रियमाणाघशान्तिदम् ।२८।

यज्ञ औषधियाँ भी चौदह प्रकार की होती हैं जैसे धान, जौ, उर्द, गेहूँ,

ग्रनु तिल, प्रियगु, कुलत्थक, श्यामाक, नीवार जतिल गवधुक, वेनुयव ग्रोर मकटक इनका उपयोग यज्ञ मे ग्राहुति देने के लिये होना है ।।२३से२६।। ये सब यज्ञ द्वारा समस्त प्रजा की उन्नति का परम साधन सिद्ध होती हैं, इसलिये लोक–परलोक के ज्ञाता यज्ञो का प्रचार करने को कहते हैं। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है, मनुष्यो का उपकार करने वाला है, और *नित्य होने वाले पचसूना पापो को दूर करने वाला है ।।२७-२८।।*

येषा तु कालसृष्टोऽसौ पापबिन्दुर्महामुने ।
चेत सु ववृधे चक्रुस्ते न यज्ञ पु मानसम् ।२९।
वेदवादास्तथा वेदान्यज्ञकर्मादिक च यत् ।
तत्सर्वं निन्दयामासुर्यज्ञव्यासेधकारिण· ।३०।
प्रवृत्तिमार्गव्युच्छित्तिकारिणो वेदनिन्दका ।
दुरात्मानो दुराचारा बभूवु कुटिलाशया ।३१।
ससिद्धाया तु वार्ताया प्रजा सृष्ट्वा प्रजापति ।
मर्यादा स्थापयामास यथास्थान यथागुणम् ।३२।
वर्णानामाश्रमाणा च धर्मान्धर्मभृता वर ।
लोकाश्च सववर्णाना सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ।३३।
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा सग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।३४।
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममनुवर्तिनाम् ।
गान्धर्व शूद्रजातीना परिचर्यानुवर्तिनाम् ।३५।

हे महामते! जिसके अन्त करण मे इस कालरूप पाप बिन्दुओ की वृद्धि होती है वे यज्ञ की तरफ रुचि नही रखते ।।२९।। जो कोई वेदो, वैदिक सिद्धातो और यज्ञो की पूर्ति करने वाले अन्यान्य कर्मों की निंदा करते हैं वे सब यज्ञों मे व्याघात डालने वाले प्रवृति मार्ग के उपदेशक, वेदनिन्दक, दुरात्मा, दुराचारी और कुटिलाशय माने जाते हैं ।। ३०-३१ ।। प्रजा के उत्पन्न हो जाने और जीविका की व्यवस्था हो जाने पर प्रजापति ने सबको यथास्थान और यथामर्यादा स्थापित किया ।।३२।। उन्होने समस्त वर्णों और

आश्रमों के धर्मों का सम्यक् रूप से पालन करने वाले लोगों का उचित स्थान निरूपण किया ॥३३॥ क्रियावान ब्राह्मणों के लिये प्राजापत्यलोक संग्राम में टिकने वाले क्षत्रियों के लिये ऐन्द्र-लोक, स्वधर्मानुवर्त्ती वैश्यों के लिये देवलोक और परिचर्या परायण शूद्रों के लिये गन्धर्व लोक निश्चित किया ॥३४-३५॥

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।३६।
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम् ।३७।
योगिनाममृतं स्थानं स्वात्मसन्तापकारिणाम् ।३८।
एकान्तिनः सदाब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये ।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः ।३९।
गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ।४०।
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिकम् ।४१।
विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम् ।
स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये ।४२।

अट्ठासी सहस्र ऊर्द्ध्वरेता मुनियों के लिये जो स्थान (जनलोक) बतलाया। गुरु के निकट रहने वाले ब्रह्मचारियों का भी यही स्थान है ॥३६॥ सप्तर्षि मंडल में जो तपोलोक है वह वानप्रस्थ वालों का और प्राजापत्य-लोक गृहस्थों का स्थान कहा गया। सन्यासियों के स्थान का नाम 'ब्रह्म' है ॥३७॥ योगियों का स्थान 'अमृत' है जो कि विष्णु का परम पद है जो एकान्त में रहने वाले सदा ब्रह्म का ही ध्यान रखने वाले योगी हैं, इनका यही मुख्य स्थान है, ज्ञानीजन इसी का अवलोकन करते हैं। फिर भी इनका आवागमन होता रहता है, पर जो द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करते रहते हैं वे कभी लौट कर नहीं आते ॥३८-३९॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, काल सूत्र अवीचिक — ये सब नरक-लोक

हैं। वेदों की निंदा करने वाले, यज्ञों में बाधा डालने वाले और अपने धर्म को त्याग का आचरण करने वालों का यही स्थान कहा गया है ॥४०-४२॥

सातवाँ अध्याय

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसा प्रजा ।
तच्छरीरसमुत्पन्नैं कार्यैस्तै करणै सह ॥१॥
क्षेत्रज्ञा समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमत ।
ते सर्वे समवर्तन्त ये मया प्रागुदाहृता ॥२॥
देवाद्या स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिता ।
एवभूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ॥३॥
यदास्य ता प्रजा सर्वा न व्यवर्धन्त धीमत ।
अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४॥
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुमङ्गिरस तथा ।
मरीचि दक्षमत्रि च वसिष्ठ चैव मानसान् ॥५॥
नव ब्रह्माण इत्यते पुराणे निश्चय गता ।
ख्याति भूति च सम्भूति क्षमा प्रीति तथैव च ॥६॥
सन्नति च तथैवोर्जामनसूया तथैव च ।
प्रसूति च तत सृष्ट्वा ददौ तेपा महात्मनाम् ॥७॥

श्री पराशर जी ने कहा— इसके पश्चात् उन प्रजापति ने ध्यान किया, जिससे उनके देह रूपी मूल से उद्भूत शरीर और इंद्रियों युक्त मानसी प्रजा की उत्पत्ति हुई ॥१॥ उस समय उन मेधावी ब्रह्माजी के द्वारा ही चेतन प्राणी उत्पन्न हुए। पूर्व में मैंने देवताओं से स्थावर तक जिस त्रिगुणात्मिका चराचर सृष्टि का वर्णन किया है, वह सब इसी प्रकार प्रादुर्भूत हुई ॥२-३॥ जब उन महामति प्रजापति की वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि के क्रम से वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई, तब उन्होंने अपने ही समान भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष अत्रि

था। उससे ब्रह्माजी ने कहाकि अपने शरीर को विभक्त कर डाल। यह कह कर वह वहीं अन्तर्धान हो गय ॥१३॥ ब्रह्माजी का आदेश सुनकर रुद्र ने अपने देह-गत स्त्री-पुरुष को पृथक् पृथक विभक्त किया और फिर उस पुरुष के भी ग्यारह भाग कर डाले ॥१४॥

सौम्यासौम्यैस्तदा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्व च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देव स्वरूपैरसितैः सितैः ।१५।
ततो ब्रह्मात्मसम्भूत पूर्वं स्वायम्भुव प्रभुः ।
आत्मानमेव कृतवान्प्रजापाल्ये मनुं द्विज ।१६।
शतरूपा च ता नारी तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे प्रभु. ।१७।
तस्मात्तु पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसज्ञितम् ।१८।
कन्याद्वय च धर्मज्ञ रूपौदार्यगुणान्वितम् ।
ददौ प्रसूतिं दक्षाय आकूतिं रुचये पुरा ।१९।
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे सदक्षिणः ।
पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुन ततः ।२०।
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवे मनौ ।२१।

स्त्री-देह के भी उसने सौम्य, क्रूर, शान्त, अशान्त, श्याम, गौर आदि के भेद से अनेक विभाग किये ॥१५॥ फिर ब्रह्माजी ने अपने ही द्वारा उत्पन्न किये गये, अपने ही जैसे रूप वाले स्वायभुव को प्रथम मनु बनाकर उन्हें प्रजा-पालन के कार्य में प्रवृत्त किया ॥१६॥ उन स्वायभुव के साथ ही शतरूपा नाम की नारी उत्पन्न हुई थी, उसे अपनी भार्या के रूप में ग्रहण किया ॥१७॥ उस शत-रूपा ने स्वायभुव मनु से दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम प्रियव्रत और उत्तान-पाद हुए। इसी प्रकार प्रसूति और आकूति नाम की रूप, गुण सम्पन्न दो कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। उनमें से प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति तथा आकूति का रुचि प्रजापति के साथ किया गया ॥१८-१९॥ हे महाभाग रुचि प्रजापति

बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ।
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ।३०।
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ।
कामाद्रतिः सुतं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत ।३१।
हिंसा भार्या त्वधर्मस्य ततो जज्ञे तथानृतम् ।
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ।३२।
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ।३३।
वेदना स्वसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ।३४।
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ।
नैषां पुत्रोऽस्ति वै भार्या ते सर्वे ह्यूर्ध्वरेतसः ।३५।

इसी प्रकार मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड नय और विनय, बुद्धि ने बोध, लज्जा ने विनय,वपु ने व्यवसाय शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख और कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया, धर्म के यही सब पुत्र हैं। धर्म पुत्र काम ने रति से हर्ष को प्रकट किया ॥२९-३१॥ अधर्म की भार्या हिंसा हुई, उसने अनृत नामक पुत्र को और निकृति नाम की कन्या को जन्म दिया। उन दोनो के संयोग से भय और नरक नामक पुत्र तथा माया और वेदना नामकी कन्याएं उत्पन्न हुईं, यह क्रमशः भय और नरक की भार्या हुईं। उनमे से माया ने सब जीवो का नाश करने मे समर्थ मृत्यु नामक एक पुत्र का प्रसव किया ॥३२-३३॥ रौरव के द्वारा वेदना ने दुःख नामक एक पुत्र उत्पन्न किया तथा मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए ॥३४॥ यह सभी अधर्म स्वरूप तथा दुःखोत्तर नाम से विख्यात हैं, इनके ऊर्ध्वरेता होने के कारण कोई सन्तान अथवा पत्नी आदि नही हैं।३५।

रौद्राण्येतानि रूपाणि विष्णोर्मुनिवरात्मज ।
नित्यप्रलयहेतुत्वं जगतोऽस्य प्रयान्ति वै ।३६।
दक्षो मरीचिरत्रिश्च भृग्वाद्याश्च प्रजेश्वराः ।
जगत्यत्र महाभाग नित्यसर्गस्य हेतवः ।३७

मनवो मनुपुत्राश्च भूपा वीर्यधराश्च ये ।
सन्मार्गनिरताः शूरास्ते सर्वे स्थितिकारिणः ।३८।
येयं नित्या स्थितिर्ब्रह्मन्नित्यसर्गस्तथेरितः ।
नित्याभावश्च तेषां वै स्वरूपं मम कथ्यताम् ।३९।
सर्गस्थितिविनाशाश्च भगवान्मधुसूदनः ।
तैस्तै रूपैरचिन्त्यात्मा करोत्यव्याहतो विभुः ।४०।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज ।
नित्यश्च सर्वभूतानां प्रलयोऽयं चतुर्विधः ।४१।
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र शेतेऽयं जगतीपतिः ।
प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्रकृतौ लयम् ।४२।

हे मुनिवरात्मज ! भगवान् विष्णु के यह अत्यन्त भयङ्कर स्वरूप हैं, क्योंकि विश्व की नित्य प्रलय के कारण रूप भी यही हैं ॥३६॥ दक्ष, मरीचि, अत्रि और भृगु आदि जो प्रजापति हैं, उन्हें इस विश्व के सृष्टि-कारण समझो ॥३७॥ मनु तथा उनके श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले पराक्रमी और वीर पुत्र जो राजा हैं, वे सब इस जगत की नित्य-स्थिति के कारण रूप हैं ॥३८॥ यह सुन कर मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने जिस नित्य स्थिति, नित्य सर्ग और नित्य प्रलय का मेरे प्रति वर्णन किया है, उनका स्वरूप अब मुझे बताने की कृपा करें ॥३९॥ श्री पराशर जी ने कहा—जिन अचिन्त्यात्मा एवं सर्व व्याप्त भगवान् मधुसूदन की गति कहीं भी नहीं रुक पाती, वही मनु आदि रूपों से इस जगत् की सृष्टि स्थिति तथा संहार करते रहते हैं ॥४०॥ हे द्विज ! समस्त प्राणियों का प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक आत्यन्तिक और नित्य के भेद से चार प्रकार का है ॥४१॥ उनमें नैमित्तिक प्रलय ब्राह्म प्रलय कही गई है, जिसमें ब्रह्माजी कल्पान्त में शयन करते हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्राकृतिक प्रलय में, प्रकृति में लीन हो जाता है ॥४२॥

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि ।
नित्यः सदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिशम् ।४३।
प्रसूतिः प्रकृतेर्यातु सा सृष्टिः प्राकृता स्मृता ।
दैनन्दिनी तथा प्रोक्ता यान्तरप्रलयादनु ।४४।

भूतान्यनुदिनं यत्र जायन्ते मुनिसत्तम ।
नित्यसर्गो हि स प्रोक्तः पुराणार्थविचक्षणैः ।४५।
एवं सर्वशरीरेषु भगवान्भूतभावनः ।
संस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थितिसंयमान् ।४६।
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तयः सर्वदेहिषु ।
वैष्णव्यः परिवर्त्तन्ते मैत्रेयाहर्निशं समाः ।४७।
गुणत्रयमयं ह्येतद्ब्रह्मन् शक्तित्रयं महत् ।
योऽतियाति स यात्येव परं नावर्त्तते पुनः ।४८।

आत्यन्तिक प्रलय यह है जिसमें ज्ञान बल से योगी परमात्मा में लीन हो जाता है तथा दिन-रात प्राणियों का क्षय ही नित्य प्रलय है ।।४३।। महत्तत्वादि के क्रम से प्रकृति के द्वारा जो सृष्टि होती है, वही प्राकृतिक सृष्टि है तथा अवान्तर प्रलय के पश्चात् होने वाली चराचर विश्व की रचना ही दैनन्दिनी सृष्टि है ।।४४।। हे मुनिवर ! प्रतिदिन प्राणियों की जिसमें उत्पत्ति होती रहती है वह पुराण पारगतों द्वारा नित्य सृष्टि कही गयी है ।।४५।। इस प्रकार सभी प्राणियों में स्थित भगवान् विष्णु इस संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते है ।।४६।। हे मैत्रेयजी ! सृष्टि, स्थिति और संहार की इन वैष्णवी शक्तियों का सभी देहों समान रूप से रात-दिन सञ्चार होता रहता है ।।४७।। हे ब्रह्मन् ! यह तीनों शक्तियाँ त्रिगुणात्मिका हैं और जो मनुष्य इनका अतिक्रमण करता है वह परमपद को प्राप्त होकर जन्म मरणादि से मुक्त हो जाता है ।।४८।।



आठवाँ अध्याय

कथितस्तामसः सर्गो ब्रह्मणस्ते महामुने ।
रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।।१।
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः ।
प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ।२।

रुरोद सुस्वरं सोऽथ प्राद्रवद् द्विजसत्तम ।
किं त्वं रोदिषि तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।३।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिः ।
रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्यमावह ।४।
एवमुक्तः पुनः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद वै ।
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ।५।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च स प्रभुः ।
भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज ।६।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ।
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार सः ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! ब्रह्माजी का तामस सर्ग मैंने तुम्हारे प्रति कहा है, अब रुद्र सर्ग के वर्णन को सुनो ॥१॥ कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी ने अपने समान पुत्रों को उत्पन्न करने की इच्छा से चिंतन किया तब उनकी गोद में ही एक नीललोहित वर्ण का पुत्र प्रकट हो गया ॥२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जन्म होते ही वह उच्च स्वर में रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा। यह देख कर ब्रह्माजी ने उससे उसके रोने का कारण पूछा तो उसने कहा कि मेरा नामकरण करिये। तब ब्रह्माजी ने कहा—तेरा नाम रुद्र हुआ, अब तू रुदन मत कर, धीरज रख ॥३–४॥ यह सुन कर भी वह सात बार और रोता रहा तब ब्रह्माजी ने उसके सात नाम और निर्दिष्ट किये तथा उन आठों के स्त्री और पुत्रों की भी कल्पना की। प्रजापति ने उसके जो नाम रखे वह यह थे—भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव। इस प्रकार नामकरण करके उनके स्थान भी निश्चित किये ॥५–७॥

सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ।८।
सुवर्चला तथैवोषा विकेशी चापरा शिवा ।
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् ।९।
सूर्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ।
पत्न्यः स्मृता महाभाग तदपत्यानि मे शृणु ।१०।

एवां सूतिप्रसूतिभ्यामिदमापूरितं जगत् ।
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।।११।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात्सुताः ।
एवं प्रकारा रुद्रोऽसौ सती भार्यामनिन्दिताम् ।।१२।
उपयेमे दुहितरं दक्षस्यैव प्रजापतेः ।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वकलेवरम् ।।१३।
हिमवद्‌दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तम ।
उपयेमे पुनश्चोमामनन्या भगवान्हरः ।।१४।

हे द्विजोत्तम ! सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा यह सब उनके रूप हैं, रुद्र आदि नामों के सहित उन सूर्य आदि रूपों की सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नाम की भार्याएँ हुईं । अब तुम उनके पुत्रों के नामों को श्रवण करो ।।८—१०।। उनके ही पुत्र, पौत्रादि से यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण हो रहा है। उनके पुत्र शनैश्चर, शुक्र, लोहिताग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध नामक हुए। भगवान् रुद्र ने दक्ष प्रजापति की निन्दा-रहित कन्या सती को अपनी पत्नी बनाया, जिसने दक्ष से रुष्ट होकर उसी के यज्ञ मे अपने देह का त्याग कर दिया था। वही दक्ष-सुता सती मेना के उदर से उत्पन्न हिमाचल की कन्या पार्वती हुई । उन अनन्य-परायण पार्वतीजी का शिवजी ने पुनः पाणिग्रहण किया ।।११—१४।।

देवौ धातृविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ।
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ।।१५।
क्षीराब्धौ श्रीः समुत्पन्ना श्रूयतेऽमृतमन्थने ।
भृगोःख्यात्यां समुत्पन्नेत्येतदाह कथं भवान् ।।१६।
नित्यैवैण जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ।।१७।
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः ।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम् ।।१८।

स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रूर्भूमिर्भूधरो हरिः ।
सन्तोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती ।।१९।
इच्छा श्रीर्भगवान्कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम् ।
आज्याहुतिरसौ देवो पुरोडाशो जनार्दनः ।२०।
पत्नीशाला मुने लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसूदनः ।
चितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूप इध्मा श्रीर्भगवान्कुशः ।२१।

दक्षपुत्री ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओं को उत्पन्न किया और लक्ष्मी नामक एक पुत्री को भी जन्म दिया। वही लक्ष्मीजी भगवान् विष्णु की भार्या हुईं ।।१४।। मैत्रेयजी ने कहा—प्रभो ! लक्ष्मीजी की उत्पत्ति तो अमृत मन्थन के समय क्षीर सागर से हुई बताई जाती है, परंतु आप उन्हें भृगु के द्वारा ख्याति के गर्भ से उत्पन्न हुई कैसे कहते हैं ?।।१६।। श्री पराशरजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! जिन जगन्माता लक्ष्मीजी का कभी तिरोभाव नहीं होता, वे तो नित्य ही हैं। भगवान् विष्णु के समान ही यह भी सर्व व्यापक हैं ।।१७।। विष्णु अर्थ हैं तो इन्हें वाणी समझो, विष्णु न्याय हैं तो इन्हें नीति मानो, विष्णु बोध हैं तो इन्हें बुद्धि जानो, इसी प्रकार यदि विष्णु बुद्धि हैं तो यह धर्म हैं। हे मैत्रेयजी ! विष्णु इस विश्व के सृष्टा हैं, तो लक्ष्मीजी सृष्टि हैं, विष्णु भूधर हैं तो यह भूमि हैं, यदि वह सन्तोष हैं तो यह नित्य-तुष्टि हैं ।।१८–१९। यदि विष्णु कामदेव हैं तो लक्ष्मी जी इच्छा हैं, विष्णु यज्ञ हैं तो यह दक्षिणा हैं, वह पुरोडाश हैं तो यह पूर्णाहुति हैं ।।२०।। हे मुने ! भगवान् मधुसूदन यदि यजमानशाला हैं तो लक्ष्मीजी पत्नीशाला हैं, विष्णु यूप हैं, तो लक्ष्मी चिति हैं, यदि वह कुश हैं तो यह इध्मा हैं ।।२१।।

सामस्वरूपी भगवानुद्गीतिः कमलालया ।
स्वाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ।२२।
शङ्करो भगवाञ्छौरिर्गौरी लक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।
मैत्रेय केशवः सूर्यस्तत्प्रभा कमलालया ।२३।
विष्णुः पितृगणः पद्मा स्वधा शाश्वतपुष्टिदा ।
द्यौः श्रीः सर्वात्मको विष्णुरवकाशोऽतिविस्तरः ।२४।

शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तथैवानपायिनी ।
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः ।२५।
जलधिर्द्विज गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामुने ।
लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः ।२६।
यमश्चक्रधरः साक्षाद्धूमोर्णा यमवालया ।
ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः ।२७।
गौरी लक्ष्मीर्महाभागा केशवो वरुणः स्वयम् ।
श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिर्हरिः ।२८।

भगवान् विष्णु साम हैं तो लक्ष्मी उद्गीति हैं, वह हुताशन हैं तो लक्ष्मी स्वाहा हैं। हे द्विजवर ! यदि विष्णु शिव हैं तो लक्ष्मी पार्वती हैं, व सूर्य हैं तो यह उनकी प्रभा है ॥ २२—२३ ॥ यदि विष्णु पितरगण हैं तो लक्ष्मीजी नित्य पुष्टि प्रदान करने वाली स्वधा हैं यदि वह अत्यन्त विस्तृत सर्वात्मक अवकाश हैं तो यह स्वर्गलोक हैं ॥२४॥ यदि भगवान् चन्द्रमा हैं तो लक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं यदि विष्णु सर्वत्र गमन में समर्थ वायु हैं तो लक्ष्मीजी संसार की गति एव उसकी आश्रय रूपा है ॥२५॥ हे महामुने ! यदि गोविन्द समुद्र हैं तो लक्ष्मी उनकी तरंग हैं यदि भगवान् इन्द्र हैं तो लक्ष्मी इन्द्राणी हैं। यदि विष्णु यम है तो लक्ष्मी यम-भार्या धूमोर्णा हैं, यदि वह कुबेर हैं तो लक्ष्मी साक्षात् ऋद्धि हैं ॥२७॥ भगवान् केशव वरुण हैं तो लक्ष्मी गौरी हैं। हे विप्रेन्द्र ! श्री विष्णु देव सेना के अधिनायक स्वामी कार्तिकेय हैं तो लक्ष्मीजी देवसेना हैं ॥२८॥

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कलात्वियम् ।२९।
ज्योत्स्ना लक्ष्मी प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः ।
लताभूता जगन्माता श्रीविष्णुर्द्रुमसञ्ज्ञितः ।३०।
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः ।
वरप्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्मवनालया ।३१।
नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीरूपसंस्थिता ।

ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ।३२।
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः ।
रतो रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ।३३।
किं चातिबहुनोक्तेन सङ्क्षेपेणेदमुच्यते ।३४।
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान्हरिः ।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ।३५।

हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् गदाधारी विष्णु आश्रय हैं तो लक्ष्मीजी शक्ति हैं, भगवान् निमेष हैं तो यह काष्ठा हैं, वह मुहूर्त हैं तो यह कला हैं ॥२६॥ यदि सर्वेश्वर विष्णु दीपक हैं तो लक्ष्मी ज्योति हैं, विष्णु वृक्ष हैं तो लक्ष्मीजी उनकी लता है॥३०॥यदि चक्रगदाधारी भगवान् दिवस हैं तो लक्ष्मीजी निशा हैं। यदि वर देने वाले भगवान् विष्णु वर हैं तो लक्ष्मीजी उनकी वधु हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु नद हैं तो लक्ष्मीजी नदी हैं, कमललोचन विष्णु ध्वजा हैं तो कमला पताका हैं ॥३२॥ यदि जगत के स्वामी विष्णु लोभ हैं तो लक्ष्मी तृष्णा हैं और हे मैत्रेय ! रति लक्ष्मी हैं तो राग गोविन्द हैं ॥३३॥ अधिक क्या कहूं, इतना कहना ही ठीक है कि देवता, तिर्यक् योनि जीव तथा मनुष्यादि में जितने भी पुरुष वाचक प्राणी हैं, वह सभी भगवान् विष्णु के रूप हैं तथा सभी स्त्री कहाने वाले जीव लक्ष्मीजी के स्वरूप हैं। इस प्रकार विष्णु और लक्ष्मी से परे कोई भी नहीं है ॥३४—३५॥

नवाँ अध्याय

इदं च शृणु मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
श्रीसम्बन्धं मयाप्येतच्छ्रुतमासीन्मरीचितः ।१।
दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथिवीमिमाम् ।
स ददर्श स्रजं दिव्यामृषिर्विद्याधरीकरे ।२।
सन्तानकानामखिलं यस्या गन्धेन वासितम् ।

अतिसेव्यमभूद्ब्रह्मन् तद्वन वनचारिणाम् ।३।
उन्मत्तवतधृग्विप्रस्ता दृष्ट्वा शोभनां स्रजम् ।
ता ययाचे वरारोहा विद्याधरवधू ततः ।४।
याचिता तेन तन्वङ्गी माला विद्याधराङ्गना ।
ददौ तस्मै विशालाक्षी सादर प्रणिपत्य तम् ।५।
तामादायात्मनो मूर्ध्नि स्रजमुन्मत्तरूपधृक् ।
कृत्वा स विप्रो मैत्रेय परिबभ्राम मेदिनीम् ।६।
स ददर्श तमायान्तमुन्मत्तैरावते स्थितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं देव सह देवैः शचीपतिम् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेय ! तुमने जो प्रश्न मुझसे किया, उस लक्ष्मीजी विषयक इतिहास को मैंने महर्षि मरीचि से सुना था, वह मैं तुम्हारे प्रति कहता हूं, तुम उसे श्रवण करो ॥१॥ एक समय की बात है कि भगवान् शिवजी के अंशावतार महर्षि दुर्वासाजी भूतल पर विचरण कर रहे थे तभी उन्हें एक विद्याधरी के हाथ मे सन्तानक पुष्पो की एक दिव्य माला दिखाई दी । उसकी श्रेष्ठ गन्ध से सुरभित हुआ वह वन वहाँ के रहने वालो के लिये अत्यन्त सेवनीय हो रहा था ॥२—३॥ उस समय उन उन्मत्त वृत्ति वाले ऋषि श्रेष्ठ ने उस सुन्दर माला को देखकर विद्याधारी से उसकी याचना की ॥४॥ उनकी याचना स्वीकार करके उस विशालाक्षी विद्याधरी ने उन ऋषि को सादर प्रणाम किया और वह माला उन्हें दे दी ॥५॥ हे मैत्रेय ! उन्मत्त वेश वाले उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उस माला को लेकर अपने मस्तक पर धारण किया और पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥६॥ इसी बीच उन्होंने मत्त ऐरावत पर आरूढ हुए तीनो लोकों के स्वामी शचिपति इन्द्र को देवताओं के सहित उधर आते हुए देखा ॥७॥

तामात्मनः स शिरसः स्रजमुन्मत्तषट्पदाम् ।
आदायामरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ।८।
गृहीत्वामरराजेन स्रगैरावतमूर्द्ध नि ।
न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जाह्नवी यथा ।९।

मदान्धकारिताक्षोऽसौ गन्धाकृष्टेन वारणः ।
करेणाघ्राय चिक्षेप तां स्रजं धरणीतले ।१०।
ततश्चुक्रोध भगवान्दुर्वासा मुनिसत्तम ।
मैत्रेय देवराजं त क्रुद्धश्चैतदुवाच ह ।११।
ऐश्वर्यमददुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि वासव ।
श्रियो धाम स्रजं यस्त्वं मद्दत्तां नाभिनन्दसि ।१२।
प्रसाद इति नोक्तं ते प्रणिपातपुरःसरम् ।
हर्षोत्फुल्लकपोलेन न चापि शिरसा धृता ।१३।
मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे ।
त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति ।१४।

मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा ने जब इन्द्र देखा तो मदमत्त भौंरों की गुंजार से युक्त उस माला को अपने मस्तक से उतार कर उन्होंने देवाधिपति इन्द्र के ऊपर फेंकी ।।८।। इन्द्र ने उस माला को अपने हाथी ऐरावत के मस्तक पर धारण करा दी, उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे कैलाश शिखर पर पतित-पावनी गंगाजी विराजमान हों ।।६।। परन्तु वह मदोन्मत्त हाथी उसकी सुगंधि से और भी उन्मत्त हो गया और उसने उसे अपने मस्तक से उतार कर सूंघा तथा पृथिवी पर फेंक दिया ।।१०।। हे मैत्रेयजी ! जब मुनिवर दुर्वासाजी ने उस माला की ऐसी दुर्दशा देखी तो वह अत्यंत क्रोध में भर कर इन्द्र से कहने लगे ।।११।। दुर्वासा बोले—अरे, ऐश्वर्यमद से दूषित हृदय वाले इन्द्र ! तू अत्यन्त ढीठ है, तूने मेरे द्वारा प्रदत्त इस अत्यंत शोभाधाम माला का किंचित् भी आदर नहीं किया ।।१२।। तूने न तो प्रणाम ही किया और न यही कहा कि बड़ी कृपा की और न तूने हर्षित मुख से उस माला को ही अपने मस्तक पर धारण किया। तूने मेरे द्वारा दी गई माला का कुछ भी मूल्य नहीं समझा, इस कारण तेरा तीनों लोकों का ऐश्वर्य नष्ट हो जायगा ।।१३—१४।।

मा मन्यसे त्वं सदृशं नूनं शक्रेतरद्विजैः ।
अतोऽवमानमस्मासु मानिना भवता कृतम् ।१५।
मद्दत्ता भवता यस्मात्क्षिप्ता माला महीतले ।

तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ।१६।
यस्य सञ्जातकोपस्य भयमेति चराचरम् ।
त त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे ।१७।
महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य त्वरान्वितः ।
प्रसादयामास मुनिं दुर्वाससमकल्मषम् ।१८।
प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपातपुरःसरम् ।
इत्युवाच सहस्राक्षं दुर्वासा मुनिसत्तमः ।१९।
नाहं कृपालुहृदयो न च मां भजते क्षमा ।
अन्ये ते मुनयः शक्र दुर्वाससमवेहि माम् ।२०।
गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्वमारोपितो मुधा ।
अक्षान्तिसारसर्वस्वं दुर्वाससमवेहि माम् ।२१।

अरे इन्द्र ! तू अवश्य ही मुझे अन्य विप्रों जैसा ही समझता है, तभी तो तूने हमारा इस प्रकार निरादर किया है ॥१५॥ तूने मेरे द्वारा दी हुई माला को भूमि पर फेंक दिया, इसलिए तेरा यह त्रिभुवन भी अब शीघ्र ही श्री-हीनता को प्राप्त होगा ॥१६॥ अरे देवराज ! जिसके क्रोध से भयभीत हुआ यह सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व कम्पायमान होने लगता है, उसी का तूने अत्यन्त अहंकार पूर्वक इस प्रकार तिरस्कार किया है। ॥१७॥ श्री पराशर जी बोले—यह सुनकर इन्द्र तुरन्त ही ऐरावत से उतर पड़े और अनुनय विनय पूर्वक उन पाप-रहित मुनि को प्रसन्न करने लगे ॥१८॥ इन्द्र द्वारा इस प्रकार प्रणामादि किये जाने पर महर्षि दुर्वासा ने उनसे इस प्रकार कहा ॥१९॥ दुर्वासाजी बोले—हे इन्द्र ! मैं कृपालु चित्त वाला नहीं हूँ, मेरे अन्तःकरण में क्षमा किंचित् भी नहीं ठहर सकती। वह मुनि तो दूसरे ही हैं, मेरा नाम तो दुर्वासा है ॥२०॥ अरे, गौतम आदि ऋषियों ने तुझे अकारण ही इतना मुख लगा लिया है, परन्तु याद रखना कि मैं तो सदा ही अक्षमाशील दुर्वासा हूँ ॥२१॥

वसिष्ठाद्यैर्दयासारैस्स्तोत्रं कुर्वद्भिरुच्चकैः ।
गर्वं गतोऽसि येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे ।२२।

ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम् ।
निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् ।२३।
नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो ।
विडम्बनामिमां भूय: करोष्यनुनयात्मिकाम् ।२४।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं पुन: ।
आरुह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम् ।२५।
ततः प्रभृति नि:श्रीकं सशक्रं भुवनत्रयम् ।
मैत्रेयासीदपध्वस्तं सदङ्गीणौषधिवीरुधम् ।२६।
न यज्ञाः समवर्तन्त न तपस्यन्ति तापसाः ।
न च दानादिधर्मेषु मनश्चक्रे तदा जनः ।२७।
नि:सत्त्वाः सकला लोका लोभाद्युपहतेन्द्रियाः ।
स्वल्पेऽपि हि बभूवुस्ते साभिलाषा द्विजोत्तम ।२८।

दयावतार वशिष्ठजी आदि ने तेरी बहुत-बहुत प्रशंसा की है, इसलिए तू घोर अहंकारी हो गया है, इसी कारण तूने मेरा इस प्रकार से अपमान किया है ।।२२।। इस संसार में ऐसा कौन है जो मेरी टेढ़ी भृकुटि और प्रज्वलित जटा कलाप को देख कर मुझसे न डरता हो ।।२३।। हे शतक्रतो ! अब तू बारम्बार अनुनय विनय करने का ढोंग करने चला है, परन्तु मुझ पर उसका कोई प्रभाव नहीं है, मैं तुझे कदापि क्षमा नहीं करूँगा ।।२४।। श्री पराशर जी ने कहा—हे विप्र ! वह ब्रह्मर्षि ऐसा कहकर चले गये और इन्द्र भी अपने ऐरावत पर बैठकर अमरावती को गये ।।२५।। हे मैत्रेयजी ! उसी समय से इन्द्र सहित तीनों लोक वृक्ष-लतादि के क्षीण हो जाने के कारण श्रीहीन तथा ध्वस्त होने लगे ।।२६।। तभी से यज्ञों के अनुष्ठान रुक गया, तपस्वियों ने तप और दानियों ने दान करना छोड़ दिया ।।२७।। हे विप्रवर ! सभी लोक लोभादि के वश में पड़ कर सत्त्वहीन हो गए तथा तुच्छ पदार्थों की भी कामना करने लगे ।।२८।।

यतः सत्त्वं ततो लक्ष्मीः सत्त्वं भूत्यनुसारि च ।
नि:श्रीकाणां कुतः सत्त्वं विना तेन गुणाः कुतः ।२९।

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना ।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्यविवर्जितः ।३०।
भवत्यपध्वस्तमतिर्लङ्घितः प्रथितः पुमान् ।३१।
एवमत्यन्तनिःश्रीके त्रैलोक्ये सत्त्ववर्जिते ।
देवान् प्रति बलोद्योगं चक्रुर्दैतेयदानवाः ।३२।
लोभाभिभूता निःश्रीका दैत्याः सत्त्वविवर्जिताः ।
श्रिया विहीनैर्निःसत्त्वैर्देवैश्चक्रुस्ततो रणम् ।३३।
विजितास्त्रिदशा दैत्यैरिन्द्राद्याः शरणं ययुः ।
पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ।३४।
यथावत्कथितो देवैर्ब्रह्मा प्राह ततः सुरान् ।
परावरेशं शरणं व्रजध्वमसुरार्दनम् ।३५।
उत्पत्तिस्थितिनाशानामहेतुं हेतुमीश्वरम् ।
प्रजापतिपतिं विष्णुमनन्तमपराजितम् ।३६।
प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्यभूतयोः ।
प्रणतार्तिहरं विष्णुं स वः श्रेयो विधास्यति ।३७।

सत्व लक्ष्मीजी का ही साथी है, इसलिये जहाँ वह होता है, वहाँ लक्ष्मीजी का भी निवास रहता है। श्रीहीनो मे सत्व नही होता इसलिए गुणों की स्थिति ही कैसे होगी ? जब गुण नही तो पुरुष मे बल शौर्यादि भी नहीं रहता और जिसमे बल शौर्यादि नही, उसे कही भी आदर प्राप्त नही होता ।।३१।। इस प्रकार जब तीनो लोक श्री हीन हो गये तब उन श्रीहत देवताओं पर दैत्यों और दानवों ने आक्रमण कर दिया ।।३२।। सत्व और वैभव मे रहित होने पर भी दैत्यो ने लोभ के वशीभूत होकर सत्यहीन और श्रीहीन देवताओ से सग्राम छेड दिया ।।३३।। अन्त मे देवताओ की पराजय हुई, तब इन्द्रादि सब देवताओ ने अग्नि के नेतृत्व मे पितामह ब्रह्माजी की शरण ली ।।३४।। तब देवताओ की बात सुनकर पितामह ने उनसे कहा—हे देवताओ ! तुम दैत्यों का सहार करने वाले भगवान् विष्णु की शरण मे जाओ, जो विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण हैं,

किन्तु कारण ही नहीं चराचर के स्वामी, प्रजापतियों के अधिपति, सभी प्राणियों में व्याप्त, अन्त-रहित और कभी भी पराजित न होने वाले हैं एवं अजन्मा होकर कार्य-रूप में परिवर्तित प्रकृति और पुरुष के भी कारण हैं। इसलिए वही शरणागत वत्सल तुम्हारा अवश्य ही कल्याण करेंगे ॥३७ ३७॥

एवमुक्त्वा सुरान्सर्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ ।३८।
स गत्वा त्रिदशैः सर्वैः समवेतः पितामहः।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परावरपतिं हरिम् ।३९।
नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम्।
लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम् ।४०।
नारायणमणीयासमशेषाणामणीयसाम्।
समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम् ।४१।
यत्र सर्वं यतः सर्वमुत्पन्नं मत्पुरःसरम्।
सर्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः ।४२।
परः परस्मात्पुरुषात्परमात्मस्वरूपधृक्।
योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौमुक्तिहेतोर्मुमुक्षुभिः ४३।
सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः।
स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ।४४।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेय जी! सब देवताओं से ऐसा कहते हुए ब्रह्माजी भी उनके साथ उस क्षीर सागर के उत्तरीय किनारे पर पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु का धाम है। वहाँ जाकर सभी देवताओं के साथ उन्होंने उन भगवान् की अत्यन्त मंगलमय वाणी में स्तुति की ॥३८-३९॥ ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त अणुओं से सूक्ष्म तथा पृथिवी आदि समस्त गुरु पदार्थों से भी भारी है, उन अखिल लोक के आश्रय, पृथिवी के आधार, अप्रकाश्य, अभेद्य, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अन्त-रहित, अजन्मा तथा अव्यय भगवान् नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥ जिस परब्रह्म में मेरे सहित यह सम्पूर्ण विश्व स्थित है तथा जिससे उत्पन्न हुआ है, जो सर्व भूतमय और परे से प

परे है, जो पुरुष से परे होने के कारण मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यान में ही दृष्टि-गोचर होते है, जिसमे सत्वादि गुणों का अभाव है, वह शुद्ध से भी शुद्ध परमात्म रूप आदि पुरुष भगवान् श्री हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥४२-४४॥

कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिकालसूत्रस्य गोचरे ।
यस्य शक्तिर्न शुद्धस्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ।४५।
प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः ।
प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहिनाम् ।४६।
यः कारणं च कार्यं च कारणस्यापि कारणम् ।
कार्यस्यापि च यः कार्यं प्रसीदतु स नो हरिः ।४७।
कार्यं कार्यस्य यत्कार्यं तत्कार्यस्यापि यः स्वयम् ।
तत्कार्यकार्यभूतो यस्ततश्च प्रणताः स्म तम् ।४८।
कारणं कारणस्यापि तस्य कारणकारणम् ।
तत्कारणानां हेतुं, तं प्रणताः स्म परेश्वरम् ।४९।
भोक्तार भोग्यभूत च स्रष्टार सृज्यमेव च ।
कार्यकर्तृ स्वरूप तं प्रणताः स्म परं पदम् ।५०।

विशुद्धबोधवन्नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
अव्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम् ।५१।
न स्थूलं न च सूक्ष्मं यन्न विशेषणगोचरम् ।
तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदामलम् ।५२।
यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता ।
परब्रह्मस्वरूपं यत्प्रणमामस्तमव्ययम् ।५३।
यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम् ।
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ।५४।
यन्न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः ।
जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ।५५।
शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ।५६।
सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत ।
प्रसीद विष्णो भक्तानाव्रज नो दृष्टिगोचरम् ।५७।

जो विशुद्ध, बोध रूप, नित्य, जन्म-रहित, मृत्यु-रहित, अव्यय, अव्यक्त एवं विकार रहित है, वही भगवान विष्णु का परम पद है ।।५१।। जो न स्थूल है, न सूक्ष्म ही है, न किसी विशेषण का विषय है, विष्णु भगवान के उसी परम पद को हम प्रणाम करते हैं ।।५२।। जिसके अयुतांश के भी अयुतांश में जगत की सृष्टि करने की सामर्थ्य है तथा जो परब्रह्म स्वरूप है, हम उन्हीं अव्यय परमेश्वर को प्रणाम करते हैं ।।५३।। नित्य दक्ष योगीजन अपने पुण्य-पापादि के क्षीण होने पर प्रणव के द्वारा चिन्तन योग्य, जिस अविनाशी पद का दर्शन करते हैं, भगवान श्रीहरि का परमपद वही है ।।५४।। जिसे देवता, ऋषि, शिवजी और मैं सभी जानने में असमर्थ हैं, वही भगवान श्री हरि का परमपद है ।।५५।। ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप से जिन अभूतपूर्व देव की शक्तियाँ है, वही भगवान् श्री हरि का परमपद है ।।५६।। हे सर्वेश्वर ! हे सर्व भूतात्मन् ! हे सर्वस्वरूप ! हे सर्वाश्रय ! हे अच्युत ! हे भगवान विष्णो ! आप हम भक्तों पर प्रसन्न होकर हमें अपना दर्शन देने की कृपा करिये ।।५७।।

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मणस्त्रिदशास्ततः ।
प्रणम्योचुः प्रसीदेति व्रज नो दृष्टिगोचरम् ।५८।
यन्नाय भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम् ।
तन्नताः स्म जगद्धाम त्व सर्वगताच्युत ।५९।
इत्यन्ते वचनस्तेषा देवाना ब्रह्मणस्तथा ।
ऊचुर्देवर्षयस्सर्वे बृहस्पतिपुरोगमा :
आद्यो यज्ञपुमानीड्य पूर्वेषां यश्च पूर्वजः ।
तन्नता स्म जगत्स्रष्टु स्रष्टारमविशेषणम् ।६१।
भगवन्भूतभव्येश यज्ञमूर्त्तिधराव्यय ।
प्रसीद प्रणतानां त्वं सर्वेषा देहि दर्शनम् ।६२।
एष ब्रह्मा सहास्माभि. सहरुद्रै स्त्रिलोचनः ।
सर्वादित्यै समं पूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः ।६३।
अश्विनौ वसवश्चेमे सर्वे चैते मरुद्गणाः ।
साध्या विश्वे तथा देवा देवेन्द्रश्चायमीश्वरः ।६४।
प्रणामप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यै. पराजिताः ।
शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ।६५।

श्री पराशरजी ने कहा – ब्रह्माजी द्वारा की गई स्तुति को सुनकर देवताओ ने भी भगवान को प्रणाम किया और इस प्रकार कहने लगे—हे प्रभो! आप हम पर प्रसन्न होकर हमे दर्शन दें। हे विश्व के आश्रय स्वरूप! हे अच्युत! आपके जिस परमपद को यह पितामह ब्रह्माजी भी नहीं जानते, उसे हम नमस्कार करते हैं ।।५९।। अब ब्रह्माजी और देवगण स्तुति कर चुके तब बृहस्पति आदि देवर्षियो ने इस प्रकार स्तवन किया – जो परम स्तुतियों के योग्य आद्य यज्ञ पुरुष तथा पूर्वजों के भी पूर्व पुरुष हैं, उन विश्व के रचने वाले परम पिता परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं ।।६०-६१।। हे भूत भव्येश यज्ञ स्वरूप प्रभो! हे अव्यय! हम शरणागतो पर प्रसन्न होकर हमे दर्शन दीजिये ।।६२।। हे स्वामिन्! हम सबके सहित यह ब्रह्माजी सब रुद्रो के सहित शिवजी, द्वादश आदित्यो के सहित पूषा, अग्नियो के सहित

पावक, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टावसु, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेवता और देवराज इन्द्र यह समस्त देवगण दैत्य सेना से हारकर अत्यन्त प्रणत होते हुए आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ॥६३-६५॥

एवं संस्तूयमानस्तु भगवाञ्छङ्खचक्रधृक् ।
जगाम दर्शनं तेषां मैत्रेय परमेश्वरः ।६६।
तं दृष्ट्वा ते तदा देवाः शङ्खचक्रगदाधरम् ।
अपूर्वरूपसंस्थानं तेजसां राशिमूर्जितम् ।६७।
प्रणम्य प्रणताः सर्वे संक्षोभस्तिमितेक्षणाः ।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं पितामहपुरोगमाः ।६८।
नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक् ।
इन्द्रस्त्वमग्निः पवनो वरुणः सविता यमः ।६९।
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवगणाः भवान् ।
योऽयं तवाग्रतो देव समीपं देवतागणः ।
स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान् ।७०।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः ।
विद्या वेद्यं च सर्वात्मंस्त्वन्मयं चाखिलं जगत् ।७१।
त्वामार्त्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः ।
वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्यायस्व नः ।७२।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार की स्तुतियों से प्रसन्न होकर शङ्ख चक्र धारण करने वाले भगवान विष्णु उसी समय उनके सामने प्रकट हो गये ॥६६॥ उस शङ्ख, चक्र और गदाधारी उत्कृष्ट तेजपुंज युक्त अपूर्व एवं दिव्य स्वरूप के दर्शन कर ब्रह्माजी आदि सब देवता अत्यन्त विनय पूर्वक प्रणाम कर विस्फारित नेत्रों से देखते हुए, उन पद्मलोचन भगवान श्री हरि की स्तुति करने लगे ॥६६-६७॥ देवताओं ने कहा—हे नाथ ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य, यमराज होते हुए भी निर्विशेष हैं ॥६९॥ हे प्रभो ! वसुगण, मरुद्गण, साध्यगण, और विश्वेदेवता भी आप ही हैं और यह सम्पूर्ण देव

समाज आप ही जगत् के रचयिता की मूर्ति हैं, क्योंकि आप सवगत एव परिपूर्ण हैं ॥७०॥ आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार एव प्रजापति हैं। हे सर्वात्मन्! विद्या, वेद और सम्पूर्ण विश्व भी आपका ही स्वरूप है ॥७१॥ हे विष्णो! हे प्रभो! हम दैत्यों से हारकर आतुरता पूर्वक आपकी शरण मे आये हैं, आप हम पर प्रसन्न होकर अपने तेज से हमें शक्ति सम्पन्न कर दीजिये ॥७२॥

तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथासुखम् ।
यावन्न याति शरणं त्वामशेषाघनाशनम् ।७३।
त्वं प्रसाद प्रसन्नात्मन् प्रपन्नाना कुरुष्व न ।
तेजसा नाथ सर्वेषा स्वशक्त्याप्यायन कुरु ।७४।
एव सस्तूयमानस्तु प्रणतैरमरैर्हरि ।
प्रसन्नदृष्टिर्भगवानिदमाह स विश्वकृत् ।७५।
तेजसो भवता देवा करिष्याम्युपवृहणम् ।
वदाम्यहं यत्क्रियता भवद्भिस्तदिद सुरा ।७६।
आनीय सहिता दैत्यै क्षीराब्धौ सकलौषधी ।
प्रक्षिप्यात्रामृतार्थं ता सकला दैत्यदानवै ।७७।
मन्थान मन्दर कृत्वा नेत्र कृत्वा च वासुकिम् ।
मथ्यतामभृत देवा सहाये मय्यवस्थिते ।७८।
सामपूर्वं च दैतेयास्तत्र साहाय्यकर्मणि ।
सामान्यफलभोक्तारो यूय वाच्या भविष्यथ ।७९।
मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत्समुत्पत्स्यतेऽमृतम् ।
तत्पानाद्बलिनो यूयममराश्च भविष्यथ ।८०।
तथा चाहं करिष्यामि ते यथा त्रिदशद्विष ।
न प्राप्स्यन्त्यमृत देवा केवल क्लेशभागिन ।८१।

हे नाथ! आपका जो आश्रय सभी प्राणियों के पापों को नष्ट कर देने में समर्थ है, उसको यह प्राणी जब तक प्राप्त नही करता, तब तक वह दीनता, इच्छा, मोह और दु खादि से मुक्त नही होता ॥७३॥ हे प्रसन्नात्मन्!

हम शरणागतों पर प्रसन्न होकर हमारे नष्ट हुए तेज को अपनी शक्ति से पुनः प्रवृद्ध कीजिए ।।७४।।

श्री पराशरजी ने कहा—विनम्र हुए देवगण द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर जगत्स्रष्टा भगवान विष्णु ने प्रसन्न होकर कहा ।।७५।। हे देवताओ ! मैं तुम्हारे तेज की पुनः वृद्धि करूँगा, अब मैं जो कुछ कहूँ वही तुम करो ।।७६।। तुम दैत्यों से मिलकर सभी औषधियाँ लाकर अमृत प्राप्ति के निमित्त उन्हें क्षीर सागर में डाल दो, मन्दराचल को रई और वासुकि नाग को नेती बनाओ फिर दैत्यों और दानवों के सहयोग से समुद्र मथन करो और उससे अमृत निकालो ।।७७-७८।। इस समय तुम साम नीति के अवलम्बन पूर्वक दैत्यों के पास जाकर उनसे कहो कि इस कार्य में हमारी सहायता करने के कारण इसमें समानता पर आप लोगों का भी अधिकार होगा ।।७९।। हे देवगण ! समुद्र मथन से जिस अमृत की प्राप्ति होगी, उसे पीकर तुम बलवान एवं अमर हो जाओगे ।।८०।। हे देवताओ! उस समय मैं ऐसी युक्ति निकालूँगा, जिससे तुम्हारे वैरी दैत्यगण अमृत प्राप्त न कर सकेंगे और उनके भाग में केवल समुद्र मथन के परिश्रम से प्राप्त क्लेश ही रहेगा ।।८१।।

इत्युक्ता देवदेवेन सर्व एव तदा सुराः ।
सन्धानमसुरैः कृत्वा यत्नवन्तोऽमृतेऽभवन् ।८२।
नानौषधीः समानाय देवदैतेयदानवाः ।
क्षिप्त्वा क्षीराब्धिपयसि शरदभ्रामलत्विषि ।८३।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
ततो मथितमारब्धा मैत्रेय तरसामृतम् ।८४।
विबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः कृताः ।
कृष्णेन वासुकेर्दैत्याः पूर्वकाये निवेशिताः ।८५।
ते तस्य मुखनिःश्वासवह्नितापहतत्विषः ।
निस्तेजसोऽसुराः सव बभूवुरमितौजसः ।८६।
तेनैव मुखनिःश्वासवायुनास्तवलाहकैः ।
पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तदा चाप्यायिताः सुराः ।८७।

श्री पराशरजी ने कहा—देव देव भगवान् के ऐसे वचन सुनकर सभी देवताओं ने दैत्यों के पास जाकर संधि कर ली और अमृत-प्राप्ति में प्रयत्नवान हुए ॥८२॥ हे मैत्रेय जी ! देवताओं दानवों और दैत्यों ने नाना प्रकार की ओषधियाँ ला-ला कर एकत्र की और उन्हें शरदाकाश जैसी स्वच्छ कान्ति वाले क्षीर सागर के जल में डाल दिया। फिर मंदराचल की रई और वासुकि नाग की नेती बनाकर अत्यन्त वेग पूर्वक समुद्र में अमृत का मन्थन करने लगे ॥८३ ८४॥ जिस ओर वासुकि की पूँछ थी, उस ओर भगवान ने देवताओं को तथा मुख की ओर दैत्यों को खड़ा किया ॥८५॥ अत्यन्त तेजस्वी वासुकि नाग के मुख से निकलती हुई श्वास ज्वाला से जलते हुए दैत्यगण तेजहीन हो गये तथा उसी श्वासोच्छ्वास से क्षत-विक्षत हुए मेघों के पूँछ की ओर बरसते रहने से देवताओं की शक्ति में वृद्धि होती गई ॥८७॥

क्षीरोदमध्ये भगवान्कूर्मरूपी स्वयं हरिः ।
मन्थनाद्रेरधिष्ठानं भ्रमतोऽभून्महामुने ॥८८॥
रूपेणान्येन देवानां मध्ये चक्रगदाधरः ।
चकर्ष नागराजानं दैत्यमध्येऽपरेण च ॥८९॥
उपर्याक्रान्तवाञ्छैलं बृहद्रूपेण केशवः ।
तथापरेण मैत्रेय यन्न दृष्टं सुरासुरैः ॥९०॥
तेजसा नागराजानं तथाप्यायितवान्हरिः ।
अन्येन तेजसा देवानुपबृंहितवान्प्रभुः ॥९१॥
मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।
हविर्धामाभवत्पूर्वं सुरभिः सुरपूजिता ॥९२॥
जग्मुर्मुदं ततो देवा दानवाश्च महामुने ।
व्याक्षिप्तचेतसश्चैव बभूवुः स्तिमितेक्षणाः ॥९३॥
किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिन्तयतां ततः ।
बभूव वारुणी देवी मदाघूर्णितलोचना ॥९४॥

हे महामुने ! भगवान् ने कूर्म रूप धारण कर क्षीर सागर में घूमते हुए मन्दराचल को आश्रय रूप हो अपने ऊपर धारण किया ॥८८॥ वही चक्र और

गदा के धारण करने वाले भगवान एक अन्य रूप से देवताओं में देवजो ने और रूप से दैत्यों में मिलकर वासुकि रूप नेती को खींचने लगे और एक अन्य अत्यन्त विशाल रूप से जो देवता या दैत्य किसी को दिखाई नहीं दे रहा था, उस रई रूपी मंदराचल को ऊपर से दाब लिया था ॥८९-९०॥ अपने ही तेज से उन्होंने वासुकि में बल का सचार किया और अपने ही तेज से देवताओं में बल की वृद्धि की ॥९१॥ इस प्रकार देवताओं और दैत्यों के द्वारा क्षीर सागर का मथन किये जाने पर सर्व प्रथम हवि की आश्रय रूपा कामधेनु निकली ॥९२॥ उस समय देवता और दैत्य सभी अत्यन्त आनन्दित हुए और उसको और चित्त के आकर्षित होने के कारण वे उसे एकटक देखने लगे ॥९३॥ फिर यह क्या है ? इसे जानने के इच्छुक सिद्धो के सामने मद से फिरते हुए नेत्रो वाली वारुणी देवी उत्पन्न हुई ॥९४॥

कृतावर्त्तात्ततस्तस्मात्क्षीरोदाद्वासयञ्जगत् ।
गन्धेन पारिजातोऽभूद्देवस्त्रीनन्दनस्तरु ॥९५॥
रूपौदार्यगुणोपेतस्तथा चाप्सरसा गणः ।
क्षीरोदधेः समुत्पन्नो मैत्रेय परमाद्भुतः ॥९६॥
ततः शीतांशुरभवज्जगृहे त महेश्वरः ।
जगृहुश्च विषं नागा क्षीरोदाब्धिसमुत्थितम् ॥९७॥
ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरास्वयम् ।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः ॥९८॥
ततः स्वस्थमनस्कास्ते सर्वेतेयदानवाः ।
बभूवुर्मुदिता सर्वे मैत्रेय मुनिभि सह ॥९९॥
ततः स्फुरत्कान्ति विकर्कसामले स्थिता ।
श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुद्भुता घृतपङ्कजा ॥१००॥
ता तुष्टुवुर्मुदा युक्ताः श्रीसूक्तेन महर्षयः
विश्वावसुमुखास्तस्या गन्धर्वा पुरतो जगु ॥१०१॥
घृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ॥१०२॥

इसके पश्चात् पुनः मथन प्रारम्भ हुआ और अपनी गंध से त्रैलोक्य को सुगंधित करने वाला और देवनारियों के आनन्द को बढ़ाने वाला कल्पवृक्ष उससे प्रकट हुआ ॥९५॥ फिर रूप एवं उदारता आदि गुणों से परिपूर्ण अत्यन्त अद्भुत अप्सरायें उस क्षीर सागर से निकलीं ॥९६॥ तत्पश्चात् चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जिसे शिवजी ने ले लिया और फिर जो विष निकला उन्हें नागों ने ग्रहण किया ॥९७॥ इसके बाद श्वेत वस्त्र धारण किये हुए भगवान धन्वन्तरिजी प्रकट हुए, उनके हाथ में अमृत से परिपूर्ण कमण्डलु था ॥९८॥ हे मैत्रेय जी ! उस समय मुनियों के सहित सभी दैत्य-दानव अत्यन्त स्वस्थ चित्त और हर्षित हो उठे ॥९९॥ (फिर खिले हुए कमल पर बैठी हुई अत्यन्त कान्तिमयी लक्ष्मी जी हाथों में कमल का पुष्प लिए हुए क्षीर सागर से निकलीं ॥१००॥ (उनके समय महर्षियों ने श्री सूक्त से उनकी स्तुति प्रारम्भ की और विश्वावसु आदि गन्धर्व उनके सामने गाने लगे ॥१०१॥ (और घृताची आदि अप्सरायें नाचने लगीं तथा लक्ष्मी जी का अपने जल से अभिषेक कराने के लिए गंगा आदि सरिताएं स्वयं वहाँ उपस्थित हुईं ॥१०२॥)

दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम् ।
स्नापयाञ्चक्रिरे देवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥१०३॥
क्षीरोदो रूपधृक्तस्यै मालामम्लानपङ्कजाम् ।
ददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार ह ॥१०४॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिता ।
पश्यतां सर्वदेवानां ययौ वक्षःस्थलं हरेः ॥१०५॥
तया विलोकिता देवा हरिवक्षःस्थलस्थया ।
लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्वृतिमागताः ॥१०६॥
उद्वेगं परमं जग्मुर्दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः ।
त्यक्ता लक्ष्म्या महाभाग विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥१०७॥
ततस्ते जगृहुर्दैत्या धन्वन्तरिकरस्थितम् ।
कमण्डलुं महावीर्या यत्रास्तेऽमृतमुत्तमम् ॥१०८॥
मायया मोहयित्वा तान् विष्णुः स्त्रीरूपसंस्थितः ।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥१०९॥

स्वर्ण कलशों में भरे हुए उन गंगादि के पवित्र जल से दिग्गजों ने लक्ष्मीजी को स्नान कराया और क्षीर सागर ने मूर्तिमान् होकर कमल-पुष्पों की माला उन्हें भेंट की तथा स्वयं विश्वकर्मा ने उनके अंगों में आभूषण धारण कराये ॥१०३-१०४॥ इस प्रकार दिव्य वस्त्राभूषण धारण करके श्री लक्ष्मी जी देवगण के सामने ही भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में प्रतिष्ठित हो गईं ॥१०५॥ हे मैत्रेय जी ! भगवान् के वक्षस्थल में विराजमान लक्ष्मी जी के दृष्टिपात से देवगण परम प्रसन्न हुए ॥१०६॥ उस समय श्री लक्ष्मी जी के परित्यक्त होने से विप्रचित्ति आदि दैत्यों को अत्यन्त उद्विग्नता हुई ॥१०७॥ तब उन अत्यन्त बली दैत्यों ने धन्वन्तरिजी के हाथ से अमृत से भरे हुए कमण्डलु को छीन लिया। इसलिए स्त्री रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने दानवों को अपनी माया से मोहित कर उनसे कमण्डलु लेकर देवताओं को दे दिया ॥१०८-१०९॥

तत. पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदामृतम् ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांश्च समभ्ययुः ११०।
पीतेऽमृते च बलिभिर्देवैर्दैत्यचमूस्तदा ।
वध्यमाना दिशो भेजे पातालं च विवेश वै ।१११।
ततो देवा मुदा युक्ता. शङ्खचक्रगदाभृतम् ।
प्रणिपत्य यथापूर्वमाशासत्तत्त्रिविष्टपम् ।११२।
ततः प्रसन्नभा. सूर्यः प्रययौ स्वेन वर्त्मना ।
ज्योतींषि च यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम ।११३।
जज्वाल भगवांश्चोच्चैश्चारुदीप्तिर्विभावसुः ।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ।११४।
त्रैलोक्यं च श्रिया जुष्टं बभूव द्विजसत्तम ।
शक्रश्च त्रिदशश्रेष्ठः पुनः श्रीमानजायत ।११५।
सिंहासनगतः शक्रस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः ।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः ।११६।

तब इन्द्रादि देवताओं ने उस अमृत का पान कर लिया, इससे क्रोधित हुए दैत्यगण ने तीक्ष्ण खड्गादि शस्त्र लेकर देवताओं पर आक्रमण कर दिया

॥११०॥ परन्तु, अमृत पीकर बलवान होने के कारण दैत्यों की सब सेना देवताओं द्वारा परास्त हो गई और मरती-कटती हुई इधर-उधर भाग गई उनमे से कुछ दैत्य पाताल लोक मे चले गये ॥१११॥ इसके पश्चात् शंख चक्र गदाधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम कर सब देवगण वहाँ से प्रसन्न होते हुए चल दिए और पूर्ववत् स्वर्ग का शासन करने लगे ॥११२॥ हे मुनिसत्तम ! उसी समय से अत्यन्त तेजोमय भगवान भास्कर ने अपने मार्ग पर तथा तारागण ने अपने मार्ग पर चलना आरम्भ किया ॥११३॥ श्रेष्ठ दीप्तिमय अग्नि देवता अत्यन्त प्रज्वलित होने लगे और प्राणियों मे धर्म की भी प्रवृत्ति होने लगी ॥११४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! त्रैलोक्य श्री सम्पन्न हो गया और देवश्रेष्ठ इन्द्र भी श्री से युक्त होगये ॥११५॥ इन्द्र ने स्वर्ग मे पहुँचकर पुन वहाँ का राज्य प्राप्त किया और राज्यपद पर अभिषिक्त होकर पद्म हस्ता श्री लक्ष्मी जी की स्तुति करने लगे ॥११६॥

नमस्ये सर्वलोकाना जननीमब्जसम्भवाम् ।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षी विष्णुवक्ष स्थलस्थिताम् ।११७।
पद्मालया पद्मकरा पद्मपत्रनिभेक्षणाम् ।
वन्दे पद्ममुखी देवी पद्मनाभप्रियामहम् ।११८।
त्व सिद्धिस्त्व स्वधा स्वाहा सुधा त्व लोकपावनी ।
सन्ध्या रात्रि प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।११९।
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवि त्व विमुक्तिफलदायिनी ।१२०।
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्व यैतद्देवि पूरितम्।१२१।
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमय वपु ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्य गदाभृत ।१२२।
त्वया देवि परित्यक्त सकल भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानी समेधितम् ।१२३।

इन्द्र ने कहा—सम्पूर्ण लोकों की माता, खिले हुए कमल जैसे नेत्र वाली, भगवान श्रीहरि के वक्षस्थल मे प्रतिष्ठित, कमल से आविर्भूत हुई

श्री लक्ष्मी जी को मेरा नमस्कार है ॥११७॥ कमल ही जिनका आश्रय स्थान है तथा कमल ही जिनके हाथों में सुशोभित है और कमल दल के समान ही जिनके लोचन हैं, उन पद्ममुखी और पद्मनाभ प्रिया श्री लक्ष्मीजी का मैं वन्दन करता हूँ ॥११८॥ हे देवि ! तुम सिद्धि, स्वधा, स्वाहा, सुधा रूप तथा तीनों लोकों को पवित्र करने वाली हो, तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा एवं सरस्वती हो । हे शोभने ! तुम ही यज्ञ विद्या और महाविद्या हो तथा तुम ही मुक्ति फल के देने वाली आत्मविद्या हो ॥१२०॥ हे देवि ! तुम ही तर्क विद्या, वेदत्रयी, वार्ता एवं दण्ड नीति हो, तुम ही ने इस समस्त संसार को अपने शान्त और उग्र रूपों से व्याप्त कर रखा है ॥१२१॥ हे देवि ! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसी कोई अन्य नारी नहीं है जो देवाधिदेव भगवान् विष्णु के योगीजनों द्वारा चिन्तनीय सर्वयज्ञमय देह का आश्रय प्राप्त कर सके ॥१२२॥ हे देवि ! तुम्हारे द्वारा त्यागी जाने पर यह त्रिलोकी नष्ट प्राय हो चली थी, अब तुमने ही उसे पुनर्जीवन प्रदान किया है ॥१२३॥

दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम् ।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥१२४॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥१२५॥
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥१२६॥
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥१२७॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ॥१२८॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ॥१२९॥
त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१३०॥

हे महाभागे ! स्त्री, पुत्र, घर, धन, धान्य और सुहृदों की प्राप्ति भी तुम्हारी कृपा दृष्टि से ही होती है। हे देवि ! जो पुरुष आपके कृपापात्र हैं, उन्हे सदैव शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुओं का नाश तथा सुखादि कुछ भी अलभ्य नही है ॥१२४-१२५॥ तुम सर्व लोको की जननी हो और देवदेव भगवान् विष्णु जगत्पिता हैं। तुम दोनो से ही यह चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है ॥१२६॥ हे सर्व पावनि ! हे जननी ! हमारे कोश, गोष्ठ, घर, भोग्य वस्तु, देह तथा स्त्री आदि का तुम कभी भी त्याग न करना ॥१२७॥ हे विष्णु भगवान् के वक्षस्थल मे निवास करने वाली मातेश्वरी ! हमारे पुत्र, सुहृद, पशु और अलंकारादि भी कभी आप से रहित न हो ॥१२८॥ हे अमले ! तुम जिनका त्याग कर देती हो, उनका सत्य, शौच और शीलादि गुण भी शीघ्र ही त्याग कर देते हैं ॥१२९॥ किन्तु तुम्हारे कृपा दृष्टि प्राप्त होने पर गुणहीन भी शीलादि गुणो से शीघ्र ही सम्पन्न होकर कुलीनता और ऐश्वर्यादि से परिपूर्ण हो जाता है ॥१२९-१३०॥

स श्लाघ्य. स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ।१३१।
सद्यो वै गुणमायान्ति शीलाद्या सकला गुणा. ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णु वल्लभे ।१३२।
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः ।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षी. कदाचन ।१३३।
एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम् ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विज ।१३४।
परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे ।
वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाहं तवागता ।१३५।
वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाप्यहम् ।
त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः पर. ।१३६।
स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसम्भवे ।
स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।१३७।

हे देवि ! जिस पर तुम्हारी कृपा-दृष्टि रहती है, वह मनुष्य अवश्य ही

प्रशंसा के योग्य है, वह गुणी, कुलीन, शूर, पराक्रमी, बुद्धिमान एवं धन्यमान्य है ॥१३१॥ हे विष्णुवल्लभे ! हे जगदात्री तुम जिससे विमुख होती हो, उसके शील आदि सभी गुण अवगुण बन जाते हैं ॥१३२॥ हे देवि ! तुम्हारे गुणों के वर्णन में ब्रह्मा जी की जिह्वा भी असमर्थ है। इसलिए हे पद्मलोचने ! अब तुम मुझ पर प्रसन्न होओ और कभी भी मेरा त्याग न करो ॥१३३॥ श्री पराशर जी ने कहा—हे ब्राह्मन् ! इस प्रकार स्तुत होती हुई सर्वभूतस्थिता श्रीलक्ष्मीजी सब देवताओं की उपस्थिति में इन्द्र से बोलीं ॥१३४॥ श्री लक्ष्मीजी ने कहा—हे देवेश ! मैं तेरे स्तोत्र से अत्यन्त प्रसन्न हुई हूँ, तुम्हें जिस वस्तु की कामना हो, वही मुझसे माँगो। तुम्हें वर प्रदान करने के लिये ही मैं यहाँ आई हूँ ॥१३५॥ इस पर इन्द्र ने कहा—हे देवि ! यदि तुम मुझे वर-प्राप्ति के योग्य समझ कर वर देना ही चाहती हो तो प्रथम तो मुझे यही वर दो कि तुम कभी त्रिलोकी का त्याग न करोगी ॥१३६॥ हे समुद्रोद्भूते ! मुझे द्वितीय वर यह दो कि मेरे इस स्तोत्र से जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करे, उसका तुम कभी भी त्याग न करोगी ॥१३७॥

त्रैलोक्यं त्रिदश श्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव ।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया ।१३८।
यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः ।
मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी ।१३९।
एवं ददौ वरं देवी देवराजाय वै पुरा ।
मैत्रेय श्रीर्महाभागा स्तवाराधनतोषिता ।१४०।
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्वमुदधेः पुनः ।
देवदानवयत्नेन प्रसूतामृतमन्थने ।१४१।
एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ।१४२।
पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदा हरिः ।
यदा तु भार्गवो रामस्तदाभूद्धरणी त्वियम् ।१४३।
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ।१४४।

श्री लक्ष्मीजी ने कहा—हे देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ! मैं अब इस त्रैलोक्य का कभी त्याग न करूँगी, मैं तेरे स्तोत्र से प्रसन्न होकर तुझे यह वर प्रदान करती हूँ ॥१३८॥ जो मनुष्य प्रातः सायं तेरे इस स्तोत्र से मेरा स्तव करेगा मैं उससे विमुख कभी न हूँगी ॥१३९॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पूर्वकाल में इस प्रकार देवराज इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट हुई श्रीलक्ष्मीजी ने उन्हें उक्त वर प्रदान किये ॥१४०॥ पहिले वे लक्ष्मीजी भृगु के द्वारा उनकी ख्याति नामक स्त्री के गर्भ से उद्भूत हुई थी, फिर वह समुद्र मथन के समय देवताओं और दानवों के प्रयत्न से क्षीर सागर से प्रकट हुई थी ॥१४१॥ इस प्रकार जगत्पति देवाधि देव भगवान् श्रीहरि जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब लक्ष्मीजी भी उनके साथ इस भूतल पर आती हैं ॥१४२॥ जब भगवान् विष्णु आदित्य रूप हुए तब वे कमल से उत्पन्न हुई और जब उन्होंने परशुराम का अवतार धारण किया तब लक्ष्मी जी ही पृथिवी हुई ॥१४३॥ जब उन्होंने रामावतार लिया तब यह सीताजी हुई और कृष्णावतार में रुक्मिणी हुई । इसी प्रकार भगवान् ने जो अन्य अनेक अवतार धारण किये, उनमें से किसी में भी भगवान् से अलग नहीं रहतीं ॥१४४॥

देवत्वे देवदेहेऽयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥१४५॥
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म लक्ष्म्या यश्च पठेन्नरः ।
श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत्कुलत्रयम् ॥१४६॥
पाठ्यते येषु चैवेयं गृहेषु श्रीस्तुतिर्मुने ।
अलक्ष्मीः कलहाधारा न तेष्वास्ते कदाचन ॥१४७॥
एतत्ते कथितं ब्रह्मन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
क्षीराब्धौ श्रीर्यथा जाता पूर्वं भृगुसुता सती ॥१४८॥
इति सकलविभूत्यवाप्तिहेतुः ।
स्तुतिरियमिन्द्रमुखोद्गता हि लक्ष्म्याः ।
अनुदिनमिह पठ्यते नृभिर्यै-
र्वसति न तेषु कदाचिदप्यलक्ष्मीः ॥१४९॥

जब भगवान् देव रूप होते हैं, तब लक्ष्मीजी दिव्य रूप धारण करती

हैं और जब वह मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं तब यह भी मानवी हो जाती हैं। भगवान् के देहानुरूप ही यह भी अपना देह धारण करती हैं ॥१४५॥ श्रीलक्ष्मीजी के जन्म की इस कथा को जो कोई पढ़ेगा या श्रवण करेगा उसके गृह से तीनों कुलों में लक्ष्मी का कभी भी नाश नहीं होगा ॥१४६॥ हे मुने! लक्ष्मीजी के इस स्तोत्र का जिन घरों में पाठ होता रहता है, उनमें कलह की आधार स्वरूपा दरिद्रता कभी भी नहीं टिकती ॥१४७॥ हे ब्रह्मन्! तुमने यह प्रश्न किया था कि जब लक्ष्मीजी भृगुजी की पुत्री थीं तो फिर उनकी उत्पत्ति क्षीर सागर में किस प्रकार हुई, उसका समाधान मैंने इस वृत्तान्त के द्वारा कर दिया है ॥१४८॥ इस प्रकार इन्द्र-मुख से उत्पन्न हुई यह स्तुति सभी विभूतियों को प्राप्त कराने वाली है, इसका जो नित्य नियमित रूप से पाठ करेंगे उनके यहाँ निर्धनता कभी न रहेगी ॥१४९॥



दशवाँ अध्याय

कथितं मे त्वया सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया मुने ।
भृगुसर्गात्प्रभृत्येष सर्गो मे कथ्यतां पुनः ॥१॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः ।
तथा धातृविधातारौ ख्यात्यां जातौ सुतौ भृगोः ॥२॥
आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ।
भार्ये धातृविधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥३॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः ।
ततो वेदशिरा जज्ञे प्राणस्यापि सुतं शृणु ॥४॥
प्राणस्य द्युतिमान्पुत्रो राजवांश्च ततोऽभवत् ।
ततो वंशो महाभाग विस्तारं भार्गवो गतः ॥५॥
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत ।
विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥६॥

श्री मैत्रेय जी ने कहा— हे मुने ! आपसे मैंने जो प्रश्न किया था, वह सब कुछ आपने बता दिया, अब कृपा करके भृगु-सतति से लेकर, सम्पूर्ण सृष्टि का मुझसे वर्णन करिये ।।१।। श्री पराशरजी बोले—भृगुजी द्वारा ख्याति के गर्भ से विष्णुभार्या लक्ष्मीजी तथा धाता और विधाता नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई ।।२।। उन धाता, विधाता का विवाह महात्मा मेरु की आयति और नियति नाम की पुत्रियों से सम्पन्न हुआ, जिनसे प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय हुए, जिनसे वेदशिरा का जन्म हुआ । अब प्राण की सतति कहता हूँ, उसे सुनो ।।३-४।। प्राण का पुत्र द्युतिमान् हुआ, द्युतिमान का पुत्र राजवान् और उस राजवान् से ही भृगुवंश का अत्यंत विस्तार हुआ ।।५।। मरीचि की पत्नी सम्भूति से पौर्णमास हुआ, उसके विरजा और पर्वत नाम के दो पुत्र हुए ।।६।।

वंशसकीर्तने पुत्रान्वदिष्येऽहं ततो द्विज ।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ।७।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे निष्कल्मषान् सुतान् ।८।
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ।९।
पूर्वजन्मनि योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कर्दमश्चोर्वरीयांश्च सहिष्णुश्च सुतास्त्रय ।१०।
क्षमा तु सुषुवे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः ।
क्रतोश्च सन्ततिर्भार्या वालखिल्यानसूयत ।११।
षष्टिपुत्रसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करतेजसाम् ।१२।
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।
रजो गोत्रोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।१३।
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयोऽमलाः ।
योऽसावग्न्यभिमानी स्याद् ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ।१४।

तस्मात्स्वाहा सुतांल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ।
पावकं पवमानं तु शुचिं चापि जलाशिनम् ।।१५।।

हे द्विज ! अब उनकी यथावत् कहूँगा तब उन दोनों की सन्तति को बताऊँगा । अंगिरा की भार्या स्मृति से सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नाम की कन्याओं ने जन्म लिया । अत्रि-पत्नी अनसूया ने चन्द्रमा, दुर्वासा और दत्तात्रेय को उत्पन्न किया । पुलस्त्य की पत्नी प्रीति से दत्तोलि की उत्पत्ति हुई जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में हुए अपने जन्म में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध था प्रजापति पुलह की भार्या क्षमा से कर्दम, उर्वरीयान् तथा सहिष्णु नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए । क्रतु की सन्तति नाम की पत्नी ने अंगूठे के पोरुओं के समान देह वाले तथा प्रखर सूर्य के समान अत्यन्त तेज वाले बालखिल्यादि साठ सहस्र ऊर्ध्व-रेता पुत्र उत्पन्न किये ।।१०-१२।। वसिष्ठजी की ऊर्जा नाम की पत्नी से रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र नाम के सात पुत्र हुए, यह, सभी स्वच्छ स्वभाव वाले सप्तर्षि हुए । ब्रह्माजी का ज्येष्ठ पुत्र जो अग्नि का अभिमानी देवता है, उसकी स्वाहा नाम की भार्या ने अत्यत तेजस्वी पावक, पवमान और जल भक्षक शुचि, इन तीन पुत्रों को जन्म दिया ।।१३-१५।।

तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
कथ्यन्ते वह्नयश्चैते पिता पुत्रत्रयं च यत् ।।१६।।
एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ।
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया द्विज ।।१७।।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेना वै धारिणी तथा ।।१८।।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यावप्युभे द्विज ।
उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्वैः समुदितैर्गुणैः ।।१९।।
इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः ।
श्रद्धावान्संस्मरन्नेतामनपत्यो न जायते ।।२०।।

इन तीनों के पैंतालीस पुत्र हुए । अग्नि और उनके तीन पुत्रों को मिला यह सब उनचास अग्नि कहे जाते हैं । हे द्विज ! ब्रह्माजी द्वारा रचित जि

अनग्निक अग्निष्वात्ता और साग्निक बर्हिषद आदि पितरो के विषय मे जो तुम्हें बताया था, उनके द्वारा स्वधा के गर्भ से मेना और धारिणी नाम्नी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई ॥१६-१८॥ यह दोनो ही श्रेष्ठ ज्ञान वाली सद्गुण सम्पन्ना तथा योगिनी थी ॥१९॥ इस प्रकार यह दक्ष-सुताओ की वंश परम्परा कही गई, इसे जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता है, वह पुत्रवान् होता है ॥२०॥



ग्यारवाँ अध्याय

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
द्वौ पुत्रौ तु महावीर्यौ धर्मज्ञौ कथितौ तव ॥१॥
तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन्पितुरत्यन्तवल्लभः ॥२॥
सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्यासीन्महिषी द्विज ।
सनातिप्रीतिमांस्तस्यामभूद्यस्या ध्रुवः सुतः ॥३॥
राजासनस्थितस्याङ्कं पितुर्भ्रातरमाश्रितम् ।
दृष्ट्वोत्तमं ध्रुवस्तस्य चक्रे तमारोढुं मनोरथम् ॥४॥
प्रत्यक्षं भूपतिस्तस्याः सुरुच्या नाभ्यनन्दत ।
प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम् ॥५॥
सपत्नीतनयं दृष्ट्वा तमङ्कारोहणोत्सुकम् ।
स्वपुत्रं च तथारूढं सुरुचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
क्रियते किं वृथा वत्स महानेष मनोरथः ।
अन्यस्त्रीगर्भजातेन ह्यसम्भूय ममोदरे ॥७॥

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेय जी ! मैं तुम्हें स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो अत्यंत बली और धर्मज्ञ पुत्रो के विषय मे कह चुका हूँ। उनमे उत्तानपाद की पत्नी सुरुचि ने उत्तम नामक एक पुत्र उत्पन्न किया और उसकी सुनीति नाम की राजमहिषी ने ध्रुव नामक पुत्र को जन्म

दिया, इस राज महिषी में राजा का विशेष प्रेम नहीं था ॥१-३॥ एक दिन जब राज्यासन पर आरूढ पिता की गोद में उत्तम बैठा था, उस समय ध्रुव की इच्छा भी राजा की गोद में बैठने की हुई। परन्तु अपनी प्रेयसी सुरुचि के सामने राजा ने अपने उस पुत्र को गोद में न लिया और सुरुचि ने अपनी सौत के पुत्र को गोद में चढ़ने को उत्सुक और अपने पुत्र को गोद में बैठा देख कर उससे कहा कि तू मेरे उदर के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री का पुत्र होकर भी ऐसी महान् इच्छा कर रहा है ? ॥४-७॥

उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेको हि वाञ्छसि ।
सत्य सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न त्वं मया धृतः ॥८॥
एतद्राजासन सर्वभूभृत्संश्रयकेतनम् ।
योग्य ममैव पुत्रस्य किमात्मा क्लिश्यते त्वया ॥९॥
उच्चैर्मनोरथस्तेऽयं मत्पुत्रस्येव किं वृथा ।
सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥१०॥
उत्सृज्य पितरं बालस्तच्छ्रुत्वा मातृभाषितम् ।
जगाम कुपितो मातुर्निजाया द्विज मन्दिरम् ॥११॥
तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरम् ।
सुनीतिरङ्कमारोप्य मैत्रेयेदमभाषत ॥१२॥
वत्स कः कोपहेतुस्ते कश्च त्वां नाभिनन्दति ।
कोऽवजानाति पितरं वत्स यस्तेऽपराध्यति ॥१३॥
इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास तद्यथा ।
सुरुचिः प्राह भूपालप्रत्यक्षमतिगर्विता ॥१४॥
विनिःश्वस्येति कथिते तस्मिन्पुत्रेण दुर्मना ।
श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनीतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

तू विवेक हीन है, इसीलिए अलभ्य और श्रेष्ठ वस्तु का मनोरथ करता है। यद्यपि तू भी इन्हीं महाराज से उत्पन्न है, परन्तु मेरे गर्भ से जन्म नहीं लिया है। सभी चक्रवर्ती नरेशों का आश्रय रूप यह राज्य सिंहासन मेरे ही पुत्र के बैठने योग्य है, इसकी इच्छा करके तू व्यर्थ ही क्यों अपने चित्त को

सन्तप्त करता है ? ॥८-९॥ तू मेरे पुत्र के समान ही ऐसी उच्च आकांक्षा को क्यों धारण किये हुए है ? क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि तू सुनीति का पुत्र है ? ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! विमाता की बात सुन कर बालक ध्रुव को क्रोध आगया और वह पिता के पाससे हट कर अपनी माता के भवन में पहुँचा उस समय उसके ओंठ काँप रहे थे। सुनीति ने अपने पुत्र को इस प्रकार आता हुआ देखा तो उसने उसे गोद मे बिठाते हुए पूछा—हे बेटा ! तू क्रोधित क्यों हो रहा है, किसने तेरा अपमान किया है ? तेरा अपराध करके कौन तेरे पिता को अपमानित करने जारहा है ? ॥११-१३॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार का प्रश्न सुन कर ध्रुव ने पिता के सामने ही सुरुचि द्वारा कही गई सब बातें सुनाई। पुत्र जब सिसकते हुए इस बात को कह रहा था तब सुनते-सुनते राजमहिषी सुनीति खिन्न चित्त से दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहने लगी ॥१४-१५॥

सुरुचिः सत्यमाहेद मन्दभाग्योऽसि पुत्रक ।
न हि पुण्यवतां वत्स सपत्नैरेवमुच्यते ॥१६॥
नोद्वेगस्तात कर्त्तव्य. कृत यद्भवता पुरा ।
तत्कोऽपहर्तुं शक्नोति दातुं कश्चाकृत त्वया ।१७।
तत्त्वया नात्र कर्त्तव्य दु.ख तद्वाक्यसम्भवम् ।१८।
राजासन राजच्छत्र वराश्ववरवारणाः ।
यस्य पुण्यानि तस्यैते मत्वैतच्छाम्य पुत्रक ।१९।
अन्यजन्मकृते. पुण्यै सुरुच्या सुरुचिर्नृपः ।
भार्येति प्रोच्यते चान्या मद्विधा पुण्यवर्जिता ।२०।
पुण्योपचयसम्पन्न स्तस्याः पुत्रस्तथोत्तमः ।
मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् ।२१।
तथापि दुःखं न भवान् कर्त्तुमर्हति पुत्रक ।
यस्य यावत्स तेनैव स्वेन तुष्यति मानवः ।२२।

सुनीति बोली—हे पुत्र ! सुरुचि का कहना यथार्थ है, तू मन्द भाग्य है इसीलिये उसने ऐसा कहा है, क्यो कि पुण्यवान के सामने ऐसा कहने

स्वय ढलता हुआ आजाता है, वैसे ही सत्पात्र पुरुषों के पास समस्त वैभव अपने आप ही आ पहुँचता है ॥२४॥ ध्रुव ने कहा—हे माता ! मेरे चित्त की शान्ति के लिये तुमने जो कुछ कहा है, वह उसके कठोर वचनो से बिंधे हुए मेरे हृदय मे ठहर नही पाता । इसलिये अब मैं वही करुँगा, जिसके द्वारा सब लोकों में सम्मानित सर्व-श्रेष्ठ पद को प्राप्त हो सकूँ ॥२६॥ यद्यपि राजा की प्रेयसी सुरुचि अवश्य ही भाग्य वाली है और मैं उसके उदर से उत्पन्न नही हुआ हूं, फिर भी अपने गर्भ द्वारा प्रवृद्ध किये गये इस बालक के प्रभाव को भी देख लेना । जिस उत्तम को सुरुचि ने जन्म दिया, वह भी मेरा भाई ही तो है । पिता का दिया हुआ राजपद उसी को मिले । क्योंकि किसी दूसरे के द्वारा दिये हुए पद की अभिलाषा नहीं करता, मैं तो अपने पुरुषार्थ से ही उस पद को पाना चाहता हूं जिसे पिताजी भी न प्राप्त कर सके हैं ॥२७-२६॥

निर्जगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रुवः ।
पुराच्च निर्गम्य ततस्तद्बाह्योपवनं ययौ ।३०।
स ददर्श मुनींस्तत्र सप्त पूर्वागतान्ध्रुवः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु विष्टरेषु समास्थितान् ।३१।
स राजपुत्रस्तान्सर्वान्प्रणिपत्याभ्यभाषत ।
प्रश्रयावनतः सम्यगभिवादनपूर्वकम् ।३२।
उत्तानपादतनयं मां निबोधत सत्तमाः ।
जातं सुनीत्या निर्वेदाद्युष्माकं प्राप्तमन्तिकम् ।३३।
चतुःपञ्चाब्दसम्भूतो बालस्त्वं नृपनन्दन ।
निर्वेदकारणं किञ्चित्तव नाद्यापि वर्तते ३४।
न चिन्त्यं भवतः किञ्चिद्ध्रियते भूपतिः पिता ।
न चैवेष्टवियोगादि तव पश्याम बालक ।३५।
शरीरे न च ते व्याधिरस्माभिरुपलक्ष्यते ।
निर्वेदः किन्निमित्तस्ते कथ्यतां यदि विद्यते ।३६।

श्री पराशरजी ने कहा-माता के प्रति यह कह कर ध्रुव उसके भवन से

वह दे और फिर यह भी बता कि हम तेरी क्या सहायता कर सकते हैं, हमें प्रतीत होता है कि तू हमसे कुछ कहने की इच्छा करता है ॥३९-४०॥ ध्रुव बोले—हे द्विजसत्तम ! मैं धन या राज्य नहीं चाहता, मैं तो केवल वही पद प्राप्त करना चाहता हूँ जिसका भोग पहिले कभी किसी ने न किया हो। हे मुनि-वर ! यदि आप यह बताने की कृपा करें कि मुझे सबसे अग्रगण्य वह स्थान किस कर्म से उपलब्ध हो सकता है तो यह बहुत बड़ी सहायता होगी ॥४१-४२॥

अनाराधितगोविन्देनंरैः स्थानं नृपात्मज
न हि सम्प्राप्यते यत्रेष्टं तस्मादाराधयाच्युतम् ।४३।
परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः ।
स आप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम् ।४४।
यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः ।
तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि ।४५।
परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम् ।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम् ।४६।
ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम् ।
प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत ।४७।
यो यज्ञपुरुषो यज्ञो योगेशः परमः पुमान् ।
तस्मिंस्तुष्टे यदप्राप्यं किं तदस्ति जनार्दने ।४८।
प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि ।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम् ।४९।

मरीचि ने कहा—हे नृपात्मज ! भगवान गोविन्द की आराधना के बिना मनुष्य को वैसे स्थान की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये तू उन्हीं अच्युत नारायण की आराधना कर ॥४३॥ अत्रि ने कहा—जो परम पुरुष जनार्दन परा प्रकृति से भी परे हैं, वह जिस से प्रसन्न होते हैं, वही उस अक्षयपद को प्राप्त होता है, मेरा यह वचन अक्षरशः सत्य है ॥४४॥ अंगिरा ने कहा—यदि तू अग्र-स्थान की कामना करता है तो जो अव्ययतात्मा अच्युत इस सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं, उन्हीं की आराधना कर ॥४५॥ पुलस्त्य ने कहा—परस्वरूप, पर ब्रह्म और

परमधाम रूप भगवान् श्री हरि की उपासना से मनुष्य को अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष भी प्राप्त हो जाती है ॥४६॥ पुलह ने कहा—इन्द्र ने भी जिन जगन्नाथ विष्णु का आराधन करके इन्द्रपद को प्राप्त किया था, उन्हीं यज्ञपति भगवान की आराधना तू भी कर ॥४७॥ क्रतु ने कहा—जो भगवान् जनार्दन परम-पुरुष, यज्ञ पुरुष तथा योगेश्वर हैं, उनके प्रसन्न होने पर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो अलभ्य हो? ॥४८॥ वशिष्ठ ने कहा—भगवान् विष्णु की आराधना करके तू जो भी इच्छा करेगा उसी की तुझे प्राप्ति हो जायगी, त्रैलोक्य के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्थान का तो कहना ही क्या है ? ॥४९॥

आराध्यः कथितो देवो भवद्भि: प्रणतस्य मे ।
मया तत्परितोषाय यज्जप्तव्यं तदुच्यताम् ।५०।
यथा चाराधनं तस्य मया कार्यं महात्मनः ।
प्रसादसुमुखास्तन्मे कथयन्तु महर्षयः ।५१।
राजपुत्र यथा विष्णोराराधनपरैर्नरैः ।
कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमर्हसि ।५२।
बाह्यार्थादखिलाच्चित्तं त्याजयेत्प्रथमं नरः ।
तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि तत: कुर्वीत निश्चलम् ।५३।
एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना ।
जप्तव्यं यन्निबोधैतत्तत्तः पार्थिवनन्दन ।५४।
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ।५५।
एतज्जजाप भगवान् जप्यं स्वायम्भुवो मनुः ।
पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ।५६।
ददौ यथाभिलषितां सिद्धिं त्रैलोक्यदुर्लभाम् ।
तथा त्वमपि गोविन्दं तोषयतत्सदा जपन् ।५७।

ध्रुव बोले—हे महर्षियो ! आपने मुझे आराध्य का उपदेश तो कर दिया, परन्तु अब मुझे यह भी बताने की कृपा करें कि उनको प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार जपादि करना चाहिये । उन महापुरुष की आराधना को किसी

मुझे सहर्ष बताइये ॥५०-५१॥ ऋषियों ने कहा—हे राजपुत्र ! भगवान् विष्णु की आराधना में लगे हुए पुरुषों को जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये, वह हमसे सुन ॥५२॥ सर्व प्रथम सभी वाह्य विषयों से मन को हटा कर उन जगद्धाम में स्थिर करें। इस प्रकार एकाग्र चित्त से तन्मयता पूर्वक जिस प्रकार जप-विधान वह श्रवण कर ॥५४॥ हिरण्यगर्भ पुरुष, प्रधान, अव्यक्त तथा शुद्ध ज्ञान रूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥५५॥ इस ॐ नमो भगवते वासु-देवाय मन्त्र का जाप पहिले तेरे पितामह स्वायंभुव मनु ने किया था, तब उन पर प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें अभिलाषित सिद्धि प्रदान की थी। उन्हीं के समान तू भी इसका निरन्तर जप करके भगवान गोविन्द की प्रसन्नता प्राप्त कर ॥५६-५७॥



बारहवाँ अध्याय

निशम्यैतदशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः ।
निर्जगाम वनात्तस्मात्प्रणिपत्य स तानृषीन् ॥१॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज ।
मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम् ॥२॥
पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः ।
ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ॥३॥
हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥४॥
यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं हरिमेधसः ।
सर्वपापहरे तस्मिंस्तपस्तीर्थे चकार सः ॥५॥
मरीचिमुख्यैर्मुनिभिर्यथादिष्टमभूत्तथा ।
आत्मन्यशेषदेवेशं स्थितं विष्णुममन्यत ॥६॥
अनन्यचेतसस्तस्य ध्यायतो भगवान्हरिः ।
सर्वभूतगतो विप्र सर्वभावगतोऽभवत् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! ऋषियों की बात सुन कर राजकुमार ध्रुव ने उन्हें प्रणाम किया और वह उस उपवन से चल दिया ॥१॥ फिर वह अपने को अत्यन्त कृत-कृत्य मानता हुआ यमुना तट पर स्थित मधु नामक वन में आया । उस वन में मधु नामक दैत्य रहने लगा था, इस कारण उसका नाम मधुवन हुआ था ॥२-३॥ वहीं उस मधु के पुत्र लवण का वध करके शत्रुघ्न ने मथुरा नामक एक नगर की स्थापना की ॥४॥ जिस मधुवन में देवाधिदेव भगवान् विष्णु की सदैव सन्निधि रहती है, उसी में जाकर ध्रुव ने घोर तप किया ॥५॥ मरीचि आदि महर्षियों के उपदेशानुसार ही उसने अपने हृदय में निखिल देवेश्वर भगवान् श्रीहरि के ध्यान का अभ्यास किया और हे विप्र ! इस प्रकार अनन्य चित्त से ध्यान करते रहने से उसके हृदय में सब भूतों में निवास करने वाले भगवान् विष्णु सर्व भाव से प्रकट हुए ॥६-७॥

मनस्यवस्थिते तस्मिन्विष्णौ मैत्रेय योगिनः ।
न शशाक धराभारमुद्वोढुं भूतधारिणी ॥८॥
वामपादस्थिते तस्मिन्ननामार्द्धेन मेदिनी ।
द्वितीयं च ननामार्द्धं क्षितेर्दक्षिणतः स्थिते ॥९॥
पादाङ्गुष्ठेन सम्पीड्य यदा स वसुधां स्थितः ।
तदा समस्ता वसुधा चचाल सह पर्वतैः ॥१०॥
नद्यो नदाः समुद्राश्च सङ्क्षोभं परमं ययुः ।
तत्क्षोभादमराः क्षोभं परं जग्मुर्महामुने ॥११॥
यामा नाम तदा देवा मैत्रेय परमाकुलाः ।
इन्द्रेण सह सम्मन्त्र्य ध्यानभङ्गं प्रचक्रमुः ॥१२॥
कूष्माण्डा विविधै रूपैर्महेन्द्रेण महामुने ।
समाधिभङ्गमत्यन्तमारब्धाः कर्तुमातुराः ॥१३॥
सुनीतिर्नाम तन्माता साश्रा तत्पुरतः स्थिता ।
पुत्रेति करुणां वाचमाह मायामयी तदा ॥१४॥
पुत्रकास्मान्निवर्तस्व शरीरात्ययदारुणात् ।
निर्बन्धतो मया लब्धो बहुभिस्त्वं मनोरथैः ॥१५॥

हे मैत्रेयजी ! जब योगी ध्रुव के चित्त में भगवान् विष्णु स्थित हो गये, तब सब भूतों की धरित्री पृथिवी उसका बोझ वहन करने में असमर्थ हो गई ॥८॥ उनके बाँए चरण के बल खड़े होने के कारण पृथिवी का भी बाँया आधा भाग नीचे को झुक गया तथा दाँएँ चरण से खड़े होने पर दाँया भाग झुक गया ॥९॥ जब वह पाँव के अँगूठे से पृथिवी को मध्य में से दबा कर स्थित हुआ तब पर्वतों सहित सम्पूर्ण भूमण्डल चलायमान हो उठा ॥१०॥ हे महामुने ! उस समय नद, नदी और समुद्र आदि भी अत्यन्त क्षुब्ध प्रतीत होने लगे तथा देवताओं में भी इससे घोर हलचल होने लगी ॥११॥ हे मैत्रेयजी ! उस समय याम नामक देवताओं ने इन्द्र के साथ मन्त्रणा की और ध्रुव का ध्यान भंग करने का उपाय करने लगे ॥१२॥ फिर इन्द्र के साथ मिल कर अत्यन्त आतुर कूष्माण्ड नामक देवगण विभिन्न रूप धारण करके उसकी समाधि भंग करने में तत्पर हुए ॥१३॥ उस समय माया से निर्मित हुई उसकी माता सुनीति सजल नेत्र उसके समक्ष प्रकट होकर करुण स्वर में, हे पुत्र, हे पुत्र ! पुकारने लगी और बोली कि देह को नष्ट करने वाले इस भयंकर तप को त्याग दे, क्योंकि मैंने बड़ी-बड़ी मनौतियाँ मना कर तुझे प्राप्त किया था ॥१४-१५॥

दीनामेनां परित्यक्तुमनाथां न त्वमर्हसि ।
सपत्नीवचनाद्वत्स अगतेस्त्वं गतिर्मम ॥१६॥
क्व च त्वं पञ्चवर्षीयः क्व चैतद्दारुणं तपः ।
निवर्त्यतां मनः कष्टान्निर्बन्धात्फलवर्जितात् ॥१७॥
कालः क्रीडनकानान्ते तदन्तेऽध्ययनस्य ते ।
ततः समस्तभोगानां तदन्ते चेष्यते तपः ॥१८॥
कालः क्रीडनकानां यस्तव बालस्य पुत्रक ।
तस्मिंस्त्वमिच्छसि तपः किं नाशायात्मनो रतः ॥१९॥
मत्प्रीतिः परमो धर्मो वयोऽवस्थाक्रियाक्रमम् ।
अनुवर्तस्व मा मोहान्निवर्तास्मादधर्मतः ॥२०॥
परित्यजति वत्साद्य यद्येतन्न भवांस्तपः ।
त्यक्ष्याम्यहमिह प्राणांस्ततो वै पश्यतस्तव ॥२१॥

हे पुत्र ! सौत के कठोर वचनों के कारण मुझ दुखिया का भी त्याग कर देना तेरे लिये उचित नहीं है । मुझ आश्रय हीना का आश्रय तो एक मात्र तू ही है ।१६। कहाँ तो तेरी पाँच वर्ष की अवस्था और कहाँ यह अत्युग्र तपस्या ? अरे बेटा ! इस निष्फल और क्लेशयुक्त आग्रह से विमुख हो।१७। क्योंकि अभी तो तेरी आयु खेलने कूदने की ही है, फिर अध्ययन करने योग्य होगी, उसके बाद भोगों को भोगने का समय होगा और अन्त में तप करने की अवस्था प्राप्त होगी ।१८। हे पुत्र ! तुझ सुकुमार की जो बाल्यावस्था है, उस खेलने की अवस्था में तू तपस्या का अभिलाषी हुआ है, अरे, तू क्यों इससे अपना सर्वनाश करने को तत्पर है ? ।।१६।। मुझे प्रसन्न करना ही तेरा परम धर्म है, इसलिये तू अपनी आयु के अनुकूल ही कर्मों को कर, मोह का अनुवर्तन और इस तपस्या रूपी अधर्म से अब विमुख होजा ।।२०।। हे पुत्र ! यदि तू आज अपने इस तप रूप हठ का त्याग न करेगा तो मैं तेरे ही समक्ष अपने प्राण विसर्जन कर दूँगी ।।२१।।

ता प्रलापवतीमेवं बाष्पाकुलविलोचनाम् ।
समाहितमना विष्णौ पश्यन्नपि न दृष्टवान् ।२२।
वत्स वत्स सुघोराणि रक्षांस्येतानि भीषणे ।
वनेऽभ्युद्यतशस्त्राणि समायान्त्यपगम्यताम् । २३ ।
इत्युक्त्वा प्रययौ साथ रक्षांस्याविर्बभुस्ततः ।
अभ्युद्यतोग्रशस्त्राणि ज्वालामालाकुलैर्मुखैः ।२४।
ततो नादानतीवोग्रान्राजपुत्रस्य ते पुरः ।
मुमुचुर्दीप्तशस्त्राणि भ्रामयन्तो निशाचराः ।२५।
शिवाश्च शतशो नेदुः सज्वालाकवलैर्मुखैः ।
त्रासाय तस्य बालस्य योगयुक्तस्य सर्वदा ।२६।
हन्यतां हन्यतामेष छिद्यतां छिद्यतामयम् ।
भक्ष्यतां भक्ष्यतां चायमित्यूचुस्ते निशाचराः ।२७।
ततो नानाविधान्नादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः ।
त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ।२८।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! ध्रुव का चित्त भगवान् श्रीहरि मे तन्मयता पूर्वक लगा हुआ था, इसलिए उसने अपनी माता रूपिणी माया का अश्रुपात पूर्वक विलाप करते हुए देख कर भी नहीं देखा ॥२२॥ यह देख कर वह माया 'अरे पुत्र ! उठ, यहाँ से शीघ्र ही भाग निकल देख इस अत्यन्त घोर वन मे यह भयकार राक्षस कैसे शस्त्रास्त्र ग्रहण किये हुए आरहे हैं ऐसा कहती हुई वहाँ से चल दी और तभी एसे अनेक राक्षस वहाँ प्रकट होगए जिनके हाथो मे शस्त्रास्त्र थे और मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थी ॥२३ २४॥ उन राक्षसो ने अपने अत्यन्त चमचमाते हुवे शस्त्रो को उठाना और ध्रुव के सामने भीषण कोलाहल किया ॥२५॥ उस नित्य योगयुक्त बालक ध्रुव को डराने के उद्देश्य से मुख से अग्नि की चिंगारियाँ छोडती हुई सैकडा गीदडियाँ वहाँ घोर शब्द करने लगी ॥२६॥ और ये राक्षस भी मारो, काटो, भक्षण करो इस प्रकार चीखने लगे तथा सिंह, ऊँट, मकर आदि जैसे मुख वाले भयकार राक्षस भी उस राजकुमार को त्रस्त करने के लिये अनेक प्रकार से गर्जना करने लगे ॥२८॥

रक्षासि तानि ते नादा शिवास्तान्यायुधानि च ।
गोविन्दासक्तचित्तस्य ययुर्नेन्द्रियगोचरम् ।२६

एकाग्रचेता सतत विष्णुमेवात्मसश्रयम् ।
दृष्टवान्पृथिवीनाथपुत्रो नान्य कथञ्चन ।३०।

तत सर्वासु मायासु विलीनासु पुन सुरा ।
सक्षोभ परम जग्मुस्तत्पराभवशङ्किता ।३१।

ते समेत्य जगद्योनिमनादिनिधन हरिम् ।
शरण्य शरण यातास्तपसा तस्य तापिता ।३२।

दवदव जगन्नाथ परेश पुरुषोत्तम ।
ध्रुवस्य तपसा तप्तास्त्वा वय शरण गता ।३३।

दिने दिने कलालेशै शशाङ्क पूयते यथा ।
तथाय तपसा दव प्रयात्यृद्धिमहर्निशम् ।३४।

औत्तानपादितपसा वयमित्थं जनार्दन ।
भीतास्त्वां शरणं यातास्तपसस्तं निवर्तय ।३५।

परंतु भगवान् में आसक्त चित्त वाले उस बालक को स्यारियाँ और उनके शब्द तथा राक्षस और उनकी गर्जन तथा अस्त्रास्त्र युद्ध भी दिखाई न पड़े ।।२६।। वह राजकुमार एकाग्र चित्त से अपने आश्रय स्वरूप भगवान् विष्णु को ही देखता रहा, उनके अतिरिक्त उसने किसी अन्य को नहीं देखा ।।३०।। इस प्रकार उस सम्पूर्ण माया के विलीन होने से देवगण उससे हारने की आशंका करते हुए अत्यंत भयभीत हुए ।।३१।। इसलिए उसके तप से व्याकुल हुए वे परस्पर मिल कर संसार के आदि कारण, शरणागत वत्सल, आदि-रहित तथा अन्त-विहीन भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे ।३२। देवताओं ने कहा – हे देव-देव ! हे जगन्नाथ ! हे परब्रह्म, हे पुरुषोत्तम ध्रुव के तप को देख कर हम व्याकुल हो रहे हैं, इसलिये आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ।।३३।। हे देव ! जैसे चन्द्रमा अपनी कलाओं के द्वारा नित्य वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही अपने तप के प्रभाव से वह दिन-रात्रि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है ।।३४।। हे जनार्दन ! हम उत्तानपाद-सुत ध्रुव के तप से डर कर आपकी शरण में उपस्थित हुए हैं, आप उसे तपस्या से निवृत्त करिये ।।३५।।

न विद्मः किं स शक्रत्वं सूर्यत्वं किमभीप्सति ।
वित्तपाम्बुपसोमानां साभिलाषः पदेषु किम् ।३६।
तदस्माकं प्रसीदेश हृदयाच्छल्यमुद्धर ।
उत्तानपादतनयं तपसः सन्निवर्त्तय ।३७।
नेन्द्रत्व न च सूर्यत्वं नैवाम्बुपधनेशताम् ।
प्रार्थयत्येष य कामं त करोम्यखिलं सुराः ।३८।
यात देवा यथाकामं स्वस्थानं विगतज्वराः ।
निवर्त्तयाम्यहं बालं तपस्यासक्तमानसम् ।३९।
इत्युक्ता देवदेवेन प्रणम्य शिरसास्ततः ।
प्रययुः स्वानि धिष्ण्यानि शतक्रतुपुरोगमाः ।४०।

भगवानपि सर्वात्मा तन्मयत्वेन तोषितः ।
गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिः ।४१।
औत्तानपादे भद्रं ते तपसा परितोषितः ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रतः ।४२।
बाह्यार्थनिरपेक्षं ते मयि चित्तं यदाहितम् ।
तुष्टोऽहं भवतस्तेन तद्वृणीष्व वरं परम् ।४३।

वह इन्द्रत्व की कामना करता है अथवा सूर्यत्व प्राप्त करना चाहता है या वह कुबेर, वरुण, चन्द्रमा में से किसी के पद की प्राप्ति- अभिलाषा करता है यह हमें ज्ञात नहीं है ।।३६।। हे प्रभो ! आप हम पर प्रसन्न हूजिये और उत्तानपाद सुत को तपस्या से निवृत्त करके हमारे हृदय-कंटक को दूर कीजिये ।।३७।। यह सुन कर श्री भगवान् ने कहा—हे देवगण ! तुम चिन्ता को त्याग कर अपने-अपने स्थान को जाओ । वह इन्द्र, वरुण या कुबेर आदि के पद की कामना नहीं करता, मैं उसकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा और उसे तप से भी निवृत्त कर दूँगा ।।३८-३९।। श्री पराशर जी ने कहा—देवदेव भगवान् विष्णु द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी देवता उन्हें प्रणाम करके अपने अपने धाम को गये और सर्वात्मा भगवान् ने भी ध्रुव के तप से सन्तुष्ट होकर उसे चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर कहा ।।४०-४१।। भगवान बोले — हे उत्तानपाद के पुत्र ! हे ध्रुव ! तेरा कल्याण हो । तेरे तप से प्रसन्न होकर तुझे वर देने के निमित्त मैं यहाँ आया हूँ, हे श्रेष्ठ व्रत वाले ध्रुव ! अब तू इच्छित वर माँगले ।।४२।। तू ने सभी बाह्य विषयों को त्याग कर मुझ में ही अपने चित्त को लगाया है, इसलिये मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । अब तू अपना अभिलाषित वर माँग ।४३।

श्रुत्वेत्थं गदितं तस्य देवदेवस्य बालकः
उन्मीलिताक्षो ददृशे ध्यानदृष्टं हरिं पुरः ।४४।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ।
किरीटिनं समालोक्य जगाम शिरसा महीम् ।४५।
रोमाञ्चिताङ्गः सहसा साध्वसं परमं गतः ।
स्तवाय देवदेवस्य स चक्रे मानसं ध्रुवः ।४६।

किं वदामि स्तुतावस्य केनोक्तेनास्य संस्तुतिः ।
इत्याकुलमतिर्देवं तमेव शरणं ययौ ।४७।
भगवन्यदि मे तोषं तपसा परमं गतः ।
स्तोतुं तदहमिच्छामि वरमेनं प्रयच्छ मे ।४८।
ब्रह्माद्यैरस्य वेदज्ञैर्ज्ञायते यस्य नो गतिः ।
तं त्वां कथमहं देव स्तोतुं शक्नोमि बालकः ।४९।
त्वद्भक्तिप्रवणं ह्येतत्परमेश्वर मे मनः ।
स्तोतुं प्रवृत्तं त्वत्पादौ तत्र प्रज्ञां प्रयच्छ मे ।५०।
शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्श कृताञ्जलिम् ।
उत्तानपादतनयं द्विजवर्य जगत्पतिः ।५१।
अथ प्रसन्नवदनः स क्षणान्नृपनन्दनः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भूतधातारमच्युतम् ।५२।

श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् विष्णु के वचन सुन कर बालक ध्रुव ने अपने नेत्र खोले और ध्यानावस्था में जिनके दर्शन किये थे, उन भगवान् को साक्षात् रूप में अपने सामने खड़े पाया ।।४८।। वे भगवान् किरीट, मुकुट, शंख चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनु तथा खड्ग धारण किये हुए थे। उन्हें देख कर ध्रुव ने पृथिवी पर अपना मस्तक रख कर प्रणाम किया और सहसा रोमाचित होते हुए उसने भगवान् की स्तुति करनी चाही। परन्तु स्तुति में क्या कहूँ यह उसकी समझ में नहीं आया जिससे वह अत्यंत व्याकुल हुआ और अन्त में उसने भगवान् की ही शरण की ।।४५-४७।। ध्रुव बोला—हे प्रभो! यदि आप मेरे तप से प्रसन्न हुए हैं तो मैं आपकी स्तुति करने को इच्छुक हूँ प्रथम वर यही प्रदान करिये जिससे मैं आपका स्तव करने में समर्थ हो सकूँ ।।४८।। हे देव! ब्रह्मा आदि वेदों के ज्ञाता भी जिनकी गति का ज्ञान नहीं रखते, उनका स्तवन मैं अबोध बालक किस प्रकार कर सकता हूँ? ।।४९।। हे परमेश्वर! आपकी भक्ति से प्रवित्र हुआ मेरा चित्त आपके चरणों की स्तुति करने को उत्कंठित है, इसलिये आप मुझे वैसी ही बुद्धि दीजिये ।५०। श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ! भगवान् श्री गोविन्द ने अपने सामने करबद्ध खड़े हुए ध्रुव को अपने

स्थित रहते हैं ॥५८॥ भूत, भविष्यत् आदि आप ही हैं और विराट्, स्वराट्, सम्राट् एवं अधिपुरुष आदि की उत्पत्ति भी आपसे हुई है ॥५९॥

अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यगूर्ध्वं च वै भुवः ।
त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती ।६०।
त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भूतं सर्वमिदं जगत् ।
त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा ।६१।
त्वत्तः ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे ।
त्वत्तो यजूंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैकतो दतः ।६२।
गावस्त्वत्तः समुद्भूतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः ।
त्वन्मुखाद्ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत ।६३।
वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः ।
अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः प्राणाच्चन्द्रमा मनसस्तव ।६४।
प्राणोऽन्तःसुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत ।
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत ।
दिशः श्रोत्रात्क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम् ।६५।
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः ।
संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि ।६६।

आप सभी दिशाओं में प्रवृद्ध हैं, यह सम्पूर्ण विश्व आपसे ही प्रकट हुआ है, तथा भूत-भविष्यत् भी आपसे ही हुए हैं ॥६०॥ यह सम्पूर्ण विश्व आपके स्वरूप भूत ब्रह्माण्ड में है, सभी पुरोडाशों वाला यज्ञ, पृषदाज्य और दो प्रकार के पशु, यह सब आप से ही हुए हैं ॥६१॥ आपसे ऋक्, यजुः साम और गायत्री आदि छंदों की उत्पत्ति हुई है तथा आपसे ही अश्व और एक दाँत वाले गैंडा आदि जीव हुए हैं ॥६२॥ आपसे ही गौ, बकरी, भेड़, मृग हुए हैं और आपके ही मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं। आपकी भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। आपके ही नेत्रों से सूर्य, प्राण से वायु, मन से चन्द्रमा, नासिकारन्ध्र से प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से आकाश मस्तक से स्वर्ग, श्रोत्र से दिशाएँ तथा चरणों से पृथिवी आदि की उत्पत्ति

शंख के अग्र भाग से स्पर्श किया तभी वह राजपुत्र क्षण भर में ही हर्षित मुख से अत्यंत विनीत होकर भगवान् की स्तुति में प्रवृत्त हुआ ॥५१-५२॥

भूमिरापोऽनलो वायु' खं मनो बुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्मि तम् ॥५३॥
शुद्ध सूक्ष्मोऽखिलव्यापी प्रधानात्परत पुमान् ।
यस्य रूपं नमस्तस्मै पुरुषाय गुणाशिने ॥५४॥
भूरादीनां समस्तानां गन्धादीनां च शाश्वत ।
बुध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च य पर ॥५५॥
तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेषजगत पतिम् ।
प्रपद्ये शरणं शुद्धं त्वद्रूपं परमेश्वर ॥५६॥
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन्योगिचिन्त्याविकारिणे ॥५७॥
सहस्रशीर्षा पुरुष. सहस्राक्ष. सहस्रपात् ।
सर्वव्यापी भुव स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥५८॥
यद्भूतं यच्च वै भव्यं पुरुषोत्तम तद्भवान् ।
त्वत्तो विराट् स्वराट् सम्राट् त्वत्तश्चाप्यधिपूरुष ॥५९॥

ध्रुव ने कहा—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल प्रकृति जिन भगवान् के स्वरूप हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥५३॥ जो परमात्म तत्व अत्यंत शुद्ध, सूक्ष्म, सर्व व्याप्त तथा प्रधान से भी परे है और वह पुरुष जिनका स्वरूप है, मैं उन गुण भोक्ता को नमस्कार करता हूँ ॥५४॥ हे प्रभो ! पृथिव्यादि सब भूत और गंधादि उनके गुण, बुद्धि आदि करण एवं प्रधान और पुरुष से भी परे सनातन पुरुष आप ही है, मैं आप निखिल ब्रह्माण्ड नायक के ब्रह्मभूत स्वरूप की शरण में हूँ ॥५५-५६॥ हे योगियों के लिये चिंतन के योग्य ! हे सर्वात्मन् ! व्यापक और बढ़ने वाला होने से आपका जो रूप ब्रह्म कहा गया है, मैं उसी निर्विकार रूप को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥ हे नाथ ! आप सहस्र शिर सहस्र नेत्र और सहस्र पद वाले परम पुरुष हैं, आप सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश अंगुल प्रमाण से

स्थित रहते हैं ॥५८॥ भूत, भविष्यत् आदि आप ही हैं और विराट्, स्वराट्, सम्राट् एवं अधिपुरुष आदि की उत्पत्ति भी आपसे हुई है ॥५९॥

अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यगूर्ध्वं च वै भुवः ।
त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती ।६०।
त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भूतं सर्वमिदं जगत् ।
त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा ।६१।
त्वत्त ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे ।
त्वत्तो यजूंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैकतो दतः ।६२।
गावस्त्वत्तः समुद्भूतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः ।
त्वन्मुखाद्ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत ।६३।
वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः ।
अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः प्राणाच्चन्द्रमा मनसस्तव ।६४।
प्राणोऽन्तःसुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत ।
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत ।
दिशः श्रोत्रात्क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम् ।६५।
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः ।
संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि ।६६।

आप सभी दिशाओं में प्रवृद्ध हैं, यह सम्पूर्ण विश्व आपसे ही प्रकट हुआ है, तथा भूत-भविष्यत् भी आपसे ही हुए हैं ॥६०॥ यह सम्पूर्ण विश्व आपके स्वरूप भूत ब्रह्माण्ड में है, सभी पुरोडाशों वाला यज्ञ, पृषदाज्य और दो प्रकार के पशु, यह सब आप से ही हुए हैं ॥६१॥ आपसे ऋक्, यजुः साम और गायत्री आदि छंदों की उत्पत्ति हुई है तथा आपसे ही अश्व और एक दाँत वाले भैंसा आदि जीव हुए हैं ॥६२॥ आपसे ही गौ, बकरी, भेड़, मृग हुए हैं और आपके ही मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं। आपकी भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। आपके ही नेत्रों से सूर्य, प्राण से वायु, मन से चन्द्रमा, नासिकारंध्र से प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से आकाश, मस्तक से स्वर्ग, श्रोत्र से दिशाएँ तथा चरणों से पृथिवी आदि की उत्पत्ति

हुई है, इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व ही आपसे उत्पन्न हुआ है ॥६३-६५॥ जैसे छोटे से बीज में विशाल वट वृक्ष रहता है, वैसे ही आप बीज रूप मे यह विश्व प्रलयकाल: मे लीन रहता है ॥६६॥

बीजादङ्कुरसम्भूतो न्यग्रोधस्तु समुत्थितः ।
विस्तारं च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत् ।६७।
यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्रादपि दृश्यते ।
एवं विश्वस्य नान्यस्त्व त्वत्स्थायीश्वर दृश्यते ।६८।
ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ।६९।
पृथग्भूतैकभूताय भूतभूताय ते नमः ।
प्रभूतभूतभूताय तुभ्य भूतात्मने नमः ।७०।
व्यक्तं प्रधानपुरुषौ विराट् सम्राट् स्वराट् तथा ।
विभाव्यतेऽन्तःकरणे पुरुषेष्वक्षयो भवान् ।७१।
सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वस्वरूपधृक् ।
सर्वं त्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्वात्मनेऽस्तु ते ।७२।
सर्वात्मकोऽसि सर्वेश सर्वभूतस्थितो यतः ।
कथयामि ततः किं ते सर्वं वेत्सि हृदि स्थितम् ।७३।

हे प्रभो ! जैसे बीज से अकुर हुआ वट वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होकर बहुत विस्तार वाला हो जाता है, वैसे ही यह विश्व सृष्टि काल मे आप से उत्पन्न होकर अत्यन्त विस्तीर्ण हो जाता है ॥६७॥ हे प्रभो ! कदली स्तुप छिलके और पत्तों से पृथक् प्रतीत नही होता, वैसे ही यह विश्व से पृथक् नही देखा जाता, क्योंकि वह आप मे ही स्थित है ॥६८॥ आपसर्वाश्रय में ह्लादिनी और सन्धिनी विद्या अभिन्न रूप से निवास करती है। आप निर्गुण हैं इसलिये कोई भी आह्लादिनी, संताप करने वाली या दोनों गुणो से मिली हुई संवित् आप मे नही रहती ॥६९॥ आप ही पृथक् रूप तथा एक रूप भी हैं आप ही सूक्ष्म भूत तथा अनेक जीव हैं, आप ही सब भूतों के अन्तर में निवास करते हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।७०। आप ही अन्तःकरण में महत्तत्व, प्रधान, पुरुष, विराट् सम्राट् और स्वराट

आदि रूपों से ध्यान किये जाते हैं तथा पुरुषो में आप नित्य एवं क्षय रहित हैं ॥७१॥ सब में आपही सर्व भूत हैं, सब रूपो के धारक होने से आप ही सब कुछ हैं, सम्पूर्ण पदार्थ आपसे ही हुए हैं, इसलिये आप सर्वात्मा को नमस्कार करता हूँ ॥७२॥ हे सर्वेश्वर ! हे सर्वात्मक ! आप सब भूतों में व्याप्त हैं, मैं आपसे क्या निवेदन करूँ, क्योंकि आप तो घट-घट की जानते हैं ॥७३॥

सर्वात्मन्सर्वभूतेश सर्वसत्त्वसमुद्भव ।
सर्वभूतो भवान्वेत्ति सर्वसत्त्वमनोरथम् ।७४।
यो मे मनोरथोनाथ सफलः स त्वया कृतः ।
तपश्च तप्तं सफलं यद्दृष्टोऽसि जगत्पते ।७५।
तपसस्तत्फलं प्राप्तं यद्दृष्टोऽहं त्वया ध्रुव ।
त्वद्दर्शन हि विफल राजपुत्र न जायते ।७६।
वरं वरय तस्मात्त्वं यथाभिमतमात्मनः ।
सर्वं सम्पद्यते पुंसां मयि दृष्टिपथं गते ।७७।
भगवन्भूतभव्येश सर्वस्यास्ते भवान् हृदि ।
किमज्ञातं तव ब्रह्मन्मनसा यन्मयेप्सितम् ।७८।
तथापि तुभ्यं देवेश कथयिष्यामि यन्मया ।
प्रार्थ्यते दुर्विनीतेन हृदयेनातिदुर्लभम् ।७९।
किं वा सर्वजगत्स्रष्टः प्रसन्ने त्वयि दुर्लभम् ।
त्वत्प्रसादफलं भुङ्क्ते त्रैलोक्यं मघवानपि ।८०।
नैत दासनं योग्यमजातस्य ममोदरात् ।
इतिगर्वादवोचन्मां सपत्नी मातुरुच्चकैः ।८१।
आधारभूतं जगतः सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
प्रार्थयामि प्रभो स्थानं त्वत्प्रसादादतोऽव्ययम् ।८२।

हे सब भूतेश्वर ! हे सर्वात्मन् ! हे सर्व भूतो के आदि स्थान, आप सब भूत रूप में स्थित होने के कारण, सभी के मनोरथों के जानने वाले हैं ।७४। मेरी जो इच्छा थी, वह तो आपने पूर्ण कर दी और मेरा तप भी सफल हो गया

क्योंकि मैंने आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लिया है।।७५।। श्री भगवान् ने कहा – हे ध्रुव ! तुझे मेरा दर्शन मिल गया, इससे तेरा तप तो सफल हो गया, परन्तु मेरा साक्षात्कार भी तो कभी फल-रहित नहीं होता ।।७६।। इसलिये अब तू अपना इच्छित वर माँग, क्यों मेरा दर्शन प्राप्त करने वाले को अप्राप्य कुछ भी नहीं रहता ।।७७।। ध्रुव ने कहा—हे भगवन् ! आप सब के अन्तः करण में स्थित हैं, इसलिये मन की कोई भी इच्छा आप से छिपी हुई नहीं रह सकती ।।७८।। फिर भी हे प्रभो ! मैं जिस अत्यन्त दुर्लभ वस्तु की अभिलाषा करता हूँ, उसे आपकी आज्ञानुसार निवेदन करूँगा ।।७९।। हे विश्व रचयिता प्रभो ! आप प्रसन्न हो गये हैं तो अब क्या दुर्लभ रह गया है। देवराज इन्द्र भी आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके ही तीनों लोकों का भोग करते हैं ।।८०।। हे प्रभो ! मेरी विमाता ने अत्यंत अहंकार पूर्वक कहा था कि जिसने मेरे उदर से जन्म नहीं लिया, वह इस राज्य सिंहासन के योग्य नहीं हो सकता ।।८१।। इसलिये, मैं आपकी कृपा से उस सर्वश्रेष्ठ अव्यय स्थान की इच्छा करता हूँ जो सम्पूर्ण जगत् का आश्रय भूत हो ।।८२।।

यत्त्वया प्रार्थ्यते स्थानमेतत्प्राप्स्यति वै भवान् ।
त्वयाहं तोषितः पूर्वमन्यजन्मनि बालक ।८३।
त्वमासीर्ब्राह्मणः पूर्वं मय्येकाग्रमतिः सदा ।
मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्निजधर्मानुपालकः ।८४।
कालेन गच्छता मित्रं राजपुत्रस्तवाभवत् ।
यौवनेऽखिलभोगाढ्यो दर्शनीयोज्ज्वलाकृतिः ।८५।
तत्सङ्गात्तस्य तामृद्धिमवलोक्यातिदुर्लभाम् ।
भवेयं राजपुत्रोऽहमिति वाञ्छा त्वया कृता ।८६।
ततो यथाभिलषिता प्राप्ता ते राजपुत्रता ।
उत्तानपादस्य गृहे जातोऽसि ध्रुव दुर्लभे ।८७।
अन्येषां दुर्लभं स्थानं कुले स्वायम्भुवस्य यत् ।
तस्यैतदपरं बाल येनाहं परितोषितः ।८८।

मामाराध्य नरो मुक्तिमवाप्नोत्यविलम्बिताम् ।
मय्यर्पितमना बाल किमु स्वर्गादिकं पदम् ।८९।

श्री भगवान् ने कहा—हे बालक ! तू ने अपने पूर्व जन्म में भी मुझे प्रसन्न किया था, इसलिये तेरे इच्छित स्थान की तुझे अवश्य प्राप्ति होगी ।।८३।। उस जन्म में तू ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, माता-पिता की सेवा करने वाला, स्वधर्म परायण और मुझ में तन्मय मात्र वाला था ।।८४।। कालान्तर में तेरी मित्रता एक राजकुमार से होगई, जो कि अपनी तरुणावस्था में सर्व भोग सम्पन्न और रूप लावण्य में भी देखने योग्य था ।।८५।। उसकी संगति में रहते हुए उसके दुर्लभ वैभव को देखकर राज पुत्र होने की तेरी भी इच्छा हुई ।।८६।। इसीलिये तुझे इस जन्म में राजपुत्रत्व की प्राप्ति हुई है और जिन स्वायम्भुव मनु के कुल में किसी का जन्म लेना दुर्लभ है, उन्हीं के पुत्र उत्तानपाद के यहाँ तू उत्पन्न हुआ है, परंतु, हे बालक ! जिसने मुझे प्रसन्न किया है, उसके लिये तो यह स्थान नगण्य ही है ।।८७-८८।। मेरे आराधन से मोक्ष भी तुरंत मिल जाता है, तो जिसका चित्त निरंतर ही मुझ में तन्मय हुआ है, उसके लिये स्वर्गादि लोक तो तुच्छ ही हैं ।।८९।।

त्रैलोक्यादधिके स्थाने सर्वताराग्रहाश्रयः ।
भविष्यति न सन्देहो मत्प्रसादाद्भवान्ध्रुव ।९०।
सूर्यात्सोमात्तथा भौमात्सोमपुत्राद्बृहस्पतेः ।
सितार्कतनयादीनां सर्वर्क्षाणां तथा ध्रुव ।९१।
सप्तर्षीणामशेषाणां ये च वैमानिकाः सुराः ।
सर्वेषामुपरि स्थानं तव दत्तं मया ध्रुव ।९२।
केचिच्चतुर्युगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं सुराः ।
तिष्ठन्ति भवतो दत्ता मया वै कल्पसंस्थितिः ।९३।
सुनीतिरपि ते माता त्वदासन्नातिनिर्मला ।
विमाने तारका भूत्वा तावत्कालं निवत्स्यति ।९४।
ये च त्वां मानवाः प्रातः सायं च सुसमाहिताः ।
कीर्तयिष्यन्ति तेषां च महत्पुण्यं भविष्यति ।९५।

हे ध्रुव ! तू त्रिलोकी मे सर्वोच्च स्थान को निश्चय ही प्राप्त करेगा और सब ग्रहों तथा नक्षत्रो का आश्रय रूप होगा ॥९०॥ हे ध्रुव ! मैं तुझे वह ध्रुव स्थान प्रदान करता हूँ जो सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ग्रहो,नक्षत्रों, सप्तर्षियो और विमान मे विचरण करने वाले सब देवताओं से भी उच्च है ॥९१-९२॥ कोई देवता चार युग तक और कोई एक मन्वन्तर तक ही स्थित रहते है, परन्तु मैं तुझे एक कल्प तक के लिए स्थित करता हूँ ।९३। तेरी माता सुनीति भी अत्यत उज्ज्वल तारिका रूप से एक विमान में स्थित रह कर उतने ही समय तक तेरे पास रहेगी ॥९४॥ जो मनुष्य तेरे इस चरित्र का प्रात. साय कीर्तन करेंगे, उन्हें महान् पुण्य-फल की प्राप्ति होगी ॥९५॥

एवं पूर्वं जगन्नाथाद्देवदेवाज्जनार्दनात् ।
वरं प्राप्य ध्रुवः स्थानमध्यास्ते स महामते ।९६।
स्वयं शुश्रूषणाद्धर्म्यान्मातापित्रोश्च वै तथा ।
द्वादशाक्षरमाहात्म्यात्तपसश्च प्रभावतः ।९७।
तस्याभिमानमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य हि ।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमत्रोशना जगौ ।९८।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य तपस.फलम् ।
यदेनं पुरत कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षय. स्थिताः ।९९।
ध्रुवस्य जननी चेयं सुनीतिर्नाम सूनृता ।
अस्याश्च महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं भुवि ।१००।
त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति ।
स्थानं प्राप्ता परं धृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ।१०१।
यश्चैतत्कीर्त्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।१०२।
स्थानभ्रंशं न चाप्नोति दिवि वा यदि वा भुवि ।
सर्वं कल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ।१०३।

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामते ! देवदेव जनार्दन भगवान् से ऐसा वर प्राप्त कर ध्रुव उस अत्यत श्रेष्ठ स्थान मे प्रतिष्ठित हो गये ॥९६॥ धर्म

परायणता पूर्वक अपने माता–पिता की सेवा, द्वादशाक्षर मंत्र के माहात्म्य और तपस्या के प्रभाव से उनके मान वैभव और प्रभाव को बढता हुआ देख कर देवताओ और असुरों के आचार्य श्री शुक्राचार्य जी ने उनकी प्रशस्ति मे कहा है कि अहा, इस ध्रुव की तपस्या का कैसा प्रभाव और कितना अद्भुत फल है, जिससे सप्तर्षिगण इस ध्रुव को अग्रगण्य करके स्थित हैं ॥९८-९९॥ इस की माता सुनीति भी सत्य और हितकारी वचन कहने वाली हुई है, उसकी महिमा के वर्णन की सामर्थ्य किस में है ? जिसने ध्रुव को अपने उदर मे धारण करके ही तीनो लोको का आश्रय भूत सर्वश्रेष्ठ स्थान को पा लिया, वह स्थान चिरस्थायी रहेगा ॥१००-१०१॥ ध्रुव के इस दिव्य लोक प्राप्ति वाले प्रसंग का कीर्तन करने वाला मनुष्य सभी पापो से छूट कर स्वर्ग में पूजा जाता है ॥१०२॥ फिर वह स्वर्ग अथवा पृथिवी पर कहीं भी रहे अपने स्थान से नहीं गिरता तथा सभी मगलो से सम्पन्न रहता हुआ, दीर्घकाल तक जीवन धारण करता है ॥१०३॥

तेरहवाँ अध्याय

ध्रुवाच्छ्लिष्टिं च भव्यं च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत ।
शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्चपुत्रानकल्मषान् ।१।
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।२
अजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम्
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ।३
मनोरजायन्त दश नड्वलाया महौजसः ।
कन्यायां तपतां श्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः ।४
कुरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्छुचिः
अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया महौजस ।
कुरोरजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयो महाप्रभान् ।६।
अङ्ग सुमनस ख्याति क्रतुमङ्गिरस शिबिम् ।
अङ्गात्सुनीथापत्य वै वेनमेकमजायत ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! ध्रुव से शिष्टि और भव्य का जन्म हुआ । भव्य का पुत्र शम्भु हुआ और शिष्टि की भार्या ने रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल और वृकतेजा नामक पाँच पुत्रों को जन्म दिया । उनमे से रिपु ने अपनी वृहती नाम की भार्या से महातेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र उत्पन्न किया ।।१ २।। चाक्षुष का विवाह वरुण कुलोत्पन्न महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री से हुआ, उनसे मनु की उत्पत्ति हुई ।।३।। तपस्वीवर मनु ने वैराज प्रजापति की पुत्री नड्वला से दस अत्यत तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया ।।४।। उनके कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र, सुद्युम्न एव अभिमन्यु नाम हुए । कुरु ने अपनी भार्या आग्नेयी से अग, सुमना, ख्याति क्रतु, अगिरा और शिवि नामक छ अत्यत प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये । अग ने सुनीथा के गर्भ से वेन नामक पुत्र उत्पन्न किया ।।५-७।।

प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने ।८।
वैन्यो नाम महीपालो य पृथुः परिकीर्तित ।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजाना हितकारणात् ।९।
पितार्थं मथित पाणिर्वेनस्य परमर्षिभि ।
यत्र जज्ञे महावीर्यं स पृथुर्मुनिसत्तम ।१०।
सुनीथा नाम या कन्यामृत्यो प्रथमतोऽभवत् ।
अङ्गस्य भार्या सा दत्ता तस्या वेनो व्यजायत ।११।
स मातामहदोषेण तेन मृत्यो सुतात्मज ।
निसर्गादिव मैत्रेय दुष्ट एव व्यजायत ।१२।
अभिषिक्तो यदा राज्ये स वेनः परमर्षिभिः ।
घोषयामास स तदा पृथिव्या पृथिवीपतिः ।१३।

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं कथञ्चन ।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः ।१४।
ततस्तमृषयः पूर्वं सम्पूज्य पृथिवीपतिम् ।
ऊचुः सामकलं वाक्यं मैत्रेय समुपस्थिताः ।१५।

उसी वेन के दक्षिण हाथ का ऋषियों ने सन्तान के निमित्त मन्थन किया था, जिससे वैन्य नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, वही राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने प्रजा-पालन के निमित्त पृथिवी का दोहन किया था ॥८-९॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! उन महर्षियों ने वेन के हाथ का मथन क्यों किया था तथा पराक्रमी पृथु का जन्म कैसे हुआ ? ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा-मृत्यु की सुनीथा नाम की प्रथम पुत्री अंग को ब्याही गई थी। उसी से राजा वेन उत्पन्न हुए थे ।११। हे मैत्रेयजी ! मृत्युसुता का वह पुत्र अपने नाना के स्वभाव-दोष के कारण ही दूषित स्वभाव का हुआ ॥१२॥ जब वह वेन राजपद पर अभिषिक्त हुआ था तभी उसने विश्व भर में यह घोषित कर दिया था कि मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और दान का भोक्ता एवं स्वामी मैं ही हूँ, इसलिये अब कभी कोई भी मनुष्य दान और यज्ञादि न करे ॥१३-१४॥ हे मैत्रेयजी ! उस समय वे महर्षिगण उन राजा वेन के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा करके सान्त्वनामयी मीठीवाणी से कहा ॥१५॥

भो भो राजन् शृणुष्व त्वं यद्वदाम महीपते ।
राज्यदेहोपकाराय प्रजानां च हितं परम् ।१६।
दीर्घसत्रेण देवेशं सर्वयज्ञेश्वरं हरिम् ।
पूजयिष्याम भद्रं ते तस्यांशस्ते भविष्यति ।१७।
यज्ञेन यज्ञपुरुषो विष्णुः सम्प्रीणितो नृप ।
अस्माभिर्भवतः कामान्सर्वानेव प्रदास्यति ।१८।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरो येषां राष्ट्रे सम्पूज्यते हरिः ।
तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूभृताम् ।१९।
मत्तः कोऽप्यधिकोऽन्योऽस्ति कश्चाराध्यो ममापरः ।
कोऽयं हरिरिति ख्यातो यो वो यज्ञेश्वरो मतः ।२०।

ब्रह्मा जनार्दन शम्भुरिन्द्रो वायुर्यमो रविः ।
हुतभुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ।२१।
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः ।
नृपस्यैते शरीरस्था सर्वदेवमयो नृपः ।२२।

ऋषियों ने कहा—हे राजन् ! हे महीपते ! हम तुम्हारे राज्य, प्रजा तथा शरीर के हितार्थ जो कहते हैं, उसे श्रवण करो ।।१६।। तुम्हारा कल्याण हो, हम यज्ञेश्वर देवदेव भगवान् विष्णु का पूजन करेंगे, उनके फल के छठे अंश का भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा ।।१७।। हे राजन् ! यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष सन्तुष्ट होकर हमारे साथ ही तुम्हारी भी अभिलाषाएँ पूरी करेंगे ।१८। जिन राजाओं के राज्यकाल में यज्ञेश्वर भगवान् का यज्ञानुष्ठानों द्वारा पूजन होता है, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।।१९।। यह सुन कर वेन ने कहा—मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो, तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है ? ।२०। ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा अथवा अन्य जो भी देवता शाप, या वर देने में समर्थ हैं, उन सभी का निवास राजा में होने से राजा ही सर्वदेवमय होता है ।।२१-२२।।

एवं ज्ञात्वा मयाज्ञप्तं यद्यथा क्रियतां तथा ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं च भो द्विजाः ।२३।
भर्तृशुश्रूषणं धर्मो यथा स्त्रीणां परो मतः ।
ममाज्ञापालनं धर्मो भवतां च तथा द्विजाः ।२४।
देह्यनुज्ञां महाराज मा धर्मो यातु संक्षयम् ।
हविषां परिणामोऽयं यदेतदखिलं जगत् ।२५।
इति विज्ञाप्यमानोऽपि स वेनः परमर्षिभिः ।
यदा ददाति नानुज्ञां प्रोक्तः प्रोक्तः पुनः पुनः ।२६।
ततस्ते मुनयः सर्वे कोपामर्षसमन्विताः ।
हन्यतां हन्यतां पाप इत्यूचुस्ते परस्परम् ।२७।
यो यज्ञपुरुषं विष्णुमनादिनिधनं प्रभुम् ।
विनिन्दत्यधमाचारो न स योग्यो भुवः पतिः ।२८।

इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्मुनिगणा नृपम्।
निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ।२९।

हे द्विजगण ! यह जान कर मेरे आदेश का पालन करो, किसी को भी दान, यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणो ! जैसे स्त्री का परमधर्म पतिसेवा है, वैसे ही आपका परमधर्म मेरी आज्ञा का पालन है ॥२३-२४॥ ऋषियों ने कहा—हे राजन् ! आपका आदेश ऐसा होना चाहिए, जिससे धर्म का नाश न हो। देखिये, यह सम्पूर्ण विश्व हवि से ही उत्पन्न हुआ है ॥२५॥ श्री पराशरजी ने कहा—जब महर्षियों के बारंबार समझाने पर भी वेन न माना तो वे अत्यंत क्रोध पूर्वक परस्पर में कहने लगे कि इस पापात्मा को मार डालो, मार डालो ॥२६-२७॥ जो अनादि एवं अनन्त यज्ञेश्वर विष्णु का निन्दक है, वह आचरणहीन पुरुष राजा होने के योग्य नहीं है ॥२८॥ यह कह कर उन महर्षियों ने प्रभु-निन्दा करके पहिले से ही मृत हुए उस राजा का मंत्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया ॥२९॥

ततश्च मुनयो रेणुं ददृशुः सर्वतो द्विज ।
किमेतदिति चासन्नान्पप्रच्छुस्ते जनास्तदा ।३०।
आख्यातं च जनैस्तेषां चोरीभूतैरराजके ।
राष्ट्रे तु लोकैरारब्धं परस्वादानमातुरैः ।३१।
तेषामुदीर्णवेगानां चोराणां मुनिसत्तमाः ।
सुमहान् दृश्यते रेणुः परवित्तापहारिणाम् ।३२।
ततः सम्मन्त्र्य ते सर्वे मुनयस्तस्य भूभृतः ।
ममन्थुरूरुं पुत्रार्थमनपत्यस्य यत्नतः ।३३।
मथ्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल ।
दग्धस्थूणाप्रतीकाशः खर्वाटास्योऽतिह्रस्वकः ।३४।
किं करोमीति तान्सर्वान्विप्रानाह त्वरान्वितः ।
निषीदेति तमूचुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत् ।३५।
ततस्तत्सम्भवा जाता विन्ध्यशैलनिवासिनः ।
निषादा मुनिशार्दूल पापकर्मोपलक्षणाः ।३६।

तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः ।
निषादास्ते ततो जाता वेनकल्मषनाशनाः ।३७।

हे मह्लाद् ! फिर महर्षियों ने सर्वत्र बडी धूल उड़ती हुई देख कर अपने पास खड़े हुए लोगों से पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय राष्ट्र राजा रहित होगया है, इसलिये दीन दु.खी मनुष्यों ने धनवानों को लूटना आरम्भ कर दिया है ।।३०-३१।। हे मुनिवरो ! उन अत्यन्त वेगवान् लुटेरों के उत्पात से ही यह धूल उड रही है ।।३२।। तब उन महर्षियों ने परस्पर में परामर्श करके उस पुत्रहीन राजा वेन की जाँघ को पुत्र प्राप्ति के लिये मथा ।३३।। उस के मथे जाने से उसमे जले हुए ठूँठ के समान काले वर्ण का, अत्यन्त नाटा और छोटे मुख का एक पुरुष प्रकट हुआ ।।३४।। उसने अत्यन्त आतुरता पूर्वक उन ऋषियों से पूछा कि मैं क्या करूँ ? तब उन ऋषियों ने 'निषीद' अर्थात् बैठजा कहा, इसलिए वह आगे चल कर निषाद कहा गया।३५। इसलिए हे मुनै ! उसके वंशज विंध्याचल पर रहने वाले पाप कर्मों में रत निषाद हुए ।।३६।। उसी निषाद रूप द्वार से मार्ग से राजा वेन का सभी पाप निकल गया, इस प्रकार निषादगण राजा वेन के पापों को नष्ट करने वाले होगए ।३७।

तस्यैव दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्ते ततो द्विजा ।३८।
मथ्यमाने च तत्राभूत्पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ।३९।
आद्यमाजगवं नाम खात्पपात ततो धनुः ।
शराश्च दिव्या नभस· कवचं च पपात ह ।४०।
तस्मिन् जाते तु भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ।
सत्पुत्रेणैव जातेन वेनोऽपि त्रिदिवं ययौ ।४१।
पुन्नाम्नो नरकात् त्रातः सुतेन सुमहात्मना ।
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वश· ।४२।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्वाण्येवोपतस्थिरे ।
पितामहश्च भगवान्देवैराङ्गिरसं सह ।४३

स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ।
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।४४।

फिर उन ऋषियों ने वेन के दाँए हाथ को मथा, जिससे वेनपुत्र पृथु उत्पन्न हुए, जिनका देह प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान् था ॥३८-३९॥ इसी अवसर पर आजगव नामक शिव धनुष, दिव्य बाण और कवच आकाश से गिरने लगे ॥४०॥ उनके प्रकट होने से सब प्राणियों को अत्यंत प्रसन्नता हुई तथा उन सत्पुत्र की उत्पत्ति से वेन को भी स्वर्ग प्राप्त हुआ ॥४१॥ इस प्रकार महात्मा पुत्र के जन्म लेने से वह नरक में जाने से बच गया। उन राजा पृथु का अभिषेक करने के लिए सब समुद्र और नदियाँ मूर्तिमान होकर सब प्रकार के रत्न और पवित्र जल लेकर वहाँ आये और सब आंगिरस देवताओं के सहित सभी प्राणियों ने राजा वेन के राज्याभिषेक महोत्सव में भाग लिया ॥४२-४४॥

हस्ते तु दक्षिणे चक्रं दृष्ट्वा तस्य पितामहः ।
विष्णोरंशं पृथुं मत्वा परितोषं परं ययौ ।४५।
विष्णुचक्रं करे चिह्नं सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ।
भवत्यव्याहतो यस्य प्रभावस्त्रिदशैरपि ।४६।
महता राजराज्येन पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ।४७।
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ।४८।
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ।४९।
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ।५०।

उनके दाँए हाथ को चक्रांकित देख कर उन्हें भगवान् विष्णु, का अंश समझते हुए ब्रह्माजी अत्यंत प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥४५॥ भगवान् के चक्र का यह चिह्न सभी राजाओं के हाथ में पड़ा होता है, जिसके प्रभाव को कुण्ठित

करना देवताओं के भी वश का नहीं है ॥४६॥ इस प्रकार अत्यंत तेजस्वी एवं प्रतापी वेन पुत्र धर्मवान् व्यक्तियों द्वारा विधि पूर्वक राजाधिराजपद पर अभिषिक्त हुए ॥४७॥ उनके पिता ने जिस प्रजा को अप्रसन्न किया था, उसी प्रजा को उन्होंने प्रसन्न किया, इस प्रकार प्रजा को प्रसन्न करने के कारण ही वह वास्तविक रूप से राजा हुए ॥४८॥ उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ ॥४९॥ पृथिवी जोते-बोये बिना ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्तन मात्र से ही अन्न पक जाता था, गौएँ कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थी तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था ॥५०॥

तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतःसूत्यां समुत्पन्नःसौत्येऽहनि महामतिः ।५१।
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
प्रोक्तौ तदा मुनिवरैस्तावुभौ सूतमागधौ ।५२।
स्तूयतामेष नृपतिः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चापरम् ।५३।
ततस्तावूचतुर्विप्रान्सर्वानेव कृताञ्जली ।
अद्य जातस्य नो कर्म ज्ञायतेऽस्य महीपतेः ।५४।
गुणा न चास्य ज्ञायन्ते न चास्य प्रथितं यशः ।
स्तोत्रं किमाश्रयं त्वस्य कार्यमस्माभिरुच्यताम् ।५५।
करिष्यत्येष यत्कर्म चक्रवर्ती महाबलः ।
गुणा भविष्या ये चास्य तैरयं स्तूयतां नृपः ।५६।

उन राजा के उत्पन्न होते ही जो पैतामह यज्ञ किया, उससे सोमाभिषव के दिन ही अभिषव वाली भूमि से सूतजी उत्पन्न हुए ॥५१॥ उसी यज्ञ में मागध भी प्रकट हुए। उन सूत और मागध से ऋषियों ने कहा इन प्रतापी वेन पुत्र पृथु की शुभ स्तुति करो। राजा स्तुति के योग्य है और तुम भी स्तुति करने में योग्य ही हो ॥५२-५३॥ तब उन सूत-मागध ने उन ऋषियों से करबद्ध निवेदन किया कि हम इनके कर्मों को नहीं जानते, क्योंकि यह आज ही

चचार हृदि तादृक् च कर्मणा कृतवानसौ ।
ततस्तु पृथिवीपालः पालयन्पृथिवीमिमाम् ।६४।
इयाज विविधैर्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः ।
तं प्रजा पृथिवीनाथमुपतस्थुः क्षुधार्दिताः ।६५।
ओषधीषु प्रणष्टासु तस्मिन्काले ह्यराजके ।
तमूचुस्ते नताः पृष्टास्तत्रागमनकारणम् ।६६।
अराजके नृपश्रेष्ठ धरित्र्या सकलौषधीः ।
ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ।६७।
त्वन्नो वृत्तिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः ।
देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ।६८।

वह धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मिष्टभाषी, मान योग्य पुरुषों को मान देने वाले, यज्ञ और ब्रह्म परायण, सन्तजनों से सम्मानित और शत्रु-मित्र के समान व्यवहार करने वाले हैं। सूत-मागध द्वारा वर्णित इन गुणों को अपने चित्त में धारण करके उन्होंने उसी के अनुसार कर्म किये और पृथिवी के पालन पूर्वक महती दक्षिणा वाले अनेक बड़े यज्ञों को उन्होंने किया। जब अराजकता फैली थी तब औषधादि के न रहने से क्षुधातुर हुई पृथिवीपति पृथु की शरण में उपस्थित हुई और राजा के पूछने पर उसने अपनी उपस्थिति का कारण उन्हें बताया ॥६२-६६॥ प्रजा ने कहा—हे प्रजापालक महाराज ! अराजकता फैलने पर सब औषधियाँ पृथिवी में समा गई, इससे आपकी प्रजा क्षीण हो रही है ॥६७॥ विधाता ने आपको हमारा जीवन दाता तथा प्रजापति किया है, इसलिये भूख रूपी महारोग से सन्तप्त हुए हम प्रजाजनों को आप जीवन रूपी औषधि प्रदान कीजिए ॥६८॥

ततस्तु नृपतिर्दिव्यमादायाजगवं धनुः ।
शरांश्च दिव्यान्कुपितः सोऽन्वधावद्वसुन्धराम् ।६९।
ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा ।
सा लोकान्ब्रह्मलोकादींस्त्रासादगमन्मही ।७०।

यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भूतधारिणी ।
तत्र तत्र तु सा वैन्य ददृशेऽभ्युद्यतायुधम् ।७१।
ततस्त प्राह वसुधा पृथुं पृथुपराक्रमम् ।
प्रवेपमाना तद्बाणपरित्राणपरायणा ।७२।
स्त्रीवधे त्वं महापापं किं नरेन्द्र न पश्यसि ।
येन मां हन्तुमत्यर्थं प्रकरोषि नृपोद्यमम् ।७३।

श्री पराशरजी बोले—हे ब्रह्मन् ! प्रजा की पुकार सुन कर राजा पृथु ने अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण ग्रहण किया तथा क्रोध पूर्वक पृथिवी को मारने के लिये चले ।।६९।। तब अत्यन्त भयभीत हुई पृथिवी गौ का रूप धारण करके वहाँ से भागती हुई ब्रह्मलोक आदि लोकों में गई ।।७०।। सभी भूतों को धारण करने वाली वह धरित्री वहाँ जहाँ भी गई, वहीं वहीं उसने राजा पृथु को शर-संधान किये हुए अपने पीछे-पीछे आते हुए देखा ।।७१।। तब उन अत्यन्त पराक्रम वाले राजा पृथु से उनके बाण-प्रहार के भय से कम्पित हुई पृथिवी ने इस प्रकार कहा ।।७२।। पृथिवी बोली—हे राजेन्द्र ! तुम मेरी हत्या करने को ऐसे उतावले क्यों हो रहे हो ? क्या आप इसमें स्त्री-हत्या का पाप नहीं देखते हैं ? ।।७३।।

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ।७४।
प्रजानामुपकाराय यदि मां त्वं हनिष्यसि ।
आधारः कः प्रजानां ते नृपश्रेष्ठ भविष्यति ।७५।
त्वां हत्वा वसुधे बाणैर्मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ।७६।
ततः प्रणम्य वसुधा तं भूयः प्राह पार्थिवम् ।
प्रवेपिताङ्गी परमं साध्वसं समुपागता ।७७।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्धयन्त्युपक्रमाः
तस्माद्वदाम्युपायं ते तं कुरुष्व यदीच्छसि ।७८

समस्ता या मया जीर्णा नरनाथ महौषधीः ।
यदीच्छसि प्रदास्यामि ताः क्षीरपरिणामिनीः ।७९।
तस्मात्प्रजाहितार्थाय मम धर्मभृता वर ।
त तु वत्स कुरुष्व त्वं क्षरेयं येन वत्सला ।८०।
समां च कुरु सर्वत्र येन क्षीरं समन्ततः ।
वरौषध.बीजभूतं बीजं सर्वत्र भावये ।८१।

राजा पृथु ने कहा—जहाँ एक अनर्थ करनेवाले के वध से अनेक व्यक्तियों को सुख प्राप्त होता हो, वहाँ उसका वध ही श्रेयस्कर है ।।७४।। पृथिवी ने कहा— हे राजन् ! यदि आप मुझे प्रजा के हितार्थ ही मारने की इच्छा करते हैं तो मेरे मरने पर आपकी उस प्रजा का आधार क्या होगा ? ।।७५।। पृथु बोले—मैं अपनी आज्ञा को न मानने वाली तुझे मार कर अपने योग-बल से स्वयं ही आधार बन कर प्रजा को धारण करूँगा ।।७६।। इस पर श्री पराशरजी ने कहा — यह सुन कर भय से अत्यंत काँपती हुई उस पृथिवी ने राजा को प्रणाम करके कहा ।।७७।। पृथिवी बोली—हे राजन् ! जो कार्य योजना बद्ध होते हैं, वह अवश्य ही सिद्ध होते हैं। इसलिये मैं आपको एक उपाय बताना चाहती हूँ, आप चाहें तो उसके अनुसार करें ।।७८।। हे नरेन्द्र ! मैंने जिन औषधियों को अपने में लीन कर लिया है, यदि आप चाहें तो मैं उन्हें दूध के रूप में पुनः दे सकती हूँ ।।७९।। इसलिये हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! आप अपनी प्रजा का हित करने के लिये कोई ऐसा बछड़ा कल्पित कीजिये, जिसके स्नेह वश में उन औषधियों को दूध रूप में निकाल दूँ ।।८०।। आप मुझे सब ओर समतल कर दीजिये, जिससे श्रेष्ठ औषधियों के बीज रूप दूध का उत्पादन सर्वत्र हो सके ।।८१।।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ।८२।
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराभवत् ।८३।
न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः ।
वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ।८४।

यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीद्द्विजोत्तम ।
तत्र तत्र प्रजा सर्वा निवासं समरोचयन् ।८५।
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रणष्टास्त्वोषधीषु वै ।८६।
स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् ।
स्वपाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः ।८७।
सस्यजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया ।
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्त्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ।८८।

श्री पराशरजी ने कहा—यह सुन कर राजा पृथु ने अपने धनुष की कोटि से हजारों पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया ।८३।। इससे पहिले पृथिवी समतल नहीं थी तथा पुर, ग्राम आदि का विभाग भी नहीं था ।।८४।। हे मैत्रेयजी ! उस समय अन्न, कृषि, व्यापार आदि का कोई नियमित क्रम नहीं था, इसका आरंभ वेनपुत्र पृथु के शासन काल में ही हुआ ।८५। हे द्विज श्रेष्ठ ! जहाँ जहाँ पृथिवी समतल हुई, वहीं वहीं प्रजा जा बसी उस समय तक केवल फल मूलादि का आहार किया जाता था, परन्तु औषधियों के नष्ट होने पर वह भी अत्यंत दुर्लभ हो गया ।।८६।। उस समय राजा पृथु ने स्वायम्भुवमनु को बछड़ा बनाया और अपने हाथ से पृथिवी रूपी गौ से सब धान्यों का दोहन किया । उसी अन्न के आधार पर अब प्रजा जीवन यापन करती है ।।८७ ८८।।

प्राणप्रदाता स पृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता ।
ततस्तु पृथिवीसंज्ञामवापाखिलधारिणी ।८९।
ततश्च देवैर्मुनिभिर्दैत्यै रक्षोभिरद्रिभिः ।
गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुभिस्तथा ।९०।
ततत्पात्रमुपादाय तत्तद्दुग्धं मुने पयः ।
वत्सदोग्धृविशेषाश्च तेषां तद्योनयोऽभवन् ।९१।
सैषा धात्री विधात्री च धारिणी पोषणी तथा ।
सर्वस्य तु ततः पृथ्वी विष्णुपादतलोद्भवा ।९२।

एवंप्रभावस्स पृथुः पुत्रो वेनस्य वीर्यवान् ।
जज्ञे महीपतिः पूर्वो राजाभूज्जनरञ्जनात् ।९३।
य इद जन्म वैन्यस्य पृथोः सकीर्तयेन्नरः ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चित्फ नदापि प्रजायते ॥९४।
दुस्स्वप्नोपशम नृणा शृण्वतामेतदुत्तमम् ।
पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सतत नृणाम् ।९५।

पृथिवी को प्राण दान करने के कारण राजा पृथु उसके पिता हुए, इसलिये उस धरित्री का नाम पृथिवी हुआ ॥८९॥ हे मुने ! इसके पश्चात् देवता,मुनि, दैत्य, राक्षस, पर्वत, सर्प, यक्ष और पितर आदि ने अपने- अपने पात्रों मे दूध का दोहन किया और दोहनकर्त्ताओं के अनुसार ही दोग्धा और बछडा आदि नियुक्त हुए ॥९०-९१॥ इसीलिये भगवान् विष्णु के चरणों से उद्भूत हुई यह पृथिवी सब की जन्म-दात्री, रचयित्री तथा धारण-पोषण करने वाली है ॥९२॥ इस प्रकार प्राचीन काल मे वह वेनपुत्र राजा पृथु इतने प्रभाव और पराक्रम वाले हुए तथा प्रजा की रक्षा करने के कारण ही उन्हें राजा कहा गया ॥९३॥ महाराज पृथु के चरित्र का जो कोई कीर्तन करता है उसके दुष्कर्म का फल नष्ट हो जाता है ॥९४॥ राजा पृथु की उत्पत्ति का यह वृत्तान्त और उनका प्रभाव श्रोता के दुःस्वप्नों का शमन करता है ॥९५॥

चौदहवाँ अध्याय

पृथोः पुत्रो तु धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्द्धिवादिनौ ।
शिखण्डिनो हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत ।१।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत्सुतान् ।
प्रचीनर्बाहिष शुक्रं गय कृष्ण वृजाजिनौ ।२।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ।
हविर्धानान्महाभाग येन संवर्धिताः प्रजाः ।३।

पाचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां विश्रुता मुने ।
प्राचीनबर्हिरभवत्ख्यातो भुवि महाबलः ।४।
समुद्रतनयायां तु कृतदारो महीपतिः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णाया महामते ।५।
सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।६।
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! उन राजा पृथु के अन्तर्धान और वादी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । अन्तर्धान ने शिखण्डिनी नाम की अपनी पत्नी से हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया ।१। हविर्धान से धिषणा ने प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, वृज और अजिन नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ।२। हविर्धान के पुत्र प्राचीनबर्हि एक महान् प्रजापति हुए और उन्होंने यज्ञ के द्वारा अपनी प्रजा की अत्यन्त वृद्धि की ।३। हे मुने ! उनके शासन काल में समस्त पृथिवी में कुश ही कुश दिखाई देते थे, इसीलिये वे प्राचीनबर्हि के नाम से प्रसिद्ध हुए ।।४।। हे महामते ! उन राजा ने तप के पश्चात् समुद्र की पुत्री सवर्णा का पाणिग्रहण किया ।।५।। उस सवर्णा के गर्भ से प्राचीनबर्हि ने दस पुत्र उत्पन्न किये । वे प्रचेता नामक सभी पुत्र धनुर्विद्या में पारगत हुए ।।६।। उन्होंने समुद्र के जल में दस हजार वर्ष तक रह कर समान धर्म के आचरण पूर्वक घोर तप किया था ।।७।।

यदर्थं ते महात्मानस्तपस्ते पुर्महामुने ।
प्रचेतसः समुद्राम्भस्येतदाख्यातुमर्हसि ।८।
पित्रा प्रचेतसः प्रोक्ताः प्रजार्थममितात्मना ।
प्रजापतिनियुक्तेन बहुमानपुरस्सरम् ।९।
ब्रह्मणा देवदेवेन समादिष्टोऽस्म्यहं सुताः ।
प्रजाः संवर्द्धनीयास्ते मया चोक्तं तथेति तत् ।१०।
तन्मम प्रीतये पुत्राः प्रजावृद्धिमतन्द्रिताः ।
कुरुध्वं माननीया वः सम्यगाज्ञा प्रजापतेः ।११।

ततस्ते तत्पितुः श्रुत्वा वचनं नृपनन्दनाः ।
तथेत्युक्त्वा च तं भूयः पप्रच्छुः पितरं मुने ।१२।
येन तात प्रजावृद्धौ समर्थाः कर्मणा वयम् ।
भवेम तत् समस्तं नः कर्म व्याख्यातुमर्हसि ।१३।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे महामुने ! उन महात्मा प्रचेतागण ने समुद्र में रह कर किसलिये ऐसा तप किया था यह बताने की कृपा करिये ॥८॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! एक समय उन प्रचेताओं के पिता महात्मा प्राचीनबर्हि ने प्रजापति की प्रेरणा से उनसे सन्तानोत्पत्ति के लिये कहा था ॥६ प्राचीनबर्हि बोले—हे पुत्रो ! देवदेव ब्रह्माजी ने मुझे प्रजा की वृद्धि का आदेश दिया और मैंने भी उसे स्वीकार कर लिया ॥१०॥ इसलिये हे पुत्रो ! मेरी प्रसन्नता के लिये प्रजा-वृद्धि का कार्य करो, क्योंकि प्रजापति की आज्ञा तो माननी ही होगी ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! उन राज कुमारों ने पिता की आज्ञा स्वीकार करके उनसे पूछा ॥१२॥ प्रचेता बोले—हे पिताजी ! हम जिस प्रकार प्रजावृद्धि कर सकें वह हमें भले प्रकार बताइये ॥१३॥

आराध्य वरदं विष्णुमिष्टप्राप्तिमसंशयम् ।
समेति नान्यथा मर्त्यः किमन्यत्कथयामि वः ।१४।
तस्मात्प्रजाविवृद्धयर्थं सर्वभूतप्रभुं हरिम् ।
आराधयत गोविन्दं यदि सिद्धिमभीप्सथ ।१५।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं चान्विच्छता सदा ।
आराधनीयो भगवाननादिपुरुषोत्तमः ।१६।
यस्मिन्नाराधिते सर्गं चकारादौ प्रजापतिः ।
तमाराध्याच्युतं वृद्धिः प्रजानां वो भविष्यति ।१७।
इत्येवमुक्तास्ते पित्रा पुत्राः प्रचेतसो दश ।
मग्नाः पयोधिसलिले तपस्तेपुः समाहिताः ।१८।
दशवर्षसहस्राणि न्यस्तचित्ता जगत्पतौ ।
नारायणे मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकपरायणे ।१९।
तत्रैवावस्थिता देवमेकाग्रमनसो हरिम् ।
तुष्टुवुर्यस्स्तुतः कामान् स्तोतुरिष्टान्प्रयच्छति ।२०।

पिता बोले—भगवान् विष्णु वर देने वाले हैं, उनकी आराधना करने से अवश्य ही इच्छित वस्तु प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त और क्या कहूँ? ॥१४॥ यदि तुम सफलता की कामना करते हो तो प्रजा की वृद्धि के निमित्त सर्वभूतेश्वर श्री गोविन्द की आराधना करो ॥१५॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चाहना वाले पुरुषों को भगवान् विष्णु की सदैव आराधना करनी चाहिये।१६। जिनकी कल्पारम्भ में उपासना करके प्रजापति ने इस विश्व की रचना की है, उन्हीं की आराधना करने से प्रजा की वृद्धि होगी ॥१७॥ पराशरजी ने कहा—पिता की इस प्रकार आज्ञा पाकर दसों प्रचेतागण समुद्र के जल में निमग्न रह कर यत्न पूर्वक तपस्या करने लगे ॥१८॥ हे मुनिवर! वे लोकाश्रय भगवान् विष्णु में ध्यान लगाये हुए वहाँ दस हजार वर्ष तक रहकर, उन्हीं की स्तुति करते रहे। वे भगवान् अपने स्तोता को सब अभिलाषित प्रदान करते हैं ॥१९-२०॥

स्तवं प्रचेतसो विष्णोः समुद्राम्भसि संस्थिताः ।
चक्रुस्तन्मे मुनिश्रेष्ठ सुपुण्यं वक्तुमर्हसि ।२१।
शृणु मैत्रेय गोविन्दं यथापूर्वं प्रचेतसः ।
तुष्टुवुस्तन्मयीभूताः समुद्रसलिलेशयाः ।२२।
नताः स्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती ।
तमाद्यन्तमशेषस्य जगतः परमं प्रभुम् ।२३।
ज्योतिराद्यमनौपम्यमण्वनन्तमपारवत् ।
योनिभूतमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ।२४।
यस्याहः प्रथमं रूपमरूपस्य तथा निशा ।
सन्ध्या च परमेशस्य तस्मै कालात्मने नमः ।२५।
भुज्यतेऽनुदिनं देवैः पितृभिश्च सुधात्मकः ।
जीवभूतः समस्तस्य तस्मै सोमात्मने नमः ।२६।
यस्तमास्यत्ति तीव्रात्मा प्रभाभिर्भासयन्नभः ।
घर्मशीताम्भसां योनिस्तस्मै सूर्यात्मने नमः ।२७।
काठिन्यवान् यो बिभर्त्ति जगदेतदशेषतः ।
शब्दादिसंश्रयो व्यापी तस्मै भूम्यात्मने नमः ।२८।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! समुद्र के जल मे स्थित रह कर प्रचेताओं ने जिस प्रकार भगवान् का स्तव किया, वह मुझे बताने की कृपा करिये ।।२१।। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पूर्व काल मे समुद्र स्थित प्रचेताओं ने भगवान् गोविन्द की जो स्तुति [redacted] मयता पूर्वक की थी, [redacted] सुनो ।।२२।।

प्रचेताओ ने कहा—सभी वाक्यो की जिनमे नित्य स्थिति है और जो ससार की उत्पत्ति तथा प्रलय के कारण हैं, उन परम प्रभु को हमारा नमस्कार है ।।२३।। जो ज्योति स्वरूप, उपमा रहित, अणु, अनन्त, अपार और चराचरात्मक विश्व के कारण हैं तथा जिन रूपहीन के दिवस रात्रि और सध्या ही प्रथम रूप हैं, उन कालरूप भगवान् को नमस्कार करते हैं ।।२४-२५।। जो सभी प्राणियों के जीवन स्वरूप हैं, तथा जिनके अमृतमय रूप का पान देवता और पितर नित्य-प्रति करते हैं, उन सोम स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ।।२६।। जो अपने तीक्ष्ण रूप से आकाश को प्रकाशित करते और अधकार का भक्षण कर लेते हैं, तथा जो धूप, शीत और जल के उद्गम स्थल हैं, उन भास्कर रूप भगवान् को नमस्कार है ।।२७।। जो इस विश्व के धारणकर्त्ता, शब्दादि विषयो के आश्रय रूप तथा सब व्यापक उन पृथिवी रूप प्रभु को नमस्कार है ।।२८।।

यद्योनिभूत जगतो बीज यत्सर्वदेहिनाम् ।
तत्तोयरूपमीशस्य नमामो हरिमेधसः ।२६।
यो मुख सर्वदेवाना हव्यभुक्कव्यभुक् तथा ।
पितृणा च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने ।३०।
पञ्चधावस्थितो देहे यश्चेष्टा कुरुतेऽनिशम् ।
आकाशयोनिर्भगवास्तस्मै वाय्वात्मने नम ।३१।
अवकाशमशेषाणा भूताना यः प्रयच्छति ।
अनन्तमूर्तिमाञ्छुद्धस्तस्मै व्योमात्मने नम ।३२।
समस्तेन्द्रियसर्गस्य यः सदा स्थानमुत्तमम् ।
तस्मै शब्दादिरूपाय नम. कृष्णाय वेधसे ।३३।

गृह्णाति विषयानित्यमिन्द्रियात्मा क्षराक्षरः ।
यस्तस्मै ज्ञानमूलाय नता स्म हरिमेधसे ।३४।
गृहीतानिन्द्रियैरर्थानात्मने यः प्रयच्छति ।
अन्तःकरणरूपाय तस्मै विश्वात्मने नमः ।३५।
यस्मिन्ननन्ते सकलं विश्वं यस्मात्तथोद्गतम् ।
लयस्थानं च यस्तस्मै नमः प्रकृतिधर्मिणे ।३६।

जो विश्व की योनि रूप तथा सब प्राणियों का बीज रूप है, उस जल रूप भगवान् को हम नमस्कार करते हैं ।।२६।। जो सब देवताओं का हव्य और पितरों का कव्य भक्षण करने वाले हैं, उन अग्नि रूप ईश्वर को नमस्कार है ।।३०।। जो प्राणापान आदि पंच वायु रूप से शरीर में स्थित होकर उसे चेष्टावान् करता रहता है तथा जो आकाश योनि है, उस वायु रूप परमेश्वर को नमस्कार है ।।३१।। जो सब भूतों को अवकाश प्रदान करता है, उन अनन्त मूर्ति एवं आकाश रूप भगवान् को नमस्कार है ।।३२।। जो सब इन्द्रिय सृष्टि के श्रेष्ठ स्थान हैं, उन शब्दादि गुण रूप विधाता श्री कृष्ण को नमस्कार है ।।३३।। जो क्षर अक्षर और इन्द्रिय रूप से विषयों को ग्रहण करते रहते हैं, उन ज्ञान के मूल भगवान् विष्णु को नमस्कार है ।।३४।। जो अन्त करण रूप से इन्द्रियों के विषयों को आत्मा के समक्ष प्रेषित करते हैं, उन विश्वात्मा प्रभु को नमस्कार है ।।३५।। जिनमें सम्पूर्ण संसार स्थित है, जिनसे उत्पन्न होकर वह उन्हीं में लीन हो जाता है, उन प्रकृति स्वरूप परमेश्वर को नमस्कार है ।।३६।।

शुद्धः संल्लक्ष्यते भ्रान्त्या गुणवानिवयोऽगुणः ।
तमात्मरूपिणं देवं नता स्म पुरुषोत्तमम् ।३७।
अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम् ।
नता स्म तत्परं ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ।३८।
अदीर्घह्रस्वमस्थूलमनण्वश्यामलोहितम् ।
अस्नेहच्छायमतनुमसक्तमशरीरिणम् ।३६।
अनाकाशमसंस्पर्शमगन्धमरसं च यत् ।
अचक्षुःश्रोत्रमचलमवाक्पाणिममानसम् ।४०।

अनामगोत्रमसुखमतेजस्कमहेतुकम् ।
अभयं भ्रान्तिरहितमनिद्रमजरामरम् ।४१।
अरजोऽशब्दममृतमप्लुतं यदसंवृतम् ।
पूर्वापरे न वै यस्मिंस्तद्विष्णोः परमं पदम् ।४२।
परमेशत्वगुणवत्सर्वभूतमसंश्रयम् ।
नताः स्म तत्पदं विष्णोर्जिह्वादृग्गोचरं न यत् ।४३।

जो निर्गुण होते हुए भी आरोप से गुणयुक्त दिखाई देते हैं उन परमेश्वर पुरुषश्रेष्ठ को नमस्कार है ।।३७।। जो विकार जन्म, रहित रहित, गुण रहित, शुद्ध, निर्मल और विष्णु का परमपद रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार है ।।३८।। जो लम्बा, स्थूल, लघु, काला, लाल, स्नेह, कान्ति तथा देह वाला नहीं है तथा आसक्ति रहित और जीव से भिन्न है और अवकाश, स्पर्श, गंध, रस से रहित, नेत्र, जिह्वा, हाथ और मन से भी हीन है ।।३९-४०।।जो नाम,गोत्र, सुख तेजादि से रहित, कारण- हीन और भय, भ्रान्ति, निद्रा, जरा और मरण आदि अवस्थाओं से परे है ।।४१।। जो रजोगुण- रहित, शब्द रहित, मृत्यु-रहित गति- रहित तथा आच्छादन- रहित है और जिसमें पूर्वापर व्यवहार भी नहीं है, वही भगवान् श्रीहरि का परमपद है ।।४२।। जिसका परम गुण शासन है, जो सर्व रूप एवं आधार रहित है तथा जिह्वा और दृष्टि का भी विषय नहीं है, ऐसे भगवान् के उस परमपद को हमारा नमस्कार है ।।४३।।

एवं प्रचेतसो विष्णुं स्तुवन्तस्तत्समाधयः ।
दशवर्षसहस्राणि तपश्चेरुर्महार्णवे ।४४।
ततः प्रसन्नो भगवांस्तेषामन्तर्जले हरिः ।
ददौ दर्शनमुन्निद्रनीलोत्पलदलच्छविः ।४५।
पतत्त्रिराजमारूढमवलोक्य प्रचेतसः ।
प्रणिपेतुः शिरोभिस्तं भक्तिभारावनामितैः ।४६।
ततस्तानाह भगवान्व्रियतामीप्सितो वरः ।
प्रसादसुमुखोऽहं वो वरदः समुपस्थितः ।४७।
ततस्तमूचुर्वरदं प्रणिपत्य प्रचेतसः ।
यथा पित्रा समादिष्टं प्रजानां वृद्धिकारणम् ।४८।

स चापि देवस्त दत्त्वा यथाभिलषित वरम्।
अन्तर्धानं जगामाशु ते च निश्चक्रमुर्जलात् ।४९।

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार समुद्र में रहते हुए प्रचेताओं ने समाधिस्थ होकर भगवान् विष्णु की स्तुति पूर्वक दस हजार वर्ष तक तप किया ॥४४॥ इससे भगवान् उन पर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें प्रफुल्लित नील कमल जैसे आभा वाले दिव्य स्वरूप से जल में ही दर्शन दिया ॥४५॥ तब उन प्रचेताओं ने गरुड़ारूढ़ भगवान् के दर्शन किये तब उन्होंने भक्ति के भार से झुके हुए अपने शिरों को और भी झुका कर भगवान् को प्रणाम किया ॥४६॥ यह देख कर भगवान् उनके प्रति बोले—मैं तुम पर अत्यंत प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हें वर प्रदान करने के लिये यहाँ आया हूँ अपना इच्छित वर माँगो ॥४७॥ यह सुन कर प्रचेताओं ने वरदाता भगवान् विष्णु को पुनः प्रणाम किया और उनसे पिता ने उन्हें प्रजावृद्धि की जो आज्ञा दी थी, वह सब वृत्तान्त उनसे निवेदन किया ॥४८॥ इस पर भगवान् ने उन्हें उनका इच्छित वर प्रदान किया और वहीं अन्तर्धान हो गये और तब प्रचेतागण भी समुद्र के जल से बाहर निकल आये ॥४९॥



पन्द्रहवाँ अध्याय

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ।१।
नाशकन्मरुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ।२।
तान्दृष्ट्वा जलनिष्क्रान्ताः सर्वे क्रुद्धाः प्रचेतसः।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजन् जातमन्यवः ।३।
उन्मूलानथ तान्वृक्षान्कृत्वा वायुरशोषयत्।
तानग्निरदहद्‌घोरस्तत्राभूद् द्रुमसंक्षयः ।४।

द्रुमक्षयमथो दृष्ट्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रजापतीन् ।५।
कोपं यच्छत राजानः शृणुध्वं च वचो मम ।
सन्धानं वः करिष्यामि सह क्षितिरुहैरहम् ।६।
रत्नभूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरवर्णिनी ।
भविष्यज्ञानता पूर्वं मया गोभिर्विवर्द्धिता ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—जब प्रचेतागण तपस्या में लगे हुए थे, तब किसी प्रकार से पृथिवी की रक्षा-व्यवस्था न होने के कारण वह वृक्षों से आच्छादित हो गई और बहुत-सी प्रजा क्षीण होगई ।।१।। आकाश तक ऊँचे उठे वृक्षों के कारण दस हजार वर्ष तक वायु का चलना ही रुका रहा और प्रजा चेष्टा-रहित हो गई ।।२।। जब प्रचेतागण जल से बाहर आये तो उन वृक्षों का ऐसा विस्तार देखकर उन्होंने क्रोध पूर्वक अपने मुख से वायु और अग्नि को छोड़ा ।।३।। उस वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर शुष्क किया और प्रचण्ड अग्नि ने उन्हें भस्म कर दिया। इस प्रकार वृक्ष नष्ट होने लगे ।।४।। उस भयानक वृक्ष-प्रलय के कारण चन्द्रमा ने प्रचेताओं के पास जाकर कहा ।।५।। हे प्रचेतागण ! आप अपने क्रोध का शमन करके मेरी बात सुनिये। वृक्षों के साथ मैं आपकी सधि करा देना चाहता हूँ ।।६।। यह रत्न रूपा एवं श्रेष्ठ वर्ण वाली कन्या वृक्षों से उत्पन्न हुई है, भविष्य की बात जान कर मैंने अपनी किरणों से इसका पोषण किया है ।।७।।

मारिषानाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्या वोऽस्तु महाभागा ध्रुवं वंशविवर्द्धिनी ।८।
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान्दक्षो नाम प्रजापतिः ।९।
मम चांशेन संयुक्तो युष्मत्तेजोमयेन वै ।
तेजसाग्निसमो भूयः प्रजा संवर्द्धयिष्यति ।१०।
कण्डुर्नाम मुनिः पूर्वमासीद्वेदविदां वरः ।
सुरम्ये गोमतीतीरे स तेपे परमं तपः ।११।

इसके पश्चात् एक दिन उस अप्सरा ने उन महर्षि से कहा—हे ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्ग लोक को प्रस्थान करूँगी, आप प्रसन्न होकर मुझे जाने की अनुमति दीजिये ॥१४॥ उसकी बात सुन कर उससे आसक्तिवान् ऋषि ने कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो ॥१५॥ उनके अनुरोध पर वह अप्सरा सौ वर्ष तक और उनके साथ रहती हुई विविध भोगों को भोगती रही ॥१६॥ तब उसने पुनः उनसे कहा कि अब मुझे स्वर्ग जाने की अनुमति दीजिये। इस पर ऋषि ने उससे कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो ॥१७॥ इस प्रकार फिर सौ वर्ष व्यतीत होगए तब उसने मुसका कर मुनि से कहा—भगवन्! अब मैं स्वर्ग लोक को जारही हूँ ॥१८॥ यह सुन कर मुनि ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और बोले कि वहाँ तो तुम्हें बहुत समय लगेगा, इसलिए अभी क्षण भर तो रुको ॥१९॥ तब वह श्रेष्ठ कटि वाली अप्सरा उन ऋषि के साथ दो सौ वर्ष से कुछ कम समय तक और क्रीडा करती रही ॥२०॥

गमनाय महाभाग देवराजनिवेशनम् ।
प्रोक्तःप्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ।२१।
तस्य शापभयाद्भीता दाक्षिण्येन च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्त्तिवेदिनी न जहौ मुनिम् ।२२।
तया च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम् ।
नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथाविष्टचेतसः ।२३।
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः ।
निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ।२४।
इत्युक्तः स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे ।
सन्ध्योपास्तिं करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ।२५।
ततः प्रहस्य सुदती तं सा प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ।२६।
बहूना विप्र वर्षाणां परिवृत्तमहस्तव ।
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यताम् ।२७।

महाभाग! वह अप्सरा जब-जब ऋषि से स्वर्गलोक को जाने की

अपने आश्रम में घुसते हुए देखा है ।।२८।। अब दिन के छिपने पर यह सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ है, फिर तुम इस प्रकार से उपहास क्यों कर रही हो ? ।।२६।। प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने मेरे प्रातःकाल आने की जो बात कही, वह तो ठीक है परन्तु उस प्रातःकाल को आज सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ।।३०।। चन्द्रमा बोले—यह सुन कर वह विप्रश्रेष्ठ चिन्ता में पड़ गये और उन्होंने आतुरता पूर्वक उस विशाल नेत्र वाली सुन्दरी से पूछा—अरी भीरु ! मुझे सत्य बता कि तेरे साथ विषयासक्त रहते हुये मेरा कितना समय व्यतीत हो चुका है ? ।।३१।। प्रम्लोचा ने कहा—अब तक नौ सौ सात वर्ष, छः मास और तीन दिन व्यतीत हो चुके हैं ।।३२।। ऋषि ने कहा—क्या तू यह सत्य कह रही है या मेरा उपहास करती है ? मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यहाँ मैं तेरे साथ एक दिन ही रहा हूँ ।।३३।। प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके समक्ष मिथ्या कैसे कह सकती हूँ ? इस पर भी आपने अपने धर्म मार्ग में तत्पर होकर मुझसे पूछा है, तो असत्य कहने की बात हो नहीं है ।।३४।।

निशम्य तद्वचः सत्यं स मुनिर्नृ पनन्दनाः ।
धिग्धिङ्मामित्यतीवेत्थं निनिन्दात्मानमात्मना ।३५।
तपांसि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां धनम् ।
हृतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ।३६।
ऊर्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मतिरेषा हृता येन धिक् तं कामं महाग्रहम् ।३७
व्रतानि वेदवेद्याप्तिकारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण सङ्गेनापहृतानि मे ।३८।
विनिन्द्येत्थं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना ।
तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ।३९।
गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्कृतं त्वया ।
देवराजस्य मत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ।४०।
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना ।
सतां साप्तपदं मैत्रमुषितोऽहं त्वया सह ।४१।

चन्द्रमा बोले—हे राजपुत्रो ! प्रम्लोचा की सत्य वाणी सुन कर महर्षि अपने को धिक्कारने लगे। ऋषि ने कहा—अरे, मेरी तपस्या नष्ट हो गई, ब्रह्मवेत्ताओं का जो धन मेरे पास था वह अविवेक के कारण लुट गया। अहो ! स्त्री की रचना तो मोह जाल डालने के लिये ही हुई है ॥३५-३६॥ मुझे अपने मन को वश में करके छहों ऊर्मियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, मेरी बुद्धि को नष्ट कर देने वाले काम रूपी महाग्रह को बारंबार धिक्कार है ॥३७॥ नरक ग्राम के मार्ग रूपी इस नारी के संसर्ग दोष से ब्रह्म प्राप्ति के कारण रूप सभी व्रतों का नाश हो गया ॥३८॥ उन धर्मज्ञ मुनि ने इस प्रकार अपनी ही निन्दा की और फिर उस अप्सरा से कहने लगे ॥३९॥ हे पापिनि ! अब तू जहाँ चाहे चली जा, तू ने अपने रूप से मुझे मोहित करके इन्द्र का कार्य पूर्ण कर दिया है ॥४०॥ अपने क्रोध रूपी प्रज्वलित अग्नि से मैं तुझे इसलिये भस्म नहीं करना चाहता कि सज्जन मनुष्य सात पग साथ रहने से ही मित्र बन जाते हैं, परन्तु मैं तो तेरे साथ इतने दीर्घ समय तक रहा हूँ ॥४१॥

अथवा तव को दोषः किं वा कुप्याम्यहं तव ।
ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥४२॥
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मे तपसो व्ययः ।
त्वया धिक् तां महामोहमञ्जूषां सुजुगुप्सिताम् ॥४३॥
यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम् ।
तावद्गलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः ॥४४॥
प्रवेपमानां सततं स्विन्नगात्रलतां सतीम् ।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥४५॥
सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः ॥४६॥
निर्माजमाना गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ।
वृक्षाद्वृक्षं ययौ बाला तदग्रारुणपल्लवैः ॥४७॥
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः ।
निर्जगाम स रोमाञ्चस्वेदरूपी तदङ्गतः ॥४८॥

इसमे तेरा कुछ दोष भी नहीं है, जिससे मैं तुझ से रुष्ट हो जाऊँ। सभी दोष मेरा है, क्योंकि मैं अपनी इंद्रियों को नहीं जीत सका ।।४२।। इन्द्र के स्वार्थ के लिये जिस तूने मुझे तप-भ्रष्ट कर दिया, ऐसी तुझ महामोह मंजूषा को अत्यंत धिक्कार है ।।४३।। चन्द्रमा बोले — जब तक वह ब्रह्मर्षि उससे इस प्रकार कहते रहे, तब तक वह घबराहट के कारण पसीने से लथपथ होकर काँपती रही ।।४४।। इस प्रकार पसीने से भीगी और भय से काँपती हुई उस अप्सरा से मुनि ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—जा, तू यहाँ से तुरंत चली जा ।।४५।। इस प्रकार बारबार तिरस्कार करने पर वह आश्रम से निकली और आकाश मार्ग से गमन करते हुए उसने अपने पसीने को वृक्षों के पत्तों से पोंछ दि और वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर चढ़ती हुई चलती चली गई ।।४६-४७।। महर्षि कण्डु ने उसके जो गर्भ स्थापित किया था, वह भी रोमांच के पसीने के रूप में उसके देह से निकल आया ।।४८।।

> *तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे तु मारुतः ।*
> मया चाप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः ।४९।
> वृक्षाग्रगर्भसम्भूता मारिषाख्या वरानना ।
> तां प्रदास्यन्ति वो वृक्षाः कोप एष प्रशाम्यताम् ।५०।
> कण्डोरपत्यमेवं सा वृक्षेभ्यश्च समुद्गता ।
> ममापत्य तथा वायोः प्रम्लोचातनया च सा ।५१।
> स चापि भगवान् कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः ।
> पुरुषोत्तममाख्यातं विष्णोरायतनं ययौ ।५२।
> तत्रैकाग्रमतिर्भूत्वा चकाराराधनं हरेः ।
> ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ।
> ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वासौ भूपनन्दनाः ।५३।
> ब्रह्मपारं मुनेः श्रोतुमिच्छामः परमं स्तवम् ।
> जपता कण्डुना देवो येनाराध्यत केशवः ।५४।

हे राजपुत्रो ! उस गर्भ को वृक्षों ने ग्रहण किया और वायु ने उसे एकत्रपूर्वक इकट्ठा कर दिया, तब मैं अपनी किरणों से उसका पोषण करने लगा,

इससे वह वृद्धि को प्राप्त हुआ ॥४९॥ इस प्रकार वह मारिषा नाम की कन्या वृक्षाग्र से उत्पन्न हुई, जिसे वृक्षगण तुम्हारे लिये समर्पित करते, इसलिये अपने क्रोध को अब शान्त कीजिये ॥५०॥ वृक्षोंकी वह कन्या उसी प्रम्लोचा की सुता है, इस प्रकार वह कण्डु ऋषि की, वायु की तथा मेरी भी पुत्री है ॥५१॥ फिर वह सन्त श्रेष्ठ कण्डु क्षीणतप हुए पुरुषोत्तम क्षेत्र नामक स्थान को गये, जो भगवान् विष्णु की निवास भूमि है। वहाँ उन्होंने एकाग्र चित्त से ब्रह्मपार मन्त्र का जप और ऊर्ध्वबाहु रह कर भगवान् विष्णु की उपासना की ॥५२ ५३॥ यह सुन कर प्रचेताओं ने कहा—कण्डु मुनि का वह ब्रह्मपार नामक महान् स्तोत्र हम सुनना चाहते है जिसका जप करते हुए उन्होंने भगवान् का आराधन किया था ॥५४॥

पारं परं विष्णुरपारपारः परः परेभ्यः परमार्थरूपी ।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः ॥५५॥
स कारणं कारणतस्ततोऽपि तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः ।
कार्येषु चैवं सह कर्मकर्तृ रूपैरशेषैरवतीह सर्वम् ॥५६॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि ॥५७॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः ।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥५८॥
एतद्ब्रह्मपराख्यं वै संस्तवं परमं जपन् ।
अवाप परमां सिद्धिं स तमाराध्य केशवम् ॥५९॥
[इमं स्तवं यः पठति शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
स कामदोषैरखिलैर्मुक्तः प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥]
इयं च मारिषा पूर्वमासीद्या तां ब्रवीमि वः ।
कार्यगौरवमेतस्याः कथने फलदायि वः ॥६०॥

चन्द्रमा ने कहा—भगवान् विष्णु विश्वपथ के अन्तिम लक्ष्य हैं, जिनका पार नहीं पाया जा सकता। वह पर से भी परे और सत्य स्वरूप हैं। वह तपोनिष्ठों को ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे पर से परे तथा इन्द्रियों के अगोचर, भक्तों के

पालक और अभीष्ट पूरक हैं ॥५५॥ कारण के कारण, उसके भी कारण के कारण होने से परम कारण हैं इस प्रकार कर्म, कर्त्ता आदि के सहित सम्पूर्ण प्रपंच के पालक हैं ॥५६॥ वह ब्रह्म ही प्रभु, सर्वरूप और सम्पूर्ण प्रजा का स्वामी और अविनाशी है। वही अव्यय, नित्य, अजन्मा तथा क्षयादि विकारों रहित विष्णु है ॥५७॥ उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के अक्षर, अजर, एवं तथा नित्य ब्रह्म होने से मेरे भी रागादि दोष शान्ति को प्राप्त हों ॥५८॥ इस ब्रह्मपार नामक स्तोत्र के जप पूर्वक भगवान् केशव की आराधना करने से ■ महर्षि को परम सिद्धि की प्राप्ति हुई ॥५९॥ (इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ या श्रवण करता है वह कामादि विकारों से छूट कर इच्छित फल प्राप्त करता है) अब मैं उस मारिषा का पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ। वह पहले जन्म में क्या थी? यह सुन लेने पर तुम्हारे गौरव की सफलता होगी ॥६०॥

अपुत्रा प्रागियं विष्णुं मृते भर्त्तरि सत्तमाः ।
भूपपत्नी महाभागा तोषयामास भक्तितः ।६१।
आराधितस्तया विष्णुः प्राह प्रत्यक्षतां गतः ।
वरं वृणीष्वेति शुभे सा च प्राहात्मवाञ्छितम् ।६२।
भगवन्बालवैधव्याद् वृथाजन्माहमीदृशी ।
मन्दभाग्या समुद्भूता विफला च जगत्पते ।६३।
भवन्तु पतयः श्लाघ्या मम जन्मनि जन्मनि ।
त्वत्प्रसादात्तथा पुत्रः प्रजापतिसमोऽस्तु मे ।६४।
कुलं शीलं वयः सत्यं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ।
अविसंवादिता सत्त्वं वृद्धसेवा कृतज्ञता ।६५।
रूपसम्पत्समायुक्ता सर्वस्य प्रियदर्शना ।
अयोनिजा च जायेयं त्वत्प्रसादादधोक्षज ।६६।
तथैवमुक्तो देवेशो हृषीकेश उवाच ताम् ।
प्रणामनम्रामुत्थाप्य वरदः परमेश्वरः ।६७।

यह अपने पूर्व जन्म में एक राज-महिषी थी। उसके पति छुटपन की अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। तब इस महाभागा ने भगवान् विष्

भगवान् अन्तर्धान हो गये । तुम्हारी पत्नी मारिषा के रूप में यह वही राज-महिषी है ॥७२॥

तत सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतस ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्य पत्नीधर्मेण मारिषाम् ।७३।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापति ।
जज्ञे दक्षो महाभागो य पूर्वं ब्रह्मणोऽभवत् ।७४।
स तु दक्षो महाभागस्सृष्ट्यर्थं सुमहामते ।
पुत्रानुत्पादयामास प्रजासृष्ट्यर्थमात्मन ।७५।
अवरांश्च वरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।
आदेश ब्रह्मणः कुर्वन् सृष्ट्यर्थं समुपस्थितः ।७६।
स सृष्ट्वा मनसा दक्ष पश्चादसृजत स्त्रिय ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।७७।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ।
तासु देवास्तथा दैत्या नागा गावस्तथा खगा· ।७८।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव दानवाद्याश्च जज्ञिरे ।
तत प्रभृति मैत्रेय प्रजा मैथुनसम्भवा ।७९।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषामभवन् प्रजाः ।
तपोविशेषै सिद्धाना तदात्यन्ततपस्विनाम् ।८०।

श्रीपराशरजी ने कहा—चन्द्रमा के इस प्रकार कहने से प्रचेतागण शान्त हुए और उन्होंने मारिषा को भार्या रूप में ग्रहण किया ॥७३॥ उन दसों प्रचेताओं से उस मारिषा ने दक्ष प्रजापति को जन्म दिया, जो पूर्वकाल में ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए थे ॥७४॥ हे महामते ! ब्रह्माजी की आज्ञा से उस दक्ष प्रजापति ने सर्ग रचना की इच्छा करके नीचे ऊँचे तथा विभिन्न प्रकार के देह धारियों को पुत्र रूप से उत्पन्न किया ॥७५-७६॥ पहिले उन्होंने मानसी सृष्टि रची, फिर स्त्रियाँ उत्पन्न करके मैथुनी सृष्टि की रचना की । उन्होंने अपनी दस कन्याएँ धर्म के और तेरह कश्यप के साथ ब्याह दीं ॥७७॥ फिर काल परिवर्तन में नियुक्त हुई अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को दीं । इनसे देवता,

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महामुने ।८७।
मानसान्येव भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजत्तदा ।
देवानृषीन्सगन्धर्वानसुरान्पन्नगास्तथा ।८८।
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः ।
ततः सञ्चिन्त्य स पुनः सृष्टि हेतो. प्रजापतिः ।८९।
मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमावहत्कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ।
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ।९०।
अथ पुत्रसहस्राणि वैरुण्यां पञ्च वीर्यवान् ।
असिक्न्यां जनयामास सर्गहेतोः प्रजापतिः ।९१।
तान्दृष्ट्वा नारदो विप्र संविवर्द्धयिषून्प्रजाः ।
सङ्गम्य प्रियसंवादो देवर्षिरिदमब्रवीत् ।९२।
हे हर्यश्वा महावीर्याः प्रजा यूयं करिष्यथ ।
ईदृशो दृश्यते यत्नो भवतां श्रूयतामिदम् ।९३।
बालिशा बत यूय वै नास्या जानीत वै भुवः ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथ सृक्ष्यथ वै प्रजाः ।९४।
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चैव यदाप्रतिहता गतिः ।
तदा कस्माद्भुवो नान्त सर्वे द्रक्ष्यथ बालिशाः ।९५।
ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम् ।
अद्यापि नो निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।९६।

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! स्वयभू भगवान् ब्रह्माजी द्वारा प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा प्राप्त कर दक्ष ने पहिले जिस प्रकार प्राणियों को रचा, उसे सुनो ॥८७॥ उस समय क्रम से ऋषि, गन्धर्व, असुर, सर्प आदि मानसी सृष्टि की ही दक्ष ने रचना की ।।८८।। परन्तु जब इस प्रकार प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तो उन्होंने मैथुनी सृष्टि के विचार से वीरण प्रजापति की अत्यत तपस्विनी कन्या असिक्नी का पाणिग्रहण किया ।।८९-९०।। इसके पश्चात्

उन्होंने अपनी भार्या असिक्नी के गर्भ से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥९१॥ उन सब को प्रजोत्पत्ति की इच्छा वाला देखकर नारदजी ने उनके पास जाकर इस प्रकार कहा—हे हर्यश्वगण! मुझे लगता है कि आप प्रजा उत्पन्न करने के इच्छुक हैं, इसलिये मेरी बात सुनो ॥९२-९३॥ तुम अभी पृथिवी का मध्य, ऊर्ध्व और तल भाग को ही नहीं जानते तो प्रजोत्पत्ति किस प्रकार करोगे? ॥९४॥ जब तुम इस ब्रह्माण्ड में ऊपर, नीचे, इधर, उधर सर्वत्र अबाध गति वाले हो, तो तुम्हें इस पृथिवी का अन्त क्यों नहीं दिखाई देता? ॥९५॥ नारदजी की बात सुन कर वे सब विभिन्न दिशाओं को चले गये तथा जैसे समुद्र में मिली हुई नदियों का पुनरावर्तन नहीं होता वैसे ही वे अब कभी भी नहीं लौटे ॥९६॥

हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ।
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ॥९७॥
विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजाः द्विज ।
पूर्वोक्तं वचनं ब्रह्मन्नारदेनैव चोदिताः ॥९८॥
अन्योऽन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः ।
भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ।

भाइयों का अनुसरण करना चाहिये ॥९८-९९॥ हम भी पृथिवी का परिमाण जान कर ही प्रजोत्पत्ति मे लगेंगे । ऐसा विचार कर वह भी विभिन्न दिशाओं मे जाकर हर्यश्वों के समान ही लौट कर नही आये ॥१००॥ इसलिये, तभी से भाई की खोज में जाने वाला भाई नाश को प्राप्त हो जाता है और कोई ऐसा न करे, यह सिद्धान्त निश्चित हुआ ॥१०१॥ जब दक्ष प्रजापति को यह ज्ञात हुआ कि यह पुत्र भी नारदजी के उपदेश से चले गये तब उन्होंने अत्यत क्रोध पूर्वक नारदजी को शाप दे डाला ॥१०२॥

सर्गकामस्ततो विद्वान्स मैत्रेय प्रजापतिः ।
षष्टि दक्षोऽसृजत्कन्या वैरुण्यामिति न. श्रुतम् ।१०३।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।१०४।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ।१०५।
अरुन्धती वसुर्यामिर्लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्याविश्वा च तादृशी ।१०६।
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ।
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यान जायत ।१०७।
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोश्च वसव स्मृता ।
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्ताया मुहूर्तजा ।१०८।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा ।
पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्यामजायत ।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।१०९।

हे मैत्रेयजी ! सुना जाता है कि फिर दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याएँ उत्पन्न की, उनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को और चार अरिष्टनेमि को ब्याह दी ॥१०३-१०४॥ तथा दो कन्याओं का विवाह बहुपुत्र से, दो का अंगिरा से और दो का कृशाश्व के साथ हुआ, अब उनके नाम कहता हूँ ।१०५॥ अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सकल्पा,

मुहूर्ता, साध्या और विश्वा, यह दसों धर्म की भार्या हुई। अब इनके पुत्रों के विषय में सुनो–विश्वा से विश्वेदेवा और साध्या से साध्यगण हुए ॥१०६-१०७॥ मरुत्वती से मरुत्वान्, वसु से वसुगण, भानु से भानु और मुहूर्ता से मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए ॥१०८॥ लम्बा से घोष, यामि से नागवीथि, अरुन्धती से पृथिवी विषयक सभी जीव तथा संकल्पा से सब प्राणियों में रहने वाले संकल्प की उत्पत्ति हुई ॥१०९॥

ये त्वनेकवसुप्राणदेवा ज्योतिः पुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ।११०।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ।१११।
आपस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शान्तो ध्वनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः ।११२।
सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।
धर्मस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।११३।
मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ वरुणस्तथा ।
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ।११४।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ।
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।११५।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।११६।
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम् ।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।११७।

विभिन्न प्रकार का वसु ही जिनका जीवन है, ऐसे आठ वसु प्रसिद्ध हैं, अब मैं उनकी वंशावलि कहता हूँ ॥११०॥ वे आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास नाम से विख्यात हैं ॥१११॥ आपके चार पुत्र हुए जिनके नाम वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि थे, ध्रुव के पुत्र लोकों का संहार करने वाला काल हुआ ॥११२॥ सोम के पुत्र वर्चा हुए, जिनसे वर्चस्व की प्राप्ति

होती है । धर्म ने अपनी पत्नी मनोहरा से द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र उत्पन्न किये । अनिल की पत्नी शिवा के मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्र हुए अग्नि का कुमार नामक पुत्र सरकण्डे में उत्पन्न हुआ ॥११३-११५॥ शाख, विशाख और नैगमेय उससे छोटे भ्राता हुए। कृत्तिकाओं का पुत्र कार्तिक हुआ ॥११६॥ प्रत्यूष के पुत्र देवल नामक ऋषि हुए जिनके दो क्षमाशील एवं विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥११७।

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत ।११८।
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ।११९।
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्द्धकी ।
भूषणाना च सर्वेषां कर्ता शिल्पवता वरः ।१२०।
यः सर्वेषां विमानानि देवताना चकार ह ।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मनः ।१२१।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषा नामानि मे शृणु ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ।१२२।
त्वष्टुश्चाप्यात्मज. पुत्रो विश्वरूपो महातपाः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।१२३।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतः स्मृतः ।
मृगव्याधश्च शवश्च कपाली च महामुने ।१२४।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।
शत त्वेक समाख्यात रुद्राणाममितौजसाम् ।१२५।

अष्टम वसु प्रभास का विवाह बृहस्पतिजी की ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी बहिन वरस्त्री से हुआ, वह अनासक्त भाव से पृथिवी पर भ्रमण करती फिरती थी । उसके द्वारा प्रभास वसु ने प्रजापति विश्वकर्मा को उत्पन्न किया जो सहस्रों शिल्पों के निर्माता, शिल्पियो मे श्रेष्ठ देवशिल्पी हुए ॥११८-१२०॥ उन्हीं ने देवताओं के सब विमानो की रचना की । इनकी शिल्प विद्या के आश्रय

से अनेकानेक मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह करते हैं ॥१२१॥ उन विश्व कर्मा के अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य त्वष्टा और रुद्र नाम के चार पुत्र हुए। ॥१२२॥ इनमें से त्वष्टा के पुत्र का नाम विश्वरूप हुआ। हे महामुने! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली नामक यह ग्यारह रुद्र तीनों लोकों के अधीश्वर हुए। ऐसे सैकड़ों ही अमल तेजस्वी एकादश रुद्र विख्यात हैं ॥१२३-१२५॥

कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैवारिष्टा च सुरसा खसा ।१२६।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ।१२७।
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योऽन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ।१२८।
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
समवायीकृताः सर्वे समागम्य परस्परम् ।१२९।
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भवेदिति ।१३०।
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
मारीचात्कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया ।१३१।
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ।१३२।
विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशुर्भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ।१३३।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ।१३४।

अब कश्यपजी की जो भार्याएँ हुईं उनके नाम अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि थे। अब इनकी संतति सुनो ॥१२६-१२७॥ चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नामक

बारह देवता थे। वे उस मन्वन्तर के समाप्त होने और वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर परस्पर बोले ॥१२८-१२९॥ हे देवताओ! चलो, अदिति के गर्भ मे प्रविष्ट होकर हम शीघ्र ही वैवस्वत मन्वन्तर मे उत्पन्न हो, हमारे लिये यही हितकर होगा ॥१३०॥ इस प्रकार निश्चय कर उन्होने कश्यप पत्नी दक्षजा अदिति के उदर से जन्म लिया और तब वे विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा विवस्वान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग नामक द्वादश आदित्य हुए ॥१३१-१३३॥ इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर के तुषित नामक देवता ही वैवस्वत मन्वन्तर में द्वादश आदित्य होगये ॥१३४॥

याः सप्तविंशतिः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ।
सर्वा नक्षत्रयोगिन्यस्तन्नाम्न्यश्चैव ताः स्मृताः ।१३५।
तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम् ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।१३६।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।१३७।
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।१३८।
सर्वे देवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् छन्दजाः ।
तेषामपीह सतत निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।१३९।
यथा सूर्यस्य मैत्रेय उदयास्तमनाविह ।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ।१४०।

चन्द्रमा की जिन सत्ताईस भार्याओ के विषय मे कहा जा चुका है, वे सब नक्षत्र योगिनियाँ अपने उन्ही नामो से प्रसिद्ध हैं ।१३५। उन अत्यत तेजस्विनियों ने अनेक पुत्र उत्पन्न किये। अरिष्टनेमि की पत्नियों के सोलह पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३६॥ बहुपुत्र की भार्या विद्युत चार रूप वाली है। ऋचाओ के अभिमानी देवता प्रत्यगिरा से उत्पन्न हुए और देवप्रहरण नामक देवता देवर्षि कृशाश्व से उत्पन्न हुए। यह एक हजार युगो के बाद पुनः उत्पन्न होते हैं ॥१३७-१३८। यह तेंतीसों देवता स्वेच्छा से जन्म लेने मे समर्थ हैं, कहा जाता है कि इनके

उत्पत्ति और निरोध इस लोक में निरंतर होती रहती है ॥१३९॥ हे मैत्रेयजी ! जैसे संसार में सूर्य का उदयास्त निरन्तर होता है वैसे ही इन देवताओं की उत्पत्ति युग-युग में होती है ॥१४०॥

दित्या पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च दुर्जयः ॥१४१॥
सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥१४२॥
अनुह्लादश्चैव ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव बुद्धिमान् ।
संह्लादश्च महावीर्या दैत्यवंशविवर्द्धनाः ॥१४३॥
तेषां मध्ये महाभाग सर्वत्र समदृग्वशी ।
प्रह्लादः परमां भक्ति य उवाच जनार्दने ॥१४४॥
दैत्येन्द्रदीपितो वह्निः सर्वाङ्गोपचितो द्विज ।
न ददाह च यं विप्र वासुदेवे हृदि स्थिते ॥१४५॥
महार्णवान्तःसलिले स्थितस्य चलतो मही ।
चचाल सकला यस्य पाशबद्धस्य धीमतः ॥१४६॥
न भिन्नं विविधैः शस्त्रैर्यस्य दैत्येन्द्रपातितैः ।
शरीरमद्रिकठिनं सर्वत्राच्युतचेतसः ॥१४७॥

सुना जाता है कि कश्यपजी ने दिति के गर्भ से अत्यंत दुर्जय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नाम की एक पुत्री उत्पन्न की, जिसका विवाह विप्रचित्ति से हुआ । हिरण्यकशिपु के चार पुत्र अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद, और संह्लाद नामक हुए, इन्हीं से दैत्य वंश की वृद्धि हुई ॥१४१-१४३॥ हे महाभाग उन चारों में प्रह्लाद सब को समान भाव से देखने वाले और जितेन्द्रिय हुए, उन्होंने भगवान् की परम भक्ति का वर्णन किया ॥१४४॥ जिन्हें दैत्यराज हिरण्यकशिपु द्वारा जलाई गई अग्नि ने उन्हें सब ओर से जलाना चाहा, परंतु हृदय में भगवान् का निवास होने के कारण उनको दग्ध नहीं किया जा सका ॥१४५॥ जो पाश में बँधकर समुद्र के जल में पड़े हुए इधर-उधर होने तो सम्पूर्ण पृथिवी काँपने लगी थी ॥१४६॥ जिनका शरीर पर्वत के समान कठोर

था और भगवान् में चित्त रहने के कारण दैत्यराज के दासास्त्र भी वह छिन्न भिन्न न हो सका ॥१४७॥

विषानलोज्ज्वलमुखा यस्य दैत्यप्रचोदिताः ।
नान्ताय सर्वपतयो बभूवुरुरुतेजसः ।१४८।
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि यः स्मरन्पुरुषोत्तमम् ।
तत्याज नात्मनः प्राणान् विष्णुस्मरणदंशितः ।१४९।
पतन्तमुच्चादवनिर्यमुपेत्य महामतिम् ।
दधार दैत्यपतिना क्षिप्तं स्वर्गनिवासिना ।१५०।
यस्य संशोषको वायुर्देहे दैत्येन्द्रयोजितः ।
अवाप संक्षयं सद्यश्चित्तस्थे मधुसूदने ।१५१।
विषाणभङ्गमुन्मत्ता मदहानिं च दिग्गजाः ।
यस्य वक्षःस्थले प्राप्ता दैत्येन्द्रपरिणामिताः ।१५२।
यस्य चोत्पादिता कृत्या दैत्यराजपुरोहितैः ।
बभूव नान्ताय पुरा गोविन्दासक्तचेतसः ।१५३।
शम्बरस्य च मायानां सहस्रमतिमायिनः ।
यस्मिन्प्रयुक्तं चक्रेण कृष्णस्य वितथीकृतम् ।१५४।
दैत्येन्द्रसूदोपहृतं यस्य हालाहलं विषम् ।
जरयामास मतिमानविकारममत्सरी ।१५५।
समचेता जगत्यस्मिन्यः सर्वेष्वेव जन्तुषु ।
यथात्मनि तथान्येषां परं मैत्रगुणान्वितः ।१५६।
धर्मात्मा सत्यशौर्यादिगुणानामाकरः परः ।
उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत् ।१५७।

दैत्यपति के द्वारा प्रेषित विषाग्नि छोड़ते हुए सर्प भी जिस भक्त को भ्रान्त न कर सके। जिन भक्तराज के हृदय पर भगवत्स्मरण रूपी कवच स्थित था, जिससे पत्थरों की भीषण मार भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकी ॥१४८-१४९॥ दैत्यराज द्वारा जिसे स्वर्ग से नीचे गिराये जाने पर पृथिवी ने ऊपर उठकर मध्य में ही अपने अंक में ले लिया ॥१५०॥ भगवान् के चित

: स्थित रहने के कारण सर्व शोषक वायु भी जिनके शरीर का स्पर्श करते ही शान्त हो गया ॥१५१॥ जिनके वक्षःस्थल में लग कर दिग्गजों के दाँत भी टूट गये और सम्पूर्ण मद नष्ट हो गया ॥१५२॥ दैत्य-पुरोहितों द्वारा प्रेषित कृत्या भी जिन भगवदासक्त भक्तराज का अन्त करने में समर्थ न हो सकी ॥१५३॥ शम्बरासुर की हजारों मायाएँ भी जिनका कुछ न बिगाड़ सकीं और भगवान् के चक्र से नष्ट होगईं ॥१५४॥ जिन मत्सर हीन मतिमान् ने रसोइये द्वारा दिये हुए विष को भी विकार रहित भाव से पी लिया ॥१५५॥ जो इस विश्व के सभी प्राणियों के प्रति समान भाव वाले तथा दूसरों से अपने समान ही बर्ताव वाले थे ॥१५६॥ तथा जो परम धर्मात्मा, सत्य और शौर्य आदि गुणों से परिपूर्ण और साधुजन के लिये उपमा रूप थे ॥१५७॥



सोलहवाँ अध्याय

कथितो भवता वंशो मानवानां महात्मनाम् ।
कारणं चास्य जगतो विष्णुरेव सनातनः ॥१॥
यस्त्वेतद् भगवानाह प्रह्लादं दैत्यसत्तमम् ।
ददाह नाग्निर्नास्त्रैश्च क्षुण्णस्तत्याज जीवितम् ॥२॥
जगाम वसुधा क्षोभं यत्राब्धिसलिले स्थिते ।
पाशैर्बद्धे विचलति विक्षिप्ताङ्गैः समाहता ॥३॥
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि न ममार च यः पुरा ।
त्वया चातीव माहात्म्यं कथितं यस्य धीमतः ॥४॥
तस्य प्रभावमतुलं विष्णोर्भक्तिमतो मुने ।
श्रोतुमिच्छामि यस्यैतच्चरितं दीप्ततेजसः ॥५॥
किन्निमित्तमसौ शस्त्रैर्विक्षिप्तो दितिजैर्मुने ।
किमर्थं चाब्धिसलिले विक्षिप्तो धर्मतत्परः ॥६॥

आक्रान्तः पर्वतैः कस्माद्दष्टश्चैव महोरगैः ।
क्षिप्तः किमद्रिशिखराद्किं वा पावकसञ्चये ॥७॥
दिग्दन्तिनां दन्तभूमिं स च कस्मान्निरूपितः ।
संशोषकोऽनिलश्चास्य प्रयुक्तः किं महासुरैः ॥८॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! आपने महात्मा मनुपुत्रों का वृत्तान्त कहा और इस जगत् के सनातन कारण भगवान् विष्णु को बताया ॥१॥ परन्तु, आपने दैत्यवर प्रह्लाद के अग्नि द्वारा भस्म न होने और शस्त्रों के आघात से भी न मरने की जो बात कही ॥२॥ तथा यह भी कहा कि उनके पाश में बँधकर समुद्र के जल में पड़े हुए हुए हिलने डुलने से पृथिवी भी हिलने लगी थी तथा पत्थरों की बौछार से भी उनका प्राणान्त नहीं हुआ। इस प्रकार आपने उनकी बहुत ही महिमा का वर्णन किया ॥३॥ जिन अत्यन्त तेजस्वी के ऐसे अद्भुत चरित्र आपने कहे है, मैं उन विष्णुभक्त महात्मा के प्रभाव को सुनने का इच्छुक हूँ ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसे अत्यन्त धर्म परायण को दैत्यों ने शस्त्रास्त्र से क्यों संतप्त किया और समुद्र के जल में क्यों डाला ? ॥५॥ पर्वतों से किस लिये दबाया, सर्पों से क्यों डसवाया ? पर्वत शिखर से क्यों गिराया और अग्नि में क्यों जलाया ? ॥७॥ दिग्गजों के दाँतों से क्यों रुँधवाया और सब शोषक वायु को भी उनके अहित के लिये क्यों नियुक्त किया ? ॥८॥

कृत्या च दैत्यगुरवो युयुजुस्तत्र किं मुने ।
शाम्बरश्चापि मायानां सहस्रं किं प्रयुक्तवान् ॥९॥
हालाहलं विषमहो दैत्यसूदैर्महात्मनः ।
कस्माद्दत्तं विनाशाय यज्जीर्णं तेन धीमता ॥१०॥
एतत्सर्वं महाभाग प्रह्लादस्य महात्मनः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि महामाहात्म्यसूचकम् ॥११॥
न हि कौतूहलं तत्र यद्दैत्यैर्न हतो हि सः ।
अनन्यमनसो विष्णौ कः समर्थो निपातने ॥१२॥
तस्मिन्धर्मपरे नित्यं केशवाराधनोद्यते ।
स्ववंशप्रभवैर्दैत्यैः कृतो द्वेषोऽतिदुष्करः ॥१३॥

धर्मात्मनि महाभागे विष्णुभक्ते विमत्सरे ।
दैतेयैः प्रहृतं कस्मात्तन्ममाख्यातुमर्हसि ।।१४।।
प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेदृशे ।
गुणैस्समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ।।१५।।
तदेतत्कथ्यतां सर्वं विस्तरान्मुनिपुङ्गव ।
दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ।।१६।।

हे मुने ! दैत्य पुरुषों ने उन पर कृत्या क्यों चलाई ? शम्बरासुर ने भयंकरी मायाओं को क्यों प्रयुक्त किया ? ।।६।। दैत्यराज के रसोइयों ने उन्हें मारने को घोर विष क्यों दिया, जिसे वे पचा गये थे ? ।।१०।। हे महाभाग ! महान् माहात्म्य के सूचक उस प्रह्लाद चरित्र को मैं पूर्ण रूप से सुनना चाहता हूँ ।।११।। दैत्य उन्हें मारने में असमर्थ रहे, यह तो आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि जिसका मन भगवान् में अनन्य भाव से लगा है उसे मारने में समर्थ कौन हो सकता है ? ।।१२।। नित्य धर्म परायण तथा भगवदाराधक भक्त से उन्हीं के कुल वालों ने ऐसा भीषण द्वेष किया और उन धर्मात्मा, महाभाग, अमत्सर विष्णु भक्त को दैत्यों ने इतना घोर दुःख दिया, इसका कारण मेरे प्रति कहिये ।।१३-१४।। साधुजन तो ऐसे गुणी पुरुषों के विपक्षी होने पर भी उन पर इस प्रकार प्रहार नहीं करते, जिसमें वह तो अपने ही पक्ष के थे ।।१५।। इसलिये हे मुनिवर ! इस सम्पूर्ण वृतान्त को विस्तार से कहिये, क्योंकि मैं उन दैत्यराज के चरित्र श्रवण का अत्यत इच्छुक हूँ ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

मैत्रेय श्रूयतां सम्यक् चरितं तस्य धीमतः ।
प्रह्लादस्य सदोदारचरितस्य महात्मनः ।।१।।
दितेः पुत्रो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
त्रैलोक्यं वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः ।।२।।

इन्द्रत्वमकरोद्दैत्यः स चासीत्सविता स्वयम् ।
वायुरग्निरपां नाथः सोमश्चाभून्महासुरः ॥३॥
धनानामधिपः सोऽभूत्स एवासीत्स्वयं यमः ।
यज्ञभागानशेषांस्तु स स्वयं बुभुजेऽसुरः ॥४॥
देवाः स्वर्गं परित्यज्य तत्त्रासान्मुनिसत्तम ।
विचेरुरवनौ सर्वे बिभ्राणा मानुषीं तनुम् ॥५॥
जित्वा त्रिभुवनं सर्वं त्रैलोक्यैश्वर्यदर्पितः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्बुभुजे विषयान्प्रियान् ॥६॥
पानासक्तं महात्मानं हिरण्यकशिपुं तदा ।
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! अब तुम उन मेधावी और उदार चेता महात्मा प्रह्लाद के चरित्र को ध्यान से सुनो ॥१॥ प्राचीन काल की बात है कि दिति-पुत्र हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वर पाकर अहंकार पूर्वक तीनों लोकों को विजय किया था ॥२॥ वह दैत्य इन्द्र पद पर बैठकर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था ॥३॥ वही कुबेर और यमराज बन बैठा तथा वही सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता हो गया ॥४॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! उसके भय के कारण समस्त देवता स्वर्ग का त्याग कर मनुष्य वेश में पृथिवी पर भ्रमने लगे ॥५॥ इस प्रकार उसने तीनों लोकों को वश में कर लिया और इस गर्व से गर्वित होकर गंधर्वों से अपनी स्तुति कराता और इच्छित भोगों का उपभोग करता था ॥६॥ उस समय सभी सिद्ध, गंधर्व, नाग इत्यादि उस मद्यपान आदि में आसक्त हिरण्यकशिपु की पूजा करने लगे थे ॥७॥

अवादयन् जगुश्चान्ये जयशब्दं तथापरे ।
दैत्यराजस्य पुरतश्चक्रुः सिद्धा मुदान्विताः ॥८॥
तत्र प्रनृत्ताप्सरसि स्फाटिकाभ्रमयेऽसुरः ।
पपौ पानं मुदा युक्तः प्रासादे सुमनोहरे ॥९॥
तस्य पुत्रो महाभागः प्रह्लादो नाम नामतः ।
पपाठ बालपाठ्यानि गुरुगेहङ्गतोऽर्भकः ॥१०॥

एकदा तु स धर्मात्मा जगाम गुरुणा सह ।
पानासक्तस्य पुरतः पितुर्दैत्यपतेस्तदा ॥११॥
पादप्रणामावनतं तमुत्थाप्य पिता सुतम् ।
हिरण्यकशिपुः प्राह प्रह्लादम मितौजसम् ॥१२॥
पठ्यतां भवता वत्स सारभूतं सुभाषितम् ।
कालेनैतावता यत्ते सदोद्युक्तेन शिक्षितम् ॥१३॥

वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु के समक्ष कोई सिद्ध बाजे बजाते और कोई सिद्ध उसका जयजयकार करते थे और वह असुर स्फटिक और अभ्रशिला-निर्मित रम्य भवन में पड़ा हुआ मद्यपान करता रहता था ।।८-९।। उसी हिरण्यकशिपु का यह प्रह्लाद नामक अत्यत भाग्यशाली पुत्र हुआ और वह गुरु के यहां जाकर बालोचित शिक्षा ग्रहण करने लगा ।।१०।। एक दिन वह धर्मात्मा बालक अपने पिता दैत्यराज के पास अपने गुरु के साथ गया ।जहां वह मद्यपान कर रहा था ।।११।। उस समय उसका पुत्र उसके चरणों में झुक गया, जिसे उठाते हुए हिरण्यकशिपु ने कहा ।।१२।। हिरण्यकशिपु बोला —हे पुत्र ! तुमने अध्ययन में लगे रहकर अब तक जो कुछ शिक्षा प्राप्त की है, उसे सार रूप में मुझे बताओ ।।१३।।

श्रूयतां तात वक्ष्यामि सारभूतं तवाज्ञया ।
समाहितमना भूत्वा यन्मे चेतस्यवस्थितम् ॥१४॥
अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम् ॥१५॥
एतन्निशम्य दैत्येन्द्रः सकोपो रक्तलोचनः ।
विलोक्य तद्गुरुं प्राह स्फुरिताधरपल्लवः ॥१६॥
ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षस्तुतिसंहितम् ।
असारं ग्राहितो बालो मामवज्ञाय दुर्मते ॥१७
दैत्येश्वर न कोपस्य वशमागन्तुमर्हसि ।
ममोपदेशजनितं नायं वदति ते सुतः ॥१८॥

अनुशिष्टोऽसि केनेदृग्वत्स प्रह्लाद कथ्यताम् ।
मयोपदिष्टं नेत्येष प्रब्रवीति गुरुस्तव ।१९।
शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः ।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते ।२०।

प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! मेरे मन में जो सार रूप से हैं, उसे मैं आपकी आज्ञा से सुनाता हूँ, आप ध्यान से सुनें ।।१४।। आदि,मध्य और अन्त से रहित, वृद्धि और क्षय से परे, जन्महीन, अच्युत, सभी कारणों के कारण तथा संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकर्त्ता भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१५।। श्री पराशरजी बोले—प्रह्लाद की बात सुन कर दैत्यराज के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह उसके गुरु की ओर देखता हुआ कंपित ओठों से कहने लगा ।।१६।। हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे मतिहीन विप्र ! तूने मेरी आज्ञा की अवहेलना और तिरस्कार कर मेरे विपक्षी की स्तुति सहित सारहीन शिक्षा दी है ।।१७।। गुरु ने कहा—हे दैत्यराज ! आप क्रोधित न हों आपके इस पुत्र ने मेरे द्वारा सिखायी हुई बात आपसे नहीं कही है ।।१८।। इस पर हिरण्यकशिपु ने कहा—हे पुत्र प्रह्लाद ! तुमको यह शिक्षा किसने दी है, तुम्हारे गुरुजी कह रहे हैं कि यह शिक्षा मेरी नहीं है ।।१९।। प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! वही भगवान् सब हृदय में रह कर संसार को उपदेश देते हैं । उनके अतिरिक्त अन्य कौन किसी को कोई सीख दे सकता है ? ।।२०।।

कोऽयं विष्णुः सुदुर्बुद्धे यं ब्रवीषि पुनः पुनः ।
जगतामीश्वरस्येह पुरतः प्रसभं मम ।२१।
न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम् ।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ।२२।
परमेश्वरसंज्ञोऽज्ञ किमन्यो मय्यवस्थिते ।
तथापि मर्तुकामस्त्वं प्रब्रवीषि पुनः पुनः ।२३।
न केवलं तात मम प्रजानां
स ब्रह्मभूतो भवतश्च विष्णुः ।
धाता विधाता परमेश्वरश्च
प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ।२४।

प्रविष्टः कोऽस्य हृदये दुर्बुद्धेरतिपापकृत् ।
येनेदृशान्यसाधूनि वदत्याविष्टमानसः ।२५।
न केवलं मद्धृदयं स विष्णु-
राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितस्समस्ता-
न्समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ।२६।
निष्कास्यतामयं पापः शास्यतां च गुरोर्गृहे ।
योजितो दुर्मतिः केन विपक्षविषयस्तुतौ ।२७।

हिरण्यकशिपु ने कहा—रे मूर्ख ! तू जिस विष्णु का मुझ संसार के ईश्वर के समक्ष धृष्टता पूर्वक वर्णन कर रहा है, वह कौन है, यह मुझे बता ? ।।२१।। प्रह्लाद ने कहा—जिसका परमपद योगियों द्वारा चिंतन योग्य है और वाणी से जिसका वर्णन सम्भव नहीं है तथा जिससे संसार उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं विश्व रूप है, वह भगवान् विष्णु ही परमेश्वर हैं ।२२। हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे मूर्ख ! मेरे अतिरिक्त और कौन परमेश्वर हो सकता है ? परंतु तू बारबार किसी अन्य का गुण गाकर मौत के मुख में जाना चाहता है ।।२३।। प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! वह ब्रह्म भूत विष्णु मेरा ही नहीं सम्पूर्ण प्रजा का और आपका भी स्रष्टा, नियन्ता और ईश्वर है। ऐसा जान कर आप प्रसन्न हो, निरर्थक क्रोध न करें ।।२४।। हिरण्यकशिपु ने कहा—इस दुर्बुद्धि बालक के हृदय में कौन पापी प्रविष्ट हो गया है, जो इसे दबा कर इससे ऐसे कुवाक्य कहला रहा है ।।२५।। प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! वह विष्णु भगवान् ही मेरे हृदय में क्या, सभी लोकों में आत्म रूप से स्थित हैं, वहीं सर्वगामी मुझको, आपको और संसार के सभी जीवों को सचेष्ट करते हैं ।।२६।। हिरण्यकशिपु ने कहा—इस पापी को तुरंत यहाँ से ले जाकर गुरु के शासन में भले प्रकार रखो। न जाने किसने इस खोटी बुद्धि वाले को मेरे विपक्षी की प्रशंसा में लगा दिया है ।२७।

इत्युक्तोऽसौ तदा दैत्यैर्नीतो गुरुगृहं पुनः ।
जग्राह विद्यामनिशं गुरुशुश्रूषणोद्यत. ।२८।

कालेऽतीतेऽति महति प्रह्लादमसुरेश्वरः ।
समाहूयाब्रवीद्गाथा काचित्पुत्रक गीयताम् ।२६।
यत प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारण सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ।३०।
दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।
स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्यः कुलाङ्गारतां गतः ।३१।
इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन प्रगृहीतमहायुधाः ।
उद्यतास्तस्य नाशाय दैत्या. शतसहस्रश ।३२।
विष्णुःशस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः ।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ।३३।
ततस्तैश्शतशो दैत्यैः शस्त्रौघैराहतोऽपि सन् ।
नावाप वेदनामल्पामभूच्चैव पुनर्नवः ।३४।

श्रीपराशरजी ने कहा—दैत्यराज के आदेश से दैत्यों ने उन्हे पुनः गुरुजी के यहाँ पहुँचा दिया, जहाँ वह दिन-रात गुरुजी की सेवा-सुश्रूषा करते हुए विद्या पढने लगे ।।२८।। बहुत दिन बीतने पर हिरण्यकशिपु ने उन्हें फिर अपने पास बुलाकर कहा—हे पुत्र ! आज कोई गाथा कहो ।।२९।। प्रह्लाद बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति हुई है, उस सकल प्रपच के कारण रूप भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हो ।।३०।। हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे, यह बालक तो अत्यन्त दुरात्मा प्रतीत होता है । इसके जीवित रहने से कोई लाभ नही है इसलिये इसका वध कर दो क्योंकि यह अपने पक्ष के लिए हानिकारक और कुल के लिए अंगार रूप ।।३१।। श्रीपराशरजी ने कहा—दैत्यराज की आज्ञा सुनकर सैकड़ो हजारो दैत्य प्रभावशाली शस्त्रास्त्रो से उन्हें मारने लगे ।।३२।। तब प्रह्लाद ने कहा—हे दैत्यगण ! भगवान् तो तुम में, मुझ में और इन शस्त्रास्त्रो मे भी विद्यमान हैं, इस सत्य के कारण इन शस्त्रास्त्रों का प्रभाव मुझ पर नही हो सकता ।।३३।। श्रीपराशरजी ने कहा—फिर तो उन असख्य दैत्यो ने शस्त्र-समूह से उन पर आघात किये, परन्तु उन्हें किंचित् भी वेदना न हुई और वे जैसे के तैसे बल से परिपूर्ण रहे आये ।।३४।।

दुर्बुद्धे विनिवर्तस्व वैरिपक्षस्तवादतः ।
अभयं ते प्रयच्छामि मातिमूढमतिर्भव ।३५।
भयं भयानामपहारिणि स्थिते
मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।
यस्मिन्स्मृते जन्मजरान्तकादि
भयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ।३६।
भो भोः सर्पाः दुराचारमेनमत्यन्तदुर्मतिम् ।
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः सद्यो नयत संक्षयम् ।३७।
इत्युक्तास्ते ततः सर्पाः कुहकास्तक्षकादयः ।
अदशन्त समस्तेषु गात्रेष्वतिविषोल्बणाः ।३८।
स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महोरगैः ।
न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसुस्थितः ।३९।
दंष्ट्रा विशीर्णा मणयः स्फुटन्ति
फणेषु तापो हृदयेषु कम्पः ।
नास्य त्वचः स्वल्पमपीह भिन्नं
प्रशाधि दैत्येश्वर कार्यमन्यत् ।४०।
हे दिग्गजाः संकटदन्तमिश्रा
घ्नतैनमस्मद्रिपुपक्षभिन्नम् ।
तज्जा विनाशाय भवन्ति तस्य
यथारणेः प्रज्वलितो हुताशः ।४१।

हिरण्यकशिपु ने कहा—हे खोटी मति वाले पुत्र ! अब तू विपक्षी की स्तुति करना छोड़ दे, इस समय मैं तुझे अभय प्रदान करता हूँ, भविष्य में ऐसी मूर्खता न करना ॥३५॥ प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! जिनके स्मरण मात्र से जन्म, जरा और मृत्यु के सभी भय भाग खड़े होते हैं, उन भयहारी भगवान् के हृदय में विराजमान होते हुए, मेरे लिए, भय कहाँ होगा ? ॥३६॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—हे सर्पो ! यह बालक अति खोटी बुद्धि वाला और दुराचारी है, तुम इसे विषाग्नि युक्त मुखों से शीघ्र ही दग्ध

मार डालो ॥३७॥ श्रीपराशरजी ने कहा—आज्ञा मिलते ही अत्यन्त क्रूर और विषाग्नि युक्त तक्षकादि सर्पों ने प्रह्लाद के सब शरीर को दंशित किया। परन्तु भगवान् मे आसक्त चित्त होने के कारण उन्हें उन महासर्पों के काटने का कुछ भी आभास नहीं हुआ ॥३८-३९॥ सर्पों ने कहा—हे दैत्यराज! इसे काटने से हमारी दाढें विशीर्ण होगई। मणियों मे दरार पड गई, फणों में दर्द होने लगा और हृदय कम्पायमान हो उठा, फिर भी इस बालक की त्वचा कहीं से किंचित् भी न कट सकी। इसलिये अब आप हमें कोई और आज्ञा दीजिये ॥४०॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—हे दिग्गजो! मेरे शत्रुओं द्वारा बहकाये हुए इस बालक को अपने सकीर्ण दाँतों को मिलाकर उनके प्रहार द्वारा मार डालो। जैसे अरणी से उत्पन्न अग्नि अरणी को ही भस्म कर देता है, वैसे ही कोई कोई जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी के नाशक हो जाते हैं ॥४१॥

तत स दिग्गजैर्बालो भूभृच्छिखरसन्निभैः।
पातितो धरणीपृष्ठे विषाणैर्वावपीडित ॥४२॥
स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रशः।
शीर्णा वक्ष स्थल प्राप्य स प्राह पितरं तत ॥४३॥
दन्तागजानाकुलिशाग्रनिष्ठुरा
शीर्णा यदेते न बल ममैतत्।
महाविपत्तापविनाशनोऽय
जनार्दनानुस्मरणानुभाव ॥४४॥
ज्वाल्यतामसुरा वह्निरपसर्पत दिग्गजाः।
वायो समेधयाग्नि त्व दह्यतामेष पापकृत् ॥४५॥
महाकाष्ठचयस्थ तमसुरेन्द्रसुत तत।
प्रज्वाल्य दानवा वह्नि ददहु स्वामिनोदिता ॥४६॥
तातैष वह्नि पवनेरितोऽपि
न मा दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि ॥४७॥

श्री पराशरजी ने कहा—यह सुन कर पर्वत की शिखर के समान विशाल देह वाले दिग्गजों ने उस बालक को पृथिवी पर डाल कर अपने दाँतों से रौंदने की बहुत चेष्टा की ॥४२॥ परन्तु भगवान् का स्मरण करते रहने के कारण उनकी देह से टकरा-टकरा कर दिग्गजों के दाँत टूट गये। तब उन हाथियों को हतप्रभ देखकर प्रह्लाद ने अपने पिता से कहा कि दिग्गजों के वज्र जैसे दाँतों के टूटने में मेरा कोई बल नहीं है, यह केवल भगवान् के विपत्ति और क्लेश नाशक स्मरण का प्रभाव ही है ॥४३-४४॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे दिग्गजो! अब तुम हट जाओ। हे दैत्यो! तुम अग्नि जलाओ और हे वायो! तुम उस अग्नि को तीक्ष्ण वेग वाला एवं प्रज्वलित करो, जिससे यह पापी शीघ्र ही भस्म हो सके ॥४५॥ श्री पराशरजी बोले—अपने स्वामी के आदेशानुसार उन दानवों ने काष्ठ का एक विशाल ढेर लगाया और उसमें अग्नि प्रज्वलित करके प्रह्लाद को भस्म करने की चेष्टा करने लगे ॥४६॥ प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी! वायु के प्रयत्न करने पर भी यह अग्नि भस्म करने में समर्थ नहीं हो रही है। मुझे सभी दिशायें ऐसी शीतल और सुहावनी लग रही हैं, जैसे मेरे चारों ओर कमल के पुष्प बिछ रहे हों ॥४७॥

अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्भार्गवस्यात्मजा द्विजाः ।
पुरोहिता महात्मानःसाम्ना संस्तूय वाग्मिनः ।४८।
राजन्नियम्यतां कोपो बालेऽपि तनये निजे ।
कोपो देवनिकायेषु तेषु ते सफलो यतः ।४९।
तथातथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप ।
यथा विपक्षनाशाय विनीतस्ते भविष्यति ।५०।
बालत्वं सर्वदोषाणां दैत्यराजास्पदं यतः ।
ततोऽत्र कोपमत्यर्थं योक्तुमर्हसि नार्भके ।५१।
न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद्यदि ।
ततः कृत्यां वधायास्य करिष्यामोऽनिवर्तिनीम् ।५२।
एवमभ्यर्थितस्तैस्तु दैत्यराजः पुरोहितैः ।
दैत्यैर्निष्कासयामास पुत्रं पावकसञ्चयात् ।५३।

ततो गुरुगृहे बालः स वसन्बालदानवान् ।
अध्यापयामास मुहुरुपदेशान्तरे गुरोः ।५४।

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् शुक्राचार्य जी के पुत्र वाग्मी महात्मा और पुरोहितगण दैत्यराज को सान्त्वना देते और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले ।।४८।। पुरोहितों ने कहा—हे राजन् ! आप अपने इस बालक पुत्र पर क्रोध मत कीजिये, आपको तो उन देवताओं पर ही क्रोध करना उचित है ।।४६।। हम आपके इस बालक को आपके विपक्ष का नाशक और आपके प्रति विनम्र होने की सीख देंगे ।।५०।। हे दैत्येन्द्र ! बाल्यावस्था तो सभी दोषों की आश्रय स्थली है, इसलिये इस बालक पर क्रोध न करिये ।।५१।। यदि यह हमारे कहने से भी विपक्षी के पक्ष का त्याग न करेगा, तो हम इसे नष्ट करने के लिये किसी प्रकार भी व्यर्थ न होने वाली कृत्या का प्रयोग करेंगे ।।५२।। श्रीपराशरजी ने कहा—पुरोहितों के ऐसे आश्वासन पर दैत्यराज ने प्रह्लाद को अग्नि से बाहर निकालने की आज्ञा दी ।।५३।। इसके पश्चात् उन्हें गुरुजी के यहाँ भेजा गया, जहाँ वे दैत्य बालकों को बारम्बार उपदेश करने लगे । ५४।।

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेया दितिजात्मजाः ।
न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम् ।५५।
जन्म बाल्यं ततः सर्वो जन्तुः प्राप्नोति यौवनम् ।
अव्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा ।५६।
ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदस्माकं भवतां तथा ।५७।
मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच्च नान्यथा ।
आगमोऽयं तथा यच्च नोपादानं विनोद्भवः ।५८।
गर्भवासादि यावत्तु पुनर्जन्मोपपादनम् ।
समस्तावस्थकं तावद्दुःखमेवावगम्यताम् ।५९।
क्षुत्तृष्णोपशमं तद्वच्छीताद्युपशमं सुखम् ।
मन्यते बालबुद्धित्वाद् दुःखमेव हि तत्पुनः ।६०।

अत्यन्तस्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुखैषिणाम् ।
भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां दुःखमेव सुखायते ।६१।

प्रह्लाद ने कहा—हे दैत्य बालको ! मैं तुम्हें परमार्थ की सीख देता हूँ। तुम इसे मिथ्या न जानना, क्योंकि इस उपदेश में मेरा कोई लोभादि स्वार्थ नहीं है ॥५५॥ सभी प्राणी जन्म लेकर बाल्यावस्था और यौवनावस्था प्राप्त करते हैं, फिर धीरे-धीरे बुढ़ापे की प्राप्ति भी अनिवार्य ही है ॥५६॥ इसके बाद यह प्राणी मृत्यु मुख में चला जाता है। ऐसा होते हुए हम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥५७॥ मर कर फिर जन्म लेना पड़ता है, यह नियम भी अटल है। आगम भी यही कहते हैं कि उपादान के बिना कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती ॥५८॥ पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाली गर्भ में रहने आदि की जितनी भी अवस्थायें हैं, वह सभी दुःख रूप ही समझनी चाहिये ॥५९॥ मूर्खता के वश में पड़े हुए मनुष्य भूख, प्यास और शीतादि की शान्ति को सुख समझते हैं, परन्तु यथार्थ में वह दुःख मात्र ही हैं ॥६०॥ जिनके देहादि शिथिल हो जाते हैं। उन्हें जैसे व्यायाम सुखदायक लगता है, वैसे जिनकी दृष्टि भ्रान्ति से आच्छादित हो चुकी है, उन्हें दुःख ही सुख प्रतीत होता है ॥६१॥

क्व शरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः ।
क्व कान्तिशोभासौन्दर्यरमणीयादयो गुणाः ॥६२॥
मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ ।
देहे चेत्प्रीतिमान् मूढो भविता नरकेऽप्यसौ ।६३।
अग्नेः शीतेन तोयस्य तृषा भक्तस्य च क्षुधा ।
क्रियते सुख कर्तृत्वं तद्विलोमस्य चेतरैः ।६४।
करोति हे दैत्यसुता यावन्मात्रं परिग्रहम् ।
तावन्मात्रं स एवास्य दुःखचेतसि यच्छति ।६५।
यावतः कुरुते जन्तुःसम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ।६६।
यद्यद्गृहे तन्मनसि यत्र तत्रावतिष्ठतः ।
नाशदाहोपकरणं तस्य तत्रैव तिष्ठति ।६७।

जन्मन्यत्र महद्दुःखं म्रियमाणस्य चापि तत् ।
यातनासु यमस्योग्र गर्भसङ्क्रमणेषु च ।६८।

देखो, कहां तो कफ आदि अत्यन्त घृणित पदार्थ रूप यह देह और कहाँ कान्ति, शोभा, सौन्दर्य एवं रमणीयतादि गुण ? ॥६२॥ यदि कोई मूर्ख इस मांस, रक्त, पीव, विष्ठा, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डियों के ढाँचे रूपी इस देह से प्रीति कर सकता है तो वह नरक से भी प्रेम कर सकता है ॥६३॥ शीत के शमनार्थ अग्नि, पिपासा की शान्ति के लिये जल और क्षुधा की शान्ति के लिये भात सुख देने वाला होता है तथा इनके प्रतिपक्षी जलादि भी अपने विलोम अग्नि आदि के कारण ही सुख देने वाले होते हैं ॥६४॥ विषयों का जितना सचय किया जाय, उतना ही मनुष्य के चित्त को दुःखदायी होता है ॥६५॥ मनुष्य अपने को अच्छे लगने वाले जितने सम्बन्धों की वृद्धि करता है, वह उसके लिये उतने ही अधिक हृदय-कंटक सिद्ध होते हैं ॥६६ । घर की सभी सामग्री परदेश में कहीं रहने पर भी चित्त मे स्थिर रहती है तथा उसी में उन्हें नष्ट करने और भस्म करने के साधन भी स्थित रहते हैं ॥६७॥ इस प्रकार अपने जीवन में तो घोर दुःख की प्राप्ति होती ही है, मरणोपरान्त भी यम-यातनायें और गर्भवास की यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं ॥६८॥

गर्भेषु सुखलेशोऽपि भवद्भिरनुमीयते ।
यदि तत्कथ्यतामेव सर्वं दुःखमयं जगत् ।६९।
तदेवमतिदुःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे ।
भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणः ।७०।
माजानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः ।
जरायौवनजन्माद्या धर्मा देहस्य नात्मनः ।७१।
बालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा ।
युवाहं वार्द्धके प्राप्ते करिष्याम्यात्मनो हितम् ।७२।
वृद्धोऽहं मम कार्याणि समस्तानि न गोचरे ।
किं करिष्यामि मन्दात्मा समर्थेन न यत्कृतम् ।७३।

एवं दुराशया क्षिप्तमानसः पुरुषः सदा ।
श्रेयसोऽभिमुखं याति न कदाचित्पिपासितः ॥७४॥
बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः ।
अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥७५॥
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा ।
बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥७६॥

गर्भ में रहने के समय क्या तुम्हें सुखाभास हो सकता है ? सम्पूर्ण विश्व इसी प्रकार दुःखी रहता है ॥६६॥ इसलिये दुःखों के परमपार इस भव-सागर से केवल एक भगवान् विष्णु ही सब की परमगति है, मेरा यह वचन नितान्त सत्य है ॥७०॥ यदि तुम कहो कि अभी तो हम बालक ही हैं तो आत्मा सभी अवस्थाओं में समान रहता है, वृद्धावस्था, युवावस्था अथवा जन्मादि तो शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं हैं ॥७१॥ जो मनुष्य इन दुराशाओं में मत्त रहता है कि अभी मैं बालक हूँ मेरे खेलने के दिन हैं, यौवनवस्था प्राप्त होने पर कल्याण-साधन करूँगा, फिर सोचता है कि अभी तो मेरी युवावस्था ही है, बुढ़ापा आने पर कुछ करूँगा और जब बुढ़ापा आ जाता है तब सोचता है कि मेरी कर्मेन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हैं, इन्द्रियाँ कर्मों में प्रवृत्त हो नहीं होती, तो क्या करूँ ? पहिले ही सशक्त रहने पर कुछ किया जा सकता था । इस प्रकार वह अपने कल्याण मार्ग पर कभी नहीं चलता, केवल भोग की तृष्णा में ही लगा रहता है ॥७२-७४॥ मूर्ख मनुष्य बाल्यावस्था में खेलते-कूदते, यौवनावस्था में विषयों में फँसे रहते और वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाते हैं । इसलिये विवेकी मनुष्य को बाल, युवा या वृद्धावस्था का विचार न करके, बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण कार्य में लग जाना चाहिये ॥७५-७६॥

तदेतद्वो मयाख्यातं यदि जानीत नानृतम् ।
तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्यतां बन्धमुक्तिदः ॥७७॥
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् ।
पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥७८॥

सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मैत्री दिवानिशम् ।
भवता जायतामेव सर्वक्लेशान्प्रहास्यथ ।७९।
तापत्रयेणाभिहत यदेतदखिल जगत् ।
तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेष प्राज्ञ करोति कः ।८०।
अथ भद्राणिभूतानि हीनशक्तिरह परम् ।
मुद तदापि कुर्वीत हानिर्द्वेषफल यत ।८१।
बद्धवैराणि भूतानि द्वेष कुर्वन्ति चेत्ततः ।
सुशोच्यान्यतिमोहेन व्याप्तानीति मनीषिणाम् ।८२।
एते भिन्नहशा दैत्या विकल्पा कथिता मया ।
कृत्वाभ्युपगम तत्र सक्षेप श्रूयता मम ।८३।

यदि तुम मेरी बात को मिथ्या नही समझते तो मेरी सन्तुष्टि के लिये ही मोक्षदायक भगवान् विष्णु का स्मरण करो ।।७७।। उस कार्य मे कोई परिश्रम भी नही है तथा स्मरणमात्र से ही वे अत्यन्त शुभ फल प्रदान करते हैं और जो उनका दिन-रात स्मरण करते हैं, उनके पापो का भी क्षय हो जाता है ।।७८।। सब भूतो में स्थित उन भगवान् मे तुम्हारी बुद्धि दिन-रात लगी रहे और उनमे निरन्तर प्रेम-बुद्धि हो तो इससे सभी क्लेश दूर हो जाएँगे ।।७९।। जब यह सम्पूर्ण विश्व त्रिताप से जल रहा है तो इन शोचनीय प्राणियो से कौन द्वेष करना चाहेगा ? ।।८०।। यह सोच कर कि दूसरे तो आनन्द मे हैं, मैं ही अशक्त हूँ, दु ख न माने, क्योंकि द्वेष का परिणाम भी दु ख ही है ।।८१।। यदि कोई वैर भाव के कारण द्वेष करता भी हो, तो वह महामोह मे फँसा हुआ प्राणी विचारवानों की दृष्टि म शोचनीय ही है ।।८२।। हे दैत्य बालको ! मैंने विभिन्न दृष्टिकोण तुम्हारे सामने रखे हैं, अब उनका सक्षिप्त समन्वय सुनो ।।८३।।

विस्तार सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिद जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ।।८४।।
समुत्सृज्यासुर भाव तस्माद्यूय तथा वयम् ।
तथा यत्नकरिष्यामोयथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ।८५।

या नाग्निना न चार्केण नेन्दुना च न वायुना ।
पर्जन्यवरुणाभ्यां वा न सिद्धैर्न च राक्षसैः ।८६।
न यक्षैर्न च दैत्येन्द्रैर्नोरगैर्न च किन्नरैः ।
न मनुष्यैर्न पशुभिर्दोषैर्नैवात्मसम्भवैः ।८७।
ज्वराक्षिरोगातीसारप्लीहगुल्मादिकैस्तथा ।
द्वेषेर्ष्यामत्सराद्यैर्वा रागलोभादिभिः क्षयम् ।८८।
न चान्यैर्नीयते कैश्चिन्नित्या यात्यन्तनिर्मला ।
तामाप्नोत्यमले न्यस्य केशवे हृदयं नरः ।८९।
असारसंसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि ।
सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ।९०।
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।
समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ।९१।

इस विश्व को सब भूतमय भगवान् का विस्तार ही समझो । क्योंकि विचक्षण पुरुष इसमें अभेद मानते हुए आत्म रूप ही देखते हैं ॥८४॥ इसलिये तुम-तुम को भी दैत्य-भाव का त्याग करके शान्ति लाभ करने का यत्न करना चाहिये ।८५। क्योंकि जो शान्ति अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, वरुण, सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, उरग, किन्नर, मनुष्यों और पशुओं के अपने मन से उत्पन्न दोषों से, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा और गुल्मादि रोगों से तथा द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी भी अन्य भाव से नष्ट नहीं हो सकती, वह अत्यन्त निर्मल परम शान्ति भगवान् केशव में मन लगाने से ही प्राप्त हो सकती है॥८६-८९॥ हे दैत्यपुत्रो ! मेरा आग्रह है कि इन सांसारिक विषयों से कभी प्रसन्न मत होओ, तुम सबके प्रति समान दृष्टि रखो, क्योंकि सर्व समत्वता ही भगवान् अच्युत की परम आराधना है ॥९०॥ उन अच्युत के प्रसन्न होने पर संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, धर्म, अर्थ और काम तो अत्यन्त ही तुच्छ हैं, उस ब्रह्म रूप महावृक्ष के आश्रय से तो अवश्य ही तुम महाफल को प्राप्त करोगे ॥९१॥



अठारहवाँ अध्याय

तस्यैता दानवाश्चेष्टा दृष्ट्वा दैत्यपतेर्भयात् ।
आचचक्षु स चोवाच सूदानाहूय सत्वरः ॥१॥
हे सूदा मम पुत्रोऽसावन्यपामपि दुर्मति ।
कुमार्गदेशिको दुष्टो हन्यतामविलम्बितम् ॥२॥
हालाहल विष तस्य सर्वभक्षषु दीयताम् ।
अविज्ञातमसौ पापो हन्यता मा विचार्यताम् ॥३॥
ते तथैव ततश्चक्रु प्रह्लादाय महत्मने ।
विषदान यथाज्ञप्त पित्रा तस्य महात्मन ॥४॥
हालाहल विष घोरमनन्तोच्चारणेन स ।
अभिमन्त्र्य सहान्नेन मैत्रेय बुभुजे तदा ॥५॥
अविकार सतद्भुक्त्वा प्रह्लादः स्वस्थमानस ।
अनन्तख्यातिनिर्वीर्यं जरयामास तद्विषम् ॥६॥
तत सूदा भयत्रस्ता जीर्णं दृष्ट्वा महद्विषम् ।
दैत्येश्वरमुपागम्य प्रणिपत्यैदमब्रुवन् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—दैत्यों ने प्रह्लाद की ऐसी चेष्टा देख कर दैत्यराज के भय के कारण उन्होंने वहाँ जाकर सब बातें उससे कहीं और तब हिरण्यकशिपु ने अपने रसोइयों को बुला कर उनसे कहा ॥१॥ हिरण्यकशिपु बोला—हे रसोइयो ! मेरा यह पुत्र इतना दुष्ट और दुर्मति है कि दूसरों को भी कुमार्ग का उपदेश करता है इसलिये तुम इसका शीघ्र ही विनाश करो ॥२॥ तुम उसे बिना बताए उसके सब खाद्य पदार्थों में हलाहल विष डाल कर उसे बिना कुछ सोचे विचारे भक्षण करा दो, जिससे वह पापी मर जाय ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा—दैत्यराज की आज्ञानुसार उन रसोइयों ने महात्मा प्रह्लाद को विष दे दिया ॥४॥ हे मैत्रेयजी ! वह उस घोर विष को भगवान् का नाम लेकर भक्षण कर गए ॥५॥ जो विष भगवन्नाम के प्रभाव से तेजहीन हो गया था, उसे वह बिना विकार के पचा गये और स्वस्थ चित्त रहे ॥६॥ उस महान्

पिता च मम सर्वस्मिञ्जगत्युत्कृष्टचेष्टितः ।
एतदप्यवगच्छामि सत्यमत्रापि नानृतम् ॥१५॥
गुरूणामपि सर्वेषां पिता परमको गुरुः ।
यदुक्तं भ्रान्तिस्तत्रापि स्वल्पापि हि न विद्यते ॥१६॥
पिता गुरुर्न सन्देहः पूजनीयः प्रयत्नतः ।
तत्रापि नापराध्यामीत्येवं मनसि मे स्थितम् ॥१७॥
यत्त्वेतत्किमनन्तेनेत्युक्तं युष्माभिरीदृशम् ।
को ब्रवीति यथान्याय्यं किं तु नैतद्वचोऽर्थवत् ॥१८॥
इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी तेषां गौरवयन्त्रितः ।
प्रहस्य च पुनः प्राह किमनन्तेन साध्विति ॥१९॥
साधु भो किमनन्तेन साधु भो गुरवो मम ।
श्रूयतां यदनन्तेन यदि खेदं न यास्यथ ॥२०॥

प्रह्लाद ने कहा—हे महाभागो ! आपका कथन यथार्थ है । भगवान् मरीचि का यह कुल सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है, इसमें अन्यथा नहीं है ॥१४॥ मुझे यह भी ज्ञात है कि मेरे पिताजी भी सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त पराक्रमी हैं, इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है ॥१५॥ सभी गुरुओं में पिता ही परम गुरु हैं, आपके इस वचन में भी मुझे शंका नहीं है ॥१६॥ पिताजी परम गुरु एवं पूजनीय हैं, यह भी निःसन्देह सत्य है तथा मैं भी उनके प्रति किसी अपराध में प्रवृत्त नहीं हूँ ॥१७॥ परन्तु, आपका यह कथन कि अनन्त से क्या प्रयोजन है, क्या कभी न्यायोचित माना जा सकता है ? मैं इसे ठीक नहीं मानता ॥१८॥ यह कह कर उन पुरोहितों का मान रखने के लिए पहिले तो वह चुप हो गये और फिर हँसते हुए बोले—अनन्त से क्या प्रयोजन ! आपके इस विचार को साधुवाद है ॥१९॥ हे गुरुओ ! मुझे अनन्त से क्या प्रयोजन ? आपके इस विचार को धन्यवाद । यदि आप बुरा न मानें तो अनन्त से जो प्रयोजन है, उसे कहता हूँ, कृपया सुनिये ॥२०॥

धर्मार्थकाममोक्षाश्च पुरुषार्था उदाहृताः ।
चतुष्टयमिदं यस्मात्तस्मात्किं किमिदं वचः ॥२१॥

सबके अन्त करण में स्थित हैं ॥२७॥ वे ही भोक्ता तथा भोज्य हैं, वही जगदीश्वर हैं। हे गुरुदेवो ! यदि बाल्यस्वभाव वश मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो तो आप कृपया क्षमा करें ॥२८॥

दह्यमानस्त्वमस्माभिरग्निना बाल रक्षित. ।
भूयो न वक्ष्यसीत्येव नैव ज्ञातोऽस्यबुद्धिमान् ।२९।
यदास्मद्वचनान्मोहग्राह न त्यक्ष्यते भवान् ।
ततः कृत्या विनाशाय तव सृक्ष्याम दुर्मते ।३०।
कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तु: कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत्साधु समाचरन् ।३१।
कर्मणा जायते सर्वं कर्मैव गतिसाधनम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधुकर्म समाचरेत् ।३२।
इत्युक्तास्तेन ते क्रुद्धा दैत्यराजपुरोहिताः ।
कृत्यामुत्पादयामासुर्ज्वालामालोज्ज्वलाकृतिम् ।३३।
अतिभीमा समागम्य पादन्यासक्षतक्षिति. ।
शूलेन साधुसङ्क्रुद्धा त जघानाशु वक्षसि ।३४।
तत्तस्य हृदयं प्राप्य शूल बालस्य दीप्तिमत् ।
जगाम खण्डित भूमौ तत्रापि शतधा गतम् ।३५।

पुरोहितों ने कहा—हे बालक ! हम तो समझते थे कि तू हमारी बात मान कर ऐसी बात न कहेगा, इसीलिये तुझे भस्म होने से बचाया था। हमें क्या मालुम था कि तू ऐसा मतिहीन है ? ॥२९॥ अरे खोटी बुद्धि वाले ! यदि तू अपने इस मोहमय दुराग्रह का त्याग न करेगा तो हम तुझे मारने के लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे ॥३०॥ प्रह्लाद ने कहा—कौन किसके द्वारा मारा जाता या रक्षित होता है ? शुभाशुभ आचरणों से यह आत्मा स्वयं अपनी रक्षा अथवा विनाश में समर्थ है ॥३१॥ कर्मों के कारण ही सब का जन्म तथा शुभाशुभ गतियाँ होती हैं, इसलिये सदा शुभ कर्म करने का ही प्रयत्न करना उचित है ॥३२॥ श्री पराशर जी ने कहा—प्रह्लाद की बात सुन कर दैत्यराज के वे पुरोहित क्रोध में भर गये

प्राप्त करें ॥४०॥ यदि [redacted] उन सर्वगत भगवान् को अपने विपक्षियों में भी स्थित देखता हूँ तो यह पुरोहितगण अवश्य ही जीवन को प्राप्त हों ॥४१॥

ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः ।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि ॥४२॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित् ।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ॥४३॥
इत्युक्तास्तेन ते सर्वे संस्पृष्टाश्च निरामयाः ।
समुत्तस्थुर्द्विजा भूयस्तमूचुः प्रश्रयान्वितम् ॥४४॥
दीर्घायुरप्रतिहतो बलवीर्यसमन्वितः ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यैर्युक्तो वत्स भवोत्तमः ॥४५॥
इत्युक्त्वा तं ततो गत्वा यथावृत्तं पुरोहिताः ।
दैत्यराजाय सकलमाचचक्षुर्महामुने ॥४६॥

जो मेरी हत्या के लिये आये, जिन्होंने मुझे विष भक्षण कराया, जिन्होंने मुझे अग्नि में दग्ध किया, जिन्होंने दिग्गजों से रुँधवाया अथवा जिन्होंने सर्पों से दंशित कराया, मैं उन सब के प्रति समान मैत्री और सदा निष्पाप बुद्धि से रहा हूँ तो मेरे उस सत्य के कारण इन दैत्य-पुरोहितों को जीवन प्राप्त हो ॥४२-४३॥ श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा कहते हुए उन्होंने पुरोहितों को स्पर्श किया, जिससे वे सब तुरत ही स्वस्थ होकर उठ बैठे और विनय से झुकते हुए उस बालक से बोले ॥४४॥ पुरोहितों ने कहा—हे वत्स ! तू परम श्रेष्ठ है। तू दीर्घायुष्य, द्वन्द्व रहित, बल-वीर्य युक्त एवं पुत्र, पौत्र, धन वैभव से सम्पन्न होगा ॥४५॥ श्री पराशरजी बोले—हे महामुने ! यह कह कर वे पुरोहित दैत्य राज हिरण्यकशिपु के पास गये और उसे सब समाचार यथावत् सुना दिया ॥४६॥



को स्थित मान कर किसी की बुराई न तो सोचता, न कहता और न करता हूँ ॥७॥

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा ।
सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥८॥
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी ।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥६॥
इति श्रुत्वा स दैत्येन्द्रः प्रासादशिखरे स्थितः ।
क्रोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान् ॥१०॥
दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात् ।
गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्गसंहतिः ॥११॥
ततस्तं चिक्षिपुः सर्वे बालं दैतेयदानवाः ।
पपात सोऽप्यधः क्षिप्तो हृदयेनोद्वहन्हरिम् ॥१२॥
पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे ।
भक्तियुक्तं दधारैनमुपसङ्गम्य मेदिनी ॥१३॥
ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीर्णास्थिपञ्जरम् ।
हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बरं मायिनां वरम् ॥१४॥

इस प्रकार श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैहिक, दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दुःख कैसे मिल सकता है ? ॥८॥ इस प्रकार भगवान् को सर्वभूतात्मक जानकर सभी प्राणियों में विचलित न होने वाली प्रीति करनी चाहिये ॥६॥ श्रीपराशरजी ने कहा—अपने भवन की उच्च अट्टालिका पर स्थित उस दैत्यराज ने प्रह्लाद की बात सुनी तो क्रोधान्ध हो उठा और अपने अनुचर दैत्यों से कहा ॥१०॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—इस अत्यन्त दुरात्मा को सौ योजन ऊँचे भवन से नीचे गिराओ, जिससे पर्वत शिलाओं पर गिर कर इसका शरीर चूर-चूर हो जाय ॥११॥ यह सुनकर उन दानवों ने प्रह्लाद को ऊँचे भवन से गिराया, उस समय वह हरि-स्मरण करते हुए गिरे ॥१२॥ भगवद्भक्त प्रह्लाद के गिरते समय संसार को धारण करने वाली पृथ्वी ने ऊँचे उठकर उन्हें अपनी गोद में ले लिया ॥१३॥ उन्हें इस प्रा

बिना किसी चोट के स्वस्थ देखकर हिरण्यकशिपु ने घोर मायावी शम्बरासुर से कहा ॥१४॥

नास्माभिः शक्यते हन्तुमसौ दुर्बुद्धिबालकः ।
मायां वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषूदय ॥१५॥
सूदयाम्येष दैत्येन्द्र पश्य मायाबलं मम ।
सहस्रमत्र मायानां पश्य कोटिशतं तथा ॥१६॥
ततः स ससृजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः ।
विनाशमिच्छन्दुर्बुद्धिः सर्वत्र समदर्शिनि ॥१७॥
समाहितमतिर्भूत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः ।
मैत्रेय सोऽपि प्रह्लादः सस्मार मधुसूदनम् ॥१८॥
ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम् ।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् ॥१९॥
तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना ।
बालस्य रक्षता देहमेकैकं च विशोधितम् ॥२०॥
संशोषकं तथा वायुं दैत्येन्द्रस्त्विदमब्रवीत् ।
शीघ्रमेष ममादेशाद् दुरात्मा नीयतां क्षयम् ॥२१॥
तथेत्युक्त्वा तु सोऽप्येनं विवेश पवनो लघु ।
शीतोऽतिरूक्षः शोषाय तद्देहस्यातिदुःसहः ॥२२॥

हिरण्यकशिपु ने कहा—यह खोटी बुद्धि वाला बालक हमारे द्वारा नहीं मारा जा सका, आप माया के ज्ञाता हैं, अतः अपनी माया से ही इसका संहार कर डालो ॥१५॥ शम्बरासुर ने कहा—हे दैत्यराज इस बालक को मैं अभी समाप्त किये देता हूँ, तुम मेरा प्रभाव देखना, मैं आपको कैसी अद्भुत हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखाऊँगा ॥१६॥ श्री पराशरजी ने कहा—तब उस मूढ़मति शम्बर ने सबको समान भाव से देखने वाले प्रह्लाद को नष्ट करने के लिये अनेक मायाओं की रचना की ॥१७॥ परन्तु, हे मैत्रेयजी ! प्रह्लाद उस शम्बरासुर के प्रति भी निर्वैर भाव से रहते हुए केवल भगवान् का ही स्मरण करते रहे ॥१८॥ उस समय प्रभु-आज्ञा से ज्वाल-मालाओं से युक्त

को स्थित मान कर किसी की बुराई न तो सोचता, न कहता और न करता हूं ॥७॥

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा ।
सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥८॥
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी ।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥९॥
इति श्रुत्वा स दैत्येन्द्रः प्रासादशिखरे स्थितः ।
क्रोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान् ॥१०॥
दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात् ।
गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्गसंहतिः ॥११॥
ततस्तं चिक्षिपुः सर्वे बालं दैतेयदानवाः ।
पपात सोऽप्यधः क्षिप्तो हृदयेनोद्वहन्हरिम् ॥१२॥
पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे ।
भक्तियुक्तं दधारैनमुपसङ्गम्य मेदिनी ॥१३॥
ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीर्णास्थिपञ्जरम् ।
हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बरं मायिनां वरम् ॥१४॥

इस प्रकार श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैहिक, दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दुःख कैसे मिल सकता है ? ॥८॥ इस प्रकार भगवान् को सर्वभूतात्मक जानकर सभी प्राणियों में विचलित न होने वाली प्रीति करनी चाहिये ॥९॥ श्रीपराशरजी ने कहा—अपने भवन की उच्च अट्टालिका पर स्थित उस दैत्यराज ने प्रह्लाद की बात सुनी तो क्रोधान्ध हो उठा और अपने अनुचर दैत्यों से कहा ॥१०॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—इस दुरात्मा को सौ योजन ऊँचे भवन से नीचे गिराओ, जिससे पर्वत शिलाओं पर गिर कर इसका शरीर चूर-चूर हो जाय ॥११॥ यह सुनकर उन दानवों ने प्रह्लाद को ऊँचे भवन से गिराया, उस समय वह हरि-स्मरण करते हुए गिरे ॥१२॥ भगवद्भक्त प्रह्लाद के गिरते समय संसार को धारण करने वाली पृथ्वी ने ऊँचे उठकर उन्हें अपनी गोद में ले लिया ॥१३॥ उन्हें इस प्रकार

विना किसी चोट के स्वस्थ देखकर हिरण्यकशिपु ने घोर मायावी शम्बरासुर से कहा ॥१४॥

नास्माभिः शक्यते हन्तुमसौ दुर्बुद्धिबालकः ।
माया वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषूदय ।१५।
सूदयाम्येव दैत्येन्द्र पश्य मायाबलं मम ।
सहस्रमत्र मायानां पश्य कोटिशतं तथा ।१६।
ततः [illegible] ससृजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः ।
विनाशमिच्छन्दुर्बुद्धिः सर्वत्र समदर्शिनि ।१७।
समाहितमतिर्भूत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः ।
मैत्रेय सोऽपि प्रह्लादः सस्मार मधुसूदनम् । १८।
ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम् ।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् ।१९।
तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना ।
बालस्य रक्षता देहमेकैकं च विशोधितम् ।२०।
संशोषकं तथा वायु दैत्येन्द्रस्त्विदमब्रवीत् ।
शीघ्रमेष ममादेशाद् दुरात्मा नीयतां क्षयम् ।२१।
तथेत्युक्त्वा तु सोऽप्येनं विवेश पवनो लघु ।
शीतोऽतिरूक्षः शोषाय तद्देहस्यातिदुःसहः ।२२।

हिरण्यकशिपु ने कहा—यह खोटी बुद्धि वाला बालक हमारे द्वारा नहीं मारा जा सका, आप माया के ज्ञाता हैं, अतः अपनी माया से ही इसका संहार कर डालो ॥१५॥ शम्बरासुर ने कहा—हे दैत्यराज इस बालक को मैं अभी समाप्त किये देता हूँ, तुम मेरा प्रभाव देखना, मैं आपको कैसी अद्भुत हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखाऊँगा ॥१६॥ श्री पराशरजी ने कहा—तब उस मूढ़मति शम्बर ने सबको समान भाव से देखने वाले प्रह्लाद को नष्ट करने के लिये अनेक मायाओं की रचना की ॥१७॥ परन्तु, हे मैत्रेयजी ! प्रह्लाद उस शम्बरासुर के प्रति भी निर्वैर भाव से रहते हुए केवल भगवान् का ही स्मरण करते रहे ॥१८॥ उस समय प्रभु-आज्ञा से ज्वाल-मालाओं से युक्त

सुदर्शन चक्र उनकी रक्षा के लिये आ उपस्थित हुआ ॥१९॥ उस शीघ्र गति वाले चक्र ने बालक की रक्षा करते हुए, असुर की हजारों मायाओं को छिन्न भिन्न कर दिया ॥२०॥ यह देखकर दैत्यराज ने सर्वशोषक वायु को उस बालक को शीघ्र ही नष्ट कर देने की आज्ञा दी। इसलिये उस अत्यन्त शीतल रूप असहनीय वायु ने प्रह्लाद के देह को सुखाने के लिये उसमें प्रवेश किया ॥२१-२२॥

तेनाविष्टमथात्मान स बुद्ध्वा दैत्यबालक ।
हृदयेन महात्मानं दधार धरणीधरम् ।२३।
हृदयस्थस्ततस्तस्य त वायुमतिभीषणम् ।
पपौ जनार्दनः क्रुद्ध स ययौ पवन· क्षयम् ।२४।
क्षीणासु सर्वमायासु पवने च क्षय गते ।
जगाम सोऽपि भवन गुरोरेव महामति ।२५।
अहन्यहन्यथाचार्यो नीति राज्यफलप्रदाम् ।
ग्राहयामास त बाल राज्ञामुशनसा कृताम् ।२६।
गृहीतनीतिशास्त्र त विनीत च यदा गुरु· ।
मेने तदैन तत्पित्रे कथयामास शिक्षितम् ।२७।
गृहीतनीतिशास्त्रस्ते पुत्रो दैत्यपते कृत ।
प्रह्लादस्तत्त्वतो वेत्ति भार्गवेण यदीरितम् ।२८।

जब प्रह्लाद ने अपने देह में वायु को प्रविष्ट हुआ जाना, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् को हृदय में धारण किया ॥२३॥ उनके हृदय स्थित भगवान् ने क्रोध पूर्वक उस भीषण वायु का पान करके उसे क्षीण कर दिया ॥२४॥ इस प्रकार सब मायाओं और वायु के नष्ट होने पर बुद्धिमान प्रह्लाद अपने गुरु गृह को गये ॥२५॥ फिर गुरुजी ने उन्हें शुक्राचार्य प्रणीत राज्यफल देने वाली राज नीति का अध्ययन आरम्भ कराया ॥२६॥ और जब उन्हें नीतिशास्त्र में पारगत तथा विनय युक्त हुआ देखा तब उनके पिता दैत्यराज के पास जाकर गुरुजी ने कहा—अब यह सुशिक्षित हो गया है ॥२७॥ आचार्य ने कहा—

दैत्यपते ! तुम्हारे पुत्र को हमने पूर्णतया नीति-निपुण कर दिया है, अब वह शुक्राचार्यजी के कथन को तत्वपूर्वक जानता है ॥२८॥

मित्रेषु वर्त्तेत कथमरिवर्गेषु भूपतिः ।
प्रह्लाद त्रिषु लोकेषु मध्यस्थेषु कथं चरेत् ।२६।
कथं मन्त्रिष्वमात्येषु बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
चारेषु पौरवर्गेषु शङ्कितेष्वितरेषु च ।३०।
कृत्याकृत्यविधानञ्च दुर्गाटविकसाधनम् ।
प्रह्लाद कथ्यतां सम्यक् तथा कण्टकशोधनम् ।३१।
एतच्चान्यच्च सकलमधीतं भवता यथा ।
तथा मे कथ्यतां जातुं तवेच्छामि मनोगतम् ।३२।
प्रणिपत्य पितुः पादौ तदा प्रश्रयभूषणः ।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं कृताञ्जलिपुटस्तथा ।३३।
ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संशयः ।
गृहीतन्तु मया किन्तु न सदेतन्मतम्मम ।३४।
साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथापरौ ।
उपायाः कथिताः सर्वमित्रादीनां च साधने ।३५।

हिरण्यकशिपु ने कहा—हे पुत्र प्रह्लाद ! राजा को अपने मित्रों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए और शत्रुओं के प्रति कैसा ? तथा तीनों लोकों में जो मध्यस्थ हों, उनसे कैसा आचरण करना उचित है ? ॥२६॥ मन्त्रियों या अमात्यों से कैसा व्यवहार करे, बाहरी सेवकों, अन्तःपुर के भृत्यों, गुप्तचरों, नागरिकों, शंकितों अथवा अन्यान्य व्यक्तियों से प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार करे ॥३०॥ करने योग्य और न करने योग्य कार्यों का विधान कैसे हो ? दुर्ग और आटविक आदि को कैसे वश में करे तथा गुप्तशत्रु रूप कंटक को किस प्रकार दूर करे ? ॥३१॥ यह सब तथा इसके अतिरिक्त जो जो तूने सीखा है, वह मुझे सुना, क्योंकि तेरे मनोगत भाव को मैं जानना चाहता हूँ ॥३२॥ श्रीपराशरजी ने कहा—यह सुनकर विनय रूप आभूषण वाले प्रह्लाद ने अपने पिता को प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए

कहा ॥३३॥ प्रह्लाद बोले—हे पिताजी ! गुरुजी ने मुझे सभी विषयों की शिक्षा दी है और मैंने उन्हें हृदयगत भी कर लिया है, परन्तु मैं उन नीतियों को ठीक नहीं समझता ॥३४॥ साम, दान, दण्ड, भेद, यह चार उपाय मित्रादि को वश मे करने के लिये कहे गये है ॥३५॥

तानेवाहं न पश्यामि मित्रादींस्तात मा क्रुध. ।
साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम् ।३६।
सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ।३७।
त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चास्ति सः ।
यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक्कुतः ।३८।
तदेभिरलमत्यर्थं दुष्टारम्भोक्तिविस्तरैः ।
अविद्यान्तर्गतैर्यत्नः कर्त्तव्यस्तात शोभने ।३९।
विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात जायते ।
बालोऽग्निं किं न खद्योतमसुरेश्वर मन्यते ।४०।
तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।४१।
तदेतदवगम्याहमसारं सारमुत्तमम् ।
निशामय महाभाग प्रणिपत्य ब्रवीमि ते ।४२।

परन्तु हे पिताजी ! आप क्रोधित न हों, मुझे न कोई शत्रु दिखाई देता है न मित्रादि ही दिखाई देते हैं। हे महाबाहो ! साध्य के अभाव में इन साधनों से लाभ ही क्या है ? ॥३६॥ जो सर्वभूतात्मक, जगन्मय एवं जगन्नाथ हैं, उन परमात्मा गोविन्द में शत्रु-मित्र का भेद ही कहाँ है ? ॥३७॥ वह भगवान् तो आप मे, मुझमें, सब मे तथा सर्वत्र स्थित हैं, फिर मित्र-शत्रु के भेद को स्थान ही कहाँ होगा ? ॥३८॥ इसलिए अविद्या से उत्पन्न इस निरर्थक वाग्जाल को त्याग कर अपने भले के लिये ही यत्नशील होना चाहिये ॥३९॥ अज्ञानवश ही मनुष्य की बुद्धि अविद्या मे लगती है, क्या अज्ञान के वशीभूत हुआ बालक खद्योत को ही अग्नि नहीं मान लेता ? ॥४०॥ बन्धन

का कारण न हो, वही कर्म है और मोक्ष की सिद्ध करने वाली हो वही विद्या है। इससे भिन्न कर्म व्यर्थ परिश्रम रूप और भिन्न विद्यायें केवल कला-कौशल रूप ही हैं ॥४१॥ हे महाभाग! इस प्रकार मैं इन सब को असार समझता हूँ और अब आपको प्रणाम करके श्रेष्ठ सार का वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ॥४२॥

न विन्दति को राज्यं धनं नाभिवाञ्छति।
तथापि भाग्यमेवैतद्भुवं प्राप्यते नरैः ॥४३॥
सर्व एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः।
तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भूतिहेतवः ॥४४॥
जडानामविवेकानामशूराणामपि प्रभो।
भाग्यभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ॥४५॥
तस्माद्यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम्।
यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमपि चेच्छता ॥४६॥
देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः।
रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥४७॥
एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥४८॥
एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन्प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥४९॥

कौन राज्य प्राप्त करना नहीं चाहता? किसे धन प्राप्ति की इच्छा नहीं होती? फिर भी इनकी प्राप्ति उन्हीं को होती है, जिन्हें यह प्राप्त होने वाले होते हैं ॥४३॥ महत्त्व को सभी प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु वैभव प्राप्त कराने वाला उद्यम नहीं, भाग्य ही होता है ॥४४॥ हे प्रभो! जड़, विवेकहीन, बलहीन, नीतिज्ञान-शून्य को भी भाग्य से विविध प्रकार के भोग और राज्यादि की प्राप्ति सहसा हो जाती है ॥४५॥ इसलिये जो महान् वैभव का आकांक्षी हो, उसे पुण्यों का संचय करना चाहिये तथा जो मोक्ष की कामना करता हो उसे समत्व लाभ में लगना चाहिये ॥४६॥ देवता, मनुष्य

पशु, पक्षी, वृक्ष, सरीसृपादि भगवान् से भिन्न होते हुए भी यथार्थ मे उन्ही अनन्त भगवान् के स्वरूप हैं ॥४७॥ इस बात के ज्ञाता पुरुष को सम्पूर्ण विश्व आत्मवत् देखना चाहिये, क्यो यह सब विश्व रूप धारण किये हुए भगवान् स्वय ही है ॥४८॥ ऐसा ज्ञान हो जाने पर भगवान् प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न होने पर सभी क्लेशो का नाश होता है ॥४९॥

एतच्छ्रुत्वा तु कोपेन समुत्थाय वरासनात् ।
हिरण्यकशिपुः पुत्रं पदा वक्षस्यताडयत् ।५०।
उवाच च स कोपेन सामर्षः प्रज्वलन्निव ।
निष्पिष्य पाणिना पाणिं हन्तु कामो जगद्यथा ।५१।
हे विप्रचित्ते हे राहो हे वलैष महार्णवे ।
नागपाशैर्दृढैर्बद्ध्वा क्षिप्यता मा विलम्ब्यताम् ।५२।
अन्यथा सकला लोकास्तथा दैतेयदानवाः ।
अनुयास्यन्ति मूढस्य मतमस्य दुरात्मनः ।५३।
बहुशो वारितोऽस्माभिरय पापस्तथाप्यरेः ।
स्तुतिं करोति दुष्टाना वध एवोपकारकः ।५४।
ततस्ते सत्वरा दैत्या वद्ध्वा त नागबन्धनैः ।
भर्तुराज्ञा पुरस्कृत्य चिक्षिपुः सलिलार्णवे ।५५।
ततश्चाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः ।
उद्वेलोऽभूत्पर क्षोभमुपेत्य च समततः ।५६।

श्रीपराशरजी ने कहा—इतना सुनते ही हिरण्यकशिपु अपने सिंहासन से उठा और उसने अपने पुत्र के हृदय पर पदाघात किया ॥५०॥ तथा क्रोध और अमर्ष से दग्ध होता हुआ, जैसे सम्पूर्ण विश्व को नष्ट कर देगा, वैसे हाथ मलता हुआ कहने लगा ॥५१॥ हिरण्यकशिपु बोला—हे विप्रचित्ते ! हे राहो ! हे बल ! तुम इसे नागपाश मे भले प्रकार बाँध कर महासागर मे डुबा दो, इस कार्य मे विलम्ब मत करो ॥५२॥ ऐसा न करने से सभी लोक तथा दैत्य-दानव आदि इस अविवेकी दुरात्मा के मत का अनुसरण करने लगेंगे ॥५३॥ हमारे द्वारा बार-बार निषेध करने पर भी यह दुष्ट हमारे शत्रु की ही प्रशसा कर

देता है। इसलिये ऐसे दुष्टों का वध कर देना ही उचित है॥५४॥ श्रीपराशरजी ने कहा—फिर उन दैत्यों ने अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार प्रह्लाद को उसी समय नागपाश में बाँधकर महासागर में डाल दिया॥५५॥ उससे महासागर में हलचली मच गयी और अत्यन्त क्षोभ के कारण उसमें बड़ी ऊँची लहरें उठने लगीं॥५६॥

भूर्लोकमखिलं दृष्ट्वा प्लाव्यमानं महाम्भसा।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यानिदमाह महामते॥५७॥
दैतेयाः सकलैः शैलैरत्रैव वरुणालये।
निश्छिद्रैः सर्वतः सर्वैश्चीयतामेष दुर्मतिः॥५८॥
नाग्निर्दहति नैवायं शस्त्रैश्छिन्नो न चोरगैः।
क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कृत्यया॥५९॥
न मायाभिर्न चैवोच्चात्पातितो न च दिग्गजैः।
बालोऽतिदुष्टचित्तोऽयं नानेनार्थोऽस्ति जीवता॥६०॥
तदेष तोयमध्ये तु समाक्रान्तो महीधरैः।
तिष्ठत्वब्दसहस्रान्तं प्राणान्हास्यति दुर्मतिः॥६१॥
ततो दैत्या दानवाश्च पर्वतैस्तं महोदधौ।
आक्रम्य चयनं चक्रुर्योजनानि सहस्रशः॥६२॥
स चितः पर्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः।
तुष्टावाह्निकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम्॥६३॥

हे महामते! महासागर के उमड़ते हुए जल से सम्पूर्ण पृथिवी को डूबी हुई देखकर दैत्यों से हिरण्यकशिपु कहने लगा॥५७॥ हिरण्यकशिपु बोला—हे दैत्यो! तुम इस दुर्बुद्धि को समुद्र के भीतर ही कहीं से भी खुला न रहने दो और सब ओर से पर्वतों से दबा डालो॥५८॥ अहो! यह न तो अग्नि से जला, न शस्त्रों से कटा, न सर्पों के डसने से मरा, न वायु, विष या कृत्या से ही नष्ट हुआ, न ऊपर से गिराने, दिग्गजों के रौंदने अथवा मायाओं द्वारा ही इसका कुछ बिगड़ा, परन्तु इस दुष्ट हृदय बालक के जीवन से कोई लाभ नहीं है॥५९-६०॥ इसलिये यह पर्वतों के भार से दबा हुआ सहस्रों वर्ष

तब समुद्र के जल में ही पड़ा रह कर कभी तो अपने प्राण का त्याग करेगा ॥६१॥ ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यों ने उस बालक के ऊपर पर्वतों का हजारों योजन विस्तृत ढेर कर दिया ॥६२॥ परन्तु वह महामति पर्वतों से लदे हुए समुद्र में पड़े रह कर केवल एकाग्र मन से भगवान् की स्तुति ही करते रहे ॥६३॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते सर्वलोकात्मन्नमस्ते तिग्मचक्रिणे ।६४।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।६५।
ब्रह्मत्वे सृजते विश्व स्थितौ पालयते पुनः ।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्य त्रिमूर्तये ।६६।
देवा यक्षासुरा. सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नरा ।
पिशाचा राक्षमाश्चैव मनुष्या. पशवस्तथा ।६७।
पक्षिण स्थावराश्चैव पिपीलिकसरीसृपा ।
भूम्यापोऽग्निर्नभो वायुः शब्द स्पर्शस्तथा रसः ।६८।
रूप गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणा ।
एतेषा परमार्थश्च सर्वमेतत्त्वमच्युत ।६९।
विद्याविद्ये भवान्सत्यमसत्य त्व विषामृते ।
प्रवृत्त च निवृत्त च कर्म वेदोदित भवान् ।७०।

प्रह्लाद ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे पुरुषोत्तम ! हे सर्व लोकात्मन् ! हे तीक्ष्णचक्रधर ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥६४॥ गो-ब्राह्मण के हितैषी ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जगत् का हित करने वाले भगवान् गोविन्द को नमस्कार है ॥६५॥ ब्रह्मा रूप विश्व के स्रष्टा, विष्णु रूप से पालक और रुद्र रूप से संहारक त्रिमूर्तिधारी भगवान् को नमस्कार है ॥६६॥ हे अच्युत ! आप ही देवता, यक्ष, असुर सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर चींटी, सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, नभ, वायु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण

में परमार्थिक स्वरूप है, यथार्थ में यह सब आप ही हैं ॥६७-६९॥ आपही विद्या, अविद्या, सत्य, असत्य, विष, अमृत तथा वेदों में कहे गये प्रवृत्त और निवृत्त कर्म हैं ॥७०॥

समस्तकर्मभोक्ता च कर्मोपकरणानि च ।
त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्मफलं च यत् ।७१।
मय्यन्यत्र तथान्येषु भूतेषु भुवनेषु च ।
तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंसूचिको प्रभो ।७२।
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याजकाः ।
हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ।७३।
रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं
ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदा-
स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ।७४।
तस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणानामगोचरे यत्परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय ।७५।
सर्वभूतेषु सर्वात्मन्या शक्तिरपरा तव ।
गुणाश्रया नमस्तस्यै शाश्वतायै सुरेश्वर ।७६।
यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा ।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या तां वन्दे स्वेश्वरीं पराम् ।७७।

हे विष्णो ! आप ही सब कर्मों के भोक्ता तथा भोग हैं और सब कर्मों के जितने भी फल हैं, वह सभी आप हैं ॥७१॥ मुझ सहित सभी प्राणियों और लोकों में आपका ही गुण तथा ऐश्वर्य व्याप्त है ॥७२॥ योगीजन आपका ही ध्यान करते और याज्ञिकगण आपका ही यजन करते हैं, आपही पितरों के रूप में कव्य और देवताओं के रूप में हव्य के भोक्ता हैं ॥७३॥ हे प्रभो ! यह ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल देह है उससे सूक्ष्म यह संसार और संसार से भी सूक्ष्म यह विभिन्न रूपधारी प्राणी हैं, प्राणियों से भी अत्यन्त सूक्ष्म उनका अन्तरात्मा है ॥७४॥ उससे भी परे जो सूक्ष्मादि विशेषणों से रहित आपका

अचिन्त्य रूप है, उस पुरुषोत्तम रूप आप प्रभु को नमस्कार है ॥७५॥ हे सर्वात्मन् ! सब भूतों में स्थित आपके गुण की आश्रिता जो पराशक्ति है, उस नित्यरूपिणी शक्ति को भी नमस्कार है ॥७६॥ जो मन, वाणी और विशेषणों से परे तथा ज्ञानियों के ज्ञान से परिच्छिन्न है, उस परम स्वतन्त्रा पराशक्ति की मैं वन्दना करता हूँ ॥७७॥

ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा ।
व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः ।७८।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने ।
नाम रूप न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ।७९।
यस्यावतार रूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः ।
अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ।८०।
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीश शुभाशुभम् ।
त सर्वसाक्षिणं विश्व नमस्ये परमेश्वरम् ।८१।
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिद जगत् ।
ध्येय. स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ।८२।
यत्रोतमेतत्प्रोत च विश्वमक्षरमव्ययम् ।
आधारभूत सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ।८३।
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः ।
यत्र सर्वं यत सर्व य. सर्वं सर्वसश्रयः ।८४।
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थित. ।
मत्तः सर्वमहं सर्व मयि सर्वं सनातने ।८५।
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसश्रयः ।
ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च पराः पुमान् ।८६।

उन वासुदेव भगवान् को सदा नमस्कार है, जिनके बिना कोई वस्तु नहीं है, तथा जो सभी से परे हैं ॥७८॥ जिनका न कोई रूप है, न नाम है, केवल अपनी ही सत्ता से उपलब्ध होते हैं उन महात्मा को बारम्बार नमस्कार है ॥७९॥ जिनके पर स्वरूप का ज्ञान न होने से ही देवगण उनके अवतरित

देही का भले प्रकार पूजन करते हैं, उन महान् आत्मा को नमस्कार है ॥८०॥ जो सभी के अन्तःकरण में रह कर सभी के शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा हैं, उन सर्वसाक्षी विश्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८१॥ जिनमें यह विश्व सर्वथा अभिन्न है, उन विष्णु को नमस्कार है। वह योगियों के ध्यान योग्य, विश्व के आदि कारण तथा अव्यय भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥८२॥ जिनमें यह जगत् ओत-प्रोत है और जो अक्षर, अव्यय और सर्वाधार हैं वह श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हों ॥८३॥ जिनमें सर्व प्रपंच स्थित है, जिनसे सब कुछ प्रकट हुआ है तथा जो सर्वाश्रय हैं, उन भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥८४॥ वे सर्वगत भगवान् अनन्त हैं, मेरे रूप में भी वही स्थित हैं, इसलिए इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति मुझ से होने के कारण मैं ही सब कुछ हूँ और यह सब मुझ सनातन में ही स्थित है ॥८५॥ मैं ही अक्षय, नित्य और आत्माश्रय रूप परमेश्वर हूँ तथा मैं ही विश्व के आदि अन्त में स्थित ब्रह्म नाम से विख्यात परम पुरुष हूँ ॥८६॥



बीसवाँ अध्याय

एवं सञ्चिन्तयन्विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज ।
तन्मयत्वमवाप्याग्र्यं मेने चात्मानमच्युतम् ॥१॥
विसस्मार तथात्मानं नान्यत्किञ्चिदजानत ।
अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत् ॥२॥
तस्य तद्भावनयोगात्क्षीणपापस्य वै क्रमात् ।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः ॥३॥
योगप्रभावात्प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे ।
चलत्युरगबन्धैस्तैर्मैत्रेय त्रुटितं क्षणात् ॥४॥
भ्रान्तग्राहगणः सोर्मिर्ययौ क्षोभं महार्णवः ।

चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ।५।
स च तं शैलसङ्घातं दैत्यैर्न्यस्तमथोपरि ।
उत्क्षिप्य तस्मात्सलिलान्निश्चक्राम महामतिः ।६।
दृष्ट्वा च स जगद्भूयो गगनाद्युपलक्षणम् ।
प्रह्लादोऽस्मीति सस्मार पुनरात्मानमात्मनि ।७।
तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरोषत्तमम् ।
एकाग्रमतिरव्यग्रो यतवाक्कायमानसः ।८।

श्रीपराशरजी ने कहा—हे ब्रह्मण ! इस प्रकार भगवान् को अपने से अभिन्न चिन्तन करते रहने और पूर्ण तन्मयता प्राप्त होने से प्रह्लाद ने अपने को ही अच्युत स्वरूप माना ।।१।। उस समय वे स्वयं को भूल गये और उन्हें भगवान् के अतिरिक्त और किसी की भी अनुभूति न होती थी, केवल मैं ही अव्यय अनन्त परमेश्वर हूँ यही भावना उनके मन में भर गई ।।२।। उसी भावना के कारण वह पाप-रहित हो गये और उनके अन्तःकरण में ज्ञान रूप भगवान् साक्षात् रूप से प्रतिष्ठित हो गये ।।३।। हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार के योगबल से जब वह विष्णुमय हो गये तब नागपाश टूट गई ।।४।। उनके विचलित होने से भ्रमणशील ग्राहों और तरल-तरंगों से महासागर क्षुब्ध हो गया, इससे वनोपवन युक्त एवं पर्वतमयी सम्पूर्ण पृथिवी डोल उठी ।।५।। तब दैत्यों द्वारा लादे गये सब पर्वतों को दूर फेंक कर प्रह्लाद समुद्र से बाहर निकले ।।६।। और आकाशादि युक्त संसार को देख कर उन्हें पुनः यह आभास हुआ कि मैं दैत्यसुत प्रह्लाद हूँ ।।७।। तब उन्होंने मन, वाणी और शरीर को संयमित करके धैर्य और एकाग्र धारण करके अनादि पुरुष भगवान् विष्णु की स्तुति की ।।८।।

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर ।
व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ।९।
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित ।
मूर्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ।१०।
करालसौम्यरूपात्मन्विद्याविद्यामयाच्युत ।

सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥११॥
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित ।
एकानेक नमस्तुभ्य वासुदेवादिकारण ॥१२॥
य स्थूलसूक्ष्म प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूत ।
विश्व यतश्चैतदविश्वहेतो-र्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥१३॥
तस्य तच्चेतसो देव स्तुतिमित्थ प्रकुर्वत ।
आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरि ॥१४॥

प्रह्लाद ने कहा—हे परमार्थ ! हे अर्थ ! हे स्थूल-सूक्ष्म ! हे क्षराक्षर रूप ! हे व्यक्ताव्यक्त ! हे काल से परे परमेश्वर ! हे निरंजन ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥६॥ हे गुणाञ्जन ! गुणाधार ! निर्गुणात्मन् ! गुणस्थित ! मूर्तामूर्त रूप ! महामूर्ते ! सूक्ष्ममूर्ते ! प्रकाशाप्रकाश रूप ! विकराल और सौम्य रूप ! विद्या अविद्यामय अच्युत ! सदसत् रूप ! जगत् के उत्पत्तिस्थान ! सदसत् विश्व के पालनकर्ता ! नित्य अनित्य प्रपञ्चात्मन् ! प्रपञ्च से परे एवं ज्ञानियों के आश्रय ! एकानेक रूप आदि कारण वासुदेव ! ॥१०-१२॥ जो स्थूल-सूक्ष्म रूप, स्फुट प्रकाशमय, अधिष्ठान से सर्वभूत रूप परन्तु सभी भूतों से परे, कारण रहित होने पर भी जिनसे इस विश्व की उत्पत्ति हुई है, उन भगवान् श्री पुरुषोत्तम को नमस्कार है ॥१३॥ श्रीपराशर जी ने कहा—इस प्रकार तन्मयतापूर्वक स्तव करने पर देव देव भगवान् श्रीहरि साक्षात् रूप में प्रकट हुए ॥१४॥

ससम्भ्रमस्तमालोक्य समुत्थायाकुलाक्षरम् ।
नमोऽस्तु विष्णवेत्येतद् व्याजहारासकृद् द्विज ॥१५॥
देव प्रपन्नार्तिहर प्रसाद कुरु केशव ।
अवलोकनदानेन भूयो मा पावयाच्युत ॥१६॥
कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽह भक्तिमव्यभिचारिणीम् ।
यथाभिलषितो मत्त प्रह्लाद व्रियता वर ॥१७॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥१८॥
या प्रीतिरविवेकाना विषयेष्वनपायिनी ।

त्वामनुस्मरत सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।१६।
मयि भक्तिस्तवास्त्येव भूयोऽप्येव भविष्यति ।
वस्तु मत्तः प्रह्लाद व्रियतां यस्तवेप्सितः ।२०।

हे विप्र भगवान् को इस प्रकार प्रकट हुए देखकर प्रह्लाद खड़े हो गये और उन्होंने गद्गद कंठ से बारम्बार कहा—भगवान् विष्णु को नमस्कार है ।।१५।। प्रह्लाद ने कहा—हे शरणागत का दुःख हरण करने वाले श्री केशव ! प्रसन्न हूजिये । मुझे अपने पुण्य दर्शनों से पुनः पुनः पवित्र करते रहिये ।।१६।। श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद ! तेरी अनन्य भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, तू अपना इच्छित वर माँगले ।।१७।। प्रह्लाद ने कहा—हे नाथ ! हजारों योनियों में से मैं जिस-जिस योनि को प्राप्त होऊँ, उस-उस में ही मेरी भक्ति आपमें सदैव अक्षुण्ण रूप से बनी रहे ।।१८।। जैसे अविवेकी जन विषयों में अविचल प्रीति रखते हैं, वैसे ही आप मेरे हृदय से कभी भी पृथक् न हों ।।१९।। श्री भगवान् ने कहा—हे प्रह्लाद ! मेरे प्रति तो तेरी अटूट भक्ति है ही तथा भविष्य में भी रहेगी । इसके अतिरिक्त भी तुझे जिस वर की अभिलाषा हो, वह मुझसे माँग ले ।।२०।।

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत्संस्तुतावुद्यते तव ।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु ।२१।
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने ।२२।
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः ।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे ।२३।
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत् ।
त्वत्प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता ।२४।
प्रह्लाद सर्वमेतत्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति ।
अन्यच्च ते वरं दद्मि व्रियतामसुरात्मज ।२५।
कृतकृत्योऽस्मि भगवन्वरेणानेन यत्त्वयि ।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।२६।

धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ।२७।

प्रह्लाद ने कहा— हे देव ! आपकी स्तुति करने के कारण जो मेरे पिता के चित्त में द्वेष उत्पन्न हुआ और उससे जो पाप उन्हें लगा है, वह दूर हो जाय ॥२१॥ तथा मेरे देह पर शस्त्राघात करने, अग्नि में जलाने, सर्पों से कटवाने, भोजन में विष देने, पाशबद्ध कर समुद्र में डालने, शिलाओं से दबाने तथा अन्यान्य दुर्व्यवहार मेरे साथ करने के कारण जो पाप मेरे पिता को लगा है, उस पाप से मेरे पिता शीघ्र ही छूट जायँ ॥२२-२४॥ भगवान् बोले हे प्रह्लाद ! तेरी यह सभी कामनाएँ मेरी कृपा से पूर्ण होंगी। मैं तुझे एक वर और देना चाहता हूँ, तेरी जो इच्छा हो, वही माँग ले ॥२५॥ प्रह्लाद ने कहा—हे प्रभो ! मैं तो आपके इसी वर से धन्य हो गया कि आप में मेरी निरन्तर भक्ति रहेगी ॥२६॥ जब आप सम्पूर्ण विश्व के कारण रूप में जिसकी अविचल भक्ति है तो मोक्ष उसके हाथ में ही स्थित रहेगी, फिर उसे धर्म, अर्थ और काम से प्रयोजन ही क्या है ? ॥२७॥

यथा ते निश्चलं चेतो मयि भक्तिसमन्वितम् ।
तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्वाणम्परमाप्स्यसि ।२८।
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुस्तस्यमैत्रेय पश्यतः ।
स चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितुः ।२९।
तं पिता मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम् ।
जीवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयनो द्विज ।३०।
प्रीतिमांश्चाभवत्तस्मिन्ननुतापी महासुरः ।
गुरुपित्रोश्चकारैवं शुश्रूषां सोऽपि धर्मवित् ।३१।
पितर्युपरतिं नीते नरसिंहस्वरूपिणा ।
विष्णुना सोऽपि दैत्यानां मैत्रेयाभूत्पतिस्ततः ।३२।
ततो राज्यद्युतिं प्राप्य कर्मशुद्धिकरीं द्विज ।
पुत्रपौत्रांश्च सुबहूनवाप्यैश्वर्यमेव च ।३३।

क्षीणाधिकार स यदा पुण्यपापविवर्जित ।
तदा स भगवद्ध्यानात्पर निर्वाणमाप्तवान् ।३४।

भगवान् ने कहा—हे प्रह्लाद ! तेरा चित मेरी भक्ति मे अविचल होने के कारण तुझे मेरी कृपा से परमनिर्वाण पद की प्राप्ति होगी ॥२८॥ श्रीपराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! यह कह कर भगवान् तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रह्लाद ने भी अपने पिता के पास जाकर उनके चरणो में प्रणाम किया ॥२९॥ तब दैत्यराज ने अपने जिस पुत्र को विभिन्न प्रकार से सन्तप्त किया था, उसका मस्तक सूँघ कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—हे पुत्र ! तू जीवित तो है ? ॥३०॥ वह महासुर अपने कर्म पर पश्चात्ताप करता हुआ प्रह्लाद से स्नेह करने लगा और धर्मज्ञ प्रह्लाद भी अपने गुरु तथा माता पिता की सेवा सुश्रूषा म लग गये ॥३१॥ हे मैत्रेयजी ! फिर नृसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु द्वारा हिरण्यकशिपु का वध किये जाने पर वही दैत्यों के अधीश्वर हुए ॥३२॥ तब प्रारब्ध का क्षय करने वाली राज्यश्री, अनेक पुत्र-पौत्रादि तथा परमैश्वर्य को प्राप्त होकर कर्माधिकार की क्षीणता से पाप पुण्य शून्य होकर प्रभु स्मरणपूर्वक उन्होंने परम निर्वाणपद पाया ॥३३ ३४॥

एव प्रभावो दैत्योऽसौ मैत्रेयासीन्महामति ।
प्रह्लादो भगवद्भक्तो य त्व मामनुपृच्छसि ।३५।
यस्त्वेतच्चरित तस्य प्रह्लादस्य महात्मन ।
शृणोति तस्य पापानि सद्यो गच्छन्ति सङ्क्षयम् ।३६।
अहोरात्रकृत पाप प्रह्लादचरित नर ।
शृण्वन् पठश्च मैत्रेय व्यपोहति न सशयः ।३७।
पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यामथ वा पठन् ।
द्वादश्या तदाप्नोति गोप्रदानफल द्विज ।३८।
प्रह्लाद सर्वापत्सु यथा रक्षितवान्हरि ।
तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरित सदा ।३९।

हे मैत्रेयजी ! तुमने जिनके विषय म प्रश्न किया था, वह भगवद्भक्त प्रह्लाद ऐसे प्रभावशाली हुए थे । उनके चरित्र को सुनने वाले के सब पापों

का शीघ्र ही क्षय हो जाता है ॥३२-३६॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रह्लाद चरित्र के श्रवण या पाठ करने से दिन-रात किये गये पापों से भी मुक्ति होती है ॥३७॥ हे द्विज ! जो कोई इसे पूर्णिमा, अमावस्या अष्टमी अथवा द्वादशी को पढ़ता है, वह गोदान का फल पाता है ॥३८॥ जैसे भगवान् ने प्रह्लाद की सब सङ्कटों से रक्षा की थी, वैसे ही वह उनके चरित्र सुनने वाले की भी रक्षा करते हैं ॥३९॥



इक्कीसवाँ अध्याय

प्रह्लादपुत्र आयुष्मान्छिबिर्बाष्कल एव च ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥१॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणज्येष्ठं महामुने ।
हिरण्याक्षसुताश्चासन्सर्व एव महाबलाः ॥२॥
उत्कुरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ।
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ॥३॥
अभवन्दनुपुत्राश्च द्विमूर्द्धा शम्बरस्तथा ।
अयोमुखः शङ्कुशिराः कपिलः शङ्करस्तथा ॥४॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमश्च महाबलः ॥५॥
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥६॥
उपदानी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ।
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा ॥७॥

श्रीपराशरजी ने कहा—प्रह्लाद के पुत्र आयुष्मान्, शिबि और बाष्कल हुए तथा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए, उस विरोचन का पुत्र बलि

हे महामुने ! बलि के सौ पुत्र हुए, जिनमे सबसे बड़ा बाणासुर था। हिरण्याक्ष के उत्कुर, शकुनि, भूत सन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाभ आदि पुत्र हुए, वे सब अत्यन्त बलवान थे ॥२-३॥ कश्यप-पत्नी दनु के पुत्र द्विमूर्द्धा, शम्बर, अयोमुख शङ्कुशिरा, कपिल, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा पुलोम और विप्रचित्ति नामक विख्यात पुत्र हुए। स्वर्भानु की कन्या प्रभा हुई और वृषपर्वा की अत्यन्त सुन्दरी कन्याएँ शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा अत्यन्त प्रसिद्ध हुई। वैश्वानर की दो कन्याएँ पुलोमा और कालका हुई ॥४-७॥

उभे सुते महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः।
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमा ।८।
पौलोमाः कालकेयाश्च मारीचतनयाः स्मृताः।
ततोऽपरे महावीर्या दारुणास्त्वतिनिर्घृणाः ।९।
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः ।१०।
वातापी नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा।
अन्धको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ।११।
स्वर्भानुश्च महावीर्यो वक्त्रयोधी महासुरः।
एते वै दानवा श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः ।१२।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
प्रह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ।१३।
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः।
षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्राया परिकीर्तिताः ।१४।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवीशुचिगृद्ध्रिकाः।
शुकी शुकानजनयदुलूकप्रत्युलूकिकान् ।१५।

हे महाभाग ! वैश्वानर की वे दोनो कन्याएँ मरीचिपुत्र कश्यपजी की पत्नियाँ हुई, जिनके साठ हजार पुत्र हुए ॥८॥ मरीचिसुत कश्यपजी के सभी पुत्र दो वंशो मे पौलोम और कालकेय नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त

विप्रचित्ति ने सिंहिका के गर्भ से अन्य अनेक महाबली, अत्यन्त भयंकर और क्रूर पुत्र उत्पन्न किये। वे व्यंश, शल्य, बलवान्, नभ, वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, काल नाभ, स्वर्भानु और वक्त्रयोधी नाम से प्रसिद्ध थे। यह सभी दानव दनु की वंश वृद्धि करने वाले हुए ॥९-१२॥ इनके अन्यान्य से सैकड़ों हजारों पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न हुए थे। महा तप के द्वारा आत्मज्ञान से युक्त प्रह्लाद के वंश में निवातकवच नामक एक दैत्य हुए। कश्यप-पत्नी ताम्रा से शुकी श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि, गृद्धिका। यह छःों कन्याएं अत्यन्त प्रभाव वाली हुईं। शुकी से शुक, उलूक और उलूकों के प्रतिपक्षी काक आदि हुए। ॥१३-१५॥

श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि ।
शुच्यौदकान्पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ॥१६॥
अश्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥१७॥
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः पन्नगाशनः ।
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥१८॥
अनेकशिरसां ब्रह्मन् खेचराणां महात्मनाम् ।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥१९॥
सुपर्णवशगा ब्रह्मन् जज्ञिरे नैकमस्तकाः ।
तेषां प्रधानभूतास्तु शेषवासुकितक्षकाः ॥२०॥
शङ्खश्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा ।
एलापुत्रस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥२१॥
एते चान्ये च बहवो दन्दशूका विषोल्बणाः ।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्याः सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥२२॥
स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च दारुणाः पिशिताशनाः ।
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान् ॥२३॥

श्येनी के श्येन (बाज) हुआ, भासी से भास तथा गृद्धिका से गृध्रों की उत्पत्ति हुई। शुचि से जल के पक्षी हुए तथा सुग्रीवी से घोड़े, ऊँट और

गये उत्पन्न हुए। इस प्रकार ताम्रा का वंश हुआ। विनता के दो पुत्र गरुड और अरुण नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१६-१७॥ इनमे पक्षी श्रेष्ठ गरुड सर्पों के भक्षक तथा अत्यंत प्रभावशाली आकाशचारी, अनेक शीश और विशालकाय वाले हजारो सर्प उत्पन्न हुए और कद्रू के भी अनेक सिर वाले अत्यंत तेजस्वी हजारो ही सर्प उत्पन्न हुए जो गरुड के आधीन थे। उनमे से शेष, वासुकि, तक्षक, शखश्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र, नाग, कर्कोटक, धनञ्जय एवं अन्य अनेक उग्र विष वाले सर्प प्रधान कहे गये हैं। क्रोधवशा के क्रोधवश-गण हुए, वे सब विकराल दाढ वाले, भयंकर, कच्चे मांस का आहार करने वाले जलचर, थलचर और नभचर हैं। क्रोधा से ही महाबली पिशाचो की उत्पत्ति हुई है। ॥१८-२३॥

गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषास्तथा ।
इरावृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ।२४।
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।
अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ।२५।
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।२६।
एष मन्वन्तरे सर्गो ब्रह्मन्स्वारोचिषे स्मृतः ।
वैवस्वते च महति वारुणे वितते क्रतौ ।२७।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ।
पूर्वं यत्र तु सप्तर्षीनुत्पन्नान्सप्तमानसान् ।२८।
पितृत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामह ।
गन्धर्वभोगिदेवानां दानवानां च सत्तम ।२९।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।
तया चाराधितः सम्यक्कश्यपस्तपतां वरः ।३०।
वरेणच्छन्दयामास तां च वव्रे ततो वरम् ।
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ।३१।

सुरभि से गौ, भैंस आदि उत्पन्न हुईं और इरा से वृक्ष, लता, बेल तथा सभी प्रकार के तृणादि उत्पन्न हुए ॥२४॥ खसा से यक्ष और राक्षस हुए, मुनि से अप्सराएँ हुईं और अरिष्टा से गंधर्व हुए ॥२५॥ यह सभी स्थावर जंगम देहधारी कश्यपजी से उत्पन्न हुए हैं। इनके अन्यान्य हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए ॥२६। हे ब्रह्मन्! यह वर्णन स्वारोचिष-मन्वन्तर की सृष्टि का है। वैवस्वत-मन्वन्तर के आरंभ में वारुण नामक महायज्ञ हुआ, उस में ब्रह्माजी होता थे, अब मैं प्रजा के विषय में कहता हूँ। पहिले के मन्वन्तर में ब्रह्माजी के मानस पुत्र रूप से जो सप्तर्षि हुए थे, ब्रह्माजी इस कल्प में उन्हें गंधर्व, नाग, देवता और दानवादि के पितृ रूप से कल्पित किया ॥२७-२९॥ पुत्रों के नष्ट होने पर दिति ने कश्यपजी को प्रसन्न किया, तब सन्तुष्ट हुए। कश्यपजी ने उस पर प्रदान द्वारा प्रसन्न किया। उस समय उसने इन्द्र को मारने में समर्थ एक अत्यंत तेजस्वी पुत्र की याचना की ॥३०-३१॥

स च तस्यै वरं प्रादाद्भार्यायै मुनिसत्तमः।
दत्त्वा च वरमत्युग्रं कश्यपस्तामुवाच ह ॥३२॥
शक्रं पुत्रो निहन्ता ते यदि गर्भं शरच्छतम्।
समाहितातिप्रयता शौचिनी धारयिष्यसि ॥३३॥
इत्येवमुक्त्वा तां देवीं सङ्गतः कश्यपो मुनिः।
दधार सा च तं गर्भं सम्यक्छौचसमन्विता ॥३४॥
गर्भमात्मवधार्थाय ज्ञात्वा तं मघवानपि।
शुश्रूषुस्तामथागच्छद्विनयादमराधिपः ॥३५॥
तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरतिष्ठत्पाकशासनः।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमात्मना ॥३६॥
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां च हारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥३७॥
वज्रपाणिर्महागर्भं चिच्छेदाथ स सप्तधा।
सम्पीड्यमानो वज्रेण स रुरोदातिदारुणम् ॥३८॥
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरभाषत।

सोऽभवत्सप्तधा गर्भस्तमिन्द्र: कुपित: पुन: ।३९।
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणारि विदारिणा ।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुरतिवेगिनः ।४०।
यदुक्तं वै भगवता तेनैव मरुतोऽभवन् ।
देवा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ।४१।

हे मुनिवर ! कश्यपजी ने अपनी पत्नी दिति को अनुरूप वर देते हुए उससे कहा ।।३२।। यदि तुम भगवान् के ध्यान में लगी रह कर अपने गर्भ को शौच एवं समय पूर्वक सौ वर्ष तक धारण कर लोगी तो तुम्हें इन्द्र के नाशक पुत्र की प्राप्ति होगी ।।३३।। यह कह कर कश्यपजी ने उससे भी संगति की और उसने अत्यंत पवित्रता से रहते हुए उस गर्भ को धारण किया ।।३४।। जब देवराज इन्द्र को अपने वध के कारण रूप उस गर्भ के विषय में ज्ञात हुआ तो वह भी उसकी सेवा के लिये वहाँ आ उपस्थित हुए ।।३५।। उसके शौचादि में कभी कुछ गड़बड़ी हो, यह देखने की इच्छा से इन्द्र वहाँ निरंतर उपस्थित रहते थे । अन्त में सौ वर्ष पूरे होने में कुछ ही समय शेष था, तब उन्होंने एक गड़बड़ी देखी ।।३६।। एक दिन दिति पैर धोये बिना ही शय्या पर लेट गयी और उसे प्रगाढ़ निद्रा ने घेर लिया, तभी इन्द्र अपना वज्र लेकर उसकी कुक्षि में प्रविष्ट होगये और गर्भ के सात खण्ड कर डाले । तब वज्र की पीड़ा से व्याकुल हुआ गर्भ चीत्कार कर रोने लगा ।।३७-३८।। इन्द्र ने गर्भ से बार-बार कहा कि मत रो, मत रो और जब वह सात भाग में विभक्त होकर भी चुप न हुआ तो इन्द्र ने अत्यंत क्रोध पूर्वक एक-एक खण्ड के भी सात-सात खण्ड कर दिये । वे अत्यंत वेगवान् मरुत् नामक देवता हुए ।।३९-४०।। इन्द्र ने उस गर्भ से कहा—मा रोदी अर्थात् न रो, इसीलिये वे मरुत् कहे गये । यह उनचास मरुद्गण इन्द्र के ही सहायक देवता हुए थे ।।४१।।



बाईसवाँ अध्याय

यदाभिषिक्तः स पृथुः पूर्वं राज्ये महर्षिभिः ।
ततः क्रमेण राज्यानि ददौ लोकपितामहः ॥१॥
नक्षत्रग्रहविप्राणां वीरुधां चाप्यशेषतः ।
सोमं राज्ये दधद्ब्रह्मा यज्ञानां तपसामपि ॥२॥
राज्ञां वैश्रवणं राज्ये जलानां वरुणं तथा ।
आदित्यानां पतिं विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥३॥
प्रजापतीनां दक्षं तु वासवं मरुतामपि ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमधिपं ददौ ॥४॥
पितॄणां धर्मराजं तं यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणामशेषाणां पतिं ददौ ॥५॥
पतत्रिणां तु गरुडं देवानामपि वासवम् ।
उच्चैःश्रवसमश्वानां वृषभं तु गवामपि ॥६॥
मृगाणां चैव सर्वेषां राज्ये सिंहं ददौ प्रभुः ।
शेषं तु दन्दशूकानामकरोत्पतिमव्ययः ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—प्राचीन काल में जब महर्षियों ने पृथु को राज्यासन अभिषिक्त किया तब लोकपितामह ब्रह्मा ने क्रम पूर्वक राज्यों का विभाजन पर किया। १॥ उन्होंने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, वनस्पति, यज्ञ और तपादि के राज्य पर सोम को नियुक्त किया ॥२॥ राजाओं का राजा विश्रवापुत्र कुबेर को बनाया, जलों का वरुण को, आदित्यों का विष्णु को और वसुगणों का अग्नि को बनाया ॥३॥ प्रजापतियों का दक्ष को, मरुद्गण का इन्द्र को तथा दैत्य दानवों का राजा प्रह्लाद को नियुक्त किया ।४॥ पितरों का अधिपति यम को और हाथियों का राजा ऐरावत को बनाया ॥५॥ पक्षियों के गरुड, देवताओं के इन्द्र, अश्वों के उच्चैःश्रवा तथा गौओं के अधिपति वृषभ हुए ।।६।। सब मृगों का सिंह राजा हुआ, सर्पों के स्वामी शेष हुए ॥७॥

हिमालयं स्थावराणां मुनीनां कपिलं मुनिम् ।
नखिनां दंष्ट्रिणां चैव मृगाणां व्याघ्रमीश्वरम् ।।८।।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ।
एवमेवान्यजातीनां प्राधान्येनाकरोत्प्रभुः ।।९।।
एवं विभज्य राज्यानि दिशां पालाननन्तरम् ।
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा स्थापयामास सर्वतः ।।१०।।
पूर्वस्यां दिशि राजानं वैराजस्य प्रजापतेः ।
दिशापालं सुधन्वानं सुतं वै सोऽभ्यषेचयत् ।।११।।
दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।।१२।।
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।।१३।।
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ।
उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानमभ्यषेचयत् ।।१४।।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मतः परिपाल्यते ।।१५।।

स्थावरों का स्वामित्व हिमालय को मिला, मुनियों का कपिल को तथा नख-दाढ़ वाले मृगों का अधिकार व्याघ्र को दिया गया ।।८।। वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष हुआ । इसी प्रकार अन्य-अन्य जीव-जातियों के स्वामित्व की भी ब्रह्माजी ने कल्पना की ।।९।। इस प्रकार राज्य-विभाग करके उन्होंने सब दिशाओं में दिक्पालों को नियुक्त किया ।।१०।। पूर्व में वैराज प्रजापति के पुत्र राजा सुधन्वा को दिक्पाल बनाया ।।११।। दक्षिण में कर्दम प्रजापति के पुत्र राजा शङ्खपद, दिक्पाल नियुक्त हुए ।।१२।। पश्चिम में रजस-पुत्र महात्मा केतुमान को निश्चित किया ।।१३।। तथा उत्तर में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र राजा हिरण्यरोमा को दिक्पाल पद पर अभिषिक्त किया ।।१४।। यह दिक्पाल सातों द्वीप और अनेक नगरों वाली इस सम्पूर्ण पृथिवी का अपने-अपने अधिकार के अनुसार आज तक धर्मपूर्वक पालन करते चले आरहे हैं ।।१५।।

एते सर्वे प्रवृत्तस्य स्थितौ विष्णोर्महात्मनः ।
विभूतिभूता राजानो ये चान्ये मुनिसत्तम ।।१६।
ये भविष्यन्ति ये भूताः सर्वे भूतेश्वरा द्विज ।
ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशा द्विजोत्तम ।।१७।
ये तु देवाधिपतयो ये च दैत्याधिपास्तथा ।
दानवानां च ये नाथा ये नाथाः पिशिताशिनाम् ।।१८।
पशूनां ये च पतयः पतयो ये च पक्षिणाम् ।
मनुष्याणां च सर्पाणां नागानामधिपाश्च ये ।।१९।
वृक्षाणां पर्वतानां च ग्रहाणां चापि येऽधिपाः ।
अतीता वर्त्तमानाश्च ये भविष्यन्ति चापरे ।
ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशसमुद्भवाः ।२०।
न हि पालनसामर्थ्यमृते सर्वेश्वरं हरिम् ।
स्थितं स्थितौ महाप्राज्ञ भवत्यन्यस्य कस्यचित् ।।२१।
सृजत्येष जगत्सृष्टौ स्थितौ पाति सनातनः ।
हन्ति चैवान्तकत्वेन रजःसत्वादिसंश्रयः ।।२२।

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह तथा और सभी राजागण संसार पालक भगवान् विष्णु की ही विभूति हैं ।।१६।। जो-जो राजा पूर्वकाल में हो चुके हैं अथवा जो-जो भविष्य में होंगे, वे सब उन भगवान् के ही अंश रूप हैं ।।१७।। देवता, दैत्य, दानव तथा अन्य सब आमिष भोजियों के स्वामी, पशु, पक्षी, मनुष्य, सर्प और नागादि के अधिनायक, वृक्ष, पर्वत और ग्रहों के अधिपति तथा अन्य अन्, भूत, भविष्यत् और वर्तमान के भूताधिपति हैं, वे सभी सर्वभूतात्मक भगवान् के अंश से ही उत्पन्न हुए हैं ।।१८-२०।। सृष्टि के पालन-कार्य में प्रवृत्त भगवान् श्री हरि ही पालन-कार्य में समर्थ हैं, और किसी में ऐसी शक्ति नहीं है ।।२१।। रजादि गुणों के आश्रय से वे ही सनातन पुरुष विश्व के सर्ग काल में सृष्टि रचते हैं, स्थिति काल में पालन करते तथा अन्त में स्वयं ही काल स्वरूप होकर उसे नष्ट कर डालते हैं ।।२२।।

चतुर्विभागः संसृष्टौ चतुर्धा संस्थितः स्थितौ ।
प्रलयं च करोत्यन्ते चतुर्भेदो जनार्दनः ।२३।
एकेनांशेन ब्रह्मासौ भवत्यव्यक्तमूर्त्तिमान् ।
मरीचिमिश्राः पतयः प्रजानां चान्यभागशः ।२४।
कालस्तृतीयस्तस्यांशः सर्वभूतानि चापरः ।
इत्थं चतुर्धा संसृष्टौ वर्त्ततेऽसौ रजोगुणः ।२५।
एकांशेनास्थितो विष्णुः करोति प्रतिपालनम् ।
मन्वादिरूपश्चान्येन कालरूपोऽपरेण च ।२६।
सर्वभूतेषु चान्येन संस्थितः कुरुते स्थितिम् ।
सत्त्वं गुणं समाश्रित्य जगतः पुरुषोत्तमः ।२७।
आश्रित्य तमसो वृत्तिमन्तकाले तथा पुनः ।
रुद्रस्वरूपो भगवानेकांशेन भवत्यजः ।२८।
अग्न्यन्तकादिरूपेण भागेनान्येन वर्त्तते ।
कालस्वरूपो भागोऽन्यस्सर्वभूतानि चापरः ।२९।

वे भगवान् सृष्टि के समय चार विभाग से, स्थिति के समय भी चार विभाग से तथा प्रलय काल में भी चार विभाग से ही स्थित रहते हैं ॥२३॥ वह अपने ही एक अंश से ब्रह्मा तथा दूसरे से मरीच्यादि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल तथा चौथा अंश समस्त जीव हैं। इस प्रकार रजोगुण विशिष्ट होकर वह अपने चार रूप धारण करते हैं ॥२४-२५॥ फिर वे सत्वगुण के आश्रय से विश्व की स्थिति करते हैं। उस समय एक अंश से विष्णु रूप होकर पृथिवी का पालन करते हैं और दूसरे अंश से मनु आदि एवं तीसरे से काल होते हैं तथा चौथे से सभी भूतों में स्थित होते हैं ॥२६-२७॥ अन्त काल में वे तमोगुण के आश्रय में एक अंश से रुद्र, दूसरे से अग्नि और अन्तकादि, तीसरे से काल तथा चौथे से समस्त भूत रूप होते हैं ॥२८-२९॥

विनाशं कुर्वतस्तस्य चतुर्द्धैवं महात्मनः ।
विभागकल्पना ब्रह्मन् कथ्यते सार्वकालिकी ।३०।

ब्रह्मा दक्षादयः कालस्तथैवाखिलजन्तवः ।
विभूतयो हरेरेता जगतः सृष्टिहेतवः ॥३१॥
विष्णुर्मन्वादयः कालः सर्वभूतानि च द्विज ।
स्थितेर्निमित्तभूतस्य विष्णोरेता विभूतयः ॥३२॥
रुद्रः कालान्तकाद्याश्च समस्ताश्चैव जन्तवः ।
चतुर्धा प्रलयायैता जनार्दनविभूतयः ॥३३॥
जगदादौ तथा मध्ये सृष्टिराप्रलयाद् द्विज ।
धात्रा मरीचिमिश्रैश्च क्रियते जन्तुभिस्तथा ॥३४॥
ब्रह्मा सृजत्यादिकाले मरीचिप्रमुखास्ततः ।
उत्पादयन्त्यपत्यानि जन्तवश्च प्रतिक्षणम् ॥३५॥
कालेन न विना ब्रह्मा सृष्टिनिष्पादको द्विज ।
न प्रजापतयः सर्वे न चैवाखिलजन्तवः ॥३६॥

हे ब्रह्मन् ! विनाश करने के हेतु उनकी इस प्रकार चार रूपों में सार्वकालिक विभाग कल्पना कही गई है । ३०॥ ब्रह्मा, दक्षादि प्रजापति, काल एव सर्व भूतगण, यह सभी भगवान् की विभूतियाँ विश्व सृष्टि में कारण रूपा हैं ॥३१॥ हे द्विज ! विष्णु मनु आदि, काल और सभी जीव, स्थिति के कारण रूप भगवान् की ही विभूति हैं । ३२॥ रुद्र, काल, अन्तकादि और सब जीव—ये भगवान् जनार्दन की चार विभूतियाँ प्रलय की कारण रूपा कही गई हैं ॥३३॥ हे विप्र ! विश्व के आदि, मध्य तथा प्रलय तक ब्रह्मा, मरीचि आदि विभिन्न प्राणियों से ही सृष्टि होती रहती है ॥३४॥ सर्गारम्भ में प्रथम ब्रह्माजी सृजन करते हैं फिर मरीचि आदि प्रजापति और उनके पश्चात् सब प्राणी क्षण-क्षण में प्रजोत्पादन करते रहते हैं ॥३५॥ काल के बिना न तो ब्रह्मा ही सृष्टि कर सकते हैं और न प्रजापति या अन्य जीव ही प्रजोत्पत्ति में समर्थ हो सकते हैं ॥३६॥

एवमेव विभागोऽयं स्थितावप्युपदिश्यते ।
चतुर्धा तस्य देवस्य मैत्रेय प्रलये तथा ॥३७॥
यत्किञ्चित्सृज्यते येन सत्त्वजातेन वै द्विज ।
तस्य सृज्यस्य सम्भूतौ तत्सर्वं वै हरेस्तनुः ॥३८॥

हन्ति यावच्च यत्किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
जनार्दनस्य तद्रौद्रं मैत्रेयान्तकरं वपुः ॥३९॥
एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत् ।
जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः ॥४०॥
सृष्टिस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं सम्प्रवर्तते ।
गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यागुणं महद् ॥४१॥
तच्च ज्ञानमयं व्यापि स्वसंवेद्यमनौपमम् ।
चतुष्प्रकारं तदपि स्वरूपं परमात्मनः ॥४२॥

हे मैत्रेयजी ! विश्व की स्थिति और प्रलय में भी उन भगवान् के चार-चार विभाग कहे जाते हैं ॥३७॥ जिस जीव द्वारा जो कुछ भी उत्पत्ति होती है, उस सब में भगवान् विष्णु का देह ही एक मात्र कारण है ॥३८॥ इसी प्रकार स्थावर-जंगम प्राणियों में से यदि कोई किसी का अन्त करता है, तो वह अन्त करने वाला भी भगवान् का अन्त करने वाला रौद्र रूप होता है ॥३९॥ इस प्रकार वह भगवान् ही समस्त विश्व के सृजन, पालन और संहार-कर्त्ता हैं तथा वे स्वयं ही जगद्रूप हैं ॥४०॥ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश काल में वे इसी प्रकार तीनों गुणों के द्वारा प्रवृत्त होते हैं, तो भी उनका परमपद सर्वथा गुण-रहित है ॥४१॥ उनका वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य, अनुपम एवं चार प्रकार का है ॥४२॥

चतुःप्रकारता तस्य ब्रह्मभूतस्य हे मुने ।
ममाचक्ष्व यथान्यायं यदुक्तं परमं पदम् ॥४३॥
मैत्रेय कारणं प्रोक्तं साधनं सर्ववस्तुषु ।
साध्यं च वस्त्वभिमतं यत्साधयितुमात्मनः ॥४४॥
योगिनो मुक्तिकामस्य प्राणायामादिसाधनम् ।
साध्यं च परमं ब्रह्म पुनर्नावर्तते यतः ॥४५॥
साधनालम्बनं ज्ञानं मुक्तये योगिनां हि यत् ।
स भेदः प्रथमस्तस्य ब्रह्मभूतस्य वै मुने ॥४६॥
युञ्जतः क्लेशमुक्त्यर्थं साध्यं यद्ब्रह्मयोगिनः ।
तदालम्बनविज्ञानं द्वितीयोऽशो महामुने ॥४७॥

उभयोस्त्वविभागेन साध्यसाधनयोर्हि यत् ।
विज्ञानमद्वैतमयं तद्भागोऽन्यो मयोदितः ।४८।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे मुने ! आपने भगवान् के परमपद को चार प्रकार का कहा है, वह किस प्रकार है ? यह आप मुझे विस्तार सहित बताने की कृपा करिये ।।४३।। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी सभी वस्तुओं का जो कारण है, वही उनका साधन कहा जाता है । अपनी जिस अभिमित वस्तु की सिद्धि करते हैं, वही साध्य होती है ।।४४।। मोक्षाभिलाषी योगियों के लिये प्राणायाम आदि साधन तथा परब्रह्म ही साध्य है, जहाँ से कभी पुनरागमन नहीं होता ।।४५।। योगी की मोक्ष कारण साधनालम्बन ज्ञान ही उस ब्रह्मरूप परमपद का प्रथम भेद समझो ।।४६।। क्लेश से मुक्त होने के लिये योगाभ्यास करने वाले योगी के साध्य रूप ब्रह्म का ज्ञान आलम्बन विज्ञान कहा गया है, यह उसका द्वितीय भेद है ।।४७।। साध्य तथा साधनों के अभेद वाले अद्वैत युक्त ज्ञान को ही मैं उसका तृतीय भेद कहता हूँ ।।४८।।

ज्ञानत्रयस्य वै तस्य विशेषो यो महामुने ।
तन्निराकरणद्वारा दर्शितात्मस्वरूपवत् ।४९।
निर्व्यापारमनाख्येयं व्याप्तिमात्रमनूपमम् ।
आत्मसम्बोधविषयं सत्तामात्रमलक्षणम् ।५०।
प्रशान्तमभयं शुद्धं दुर्विभाव्यमसंश्रयम् ।
विष्णोर्ज्ञानमयस्योक्तं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ।५१।
तत्र ज्ञाननिरोधेन योगिनो यान्ति ये लयम् ।
संसारकर्षणोप्तौ ते यान्ति निर्बीजतां द्विज ।५२।
एवंप्रकारममलं नित्यं व्यापकमक्षयम् ।
समस्तहेयरहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम् ।५३।
तदब्रह्म परमं योगी यतो नावर्तते पुनः ।

अनाख्येय, अनुपम, व्याप्तिमात्र, सत्तामात्र आत्मबोधरूप, अलक्षण, अ्रज्ञेय, शान्त, शुद्ध, भावना से परे तथा आश्रय से भी परे है, वही 'ब्रह्म' नामक ज्ञान है ।।४६-५१।। जो योगिजन उक्त अन्य ज्ञानों को छोड कर इस चतुर्थ ज्ञान मे ही लीन हो जाते हैं, वे इस संसार रूपी खेत मे बीजारोपण रूप कर्म के लिये निर्बीज होते हैं ।।५२।। इस प्रकार का अमल नित्य, व्यापक, अक्षय और सब हेय गुणों से परे वह विष्णु संज्ञक परमपद है ।।५३।। पुण्य-पाप के निर्मूल और क्लेशों की निवृत्ति से अत्यंत निर्मल हुआ योगी ही उस परब्रह्म के आश्रय मे जाकर पुनरावर्त्तन चक्र मे नही पड़ता ।।५४।।

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च ।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेष्ववस्थिते ।५५।
अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत् ।
एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ।५६।
तत्राप्यासन्नदूरत्वाद्बहुत्वस्वल्पतामयः ।
ज्योत्स्नाभेदोऽस्ति तच्छक्तेस्तद्वन्मैत्रेय विद्यते ।५७।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः ।
ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततः ।५८।
ततो मनुष्याः पशवो मृगपक्षिसरीसृपाः ।
न्यूनान्न्यूनतराश्चैव वृक्षगुल्मादयस्तथा ।५९।
तदेतदक्षरं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् ।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ।६०।

उस ब्रह्म के दो रूप हैं मूर्त्त और अमूर्त्त, वे ही क्षर तथा अक्षर रूप से सभी प्राणियों मे स्थित रहते हैं ।।५५।। क्षर रूप यह विश्व है तथा अक्षर रूप वह परब्रह्म है। जैसे एक स्थान पर प्रज्वलित हुए अग्नि का प्रकाश सर्वत्र रहता है, वैसे ही यह सम्पूर्ण विश्व एक परब्रह्म की ही शक्ति है ।।५६।। हे मैत्रेयजी ! जैसे अग्नि के समीपस्थ और दूरस्थ भेद से प्रकाश मे अधिकता और न्यूनता हो

जाती है वैसे ही ब्रह्म की शक्ति में समझो ॥५७॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह तीनों, ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून देवता और उनसे भी न्यून दक्ष आदि प्रजापति हैं ॥५८॥ उनमें भी न्यून क्रमशः मनुष्य पशु पक्षी, मृग एवं सरीसृपादि तथा उनसे भी न्यून वृक्ष, गुल्म, लता आदि हैं ॥५९॥ इसलिये हे मुनि श्रेष्ठ! आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म, नाश आदि विकल्प वाला यह विश्व यथार्थ में तो नित्य और अक्षर ही है ॥६०॥

सर्वशक्तिमयो विष्णु: स्वरूपं ब्रह्मणः परम् ।
मूर्तं यद्योगिभि: पूर्वं योगारम्भेषु चिन्त्यते ।६१।
सालम्बनो महायोग: सबीजो यत्र संस्थितः ।
मनस्यव्याहृते सम्यग्युञ्जतां जायते मुने ।६२।
स परः परशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरम् ।
मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः ।६ ।
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
ततो जगज्जगत्तस्मिन्स जगच्चाखिलं मुने ।६४।
क्षराक्षरमयो विष्णुर्बिभर्त्यखिलमीश्वरः ।
पुरुषाव्याकृतमयं भूषणास्त्रस्वरूपवत् ।६५।

सर्व शक्तिमय भगवान् विष्णु ही ब्रह्म के परम स्वरूप एवं मूर्त्त रूप हैं, योगारम्भ के पूर्व योगिजन उन्हीं का चिन्तन किया करते हैं ॥६१॥ हे मुने! जिन भगवान् में मन को भले प्रकार तन्मय करने वालों को आलम्बन युक्त सबीज महायोग की सिद्धि होती है, वे सर्वब्रह्ममय विष्णु ही सब पर शक्तियों में प्रधान तथा ब्रह्म के समीपतम मूर्त्त ब्रह्म स्वरूप हैं ॥६२-६३॥ हे मुने! यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं में ओत प्रोत, उन्हीं से उत्पन्न और उन्हीं में स्थित है तथा वे स्वयं ही सम्पूर्ण विश्व हैं ॥६४॥ क्षर अक्षरमय विष्णु ही इस प्रकृति-पुरुषात्मक विश्व को अपने आभूषण तथा आयुध के रूप में धारण करते हैं ॥६५॥

भूषणास्त्रस्वरूपस्थं यथैतदखिलं जगत् ।
बिभर्ति भगवान्विष्णुस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ।६६।

नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
कथयामि यथाख्यात वसिष्ठेन ममाभवत् ।६७।
आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् ।
बिभर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान्हरि ।६८।
श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् ।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ।६९।
भूतादिमिन्द्रियादिं च द्विधाहङ्कारमीश्वरः ।
बिभर्ति शङ्खरूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ।७०।
चलत्स्वरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलम् ।
चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुकरे स्थितम् ।७१।
पञ्चरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृत ।
सा भूतहेतुसङ्घाता भूतमाला च वै द्विज ।७२।

श्री मैत्रेयजी बोले—भगवान् विष्णु इस सम्पूर्ण विश्व को आभूषण और आयुध के रूप में कैसे धारण करते हैं, यह मुझे बताने की कृपा करिये ।।६६।। श्री पराशरजी ने कहा—उन विश्व पालक अप्रमेय भगवान् विष्णु को नमस्कार करके अब मैं तुम्हें वह सब सुनाता हूँ जो वसिष्ठजी ने मुझे सुनाया था ।।६७।। इस विश्व के निर्लेप, निर्गुण और निर्मल आत्मा को भगवान् विष्णु कौस्तुभ मणि के रूप में धारण करते हैं ।।६८।। उन अनन्त भगवान् ने प्रधान को श्रीवत्स रूप से तथा बुद्धि को गदा रूप से धारण किया है ।।६९।। भूतों के कारण रूप तामस अहंकार और इन्द्रियों के कारण रूप राजस अहंकार को उन्होंने शंख और शार्ङ्ग धनुष के रूप में धारण किया हुआ है ।।७०।। पवन को भी अपने वेग से हराने वाला अत्यंत चचल और सात्विक अहंकार रूपी मन भगवान् विष्णु के कर कमलों में चक्र रूप से स्थित है ।।७१।। हे द्विज ! भगवान् गदाधर पंच रूपात्मिका वैजयन्ती माला पञ्चतन्मात्रों और पचभूतों का सघात है ।।७२।।

यानीन्द्रियाण्यशेषाणि बुद्धिकर्मात्मकानि वै ।
शररूपाण्यशेषाणि तानि धत्ते जनार्दनः ।७३।

विभर्त्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् ।
विद्यामयं तु तज्ज्ञानमविद्याकोशसंस्थितम् ।७४।
इत्थं पुमान्प्रधानं च बुद्ध्यहङ्कारमेव च ।
भूतानि च हृषीकेशे मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ।७५।
अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितः ।
बिभर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे प्राणिनां हरिः ।७६।
सविकारं प्रधानं च पुमांसमखिलं जगत् ।
बिभर्त्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ।७७।
या विद्या या तथाविद्या यत्सद्यच्चासदव्ययम् ।
तत्सर्वं सर्वभूतेशे मैत्रेय मधुसूदने ।७८।
कलाकाष्ठानिमेषादिदिनर्त्वयनहायनैः ।
कालस्वरूपो भगवानपापो हरिरव्ययः ।७९।

समस्त ज्ञान कर्मात्मिका इन्द्रियों को भगवान् जनार्दन बाण रूप में धारण करते हैं ।।७३।। भगवान् अच्युत का निर्मल खड्ग ही अविद्यात्मक कोश से ढका हुआ विद्यामय ज्ञान है ।।७४।। हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार पुरुष, प्रधान, बुद्धि, अहंकार पञ्चभूत, मन, इन्द्रियाँ और विद्या अविद्या सब उन्हीं हृषीकेश में आश्रित हैं ।।७५।। भगवान् श्रीहरि रूप-रहित होते हुए भी माया मय रूप से जीवों के कल्याणार्थ इन सब वस्तुओं को अस्त्राभूषण के रूप में धारण करते हैं ।।७६।। इस प्रकार वे पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर सविकार प्रधान, पुरुष और सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं ।।७७।। हे मैत्रेयजी ! विद्या अविद्या, सदसत् और अव्यय स्वरूप जो कुछ भी हैं, वह सब सर्व भूतेश्वर भगवान् में ही स्थित है ।।७८।। कला, काष्ठा, निमेष, दिन, ऋतु, अयन तथा वर्ष आदि काल के रूप में अपाप, अव्यय श्रीहरि ही स्थित हैं ।।७९।।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोको मुनिसत्तम ।
महर्जनस्तपः सत्यं सप्त लोका इमे विभुः ।८०।
लोकात्ममूर्तिः सर्वेषां पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
आधारः सर्वविद्यानां स्वयमेव हरिः स्थितः ।८१।

देवमानुषपश्वादिस्वरूपैर्बहुभि स्थितः ।
ततः सर्वेश्वरोऽनन्तो भूतमूर्तिरमूर्तिमान् ।८२।
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि वै ।
इतिहासोपवेदाश्च वेदान्तेषु तथोक्तयः ।८३।
वेदाङ्गानि समस्तानि मन्वादिगदितानि च ।
शास्त्राण्यशेषाण्याख्यानान्यनुवाकाश्च ये क्वचित् ।८४।
काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च ।
शब्दमूर्तिधरस्यैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मनः ।८५।
यानि मूर्त्तान्यमूर्त्तानि यान्यत्रान्यत्र वा क्वचित् ।
सन्ति वै वस्तु जाता न तानि सर्वाणि तद्वपुः ।८६।

हे मुनि सत्तम ! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, मह जन, तप और सत्य आदि सप्तलोक भी स्वय सर्वव्यापक प्रभु ही हैं ॥८०॥ सब पूर्वजो के पूर्वज और सभी विद्याओ के आश्रय भगवान् श्रीहरि लोकमय रूप से स्वय ही स्थित हैं ॥८१॥ देवता, मनुष्य और पशु आदि विभिन्न भूत रूपों मे निराकार श्री अनन्त ही स्थित हैं ॥८२॥ ऋक्, यजुः साम, अथर्व-यह चारो वेद, इतिहास, उपवेद वेदान्त, वेदाङ्ग मनु आदि धर्मशास्त्र पुराणादि, आख्यान अनुवाक, काव्यचर्चा और रागरागिनी आदि सब उन विष्णु का ही देह समझो ।८३-८५। इस लोक में अथवा सर्वत्र जितने भी मूर्त, अमूर्त पदार्थ हैं, वह सभी उन भगवान् के शरीर ही हैं ॥८६॥

अहं हरिः सर्वमिद जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् ।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ।८७
इत्येष तेंऽशः प्रथमः पुराणस्यास्य वै द्विज ।
यथावत्कथितो यस्मिञ्छ्रुते पापैः प्रमुच्यते ।८८।
कार्त्तिक्यां पुष्करस्नाने द्वादशाब्देन यत्फलम् ।
तदस्य श्रवणात्सर्वं मैत्रेयाप्नोति मानवः ।८९।
देवर्षिपितृगन्धर्वयक्षादीनां च सम्भवम् ।
भवन्ति शृण्वतः पुंसो देवाद्या वरदामुने ।९०।

मैं और यह सम्पूर्ण विश्व भी जनार्दन हरि ही हैं, उनसे भिन्न कोई भी कार्य-कारण आदि नहीं है, जिसके चित्त में इस प्रकार की भावना है, उसे शरीर से उत्पन्न रोग तथा राग, द्वेषादि नहीं रहते ॥८७॥ हे द्विज ! इस प्रकार मैंने इस पुराण के प्रथमांश का जैसा था वैसा वर्णन किया है, इसे सुन कर मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ॥८८॥ हे मैत्रेयजी ! बारह वर्ष तक कार्तिक के महीने में पुष्कर में स्नान करने से जिस फल प्राप्ति होती है, वह फल इसके सुनने मात्र से प्राप्त हो जाता है ॥८९॥ हे मुने ! देव, ऋषि, गन्धर्व, पितृ तथा यक्षादि की उत्पत्ति के सुनने वाले पुरुष को वे देवादि वर देने वाले होते हैं ॥९०॥



द्वितीय अंश

पहला अध्याय

भगवन्सम्यगाख्यातं ममैतदखिलं त्वया ।
जगतः सर्गसम्बन्धि यत्पृष्टोऽसि गुरो मया ।१।
योऽयमंशो जगत्सृष्टिसम्बन्धो गदितस्त्वया ।
तत्राहं श्रोतुमिच्छामि भूयोऽपि मुनिसत्तम ।२।
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य यौ ।
तयोरुत्तानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः ।३।
प्रियव्रतस्य नैवोक्ता भवता द्विज सन्ततिः ।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ।४।
कर्दमस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियव्रतः ।
सम्राट् कुक्षिश्च तत्कन्ये दशपुत्रास्तथापरे ।५।
महाप्रज्ञा महावीर्या विनीता दयिताः पितुः ।
प्रियव्रतसुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ।६।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च ।७।
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।
प्रियव्रतस्य पुत्रास्ते प्रख्याता बलवीर्यतः ।८।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! हे भगवन् ! सृष्टि विषयक मेरे प्रश्न को आपने मुझे भले प्रकार बता दिया ॥१॥ हे मुनिवर ! आपने जो विश्व-रचना विषयक प्रथम अंश कहा है, उसमें एक बात और जानने की मेरी इच्छा है ॥२॥ स्वायंभुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों में से उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का वृत्तांत आपने कहा ॥३॥ परन्तु, प्रियव्रत की संतान

के विषय में आपने कुछ भी नहीं बतलाया, इसलिये उनके विषय में मेरी जिज्ञासा का समाधान आप हर्षपूर्वक करिये ॥४॥ श्रीपराशरजी ने कहा—प्रियव्रत का विवाह कर्दमजी की पुत्री से हुआ, जिससे सम्राट् और कुक्षि नाम्नी पुत्रियाँ तथा दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ प्रियव्रत के पुत्र अत्यन्त मेधावी, वली, विनयी तथा माता-पिता के अत्यन्त प्रिय हुए, अब उनके नामों को सुनो ॥६॥ आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, पुत्र और दसवाँ ज्योतिष्मान् नामक हुए। प्रियव्रत के सभी पुत्र अपने बल और पराक्रम से विख्यात थे ॥७-८॥

मेधाग्निवाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ।९।
निर्मलाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वै मुने ।
चक्रुः क्रियां यथान्यायमफलाकाङ्क्षिणो हिते ।१०।
प्रियव्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनिसत्तम ।
सप्तद्वीपानि मैत्रेय विभज्य सुमहात्मनाम् ।११।
जम्बूद्वीपं महाभाग साग्नीध्राय ददौ पिता ।
मेधातिथेस्तथा प्रादात्प्लक्षद्वीपं तथापरम् ।१२।
शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्प्रभुः ।१३।
द्युतिमन्तं राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरं चापि भव्यं चक्रे प्रियव्रतः ।१४।

इनमें मेधा, अग्निबाहु और पुत्र नामक तीन पुत्र तो योग परायण और पूर्व जन्म का ज्ञान जानने वाले हुए, वे राज्यादि भोगों से विरक्त रहे ॥९॥ क्योंकि निर्मल चित्त और कर्मफल की कामना से परे होने के कारण सब विषयों में सदैव न्यायानुकूल रहते थे ॥१०॥ हे मुनि सत्तम ! राजा प्रियव्रत ने इनके अतिरिक्त शेष सात पुत्रों को सात द्वीप दिये ॥११॥ आग्नीध्र को जम्बूद्वीप तथा मेधातिथि को प्लक्ष नाम द्वीप प्रदान किया ॥१२॥ वपुष्मान् को शाल्मल द्वीप और ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप का अधिपति बनाया ॥१३॥

द्युतिमान् को क्रौंच द्वीप और भव्य को शाक द्वीप का राजा नियुक्त किया ॥१४॥

पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं च पि स प्रभु ।
जम्बूद्वीपेश्वरो यस्तु आग्नीध्रो मुनिसत्तम ।।१५।
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव ।
नाभि किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृत ।।१६।
रम्यो हिरण्वान्पष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च ।
केतुमालस्तथवान्य साधुचेष्टोऽभवन्नृपः ।१७।
जम्बूद्वीपविभागाश्च तेषां विप्र निशामय ।
पित्रा दत्त हिमाह्वं तु वर्षं नाभेस्तु दक्षिणाम् ।१८।
हेमकूट तथा वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः ।
तृतीय नैषध वर्षं हरिवर्षाय दत्तवान् ।१९।
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यम ।
नीलाचलाश्रित वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ।२०।
श्वेत तदुत्तर वष पित्रा दत्त हिरण्वते ।
यदुत्तर शृङ्गवतो वप तत्कुरवे ददौ ।२१।
मेरो पूर्वेण तद्वर्षं भद्राश्वाय प्रदत्तवान् ।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ।२२।

सवन को पुष्कर द्वीप का राजा बनाया। इनमे जम्बू द्वीप के राजा आग्नीध्र के प्रजापति तुल्य नौ पुत्र हुए। उनके नाम नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत रम्य, हिरण्यवान्, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मा राजा केतुमाल थे ॥१५-१७॥ हे ब्रह्मन्! अब जम्बू द्वीप के जो विभाग हुए, उन्हे सुनो—आग्नीध्र ने दक्षिण की ओर का हिमवर्ष नाभि को प्रदान किया ॥१८॥ किम्पुरुष को हेमकूट वर्ष और हरिवर्ष को नैषधवर्ष दिया ॥१९॥ मध्य मे मेरुपर्वत युक्त इलावृतवर्ष इलावृत को तथा नीलाचल का समीपस्थ वर्ष रम्य को दिया ॥२०॥ उसका उत्तर वर्ती श्वेत वर्ष हिरण्यान् को और शृंगवान् पर्वत के उत्तर वाला

वर्ष कुरु को दिया ॥२१॥ मेरु के पूर्व वाला वर्ष भद्राश्व को और गंधमादन वर्ष केतुमाल को प्रदान किया ॥२२॥

इत्येतानि ददौ तेभ्यः पुत्रेभ्यः स नरेश्वरः ।
वर्षेष्वेतेषु तान्पुत्रानभिषिच्य स भूमिप ।२३।
शालग्रामं महापुण्यं मैत्रेय तपसे ययौ ।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।२४।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।२५।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा ।२६।
हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।२७।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान्मखान् ।२८।
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः ।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ।२९।

हे मैत्रेयजी ! राजा आग्नीध्र ने अपने पुत्रों को इस प्रकार इन वर्षों का राज्य दिया स्वयं तप करने के लिये शालग्राम नामक अत्यन्त पुनीत क्षेत्र को चले गये। किंपुरुषादि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुख की इतनी अधिकता है कि बिना किसी प्रकार का यत्न किये, स्वभाव से ही सब भोग-सिद्धियों की प्राप्ति होती है। उनमें किसी प्रकार के विपर्यय अथवा वृद्धावस्था या मृत्यु आदि का डर उपस्थित नहीं होता ॥२३-२५॥ वहाँ धर्म, अधर्म, श्रेष्ठ, मध्यम या अधम का भी भेद नहीं है तथा उनमें कभी युग-परिवर्तनादि भी नहीं होता ॥२६॥ महात्मा नाभि हिम नामक वर्ष के स्वामी थे, उनकी पत्नी मेरुदेवी से अत्यन्त कान्ति वाला ऋषभ नामक एक पुत्र हुआ ॥२७॥ ऋषभ के सौ पुत्र हुए, जिनमें भरत सबसे बड़े थे। महाभाग राजा ऋषभदेव धर्मपूर्वक राज्य

चलाते हुए अनेक यज्ञो के अनुष्ठान करके अन्त मे भरत को राज्य देकर तप करने के लिये पुलहाश्रम को गये ॥२८-२९॥

वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः ।
तपस्तेपे यथान्यायमियाज स महीपतिः ।३०।
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसन्ततः ।
नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वान ततो गतः ।३१।
ततश्च भारत वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ।३२।
सुमतिर्भरतस्याभूत्पुत्रः परमधार्मिकः ।
कृत्वा सम्यग्ददौ तस्मै राज्यमिष्टमखः पिता ।३३।
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु भरतः स महीपतिः ।
योगाभ्यासरत. प्राणान्शालग्रामेऽत्यजन्मुने ।३४।
अजायत च विप्रोऽसौ योगिना प्रवरे कुले ।
मैत्रेय तस्य चरित कथयिष्यामि ते पुनः ।३५।

पुलहाश्रम मे रहकर ऋषभदेव ने वानप्रस्थ पालनपूर्वक दृढ तपस्या और यज्ञो के अनुष्ठान किये ॥३०॥ वे घोर तप के कारण अत्यन्त सूख गये और उनकी रक्त वाहिनी नाड़ियाँ स्पष्ट दिखाई देने लगीं । अन्त मे नग्नावस्था में अपने मुख मे पत्थर की एक बटिका रख कर जीवन त्याग दिया ॥३०-३१॥ ऋषभदेव ने वनगमन करते समय अपना राज्य भरत को दिया, तभी से यह हिमवर्ष भारतवर्ष कहा जाने लगा ॥३२॥ राजा भरत के सुमति नामक एक अत्यन्त धार्मिक पुत्र हुआ । उन्होने यज्ञो केन करते हुए जब अनुष्ठा तक इच्छा रही, राज्य,सुख भोगा और फिर अपने पुत्र सुमति को राज्य दे दिया ॥३३॥ हे मुने ! राजा भरत अपने पुत्र को राज्य देकर योगाभ्यास-परायण हुए और अन्त मे उन्होने शालग्राम क्षेत्र मे अपने प्राण त्याग दिये ॥३४॥ अगले जन्म में यह योगियों के पवित्र कुल में उत्पन्न हुए । हे मैत्रेयजी ! इनके उस चरित्र को तुम्हे फिर सुनाऊँगा ॥३५॥

सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ।
परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतिहारस्तदन्वयः ।३६।
प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ।
भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सुतो विभुः ।३७।
पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ।
नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः ।३८।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ।
महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।३९।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत्सुतः ।
शतजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ।४०।
विष्वग्ज्योतिः प्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ।
तैरिदं भारतं वर्षं नवभेदमलङ्कृतम् ।४१।
तेषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेयं भारती पुरा ।
कृतत्रेतादिसर्गेण युगाख्यामेकसप्ततिम् ।४२।
एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् ।
वाराहे तु मुने कल्पे पूर्वमन्वन्तराधिपः ।४३।

मनु का यही वंश है, जिसने उस समय सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया था ॥४३॥

दूसरा अध्याय

कथितो भवता ब्रह्मन्सर्गः स्वायम्भुवश्च मे ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तः सकलं मण्डलं भुवः ।१।
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः ।
वनानि सरितः पुर्यो देवादीनां तथा मुने ।२।
यत्प्रमाणमिदं सर्वं यदाधारं यदात्मकम् ।
संस्थानमस्य च मुने यथावद्वक्तुमर्हसि ।३।
मैत्रेय श्रूयतामेतत्सङ्क्षेपाद्गदतो मम ।
नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्यो हि विस्तरः ।४।
जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ।५।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ।६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने स्वायंभुव मनु के वंश का वृत्तान्त मुझसे कहा है। अब मुझे भूमण्डल का विवरण सुनने की अत्यन्त इच्छा है ॥१॥ हे मुने ! सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ, देवादि की पुरियाँ आदि जो भी हैं, उनका परिमाण, आधार, उपादान, आकार आदि का यथावत् वर्णन करिये ॥२-३॥ श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इन सबको मैं संक्षेप में कहे देता हूँ, क्योंकि इनका पूरा वर्णन तो सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं होगा ॥४॥ हे द्विज ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर यह सातों द्वीप सब ओर से खारी जल, ईख-रस, मदिरा, घी, दही, दूध और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं ॥५-६॥

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः ।७।
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।८।
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः ।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ।९।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।१०।
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्यौ दशहीनास्तथापरे ।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।११।
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ।१२।
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ।१३।

हे मैत्रेयजी ! जम्बूद्वीप सब द्वीपो के मध्य में है और उसके ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत है ॥७॥ यह पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा तथा सोलह हजार योजन पृथिवी में धँसा हुआ है। इसका ऊपरी विस्तार बत्तीस हजार योजन है ॥८॥ उसका भूमि पर विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका तुल्य समझो ॥९॥ इसके दक्षिण में हिमवान, हेमकूट और निषध, उत्तर में नील, श्वेत और शृंगी नामक वर्ष पर्वत हैं ॥१०॥ उनके मध्य के दो पर्वत एक एक लाख योजन विस्तार वाले हैं, उनसे दूसरे-दूसरे पर्वत दस-दस हजार योजन कम हैं वे सभी दो-दो हजार योजन ऊँचे तथा उतने ही विस्तृत हैं ॥११॥ मेरु पर्वत के दक्षिण ओर प्रथम भारत, द्वितीय किम्पुरुष और तृतीय हरि नामक वर्ष हैं ॥१२॥ उत्तर में क्रमशः रम्यक, हिरण्मय और उत्तर कुरु हैं, जो भारतवर्ष के समान ही हैं ॥१३॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम ।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ।१४।
मेरोश्चतुर्दिशं तत्तु नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ।१५।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।१६।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ।
कदम्बस्तेषु जम्बुश्च पिप्पलो वट एव च ।१७।
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने ।१८।
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्या फलानि वै ।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः ।१९।
रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जाम्बूनदीति वै ।
सरित्प्रवर्त्तते चापि पीयते तन्निवासिभिः ।२०।

हे द्विजवर ! इनमे से प्रत्येक नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाला है, इन सब के मध्य मे इलावृत वर्ष है, जिसमे स्वर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है ॥१४॥ यह इलावृत वर्ष सुमेरु के सब ओर नौ नौ हजार योजन तक विस्तृत है, इसके चारो ओर चार पर्वत स्थित हैं ॥१५॥ यह चारो पर्वत सुमेरु को धारण करने वाली कीलियाँ- सी प्रतीत होती हैं । इनमे से मंदराचल पूर्व में, गन्धमादन दक्षिण मे, विपुल पश्चिम में और सुपार्श्व उत्तर मे है । इनकी ऊँचाई दस हजार योजन है । इन पर ग्यारह ग्यारह सौ योजन ऊँचे कदम्ब, जामुन, पीपल और वट के वृक्ष ध्वजाओ के समान खडे है । इनमे जामुन के वृक्ष से जम्बूद्वीप नाम पडा ॥१६-१८॥ उसके फल गजराज के समान महान होते हैं और जब वे पर्वत पर गिरते है तो फट कर सर्वत्र फैल जाते है ॥१९॥ उनके रस के एकत्र होने से जम्बु नाम की प्रसिद्ध नदी प्रवाहित होती है, वहाँ के निवासी उसी नदी का जल पीते हैं ॥२०॥

न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ।
तत्पानात्स्वच्छमनसां जनानां तत्र जायते ।२१।
तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायु विशोषिता ।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ।२२।
भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे ।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्यमिलावृतः ।२३।
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ।२४।
अरुणोदं महाभद्रमसितोदं समानसम् ।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा ।२५।
शीतरम्भश्च कुमुन्दश्च कुररी माल्यवांस्तथा ।
वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः ।२६।
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ।
निषदाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः ।२७।

उस जल के पीने से वहाँ के शुद्ध चित्त वाले मनुष्यों में स्वेद, दुर्गन्ध, वृद्धावस्था अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता ॥२१॥ उस नदी के तट की मिट्टी उस रस से मिल कर जब वायु से शुष्क हो जाती है, तब वह जाम्बूनद नामक स्वर्ण हो जाती है, जिसे सिद्ध पुरुष धारण करते हैं ॥२२॥ सुमेरु के पूर्व में भद्राश्व वर्ष और पश्चिम में केतुमाल वर्ष है, इन दोनों के मध्य में इलावृत नामक वर्ष स्थित है ॥२३॥ इसी प्रकार उसके पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दनवन है ॥२४॥ देवताओं द्वारा सदैव सेवनीय, अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नाम के चार सरोवर भी यहाँ स्थित हैं ॥२५॥ हे मैत्रेयजी ! शीताम्भ, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् और वैकङ्क आदि पर्वत मेरु के पूर्व में केसराचल है ॥२६॥ त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, और निषाद नामक केसराचल उसके दक्षिण में हैं ॥२७॥

शिखिवासाः सवैडूर्यः कपिलो गन्धमादनः ।
जारुधिप्रमुखास्तद्वत्पश्चिमे केसराचलाः ।२८।

मेरोरनन्तराङ्गेषु जठरादिष्ववस्थिताः ।
शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः ।
कालञ्जाद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः ।२६।
चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी ।
मेरोरुपरि मैत्रेय ब्रह्मणः प्रथिता दिवि ।३०।
तस्यास्समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च ।
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः ।३१।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम् ।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ।३२।
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा प्रतिपद्यते ।
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् ।३३।
पूर्वेण शैलात्सीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा ।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ।३४।
तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैत्य भारतम् ।
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने ।३५।

सुमेरु के पश्चिम मे शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन, और जारुधि आदि केसराचल हैं ।।२८।। मेरु के निकटवर्ती इलावृत वर्ष मे और जठरादि देशो मे स्थित शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालञ्जादि पर्वत उत्तर के केसराचल है ।।२६।। हे मैत्रेयजी ! उसी सुमेरु के ऊपर अन्तरिक्ष मे ब्रह्माजी की महापुरी है, जिसका विस्तार चौदह हजार योजन है ।।३०।। उसके सब ओर इन्द्रादि लोकपालो के अत्यंत रमणीक और प्रसिद्ध नगर दिशा विदिशाओ मे स्थित हैं ।।३१।। विष्णु भगवान् के चरणो से उद्भूत हुई गंगाजी चन्द्रमण्डल को सब ओर से आप्लावित करती हुई स्वर्ग से ब्रह्मपुरी मे गिरती हैं ।।३२।। वहा गिर कर वह चार भागो मे विभक्त होती हुई सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चारो दिशाओ मे प्रवाहित होती हैं ।।३३।। उनमे से सीता नदी पूर्वीय आकाश के मार्ग से एक पर्वत से दूसरे पर्वत को पार करती हुई समुद्र में जाकर मिल जाती है ।।३४।। अलकनन्दा दक्षिण की ओर भारतवर्ष

में आकर सात भागों में विभक्त होती हुई समुद्र में मिलती है ॥३५॥

चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलास्ततः ।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम् ।३६।
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ।
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने ।३७।
आनीलनिषधायामौ माल्यवन्द्गन्धमादनौ ।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।३८।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ।३९।
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।४०।

पश्चिम दिशा के पर्वतों को पार करती हुई चक्षु केतुमाल वर्ष में प्रवाहित होती हुई समुद्र में मिल जाती है ॥३६॥ हे महामुने ! उत्तर के पर्वतों को पार करके भद्रा उत्तर कुरु वर्ष में बहती हुई समुद्र में जा गिरती है ॥३७॥ माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत उत्तर और दक्षिण की ओर नील तथा निषध पर्वत तक फैले हैं । उन दोनों के मध्य में कर्णिका के आकार में मेरु पर्वत स्थित है ।३८। हे मैत्रेयजी ! मर्यादा पर्वतों के बाहरी भाग में भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु नामक वर्ष लोक रूपी कमल के पत्तों के समान लगते हैं ॥३९॥ जठर और देवकूट—यह दोनों मर्यादा पर्वत कहे गये हैं, यह उत्तर और दक्षिण में नीलाचल और निषधपर्वत तक फैले हैं ॥४०॥

गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।४१।
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ ।४२।
त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ।
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।४३।
इत्येते मुनिवर्योक्ता मर्यादापर्वतास्तव ।
जठराद्याः स्थिता मेरोस्तेषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ।४४।

मेरोश्चतुर्दिश ये तु प्रोक्ताः केसरपर्वताः ।
शीतान्ताद्या मुने तेपामतीव हि मनोरमाः ।४५।
शैलानामन्तरे द्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ।
सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ।४६।
लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्यादिवानां मुनिसत्तम ।
तास्वायतनवर्याणि जुष्टानि वरकिन्नरैः ।४७।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः ।
क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ।४८।
भौमा ह्येते स्मृताः स्वर्गा धर्मिणामालया मुने ।
नैतेपु पापकर्माणो यान्ति जन्मशतैरपि ।४९।

पूर्व और पश्चिम की ओर जो गंधमादन और कैलास हैं, उनका विस्तार अस्सी योजन है और यह समुद्र के भीतर स्थित हैं ॥४१॥ पूर्व के समान ही मेरु के पश्चिम में भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादा पर्वत हैं ॥४२॥ उत्तर में त्रिशृंग और जारुधि नाम के दो वर्षपर्वत है और यह दोनो ही पूर्व और पश्चिम के समुद्र- गर्भ में स्थित है ॥४३॥ इस प्रकार हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रति जठरादि मर्यादा पर्वतो के विषय में कहा गया, जिनमे से दो-दो पर्वत मेरु की चारों दिशाओं मे स्थित है ॥४४॥ हे मुने ! मेरु के चारो ओर स्थित जिन केसराचलो के विषय मे तुमसे कहा गया, उनके मध्य सिद्ध-चारण आदि द्वारा सेवन की गई अति रम्य कन्दराएँ है, उनमे सुरम्य उपवन तथा नगर तक बसे हुए हैं ॥४५-४६॥ तथा लक्ष्मी विष्णु, अग्नि, सूर्यादि देवताओं के अति सुन्दर मन्दिर हैं, जो सदा किन्नरो द्वारा पूजित होते हैं ॥४७॥ उन अत्यंत सुन्दर गिरि-गुफाओं में गधर्व, यक्ष, राक्षस और दैत्य-दानव आदि दिन-रात क्रीडा करते रहते हैं ॥४८॥ हे मुनि इन सब स्थानो को पृथिवी का स्वर्ग कहा गया है, इनमे धार्मिक पुरुष रहते हैं, पाप करने वाले तो यहाँ सौ वर्ष मे भी नही पहुँच सकते ॥४९॥

भद्राश्वे भगवान्विष्णुरास्ते हयशिरा द्विज ।
वराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक् ।५०।

मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते जनार्दनः ।
विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वः सर्वत्रगो हरिः ।५१।
सर्वस्याधारभूतोऽसौ मैत्रेयास्तेऽखिलात्मकः ।५२।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ।५३।
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः ।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ।५४।
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ।५५।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम ।५६।

हे द्विज ! भद्राश्व वर्ष में हयग्रीव रूप से, केतुमाल वर्ष में वराह रूप से और भारत वर्ष में कूर्म रूप से भगवान् विष्णु का निवास रहता है ॥५०॥ और वे भक्तों का पालन करने वाले भगवान् कुरुवर्ष में मत्स्य रूप से रहते हैं। इस प्रकार वे सर्वात्मक एवं सर्वगत श्री हरि विश्व रूप से सर्वत्र निवास करते हैं ॥५१॥ हे मैत्रेयजी ! वे भगवान् विष्णु सब प्राणियों के आधारभूत तथा सर्व जीव मय हैं ॥५२॥ किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें शोक, श्रम, उद्वेग एवं क्षुधादि का किंचित् भय नहीं होता ॥५३॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, निरातङ्क सन्ताप रहित होती है, वहाँ सब की आयु दस-बारह हजार वर्षों से कम नहीं होती ॥५४॥ उनमें वर्षा न होकर पार्थिव जल ही बहुत होता है, तथा वहाँ सत्ययुगादि की कल्पना भी नहीं की जाती ॥५५॥ हे द्विजवर ! इन सभी वर्षों में सात-सात कुलाचल हैं, जिनसे सैकड़ों नदियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥५६॥



तीसरा अध्याय

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।१।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ।२।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।३।
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयान्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ।४।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म भूमौ विधीयते ।५।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण भूभाग में स्थित देश भारतवर्ष कहा गया है। उसमें भरतवंशियों का निवास है ।।१।। हे महामुने ! यह नौ हजार योजन विस्तार वाली स्वर्ग अथवा मोक्ष की कामना करने वाले सतों की कर्म भूमि है ।।२।। इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य पारियात्र नामक पर्वत हैं ।।३।। हे मुने ! मनुष्य को इसी देश में शुभ कर्मों के द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष मिल सकता है तथा यहीं से वे नरक या तिर्यग्योनि को प्राप्त हो सकते हैं ।।४।। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष अन्तरिक्ष या पातालादि लोकों को पाया जा सकता है। इस देश के अतिरिक्त पृथिवी में किसी भी अन्य देश में कर्म का विधान नहीं है ।।५।।

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।६।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।७।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।८।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।।९।।
शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः ।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च पारियात्रोद्भवा मुने ।।१०।।
नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः ।
तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः ।।११।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा ।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ।।१२।।
कृतमाला ताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ।
त्रिसामा चार्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।।१३।।
ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ।
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्याश्च सहस्रशः ।।१४।।

इस भारत वर्ष के इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण नाम के आठ विभाग हैं तथा नवाँ भाग यह समुद्र से घिरा हुआ द्वीप है ।।६-७।। इस द्वीप का विस्तार उत्तर से दक्षिण पर्यन्त हजार योजन है । इसकी पूर्वीय प्रदेश में किरात और पश्चिमीय प्रदेश में यवन रहते हैं ।।८।। यज्ञ, शस्त्र अथवा व्यापार आदि में अपने-अपने कर्मानुसार लगे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मध्य में निवास करते हैं ।।९।। इसकी शतद्रू और चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से, वेद और स्मृति आदि पारियात्र पर्वत से, नर्मदा और सुरसादि विन्ध्याचल से और तापी, पयोष्णी एवं निर्विन्ध्यादि ऋक्षगिरि से निर्गत हुई हैं ।।१०-११।। गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि पापों को नष्ट करने वाली नदियाँ सह्य पर्वत से निकली बताई जाती हैं ।।१२।। कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलयाचल से, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्र पर्वत से तथा ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियों का निकास शुक्तिमान पर्वत से हुआ है । इनकी अन्य हजारों शाखायें नदियों और उपनदियों के रूप में प्रवाहित हैं ।।१३-१४।।

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः ।
पूर्वदेशादि ऽश्चैव कामरूपनिवासिनः ।१५।
पुण्ड्रा कलिङ्गा मगधा दक्षिणाद्याश्च सर्वशः ।
तथापरान्ता सौराष्ट्रा शूराभीराम्नथार्बुदाः ।१६।
कारूषा मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ।
सौवीराः सैन्धवा हूणाः साल्वाः कोशलवासिनः ।
माद्रारामास्तथाम्बष्ठा पारसीकादयस्तथा ।१७।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सहिता सदा ।
समीपतो महाभाग हृष्टपुष्टजनाकुलाः ।१८।
चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ।१९।
तपस्तप्यन्ति मुनयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ।२०।
पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ।२१।

इन नदियों के किनारे कुरु, पाञ्चाल और मध्य देशादि के निवासी, पूर्व देश और काम रूप में रहने वाले, पुण्ड्र, कलिंग, मगध या दक्षिण के अथवा उपरान्त देश के लोग, सौराष्ट्रगण, शूर, आभीर, अर्बुदगण, का रूप, मालव पारियात्र पर रहने वाले, सौवीर, सैंधव, हूण, साल्व और कोशल देश के लोग, माद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसी निवास करते हैं ।।१५-१७।। हे महाभाग ! यह परस्पर मेल से रहते और इन्हीं नदियों का जल पीते हैं, इन नदियों की निकटता से वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं ।।१८।। हे मुने ! भारतवर्ष में ही सत्युग, त्रेता, द्वापर कलियुग हुआ करते हैं, इन चारों में से कोई भी युग कहीं अन्यत्र नहीं होता ।।१९।। इसी देश में मुनिगण परलोक प्राप्ति के लिये तप करते हैं, याज्ञिकों के अनुष्ठान भी इसी लोक में होते हैं तथा यहीं दानी पुरुष दान करते हैं ।।२०।। जम्बूद्वीप में यज्ञमय एवं यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु का सदा भजन किया जाता है तथा अन्यान्य द्वीपों में उनकी उपासना भी भिन्न भिन्न प्रकार से होती है ।।२१।।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ।२२।
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ।२३।
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।२४।
कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि सन्न्यस्य विष्णौ परमात्मभूते ।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ।२५
जानीम नैतत्क्व वयं विलीने
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम् ।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ।२६।
नववर्षं तु मैत्रेय जम्बूद्वीपमिदं मया ।
लक्षयोजनविस्तारं सङ्क्षेपात्कथितं तव ।२७।
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।
मैत्रेय वलयाकारः स्थितः क्षारोदधिर्बहिः ।२८।

हे महामुने ! जम्बूद्वीप में भी यह भारत वर्ष कर्मभूमि होने के कारण श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्यान्य देश तो भोग भूमि मात्र हैं ।।२२।। हजारों जन्मों की यंत्रणा भोग लेने के पश्चात् कभी महान् पुण्य फल का उदय हो तो ही इस देश में मनुष्य-देह की प्राप्ति होती है ।।२३।। देवता भी यही कहते रहते हैं कि जो स्वर्ग और मोक्ष के मार्गभूत भारतवर्ष में उत्पन्न हुए हैं तथा जिन्होंने इस कर्मभूमि में उत्पन्न होकर फल प्राप्ति की कामना से रहित अपने कर्मों को परमात्म रूप भगवान् विष्णु को अर्पण कर दिया है तथा इससे मल-रहित होकर अन्त में उन्हीं अनन्त भगवान् में लीन हो जाते हैं, वे मनुष्य हम देवताओं से भी अधिक भाग्यवान् हैं ।।२४-२५।। अपने स्वर्ग प्राप्त कराने वाले पुण्य कर्मों के क्षीण होने पर हम कहाँ जाकर उत्पन्न होंगे, यह हम नहीं जानते । वे मनुष्य धन्य हैं जिन्होंने भारतवर्ष की पृथिवी पर उत्पन्न होकर इन्द्रियों की शक्ति की

नहीं छोड़ा है ॥२६॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार मैंने लाख योजन विस्तृत इस जम्बूद्वीप का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया है ॥२७॥ हे मैत्रेयजी ! यह जम्बू द्वीप बाहर से लाख योजन विस्तार वाले खारी जल के वलयाकार समुद्र से घिरा हुआ है ॥२८॥



चौथा अध्याय

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः ।
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥१॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः ।
स एव द्विगुणो ब्रह्मन् प्लक्षद्वीप उदाहृतः ॥२॥
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।
ज्येष्ठः शान्तहयो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥४॥
पूर्वं शान्तहयं वर्षं शिशिरं च सुखं तथा ।
आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः ।
सप्तैव तेषां नामानि शृणुष्व मुनिसत्तम ॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥७॥

श्रीपराशरजी ने कहा—जैसे जम्बूद्वीप खारे जल के समुद्र से घिरा हुआ है, वैसे ही उस खारे जल वाले समुद्र को प्लक्ष द्वीप ने घेर रखा है ॥१॥ जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन है और प्लक्ष द्वीप का विस्तार उससे दुगुना बतलाते हैं ॥२॥ प्लक्षद्वीपेश्वर मेधातिथि के सात पुत्र हुए थे उनमें ज्येष्ठ पुत्र शान्तहय और उससे छोटा शिशिर हुआ ॥३॥ उन दोनों के पश्चात्

सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव क्रमशः हुए ॥४॥ पहला शान्तहय वर्ष, दूसरा शिशिर वर्ष, फिर सुखोदय वर्ष, आनन्द वर्ष, शिव वर्ष, क्षेमक वर्ष और ध्रुव वर्ष हुए ॥५॥ उनकी मर्यादा बनाने वाले सात अन्य पर्वत हैं, उनके नाम गोमद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और वैभ्राज हैं ॥६-७॥

वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः ।
वसन्ति देवगन्धर्वसहिताः सततं प्रजाः ॥८॥
तेषु पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः ।
नाधयो व्याधयो वापिसर्वकालसुखं हि तत् ॥९॥
तेषां नद्यस्तु सप्तैव वर्षाणां च समुद्रगाः ।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ॥१०॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवाक्लमा ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥११॥
एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथितास्तव ।
क्षुद्रशैलास्तथा नद्यस्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥१२॥
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।
अपसर्पिणी न तेषां वै न चैवोत्सर्पिणी द्विज ॥१३॥
न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ।
त्रेतायुगसमः कालः सर्वदैव महामते ॥१४॥
प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मञ्छाकद्वीपान्तिकेषु वै ।
पञ्च वर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः ॥१५॥

इन अत्यन्त रमणीक वर्ष पर्वतों तथा वर्षों में देवताओं और गधर्वों के सहित पाप रहित प्रजा रहती है ॥८॥ वहाँ के रहने वाले पुण्यवान् और चिरायु होते हैं, उन्हें किसी प्रकार के रोगादि में ग्रसित नहीं होना होता वे सदा सुखी रहते हैं ॥९॥ उन वर्षों में सात ही नदियाँ हैं, जो समुद्र में गिरती हैं। मैं उनके नाम तुमसे कहता हूँ, जिनके सुनने मात्र से ही वे नदियाँ पापों से छुड़ाती हैं ॥१०॥ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और

सुभ्रता—यह उन सातों के नाम हैं ॥११॥ प्रमुख प्रमुख नदियों और पर्वतों का मैंने तुमसे यह वर्णन किया है वैसे छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो वहाँ हजारों ही होंगी ॥१२॥ उस देश के हृष्ट पुष्ट मनुष्य सदैव उन नदियों का ही जल पीते हैं, इसलिये उनमें ह्रास अथवा वृद्धि का अभाव रहता है ॥१३॥ उन सात वर्षों में युग की भी अवस्था नहीं है। हे ब्रह्मन्! प्लक्ष द्वीप से शाक द्वीप पर्यन्त छहों द्वीपों में सदैव त्रेता युग जैसा समय रहता है। इन द्वीपों के निवासी रोग रहित रहते हुए पाँच हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं ॥१४-१५॥

धर्माः पञ्च तथैतेषु वर्णाश्रमविभागशः ।
वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान्निबोध वदामि ते ।१६।
आर्यकाः कुरराश्चैव विदिश्या भाविनश्च ते ।
विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ।१७।
जम्बूवृक्षप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहास्तरुः ।
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम ।१८।
इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वर्णैरार्यकादिभिः ।
सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्वः सर्वेश्वरो हरिः ।१९।
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः ।
तथैवेक्षुरसोदेन परिवेषानुकारिणा ।२०।
इत्येवं तव मैत्रेय प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।
सङ्क्षेपेण मया भूयः शाल्मलं मे निशामय ।२१।

वर्णाश्रम के विभागानुसार इनमें पाँचों धर्म की विद्यमानता रहती है। अब यहाँ के चार वर्णों का तुमसे वर्णन करता हूँ ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! उस द्वीप में आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी सज्ञक जातियाँ हैं, वही क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समझो ॥१७॥ उसी द्वीप में जम्बू वृक्ष के समान ही प्लक्ष का एक वृक्ष है, उसी के नाम पर वह प्लक्षद्वीप कहा गया है ॥१८॥ वहाँ आर्यक आदि जातियाँ ही जगत्स्रष्टा, सर्वगत, सर्वेश्वर श्रीहरि का सोम रूप से यजन करती हैं ॥१९॥ यह प्लक्ष द्वीप अपने तुल्य परिमाण

के वलयाकार ईखरस के समुद्र से घिरा है ॥२०॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार मैंने प्लक्षद्वीप का संक्षिप्त वर्णन किया, अब शाल्मल द्वीप का वृत्तान्त सुनो ॥२१॥

शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुतान्छृणु ।
तेषां तु नामसंज्ञानि सप्तवर्षाणि तानि वै ।२२।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूता रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च महामुने ।२३।
शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः ।
विस्तारद्विगुणेनाथ सर्वतः संवृतः स्थितः ।२४।
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ।
वर्षाभिव्यञ्जका ये तु तथा सप्त च निम्नगाः ।२५।
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च वलाहकः ।
द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ।२६।
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा ।
ककुद्मान्पर्वतवरः सरिन्नामानि मे शृणु ।२७।
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रामुक्ता विमोचनी ।
निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ।२८।
श्वेतञ्च हरितं चैव वैद्युतं मानसं तथा ।
जीमूतं रोहितं चैव सुप्रभं चापि शोभनम् ।
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि वै ।२९।

शाल्मल द्वीप के अधिपति वपुष्मान् थे । अब उनके पुत्रों के नाम श्रवण करो—श्वेत, हरित, जीमूत, वैद्युत, मानस और सुप्रभ यह सात पुत्र थे, इन्हीं के नाम पर उनके सात वर्ष हुए ॥२२-२३॥ वह ईखरस का समुद्र अपने से द्विगुण विस्तार वाले शाल्मल द्वीप से घिरा है ॥२४॥ वहाँ भी रत्नों को उत्पन्न करने वाले सात पर्वत उन सातों वर्ष का विभाग करते हैं और सात नदियाँ भी हैं ॥२५॥ पर्वतों में प्रथम कुमुद, द्वितीय उन्नत, तृतीय बलाहक तथा चतुर्थ द्रोण है, जिसमें विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥२६॥ पंचम

पर्वत कंक, पष्ठ महिष एवं सप्तम ककुद्मान है, अब नदियों के नाम सुनो ॥२७॥ वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति नाम की हैं और स्मरण करते ही सब पापों का शमन करने वाली है ॥२८॥ श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस जीमूत, रोहित और सुप्रभ, उसके यह सात वर्ष चारों वर्णों से युक्त हैं ॥२९॥

शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महामुने ।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक् ।३०।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम् ।
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम् ।३१।
वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितिम् ।
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे ।३२।
शाल्मलिः सुमहान्वृक्षो नाम्ना निर्वृतिकारकः ।
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः ।३३।
विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः ।
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः ।३४।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राञ्छृणुष्व तान् ।३५।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव वैरथो लम्बनो धृतिः ।
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः ।३६।

हे महामुने ! उस शाल्मल द्वीप में कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण यह जातियाँ रहती हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । यह यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्मा, अव्यय और यज्ञाश्रय वायुरूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों से यजन-पूजन करते हैं तथा यहाँ देवताओं का सदा निवास रहता है ॥३०-३२॥ इस द्वीप में शाल्मल का महान् वृक्ष होने से ही इस द्वीप का यह नाम पड़ा है । यह द्वीप अपने जैसे परिमाण वाले मदिरा के समुद्र से घिरा है तथा मदिरा का यह समुद्र शाल्मल द्वीप से द्विगुण विस्तार वाले कुश द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है । उस कुश द्वीप के अधिपति ज्योतिष्मान् के सात

पुत्र थे, उनके नाम कहता हूँ, सुनो ॥३३-३५॥ उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल नामक इन राजपुत्रों के नाम पर ही वहाँ के वर्षों के नाम पड़ गये ॥३६॥

तस्मिन्वसन्ति मनुजाः सह दैतेयदानवैः ।
तथैव देवगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषादयः ।३७।
वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ।
दमिन शुष्मिणः स्नेहा मन्देहाश्च महामुने ।३८।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ।
यथोक्तकर्मकर्तृत्वात्स्वाधिकारक्षयाय ते ।३९।
तत्रैव त कुशद्वीपे ब्रह्मरूप जनार्दनम् ।
यजन्तः क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम् ।४०।
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवास्तथा ।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ।४१।
वर्षाचलास्तु सप्तैते तत्र द्वीपे महामुने ।
नद्यश्च सप्त तासां तु शृणु नामान्यनुक्रमात् ।४२।
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ।
विद्युदम्भा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ।४३।

उस द्वीप में दैत्य-दानवों सहित मनुष्य, देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आदि रहते हैं ॥३७॥ अपने अपने कर्मों में लगी हुई चार जातियाँ दम्मी, शुष्मी, स्नेह और मन्देह संज्ञक हैं ॥३८॥ जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं। अपने प्रारब्ध को क्षीण करने के निमित्त शास्त्र सम्मत कर्म करते हुए ब्रह्म रूप जनार्दन की उपासना से अपने प्रारब्ध फल के दाता उस अत्यन्त उग्र अहंकार को क्षीण करते हैं ॥३९-४०॥ हे महामुने ! उस द्वीप में सात वर्ष पर्वत हैं, जिनके नाम विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान् पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मंदराचल हुए। वहाँ सात नदियाँ हैं, उनके भी नाम श्रवण करो ॥४१-४२॥ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत् अम्भा और मही नाम की यह सातों नदियाँ सब पापों को नष्ट करने वाली हैं ॥४३॥

अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचला ।
कुशद्वीपे कुशस्तम्ब सज्ञया तस्य तत्स्मृतम् ।४४।
तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृत. ।
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन सवृत ।४५।
क्रौञ्चद्वीपो महाभाग श्रूयताञ्चापरो महान् ।
कुशद्वीपस्य विस्तारात् द्विगुणो यस्य विस्तर ।४६।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमत' पुत्रास्तस्य महात्मन ।
तन्नामानि च वर्षाणि तेपा चक्रे महीपतिः ।४७।
कुशलो मन्दगश्चोष्ण' पीवरोऽथान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता मुने ।४८।
तत्रापि देवगन्धर्वसेविता. सुमनोहरा ।
वर्पाचला महाबुद्धे तेपा नामानि मे शृणु ।४९।
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारक. ।
चतुर्थो रत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभ ।५०।
दिवावृत्पञ्चमश्चात्र तथान्य. पुण्डरीकवान् ।
दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ।५१।

इस द्वीप मे छोटी-छोटी नदियाँ और क्षुद्र पर्वत तो हजारों ही हैं। वहाँ कुश का एक महान् झाड है, उसी के कारण उसका नाम कुशद्वीप हुआ ॥४४॥ यह अपने ही जैसे परिमाण वाले घृत के समुद्र से सब ओर से घिरा है और वह घी का समुद्र क्रौंच द्वीप से घिरा हुआ है ॥४५॥ हे महाभाग ! अब इससे आगे के क्रौंच नामक महाद्वीप के विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ! वह कुश द्वीप से द्विगुण विस्तार वाला है ॥४६॥ उस क्रौञ्च द्वीप मे महाराज द्युतिमान् के सात पुत्रों के नाम पर ही उनके वर्ष नियत किये गये ॥४७॥ हे मुने ! कुशल, मन्दग उष्ण पीवर, अन्धकारक मुनि और दुन्दुभि यह उनके नाम थे ॥४८॥ वहाँ भी देवताओं और गधर्वों से सेवित सात वर्ष पर्वत अत्यंत सुरम्य हैं, अब उनके भी नाम सुनो ॥४९॥ उनमे प्रथम क्रौंच, द्वितीय वामन, तृतीय अन्धकारक, चतुर्थ घोड़ी के मुख जैसा रत्नमय स्वाहिनी पर्वत, पंचम दिवावृत्, षष्ठ पुण्डरीकवान् और सप्तम दुन्दुभि नामक महापर्वत हैं ॥५०-५१॥

द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपेषु ते तथा ।
वर्षेष्वेतेषु रम्येषु तथा शैलवरेषु च ।
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः ।५२।
पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्याख्याश्च महामुने ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ।५३।
नदीर्यैश्चैव ते तत्र याः पिबन्ति शृणुष्व ताः ।
सप्तप्रधानाः शतशस्तत्रान्या क्षुद्रनिम्नगाः ।५४।
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
क्षान्तिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ।५५।
तत्रापि विष्णुर्भगवान्पुष्कराद्यैर्जनार्दनः ।
यागै रुद्रस्वरूपश्च इज्यते यज्ञसन्निधौ ।५६।
क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन च ।
आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः ।५७।
दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन महामुने ।५८।

उन्ही के समान उनके पर्वतो का उत्तरोत्तर दुगुना परिमाण है । इन सभी वर्षों और श्रेष्ठ पर्वतो मे देवताओ के सहित सब प्रजा भय-रहित होकर निवास करती है ।।५२।। वहाँ के पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य संज्ञक वर्ण ही क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ।।५३।। हे मैत्रेयजी ! वहाँ जिन नदियो का जल पिया जाता है, उन नदियो का वर्णन सुनो । उस द्वीप मे सात प्रधान नदियाँ और छोटी नदियाँ है ।।५४।। उन सात वर्ष नदियों के नाम गौरी कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, क्षान्ति तथा पुण्डरीका हैं ।।५५।। वे पुष्करादि वर्ण वहाँ रुद्र रूपी भगवान् विष्णु का यज्ञादि से पूजन करते हैं ।।५६।। यह क्रौंच द्वीप चारों ओर से अपने ही बराबर परिमाण के मट्ठा के समुद्र से घिरा है ।।५७।। हे महामुने ! मट्ठा का यह समुद्र भी चारो ओर से शाकद्वीप से घिरा है । वह शाकद्वीप क्रौंचद्वीप से द्विगुण परिमाण वाला है ।।५८।।

शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्य सुमहात्मन ।
सप्तैव तनयास्तेषा ददौ वर्षाणि सप्त स ।५९।
जलदश्च सुकुमारश्च सुकुमारो मरीचक ।
कुसुमोदश्च मौदाकि सप्तमश्च महाद्रुम ।६०।
तत्सज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ।
तत्रापि पर्वता सप्त वर्षविच्छेदकारिण ।६१।
पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापर ।
तथा रैवतक श्यामस्तथवास्तगिरिर्द्विज ।६२।
आम्बिकेयस्तथा रम्य केसरी पर्वतोत्तम ।
शाकस्तत्र महावृक्ष सिद्धगन्धर्वसेवित ।६३।
यत्रत्यवातसस्पर्शादाह्लादो जायते पर ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विता ।६४।

शाकद्वीप के जो राजा भव्य थे, उनके भी सात पुत्र हुए थे । उनको भी अलग अलग सात वर्ष दिये गये ॥५९॥ जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम उनके नाम थे। उन्हीं के नाम पर उनके वर्ष हुए। उन वर्षों के विभाजक सात ही पर्वत हैं ॥६०-६१॥ हे द्विज ! उनमें पहला पर्वत उदयाचल दूसरा जलाधार और इसी प्रकार रैवतक,श्याम, अस्ताचल,आम्बिकेय, तथा सातवाँ केसरी है । वहाँ सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित एक विशाल शाक वृक्ष है ॥६२-६३॥ उसके स्पर्श से आने वाली वायु अत्यन्त आह्लाद को उत्पन्न करती है । वहाँ भी चारों वर्णों से युक्त अत्यन्त पवित्र देश है ॥६४॥

नद्यश्चात्र महापुण्या सर्वपापभयापहा ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या ।६५।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।
अन्याश्च शतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने ।६६।
महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रश ।
ता पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ।६७।
वर्षेषु ते जनपदा स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम् ।
धर्महानिर्न तेष्वस्ति न सङ्घर्ष परस्परम् ।६८।

मर्यादाव्युत्क्रमो नापि तेषु देशेषु सप्तसु ।
वङ्गाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।६९।
वङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः ।७०।
शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः सूर्यरूपधरो मुने ।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः ।७१।

वहाँ सात अत्यन्त पुनीत नदियाँ हैं । उनके नाम सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ती हैं, वे नदियाँ सब पापों और भयों को नष्ट करती हैं। इन नदियों के अतिरिक्त वहाँ अन्य सैकड़ों ही छोटी-छोटी नदियाँ तथा हजारों क्षुद्र पर्वत हैं। स्वर्ग के भोगों का भोग करने के पश्चात् जिन्होंने भूतल पर आकर जलद आदि वर्षों में जन्म लिया है, वे प्रसन्नता पूर्वक उन नदियों का जल पीते हैं। उन सातों वर्षों में कहीं भी धर्म का ह्रास, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नहीं होता। वहाँ वंग, मागध, मानस और मंदग नामक चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥६५-७०॥ हे मुने ! उस शाकद्वीप में शास्त्र-सम्मत कर्म करने वाले उन चतुर्वर्णों द्वारा सूर्य रूपी भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है ॥७१॥

शाकद्वीपस्तु मैत्रेय क्षीरोदेन समावृतः ।
शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टितः ।७२।
क्षीराब्धिः सर्वतो ब्रह्मन्पुष्कराख्येन वेष्टितः ।
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ।७३।
पुष्करे सवनस्यापि महावीरोऽभवत्सुतः ।
धातकिश्च तयोस्तत्र द्वे वर्षे नामचिह्निते ।७४।
महावीरं तथैवान्यद्धातकीखण्डसंज्ञितम् ।
एकश्चात्र महाभाग प्रख्यातो वर्षपर्वतः ।७५।
मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।७६।

तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ।
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव ।७७।
स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं तद्वर्षकद्वयम् ।
वलयाकारमेकैकं तयोर्वर्ष तथा गिरिः ।७८।
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषादिवर्जिताः ।७९।
अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विज ।
नेर्ष्यासूया भयं द्वेषो दोषो लोभादिको न च ।८०।

हे मैत्रेयजी ! वह शाकद्वीप अपने ही समान परिमाण वाले वलयाकार दूध (क्षीर) के समुद्र से घिरा है। वह क्षीर सागर शाकद्वीप से दुगने परिमाण के पुष्कर द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है ।।७३।। पुष्कर द्वीप के राजा सवन के दो पुत्र हुए, जिनके नाम महावीर और धातकि थे। इन्हीं दोनों के नाम पर महावीर-खण्ड और धातकि खण्ड नामक वर्ष हुए। इसमें मानसोत्तर नामक एक ही वर्ष पर्वत मध्य में स्थित है वह पचास हजार योजन ऊँचा और उतना ही सब ओर से फैला हुआ है। इससे ऐसा लगता है जैसे यह पर्वत पुष्कर द्वीप रूपी को मध्य में से विभाजित कर रहा है तथा इसके विभाग से ही दो वर्ष हो गये हैं। उनमें से प्रत्येक वर्ष तथा वह पर्वत गोलाकार के ही हैं ।।७४-७८।। वहाँ के निवासी रोग शोक, राग-द्वेषादि से परे रह कर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं ।।७९।। उनमें ऊँच-नीच, मरने-मारने आदि जैसे भाव नहीं हैं और ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष तथा लोभादि का भी अभाव है ।।८०।।

महावीरं बहिर्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः ।
मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ।८१।
सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ।
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते ।८२।
तुल्यवेषास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः ।
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्माचरणवर्जितम् ।८३।

त्रयी वार्ता दण्डनीतिशुश्रूषारहितञ्च यत् ।
वर्षद्वय तु मैत्रेय भौमः स्वर्गोऽयमुत्तमः ।८४।
सर्वर्तु सुखदः कालो जरारोगादिवर्जितः ।
धातकीखण्डसंज्ञेऽथ महावीरे च वै मुने ।८५।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ।८६।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ।
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलं तथा ।८७।

पर्वत के बाहर की ओर महावीर खण्ड तथा भीतर की ओर धातकी खण्ड है। इनमे देवता और दैत्य रहते हैं ॥८१॥ दो खण्डो वाले उस पुष्कर द्वीप मे सत्य अथवा असत्य कुछ भी नहीं है और न वहाँ पर्वत और नदी ही हैं ॥८२॥ वहाँ के मनुष्य और देवता समान रूप तथा समान वेश-भूषा वाले हैं। हे मैत्रेयजी! वहाँ न तो वर्णाश्रम व्यवस्था है, न काम्य कर्म हैं और न वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति या शुश्रूषादि ही हैं। इस प्रकार वे दोनों पृथिवी के अतिश्रेष्ठ स्वर्ग ही हैं ॥८३-८४॥ हे मुने! उन दोनों वर्षों में स्थित काल सब ऋतुओं में समान सुख देने वाला तथा बुढ़ापे और रोगादि से शून्य रहता है ॥८५॥ उस द्वीप मे ब्रह्माजी के श्रेष्ठ स्थान रूप एक वट वृक्ष है, जहाँ देव-दानवों द्वारा पूजित हुए श्री ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं ॥८६॥ यह पुष्कर द्वीप अपने ही बराबर परिमाण-विस्तार वाले मीठे पानी के समुद्र से चारों ओर से वलयाकार घिरा हुआ है ॥८७॥

एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्त सप्तभिरावृताः ।
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ ।८८।
पयांसि सर्वदा सर्वसमुद्रेषु समानि वै ।
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ।८९।
स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तम ।९०।
अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ।
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।९१।

दशोत्तराणि पञ्च च ह्यङ्गुलानां शतानि वै ।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ।९२।
भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ।
षड्रसं भुञ्जते विप्र प्रजाः सर्वाः सदैव हि ।९३।

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं। ये द्वीप और समुद्र परस्पर समान परिमाण वाले तथा उत्तरोत्तर द्विगुण होते चले गये हैं ॥८८॥ सभी समुद्रों में जल सदैव एक-सा रहता है, कभी अधिक अथवा न्यून नहीं होता ॥८९॥ हे मुने ! अग्नि पर चढ़े हुए पात्र का जल जिस प्रकार उष्णता प्राप्त कर उबलने लगता है, वैसे ही चन्द्रमा की कला वृद्धि के साथ समुद्र के जल में भी वृद्धि होने लगती है ॥९०॥ शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त की सीमा से न्यून या अधिक न होते हुए ही जल में बढ़ाव या उतराव होता है ॥९१॥ हे महामुने ! समुद्र का जल पाँच सौ दस अंगुल तक बढ़ता अथवा इतने ही परिमाण तक घटता हुआ देखा जाता है ॥९२॥ हे विप्र ! उस पुष्कर द्वीप में सम्पूर्ण प्रजा को बिना प्रयास ही प्राप्त हुआ षड्रस भोजन सदा प्राप्त होता रहता है ॥९३॥

स्वादूदकस्य परितो दृश्यतेऽलोकसंस्थितिः ।
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ।९४।
लोकालोकस्ततश्शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
उच्छ्रायेणापि तावन्ति सहस्राण्यचलो हि सः ।९५।
ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम् ।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम् ।९६।
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वी महामुने ।
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपाब्धिमहीधरा ।९७।
सेयं धात्री विधात्री च सर्वभूतगुणाधिका ।
आधारभूता सर्वेषां मैत्रेय जगतामिति ।९८।

मीठे पानी के समुद्र के चारों ओर लोगों के आवास से रहित तथा सभी जीवों से शून्य उससे द्विगुण परिमाण वाली स्वर्णिम पृथिवी दिखाई देती

है ॥९४॥ वहाँ दस हजार योजन विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है, जिसकी ऊँचाई भी दस हजार योजन की ही है ॥९५॥ उसके आगे उस पर्वत को सब ओर से अंधकार घेरे हुए है तथा उस अन्धकार को ब्रह्माण्ड-कटाह ने सब ओर से घेर रखा है ॥९६॥ हे महामुने ! अण्डकटाह के सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादि युक्त इस सम्पूर्ण पृथिवी मण्डल का विस्तार पचास करोड़ योजन है ॥९७॥ हे मैत्रेयजी ! आकाशादि सभी भूतों से विशिष्ट गुण वाली यह पृथिवी सम्पूर्ण विश्व की आश्रया तथा उसका पालन और उत्पत्ति करने वाली है ॥९८॥



पाँचवाँ अध्याय

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया ।
सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम ।
अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत् ।
महाख्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ॥२॥
शुक्लकृष्णारुणाः पीताः शर्कराः शैलकाञ्चनाः ।
भूमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमण्डिताः ॥३॥
तेषु दानवदैतेया यक्षाश्च शतशस्तथा ।
निवसन्ति महानागजातयश्च महामुने ॥४॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इस पृथिवी का विस्तार मैंने तुम्हें बताया है। कहते हैं कि इसकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इन सातों पातालों की पारस्परिक दूरी दस-दस हजार योजन है ॥२॥ हे मैत्रेयजी ! श्रेष्ठ भवनों से सुशोभित वहाँ के धरातल शुक्ल, कृष्ण, अरुण,

पीत, शर्करामयी, शैली अथवा स्वर्णिम हैं ॥३॥ दानव, दैत्य, यक्ष और महानाग आदि की सैकड़ो जातियाँ उनमे रहती हैं ॥४॥

स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः ।
प्राह स्वर्गसभामध्ये पातालेभ्यो गतो दिवि ।५।
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ।
नागाभरणभूषासु पाताल केन तत्समम् ।६।
दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ।
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते ।७।
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम् ।
शशिरश्मिन शीतं य निशि द्योताय केवलम् ।८
भक्ष्यभोज्यमहापानमुदितरपि भोगिभि ।
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः ।९।
वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः ।
पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च ।१०।
भूषणान्यतिशुभ्राणि गन्धाढ्यं चानुलेपनम् ।
वीणावेणुमृदङ्गानां स्वनास्तूर्याणि च द्विज ।११।
एतान्यन्यानि चोदारभाग्यभोग्यानि दानवैः ।
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ।१२।

हुआ मालुम नहीं होता ॥९॥ जहाँ सुरम्य वन, सरिताएँ, सरोवर और कमलों के उपवन हैं तथा जहाँ नर कोकिलों की सुमधुर ध्वनि गूँजती है, जहाँ का आकाश भी मन को हरण कर लेने वाला है ॥ १०॥ हे द्विज ! जिस पाताल में रहने वाले दैत्य, दानव और नाग अत्यन्त स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय लेपन, वीणा, वेणु, मृदङ्ग, तूर्य आदि के मधुर स्वर से युक्त हुए भाग्यवानों के भोगने योग्य अन्य अनेक भोग भोगे जाते हैं ॥११-१२॥

पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः ।
शेषाख्या यद्गुणान्वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः ॥१३॥
योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवो देवर्षिपूजितः ।
स सहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः ॥१४॥
फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन्दिशः ।
सर्वान्करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान् ॥१५॥
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ।
किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निः श्वेत इवाचलः ॥१६॥
नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ।
साभ्रगङ्गाप्रवाहोऽसौ कैलासाद्रिरिवापरः ॥१७॥
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम् ।
उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया ॥१८॥
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ।
सङ्कर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ॥१९॥
स बिभ्रच्छेखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ।
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ॥२०॥

इन पातालों के नीचे भगवान् विष्णु का शेष नामक तमोमय विग्रह है, उसका गुण-गान दैत्य-दानवादि भी नहीं कर सकते ॥१३॥ देवर्षियों से पूजित जिन भगवान् को सिद्धगण अनन्त कहते हैं, वे अत्यन्त निर्मल, स्वस्तिक चिन्हों से भूषित तथा हजार शीश वाले हैं ॥१४॥ जो अपने फणों की हजार मणियों से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए लोक कल्याणार्थ सब असुरों

को निस्तेज करते रहते हैं ॥१५॥ मद से अरुण नयन, एवं कुण्डल, मुकुट एवं माला आदि धारण किये हुए अग्निमय श्वेत पर्वत के समान शोभायमान हैं ॥१६॥ मद से उन्मत्त होकर नीलाम्बर और श्वेत हारों के धारण से शोभायमान होकर मेघमाला और गङ्गा के प्रवाह वाले द्वितीय कैलास के समान स्थित हैं ॥१७॥ जो अपने हाथों में हल-मूसल धारण किये हुए हैं तथा शोभा और वारुणी देवी स्वयं मूर्तिमती होकर जिनका स्तव करती हैं। १८॥ कल्प के अन्त में जिनके मुखों से विषाग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशित सकर्षण नामक रुद्र निकलता और तीनों लोकों को उदरस्थ कर लेता है ॥१९॥ वे सब देवताओं से नमस्कृत भगवान् शेष अशेष पृथिवी मण्डल को मुकुट के समान धारण किये हुए पातालमूल में विराज रहे हैं ॥२०॥

तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ।
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं च त्रिदशैरपि ।२१।
यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ।
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ।२२।
यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ।
तदा चलति भूरेषा साब्धितोया सकानना ।२३।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा किन्नरोरगचारणाः ।
नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्ययः ।२४।
यस्य नागवधूहस्तैर्लेपितं हरिचन्दनम् ।
मुहुः श्वासानिलापास्तं याति दिक्षूदवासताम् ।२५।
यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः ।
ज्ञातवान्सकलं चैव निमित्तपठितं फलम् ।२६।
तेनेयं नागवर्येण शिरसा विधृता मही ।
बिभर्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ।२७।

जिन शेष भगवान् का बल वीर्य, प्रभाव, स्वरूप, आकार आदि देवगण भी नहीं जान सकते और न वर्णन कर सकते हैं ॥२१॥ जिनके फणों में स्थित मणियों की आभा से अरुण वर्ण हुई यह सम्पूर्ण पृथिवी पुष्प माला के समान

रखी है, उनके बल-वीर्य का वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२२॥ जब मद से मत्त हुए भगवान् शेष जम्हाई लेते हैं तब समुद्रो और वनों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथिवी डोल उठती है ॥२३॥ गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध किन्नर, नाग, चारण आदि कोई भी इनके गुणों का अन्त पाने मे समर्थ नही है, इसी से यह अविनाशी देव अनन्त कहे जाते हैं ॥२४॥ जिनके देह पर नागों द्वारा लेपा गया चन्दन श्वास लेने से छूट-छूट कर सब दिशाओ को सुगन्धमय बनाता रहता है ॥२५॥ पूर्वकाल में महर्षि गर्ग ने जिनकी आराधना करके ज्योतिर्मण्डल और शकुनादि के नैमित्तिक फलो का तत्व ज्ञान प्राप्त किया था ॥२६॥ उन्ही नागवर शेष ने इस पृथिवी को अपने शीश पर धारण कर रखा है, जो स्वयं भी देवता, असुर, मनुष्यादि के सहित सम्पूर्ण लोकमाला को धारे हुए हैं ॥२७॥

छठा अध्याय

ततश्च नरका विप्र भुवोऽधः सलिलस्य च ।
पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुष्व महामुने ।१।
रौरवः सूकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विलोहितः ।२।
रुधिराम्भो वैतरणिः कृमीशः कृमिभोजनः ।
असिपत्रवनं कृष्णो लालाभक्षश्च दारुणः ।३।
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो ह्यधःशिराः ।
सन्दंशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ।४।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठश्चाप्रचिश्च तथा परः ।
इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ।५।
यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निभयदायिनः ।
पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ।६।

कूटसाक्षी तथा सम्यक्पक्षपातेन यो वदेत् ।
यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्र ! पृथिवी और जल के नीचे नरक स्थित हैं, उन्ही में पापियों को गिराया जाता है, अब उनका वर्णन सुनो ॥१॥ रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, रुधिराम्भ, वैतरणि, कृमीश, कृमि भोजन, असि-पत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तमस्, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ और अप्राचि तथा इनके अतिरिक्त अन्य अनेकों घोर नरक हैं, जिनका शासन यमराज करते हैं। यह नरक अत्यत दारुण शस्त्र और अग्नि का भय देने वाले हैं, इनमे पापी पुरुष ही गिराये जाते हैं ॥२६॥ कूट साक्षी अर्थात् मिथ्या गवाही देने वाला या यथार्थ न बताने वाला मनुष्य रौरव नरक को प्राप्त होता है ॥७॥

भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम ।
यान्ति ते नरकं रोधं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥८॥
सुरापो ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य च सूकरे ।
प्रयान्ति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ॥९॥
राजन्यवैश्यहा ताले तथैव गुरुतल्पगः ।
तप्तकुण्डे स्वसृगामी हन्ति राजभटाश्च यः ॥१०॥
साध्वीविक्रयकृद्बन्धपालः केसरिविक्रयी ।
तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥११॥
स्नुषां सुतां चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते ।
अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥१२॥
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयिकश्च यः ।
अगम्यगामी यश्च स्यात्ते यान्ति लवणं द्विज ॥१३॥

भ्रूण हत्यारे, ग्राम को नष्ट करने वाले और गो वधिक को रोध नामक नरक प्राप्त होता है, यह नरक श्वासोच्छ्वास को रोकता है ॥८॥ मद्यपायी, ब्रह्मघाती, स्वर्ण-चोर अथवा इनकी संगति करने वाला पुरुष सूकर नरक गामी

होता है ॥९॥ क्षत्रिय या वैश्य का हत्यारा ताल नरक में जाता है, गुरुपत्नी-भोगी, भगिनीगामी और राजदूतों के हत्यारों को तप्तकुण्ड नरक मिलता है ॥१०॥ सती नारी का विक्रेता, कारागार का रक्षक, घोड़ों के बेचने वाला और भक्त पुरुष का त्याग करने वाला मनुष्य तप्तलोह नरक में गिराया जाता है ॥११॥ पुत्रवधू या पुत्री का धर्म नष्ट करने वाला महाज्वाल नरक में गिरता है और गुरुजनों का तिरस्कार करने वाला, बुरे वचन बोलने वाला, वेद निन्दक, वेद का विक्रेता अथवा अगम्या से समागम करने वाला लवण नरक को प्राप्त होता है ॥१२-१३॥

चोरो विलोहे पतति मर्यादादूषकस्तथा ।
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।१४।
स याति कृमिभक्षे वै कृमीशे च दुरिष्टकृत् ।
पितृदेवातिथींस्त्यक्त्वा पर्यश्नाति नराधमः ।१५।
लालाभक्षे स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके ।
करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादि कृन्नरः ।१६।
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे ।
असत्प्रतिगृहीता तु नरके यात्यधोमुखे ।१७।
अयाज्ययाजकश्चैव तथा नक्षत्रसूचकः ।
वेगी पूयवहे चैको याति मिष्टान्नभुङ् नरः ।१८।
लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च ।
विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विज ।१९।
मार्जारकुक्कुटच्छागश्ववराहविहङ्गमान् ।
पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तम ।२०।

चोर तथा मर्यादा नष्ट करने वाले को विलोहित नरक मिलता है। देवता, द्विज और पितरों का द्वेषी तथा रत्न को दूषित करने वाला कृमिभक्ष नरक में जाता है तथा अनिष्ट यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को कृमीश नरक मिलता है। पितर, देवता, अतिथि का ध्यान न कर उनसे पहिले ही भोजन कर लेने वाले को अत्युग्र लालाभक्ष नरक की यातना भोगनी होती है. बाण-

निर्माता वैद्य नरक में जाता है। कर्णी नामक बाण तथा खड्गादि शस्त्र के बनाने वाले लोग अत्यन्त दारुण विशसन नरक को प्राप्त होते हैं। असत्-प्रतिग्रह से ग्रहण करने वाला, अयज्ञ का याजक, नक्षत्र विद्या से जीविका चलाने वाला अधोमुख नरक में गिरता है। साहस (क्रूर) कर्म वाले मनुष्य को पूयवह नरक मिलता है। अकेले ही सुस्वादु भोजन को खा लेने वाला या लाख, माँस, रस, तिल या लवण बेचने वाला ब्राह्मण भी उसी नरक में जाता है ॥१४-१९॥ बिलाव, कुक्कुट, छाग, अश्व, शूकर या पक्षियों को पालने वाला भी उसी पूयवह नरक को प्राप्त होता है ॥२०॥

रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा ।
सूची माहिषकश्चैव पर्वकारी च यो द्विजः ।२१।
आगारदाही मित्रघ्नः शाकुनिर्ग्रामयाजकः ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते सोम विक्रीणते च ये ।२२।
मखहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणी नरः ।
रेतःपाताधिकर्त्तारो मर्यादाभेदिनो हि ये ।२३।
ते कृष्णे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये ।
असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः ।२४।
औरभ्रिको मृगव्याधो वह्निज्वाले पतन्ति वै ।
यान्त्येते द्विज तत्रैव ये चापाकेषु वह्निदाः ।२५।
व्रतानां लोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः ।
सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि ।२६।
दिवा स्वप्ने च स्कन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः ।
पुत्रैरध्यापिता ये च ते पतन्ति श्वभोजने ।२७।

नट या मल्ल वृत्ति वाला, धीवर कर्म करने वाला, कुण्ड का अन्न खाने वाला, विष खिलाने वाला, चुगली करने वाला, स्त्री की वृत्ति से जीविकोपार्जन करने वाला, धनादि के लोभ वश पर्व के बिना ही पूर्वकाल में होने वाले कार्य का कराने वाला ब्राह्मण, घर में अग्नि लगाने वाला, शकुन बताने वाला, मित्र हत्यारा, ग्राम-पुरोहित और सोम का विक्रेता—इन सब को रुधिरान्ध

नरक की प्राप्ति होती है ॥२१-२२॥ वन या ग्राम को नष्ट करने वाले मनुष्य को वैतरणी नामक नरक की प्राप्ति होती है. रेतपातादि करने वाले, खेत की मेंड तोड़ने वाले, अपवित्र और छलवृत्ति से जीविका चलाने वाले कृष्ण नरक में और व्यर्थ ही वनों के काटने वाले असिपत्र वन नरक में गिरते हैं ॥२३-२४॥ भेड़ादि से जीवनोपार्जन करने वाले और शिकारी वह्निज्वाल नरक को प्राप्त होते हैं तथा कच्चे घड़ों और ईंटों आदि को पकाने के लिये उनमें जो अग्नि डालते हैं, उन्हें भी वही नरक मिलता है ॥२५॥ व्रतों के नाशक और अपने आश्रम से पतित हुए मनुष्य सन्दंश नरक में जाते हैं ॥२६॥ जो ब्रह्मचारी दिन में या सोने समय में वीर्यपात करते हैं अथवा जो मनुष्य अपने पुत्रों से शिक्षाध्ययन करते हैं, उन्हें श्वभोजन नामक नरक में जाना होता है ॥२७॥

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः ।२८।
यथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः ।
भुज्यन्ते तानि पुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः ।२९।
वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वन्ति ये नराः ।
कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ।३०।
अध शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः ।
देवाश्चाधोमुखान्सर्वानध. पश्यन्ति नारकान् ।३१।
स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नरा ।
धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ।३२।
सहस्रभागप्रथमा द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
सर्वे ह्येते महाभाग यावन्मुक्तिसमाश्रयाः ।३३।
यावन्तो जन्तव. स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः ।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ।३४।

इस प्रकार यह तथा अन्य सहस्रों ही नरक हैं. जिनमें पड़कर दुष्कर्म करने वाले प्राणी विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएं भोगते हैं ॥२८॥ उपरोक्त पापों के समान अन्य अनेक हजारों पाप कर्म हैं, उनके फल भिन्न-भिन्न नरकों में

जाकर भोगने होते हैं ॥२६॥ अपने वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध जो मनुष्य मन, वाणी या कर्म से कोई कार्य करते हैं, उन्हे भी नरक की प्राप्ति होती है ॥३०॥ अधोमुख नरक को प्राप्त हुए प्राणियों को स्वर्गलोक में देवगण दिखाई देते हैं और वह देवगण भी नीचे के लोकों मे पड़े उन नारकी प्राणियों को देखते रहते हैं ॥३१॥ नरक की यन्त्रणा भोगने के पश्चात् पापियों को क्रमश स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य धार्मिक, देवता और मुमुक्षु के रूप मे उत्पन्न होते है ॥३२॥ हे महाभाग ! मुमुक्षु तक इन सब प्राणियों मे दूसरे से पहले जन्म वाले प्राणियों की संख्या हजार गुनी अधिक है ॥३३॥ स्वर्ग मे जितने प्राणी हैं, नरक मे भी उतने ही हैं, जो व्यक्ति अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करते उन्हे नरक की ही प्राप्ति होती है ॥३४॥

पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा ।
तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः ।३५।
पापे गुरुणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः ।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगु· स्वायम्भुवादय ।३६।
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणम्परम् ।३७।
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पु सः प्रजायते ।
प्रायश्चित्त तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ।३८।
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ।३९।
विष्णुसंस्मरणात्क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः ।
मुक्ति प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ।४०।
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।४१।
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ।४२।

विभिन्न पापों के अनुरूप विभिन्न प्रायश्चित हैं, जिन्हें महर्षियों ने वेदार्थ के स्मरण पूर्वक कहा है ॥३५॥ हे मैत्रेयजी ! स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारों ने पापों की अधिकता-न्यूनता की दृष्टि से महान् या अल्प प्रायश्चित्त कल्पित किये हैं ॥३६॥ परन्तु तपात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्तों में भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण करना सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ॥३७॥ पाप करने के पश्चात् जो पुरुष उसके लिये पश्चात्ताप करता है उसके लिये तो एक मात्र हरि स्मरण ही परम प्रायश्चित्त है ॥३८॥ प्रातः, रात्रि, सायंकाल या मध्याह्नादि में भगवान् श्री हरि के स्मरण से पापों का क्षय हो जाता है और भगवान की प्राप्ति होती है ॥३९॥ भगवान् के स्मरण से सभी पापों का समूह भस्म हो जाता है, जिससे मनुष्य को मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। उसके लिये स्वर्ग की प्राप्ति तो विघ्न स्वरूप समझी जाती है ॥४०॥ हे मैत्रेयजी ! जिस मनुष्य [illegible] चित्त जप, हवन, पूजनादि करते रहने से निरन्तर भगवान् में लगा रहता है, उसके लिये इन्द्रपद जैसे फल तो तुच्छ एवं विघ्न ही हैं ॥४१॥ कहाँ तो प्राणी को पुनर्जन्म के चक्र में गिराने वाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ बीज भगवान् वासुदेव के नाम का जप ॥४२॥

तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन्पुरुषो मुने ।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः ।४३।
मनःप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः ।
नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम ।४४।
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च ।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ।४५।
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ।४६।
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम् ।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ।४७।
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ।४८।

विद्याविद्येति मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय ।४९।
एवमेतन्मयाख्यातं भवतो मण्डलं भुवः ।
पातालानि च सर्वाणि तथैव नरका द्विज ।५०।
समुद्राः पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः ।
संक्षेपात्सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।५१।।

इसीलिये भगवान् विष्णु के रात-दिन स्मरण से मनुष्य के सभी पापों का क्षय हो जाता है और उसे नरक की प्राप्ति नहीं होती ।।४३।। स्वर्ग मन को प्रिय लगता है और नरक उसके विपरीत है। हे विप्रश्रेष्ठ ! पाप ही नरक और पुण्य ही स्वर्ग है ।।४४।। जब एक ही वस्तु से सुख, दुःख, ईर्ष्या, क्रोध आदि की प्राप्ति होती है, तब वह वस्तु नित्य स्वभाव वाली कहाँ हुई ? ।।४५।। क्योंकि एक वस्तु ही कभी प्रिय लगने वाली होती है और वही वस्तु कभी दुःख देने वाली हो जाती है, वह कभी क्रोध और कभी प्रसन्नता प्रदान करती है ।।४६।। इसलिये कोई भी पदार्थ दुःखमय अथवा सुखमय नहीं है। इन सुख दुःख को तो केवल मन का ही विकार समझो ।।४७।। ज्ञान ही परब्रह्म है परन्तु अविद्या की उपाधि से वही बन्धनकारी हो जाता है। यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानमय है, ज्ञान से भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है। इसलिये हे मैत्रेयजी, तुम्हें भी विद्या और अविद्या दोनों को ज्ञान ही समझना चाहिये ।।४८-४९।। हे द्विज ! इस प्रकार समस्त पृथिवी मंडल, सम्पूर्ण पाताल-लोक और सभी नरकों का वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है ।।५०।। समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष और नदियों की भी संक्षिप्त रूप से व्याख्या कर चुका हूँ अब तुम्हें और क्या सुनने की इच्छा है सो मुझे बताओ ।।५१।।



सातवाँ अध्याय

कथितं भूतलं ब्रह्मन्ममैतदखिलं त्वया ।
भुवर्लोकादिकाँल्लोकाञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।१।

तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग तन्मह्यं परिपृच्छते ।२।
रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ।३।
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् ।
नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज ।४।
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् ।
लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ।५।
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ।६।
द्वे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने समस्त पृथिवी मंडल के विषय में मुझे बताया । अब मैं भुवर्लोक आदि सब लोकों का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१॥ और उन ग्रहों की जो-जो स्थिति तथा परिमाण हैं, उन सभी को आप मेरे प्रति कहने की कृपा करिये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश जितनी दूर तक पहुँचता है, उतना धरा मण्डल समुद्र, नदी और पर्वतादि से युक्त 'पृथिवी' कहा जाता है ॥३॥ हे द्विज ! पृथिवी का जितना विस्तार और घेरा है, उतना ही विस्तार तथा घेरा भुवर्लोक का है ॥४॥ हे मैत्रेयजी ! पृथिवी से एक लाख योजन की दूरी पर सूर्य मंडल स्थित है और उस सूर्य मंडल से भी एक लाख योजन दूर पर चन्द्र-मंडल है ॥५॥ तथा चन्द्रमा से भी एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल प्रकाशमान है ॥६॥ उस नक्षत्र मंडल से दो लाख योजन ऊपर बुध है और बुध से दो लाख योजन पर शुक्र की स्थिति है ॥७॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।
लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ।८।

शौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम ।९।
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थितः ।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ।१०।
त्रैलोक्यमेतत्कथितमुत्सेधेन महामुने ।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ।११।
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ।१२।
द्वे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
सनन्दनाद्याः प्रथिता मैत्रेयामलचेतसः ।१३।
चतुर्गुणोत्तरे चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्थितम् ।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ।१४।

शुक्र से दो लाख योजन दूर मंगल और मंगल से भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं ॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन की ऊँचाई पर शनि और शनि से एक लाख योजन ऊँचा सप्तर्षि मण्डल है ॥९॥ उस सप्तर्षिमण्डल से एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र की नाभि के समान ध्रुव मण्डल है ।१०। हे महामुने ! मैंने तुम्हें तीनों लोकों की ऊँचाई का परिमाण बता दिया । यह तीनों लोक यज्ञफल की भोग भूमि कहे हैं परन्तु यज्ञानुष्ठान की भूमि यह भारतवर्ष ही है ॥११॥ ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊँचा महर्लोक है, जहाँ कल्प के अन्त तक रहने वाले भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं ॥१२॥ हे मैत्रेयजी ! उससे भी दो करोड़ योजन ऊँचाई पर जन लोक है, जिसमें ब्रह्माजी के प्रसिद्ध पुत्र सनकादि का निवास है ॥१३॥ जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक स्थित है, जहाँ दाह–विवर्जित वैराज नामक देवता वास करते हैं ॥१४॥

भूमिसूर्यान्तरं यच्च सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम ।१७।
ध्रुवसूर्यान्तरं यच्च नियुतानि चतुर्दश ।
स्वर्लोकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ।१८।
त्रैलोक्यमेतत्कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ।१९।
कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति ।२०।

तपलोक से बारह करोड योजन ऊपर सत्यलोक है, उसी को ब्रह्मलोक कहते हैं, इस लोक मे पुनः मृत्यु को प्राप्त न होने वाले अमरगण रहते हैं ॥१५॥ परन्तु, पग सचार के योग्य पार्थिव वस्तु भूर्लोक ही है उसका विस्तार मैं पहिले ही कह चुका हूं ॥१६॥ पृथिवी और सूर्य के बीच मे सिद्धो और मुनियो द्वारा सेवित स्थान ही भुवर्लोक है ॥१७॥ सूर्य और ध्रुव के मध्य मे चौदह लाख योजन की दूरी है, उसे लोकस्थित के विचारकों ने स्वर्लोक कहा है ॥१८॥ हे मैत्रेयजी ! यहो भूः, भुवः, स्वः, 'कृतक' त्रैलोक्य कहे गये हैं तथा जन, तप, और सत्य 'अकृतक' तीन लोक हैं ॥१९॥ इन कृतक और अकृतक त्रैलोक्यो के बीच मे महर्लोक बताया जाता है, जो कल्प के अन्त मे ही जन-शून्य होता है, उसका अत्यन्त नाश नहीं होता ॥२०॥

एते सप्त मया लोका मैत्रेय कथितास्तव ।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः ।२१।
एतदण्डकटाहेन तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम् ।२२।
दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद्वृतम् ।
सर्वोऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ।२३।
वह्निश्च वायुना वायुर्मैत्रेय नभसा वृतः ।
भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः ।२४।
दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ।
महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ।२५।

अनन्तस्य न तस्यान्तः सङ्ख्यानं चापि विद्यते ।
तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः ।२६।
हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ।
अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ।२७।

हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार तुम्हारे प्रति इन सात लोकों और सात पातालों का वर्णन मैंने तुमसे किया है । यह ब्रह्माण्ड इतने ही विस्तार वाला है ।।२१।। तथा वह कपित्थ बीज के समान ऊपर, नीचे और सभी ओर से अण्डकटाह-द्वारा घिरा है ।।२२।। हे मैत्रेयजी ! यह ब्रह्माण्ड अपने से दश गुने जल से ढका है और वह जलावरण अग्नि से घिरा हुआ है ।।२३।। अग्नि वायु से और वायु आकाश से घिरा है । वह आकाश भूतों के कारण रूप तामस अहंकार से और अहंकार महत्तत्व से परिवेष्टित है ।।२४।। हे मैत्रेयजी ! यह सातों उत्तरोत्तर एक दूसरे से दस गुने होते गये हैं । महत्तत्व को प्रधान ने आवृत्त किया हुआ है ।२५। उस अनन्त का न कभी अन्त होता है और न उसकी कोई गणना ही है । क्योंकि, हे मुने ! वह अनन्त, असंख्येय अपरिमेय और सम्पूर्ण विश्व का कारण तथा परा प्रकृति है । उसमें ऐसे ऐसे सहस्रों, लाखों, करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं । ।।२६-२७।।

ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।
दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानपि ।२८।
प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः ।
प्रधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया ।२९।
विष्णुशक्त्या महाबुद्धे वृतौ संश्रयधर्मिणौ ।
तयोः सैव पृथग्भावकारणं संश्रयस्य च ।३०।
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले महामते ।
यथा सक्तं जले वातो बिभर्ति कणिकाशतम् ।३१।
शक्तिः सापि तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम् ।
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः ।३२।

आदिबीजात्प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः ।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्य- सम्भवन्त्यपरे द्रुमा- ।३३।
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता मुने ।
एवमव्याकृतात्पूर्वं जायन्ते महदादय ।३४।
विशेषान्तास्ततस्तस्य सम्भवन्त्यसुरादय ।
तेभ्यश्च पुत्रास्तपा च पुत्राणामपरे सुता ।३५।

जैसे काष्ठ में अग्नि और तिल में तेल रहता है, वैसे ही अपने प्रकाश से ही प्रकाशित, चेतनात्मा व्यापक पुरुष को प्रधान में स्थिति है। ये परस्पर मिले हुए प्रधान और पुरुष सब भूतों की स्वरूप भूता विष्णु शक्ति से युक्त हैं। वही विष्णु शक्ति उन्हें पृथक् करने वाली और वही मिलाने वाली है। सर्ग का आरम्भ होने के समय वही उनको क्षुब्ध करती है। जैसे जल के संसर्ग से वायु सैंकड़ों जल कणों का धारण करने वाला होता है, वैसे ही विष्णु शक्ति प्रधान पुरुषात्मक विश्व को धारण करती है। हे मुने! जैसे आदि बीज के ही द्वारा जड़, स्कंध, शाखा आदि से परिपूर्ण वृक्ष की उत्पत्ति होती है और उन बीजों से दूसरे-दूसरे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं ॥२८-३३॥ तथा वे भी उन्हीं लक्षणों, द्रव्यों और कारणों वाले होते हैं। वैसे ही प्रधान के द्वारा महत्तत्व से पंचभूत तक की उत्पत्ति होती है तथा उनसे ही देवता, असुर आदि उत्पन्न होते हैं और फिर उनके पुत्र अथवा पुत्रों के भी पुत्रादि होते हैं ॥३४-३५॥

बीजाद् वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरो ।
भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ।३६।
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्या कारणं तरोः ।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान्हरि ।३७।
व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा ।
काण्डं कोशस्तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच्च तण्डुला- ।३८।
तुषा- कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मन ।
प्ररोहहेतुसामग्रीमासाद्य मुनिसत्तम ।३९।

तथा कर्मस्वनेकेषु देवद्याः समवस्थिताः ।
विष्णुशक्ति समासाद्यो प्ररोहमुपयान्ति वै ।४०।

स च विष्णु पर ब्रह्म यत सर्वमिद जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेद यस्मिश्च लयमेष्यति ।४१।

तद्ब्रह्म तत्पर धाम सदसत्परम पदम् ।
यस्य सवमभेदेन यतश्चैतच्चराचरम् ।४२।

स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च स ।
तस्मिन्नेव लय सर्वं याति तत्र च तिष्ठति ।४३।

कर्ता क्रियाणा स च इज्यते क्रतु स एव तत्कर्मफल च तस्य ।
स्रु गादि यत्साधनमप्यशेष हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ।४४।

जिस वृक्ष के बीज से अन्य वृक्षो के उत्पन्न होने पर भी जिसका बीज था, उस वृक्ष को कोई हानि नही पहुँचती वैसे ही अन्य प्राणियो की उत्पत्ति से उनके जन्म के कारण वीर्यदाता प्राणियो को भी क्षति नही पहुँचती ॥३६॥ जैसे आकाश और कालादि निकटता से ही वृक्षादि के कारण होते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणाम के ही जगत् के कारण होते हैं ॥३७॥ हे मुनिवर ! जैसे धान के बीज मे मूल, नाल, पत्र अकुर, काण्ड,कोश पुष्प क्षीर तण्डुल, तुष और कण स्थित रहते हैं और अकुर को उत्पन्न करने मे हेतु वाली सामग्री को पाकर वे सब प्रकट हो जाते हैं ॥३८-३६॥ वैसे ही अपने अनेक पूर्व कर्मो मे स्थित देवगण आदि विष्णु-शक्ति का आश्रय प्राप्त करके उत्पन्न हो जाते हैं ॥४०॥ जिस परब्रह्म से यह विश्व प्रकट हुआ है तथा जो स्वय ही विश्व रूप से स्थित है और जिसमे इस विश्व को लीन होना है, वह विष्णु ही हैं ॥४१॥ वही ब्रह्म हैं, वही परमधाम हैं, वह पद सत् और असत् दोनो से ही अद्भुत प्रकार का है । उससे अभिन्न यह सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व उसी से उत्पन्न हुआ है ।४२। तुम उसी को अव्यक्त मूल प्रकृति और उसी को व्यक्त स्वरूप विश्व समझो । यह सम्पूर्ण विश्व उसी के आश्रय मे स्थित है और उसी मे लीन हो जायगा ॥४३॥ वही यज्ञादि का कर्त्ता है, वही यज्ञ-रूप और यजन किया

जाने वाला है तथा वही यज्ञादि का फल स्वरूप और वही यज्ञ के साधन हैं। उन भगवान् के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है ॥४५॥



आठवाँ अध्याय

व्याख्यातमेतद्ब्रह्माण्डमस्थानं तव सुव्रत ।
ततः प्रमाणसंस्थाने सूर्यादीनां शृणुष्व मे ॥१॥
योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव ।
ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम ॥२॥
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै ।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥३॥
त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके ।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥४॥
हयाश्च सप्तच्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु ।
गायत्रि च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च ॥५॥
अनुष्टुप्पङ् क्तिरित्युक्ता छन्दांसि हरयो रवेः ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः ॥६॥
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते ।
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः ॥७॥
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारो रथस्य वै ।
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले ॥८॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे सुव्रत ! मैंने तुम्हारे प्रति ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है, अब सूर्यादि की स्थिति और उनके परिमाण को सुनो ॥१॥ हे मुनिवर ! सूर्यदेव का रथ नौ योजन विस्तार वाला है तथा उसमें द्विगुण परिमाण वाला उसका ईषा-दण्ड है ॥२॥ उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख

योजन का है जिसमे उसका पहिया लगा हुआ है ॥३॥ उस तीन नाभि, पाँच अरे और छ: नेमि वाले संवत्सरात्मक अक्षय चक्र में सम्पूर्ण कालचक्र विद्यमान है ॥४॥ गायत्री, बृहती, उष्णिक् जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति यह सात छन्द ही उस रथ मे जोड़े जाने वाले अश्व हैं। उनके रथ का दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लम्बा है तथा दोनों धुरो के समान ही उसके जुओं का परिमाण है ॥५-७॥ एक जुए के सहित के उस रथ का छोटा धुरा ध्रुव पर और दूसरे धुरे का पहिया मानसोत्तर पर्वत पर स्थित है ॥८॥

मानसोत्तरशैलस्य पूर्वतो वासवी पुरी ।
दक्षिणे तु यमस्यान्या प्रतीच्यां वरुणस्य च ॥९॥
उत्तरेण च सोमस्य तासां नामानि मे शृणु ।
वस्वौकसारा शक्रस्य याम्या संयमनी तथा ॥१०॥
पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी ।
काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ॥११॥
मैत्रेय भगवान्भानुर्ज्योतिषां चक्रसंयुत. ।
अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान्रविः ॥१२॥
देवयान. पर. पन्था योगिनां क्लेशसङ्क्षये ।
दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थित. ॥१३॥
सर्वद्वीपेषु मैत्रेय निशार्द्धस्य च सम्मुख: ।
उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे ॥१४॥

मानसोत्तर पर्वत के पूर्व मे इन्द्र की, दक्षिण मे यम की, पश्चिम मे वरुण की तथा उत्तर में चन्द्रमा की पुरी है, उनके नाम सुनो। इन्द्र की पुरी का नाम वस्वौकसारा है यम की पुरी को संयमनी कहते है ॥९-१०॥ वरुण की पुरी सुखा और चन्द्रमा की विभावरी है। हे मैत्रेयजी ! ज्योतिश्चक्र के सहित भगवान् सूर्य दक्षिण दिशा मे प्रविष्ट होकर धनुष से छोड़े हुए तीर के समान तीव्र वेग से गमन करते हैं। यही भगवान् सूर्य दिन और रात्रि का विभाग करते है ॥११-१२॥ तथा रागादि क्लेशों का क्षयन होने पर वे ही

मोक्ष मार्गी योगियों के लिये देवयान नामक सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। हे मैत्रेयजी! सभी द्वीपों में सदा मध्याह्न काल तथा रात्रि के मध्य में वे मध्य-आकाश में सामने की ओर स्थित रहते हैं। वैसे ही उदय और अस्त भी परस्पर सामने ही होते हैं ॥१३-१४॥

विदिशासु त्वशेषासु तथा ब्रह्मन् दिशासु च।
यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः ।१५।
तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः।
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः ।१६।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः।
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् ।१७।
विकोणौ द्वौ विकोणस्थस्त्रीन् कोणान्द्वे पुरे तथा।
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नात्तपन्रविः ।१८।
ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति।
उदयास्तमनाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।१९।
यावत्पुरस्तात्तपति तावत्पृष्ठे च पार्श्वयोः।
ऋतेऽमरगिरेर्मेरोरुपरि ब्रह्मणः सभाम् ।२०।
ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मणः सभाम्।
ते ते निरस्तास्तद्भासा प्रतीपमुपयान्ति वै ।२१।

हे ब्रह्मन्! सब दिशा-विदिशाओं में वहाँ के निवासी जिस स्थान पर सूर्य को देखते हैं, उनके लिये वहीं सूर्योदय होता है ॥ १५ ॥ दिन की समाप्ति पर जहाँ सूर्य छिपता है वहीं उसका अस्त होना कहा जाता है। सदा एक ही रूप में स्थित रहने वाले सूर्य का कभी उदय, अस्त नहीं होता ॥ १६ ॥ उनका दिखाई देना या न देना ही उनका उदय या अस्त होना है। मध्याह्न समय में इन्द्रादि में से किसी की पुरी के ऊपर प्रकाशित होते हुए सूर्य तीन पुरियों और दो कोणों को प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार अग्नि आदि किसी कोण में प्रकाशित होकर वे तीन कोणों और दो पुरियों को प्रकाशित करते हैं। उदय होने के बाद मध्याह्न काल तक अपनी प्रवृद्ध होती हुई किरणों

स्वयं तपते हैं ॥ १७-१८ ॥ इसके पश्चात् क्षीण होती हुई किरणों से ही धीरे-धीरे अस्त हो जाते हैं। उनके उदय और अस्त से ही पूर्व, पश्चिम आदि दिशाएँ कल्पित हुईं ॥ १९ ॥ यथार्थ में तो वे जैसा पूर्व में प्रकाश करते हैं, वैसा ही पश्चिम या उसके इधर-उधर की दिशाओं में करते हैं। वे देवगिरि सुमेरु पर स्थित ब्रह्माजी की सभा को छोड़कर अन्य सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं ॥ २० ॥ उनकी जो रश्मियाँ ब्रह्माजी की सभा में पहुँचती हैं, वह उस सभा से निस्तेज होकर उल्टी लौटती हैं ॥ २१ ॥

तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि ।
सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः ।२२।
प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे ।
विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते ।२३।
वह्नेः प्रभा तथा भानुर्दिनेष्वाविशति द्विज ।
अतीव वह्निसंयोगादतः सूर्यः प्रकाशते ।२४।
तेजसी भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।२५।
दक्षिणोत्तरभूम्यर्द्धे समुत्तिष्ठति भास्करे ।
अहोरात्रं विशत्यम्भस्तमः प्राकाश्यशीलवत् ।२६।
आताम्रा हि भवन्त्यापो दिवा नक्तप्रवेशनात् ।
दिनं विशति चैवाम्भो भास्करेऽस्तमुपेयुषि ।२७।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ।
एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः ।२८।
त्रिंशद्भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहूर्तिकी गतिः ।
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष दिवाकरः ।२९।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विज ।
अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः ।३०।

सुमेरु पर्वत सभी द्वीपों और वर्षों के उत्तर में है, इसीलिये सदा उत्तर दिशा में ही दिन और रात्रि रहते हैं ॥ २२ ॥ सूर्य के अस्त होने पर रात्रिकाल

में उनका तेज अग्नि में चला जाता है, इसीलिये अग्नि दूर से ही प्रकाशमान् हो उठता है ।। २३ ।। हे द्विज ! दिन के समय अग्नि का तेज सूर्य में प्रविष्ट हो जाता है तब अग्नि का संयोग होने से सूर्य में भी प्रखरता आ जाती है ।। २४ ।। इस प्रकार सूर्य और अग्नि के प्रकाश और तेज दोनों ही परस्पर संयुक्त होकर दिवस-रात्रि में बढ़ते रहते हैं ।। २५ ।। सुमेरु के दक्षिणोत्तर भूम्यर्द्ध में जब सूर्य प्रकाशित होते हैं तब अन्धकार वाली रात्रि प्रकाशमान दिवस दोनों ही जल में प्रविष्ट हो जाते हैं ।। २६ ।। दिन के समय रात्रि के जल-प्रवेश से ही जल में कुछ ताम्रवर्णत्व दिखाई पड़ता है और जब सूर्यास्त हो जाता है, तब दिवस उसमें प्रविष्ट होता है ।। २७ ।। तब रात्रिकाल में दिन के जल में प्रविष्ट होने के कारण उसका शुक्लवर्ण प्रतीत होता है । इस प्रकार सूर्य जब पुष्कर द्वीप के बीच में पहुँच कर पृथिवी के तीसवें भाग को लाँघ जाता है तब उसकी गति एक मुहूर्त की हो जाती है । हे द्विज ! कुम्हार के चाक के सिरे पर घूमते हुए समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथ्वी के तीसों भागों को पार करके एक दिन-रात्रि करता है । उत्तरायण के आरम्भ में वह सर्व प्रथम मकर राशि में पहुँचता है ।। २८-३० ।।

ततः कुम्भं च मीनं च राशे राश्यन्तरं द्विज ।
त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम् ।३१।
प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं ततः समम् ।
ततो रात्रिः क्षयं याति वर्द्धतेऽनुदिनं दिनम् ।३२।
ततश्च मिथुनस्यान्ते परां काष्ठामुपागतः ।
राशिं कर्कटकं प्राप्य कुरुते दक्षिणायनम् ।३३।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्त्तते ।
दक्षिणप्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं प्रवर्तते ।३४।
अतिवेगितया कालं वायुवेगबलाच्चरन् ।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ।३५।

फिर वह कुम्भ और मीन राशियों में एक से दूसरी में जाता है । इन तीनों राशियों को भोगकर रात्रि और दिन को समान करता हुआ सूर्य वैषुवती

गति का आश्रय लेता है। फिर दिनो दिन रात्रि का क्षय होने लगता है और दिन की वृद्धि होने लगती है ॥ ३१-३२ ॥ फिर वह मिथुन राशि से निकलकर उत्तरायण की अन्तिम सीमा पर पहुँचता है और कर्क राशि मे प्रविष्ट होकर दक्षिणायन का आरम्भ कर देता है ॥३३॥ जैसे कुम्हार के चाक के सिरे पर स्थित वस्तु अत्यन्त द्रुत वेग से घूमती है वैसे ही सूर्य दक्षिणायन को पार करने की दिशा मे द्रुतगति से गमन करता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार शीघ्र गति और वायु जैसे वेग से चलने के कारण वह अपने उत्कृष्ट मार्ग को अल्प समय मे ही पार कर लेता है ॥ ३५ ॥

सूर्यो द्वादशभि शैघ्र्यान्मुहूर्तैर्दक्षिणायने ।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्ना तु चरति द्विज ।३६।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्द प्रसर्पति ।३७।
तथोदगयने सूर्य सर्पते मन्दविक्रम ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पा तु गच्छति ।३८।
अष्टादशमुहूर्तं यदुत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रम ।३९।
त्रयोदशार्द्धमह्ना तु ऋक्षाणा चरते रवि ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ।४०।
अतो मन्दतर नाभ्या चक्र भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ।४१।
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते ।
ध्रुवस्तथा हि मैत्रेय तत्रैव परिवर्तते ।४२।

हे द्विज ! दक्षिणायन मे दिन के समय सूर्य इतनी शीघ्रता से चलता है कि उस समय मे साढ़े तेरह नक्षत्रों को बारह मुहूर्तों म ही पार कर लेता है ॥३६॥ परन्तु रात्रि काल मे उसकी गति इतनी मन्द हो जाती है कि उतने ही नक्षत्रों को अठारह मुहूर्तों मे पार कर पाता है। जैसे कुम्हार के चक्र के मध्य मे स्थित वस्तु धीरे-धीरे चलती है, वैसे ही उत्तरायण समय मे सूर्य मन्दगामी

होता है और थोड़ा-सा मार्ग भी अत्यन्त दीर्घ समय में पार कर पाता है ॥३७-३८॥ इसलिए उत्तरायण का अन्तिम दिवस अठारह मुहूर्त का होता है, क्योंकि उस दिन सूर्य की गति अत्यन्त मन्द होती है ॥३९॥ ज्योतिश्चक्रार्द्ध के साढ़े तेरह नक्षत्रों को वह एक दिन में पूरा करता है, परन्तु रात्रि के समय वह उतने ही नक्षत्रों को बारह मुहूर्तों में पूरा कर लेता है ॥ ४० ॥ इसलिए जैसे नाभि देश में चाक धीरे-धीरे घूमता है, जिससे वहाँ का मृत्पिंड भी मन्द गति से घूमता है, वैसे ही ज्योतिश्चक्र के बीच में स्थित ध्रुव भी अत्यन्त धीमी गति से घूमता है ॥४१। हे मैत्रेयजी ! जैसे कुम्हार के चाक की नाभि अपने ही स्थान पर घूमती रहती है, वैसे ही ध्रुव भी अपने ही स्थान पर घूमता रहता है ।।४२।।

उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ।४३।
मन्दाह्नि यस्मिन्नयने शीघ्रा नक्तं तदा गतिः ।
शीघ्रा निशि यदा चास्य तदा मन्दा दिवा गतिः ।४४।
एकप्रमाणमेवैष मार्गं याति दिवाकरः ।
अहोरात्रेण यो भुङ्क्ते समस्ता राशयो द्विज ।४५।
षडेव राशीन् यो भुङ्क्ते रात्रावन्यांश्च षड्दिवा ।
राशिप्रमाणजनिता दीर्घह्रस्वात्मता दिने ।४६।
तथा निशायां राशीनां प्रमाणैर्लघुदीर्घता ।
दिनादेर्दीर्घह्रस्वत्वं तद्भोगेनैव जायते ।४७।
उत्तरे प्रक्रमे शीघ्रा निशि मन्दा गतिर्दिवा ।
दक्षिणे त्वयने चैव विपरीता विवस्वतः ।४८। - -

इस प्रकार उत्तर दक्षिण की सीमाओं के बीच में मण्डलाकार घूमने से सूर्य की गति दिन या रात के समय मन्द या द्रुत हो जाती है ।।४३।। जिस के समय सूर्य की गति जिस अयन में धीमी होती है, उस अयन में रात्रि के समय द्रुत हो जाती है और जब रात्रि के समय शीघ्र गति होती है तब दिन में धीमी हो जाती है ।।४४।। हे द्विज ! सूर्य को सदैव एक समान मार्ग ही पूरा करना

होता है, एक दिन-रात्रि मे ही यह सभी राशियो का भोग करता है ।।४५।। वह छ राशियो को रात्रि-काल मे छः को दिन के समय भोगता है । राशियों के परिमाण से ही दिन की वृद्धि अथवा ह्रास होता है ।।४६।। रात्रि का छोटा या बड़ा होना भी राशियो के परिमाण के अनुसार होता है । राशियो के भोग के अनुसार ही दिन या रात्रि का लघुत्व या दीर्घत्व होता है ।।४७।। उत्तरायण मे रात्रि के समय सूर्य की गति में शीघ्रता और दिन के समय मन्दता होती है । परन्तु दक्षिणायन मे उसकी गति इससे नितान्त विपरीत होती है ।।४८।।

उषा रात्रि. समाख्याता व्युष्टिश्चाप्युच्यते दिनम् ।
प्रोच्यते च तथा सन्ध्या उषाव्युष्टयोर्यदन्तरम् ।४६।
सन्ध्याकाले च सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुणे ।
मन्देहा राक्षसा घोरा सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।५०।
प्रजापतिकृत शापस्तेषा मैत्रेय रक्षसाम् ।
अक्षयत्व शरीराणा मरण च दिने दिने ।५१।
तत सूर्यस्य तैर्युद्ध भवत्यत्यन्तदारुणम् ।
ततो द्विजोत्तमास्तोम सङ्क्षिपन्ति महामुने ।५२।
ओङ्कारब्रह्मसयुक्त गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रीभूतेन वारिणा ।५३।
अग्निहोत्रे हूयते या समन्त्रा प्रथमाहुतिः ।
सूर्यो ज्योति. सहस्रांशुस्तया दीप्यति भास्करः ।५४।
ओङ्कारो भगवान्विष्णुस्त्रिधामा वचसा पति ।
तदुच्चारणतस्ते तु विनाश यान्ति राक्षसाः ।५५।

रात्रि को उषा और दिन को व्युष्टि कहा गया है । इन उषा और व्युष्टि के मध्य काल को ही सन्ध्या कहते हैं ।। ४६ ।। जब यह अत्यन्त दारुण और भयंकर सन्ध्या काल उपस्थित होता है तब मन्देहा संज्ञक घोर राक्षस गण सूर्य का भक्षण करने की इच्छा करते है ।। ५० ।। हे मैत्रेयजी ! उन राक्षसों को प्रजापति का यह शाप लगा हुआ है कि उनके शरीरो मे अक्षयत्व होते हुए भी प्रति दिन उनकी मृत्यु हो ।।५१।। इसलिये सन्ध्याकाल उपस्थित होने पर उनका

सूर्य से अत्यन्त दारुण संग्राम होता है, उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा जो ब्रह्म रूप प्रणव एवं गायत्री से अभिमन्त्रित जल छोड़ा जाता है, वह जल वज्ररूप होकर उन दुष्ट राक्षसों को भस्म कर देता है ॥५२-५३॥ अग्निहोत्र में 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्र से दी जाने वाली प्रथमाहुति से सहस्ररश्मि भगवान् भास्कर देदीप्यमान होते हैं ॥५४॥ ओंकार ही जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप तीन धामों से परिपूर्ण भगवान् विष्णु और सभी ज्योतियों का अधीश्वर है, उसका उच्चारण होने से ही राक्षसों का नाश हो जाता है ॥५५॥

वैष्णवोंऽशः परः सूर्यो योऽन्तर्ज्योतिरसम्प्लवम् ।
अभिधायक ॐकारस्तस्य तत्प्रेरकः परः ॥५६॥
तेन सम्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमत् ।
दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यान्यघानि वै ॥५७॥
तस्मान्नोल्लङ्घनं कार्यं सन्ध्योपासनकर्मणः ।
स हन्ति सूर्यं सन्ध्याया नोपास्ति कुरुते तु यः ॥५८॥
ततः प्रयाति भगवान्ब्राह्मणैरभिरक्षितः ।
बालखिल्यादिभिश्चैव जगतः पालनोद्यतः ॥५९॥
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां च ।
त्रिंशत्कलश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥६०॥
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्यामुहूर्तमात्रा वै ह्रासवृद्ध्योः समा स्मृता ॥६१॥
रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ ।
प्रातःस्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥६२॥
तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालात्तु सङ्गवात् ॥६३॥
तस्मान्माध्याह्निकात्कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः ॥६४॥
अपराह्णे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च ।
दशपञ्चमुहूर्ता वै मुहूर्तास्त्रय एव च ॥६५॥

सूर्य भगवान् विष्णु का श्रेष्ठ तथा विकार हीन अन्तर्ज्योति है । प्रणव उसका वाचक होने से वह उसे उन राक्षसों के विनाशार्थ अत्यंत प्रेरण करता है ॥५६॥ उसी प्रणव की प्रेरणा से वह ज्योति अत्यंत प्रदीप्त होकर उन मन्देहा संज्ञक सभी राक्षसों को भस्म करने में समर्थ होती है ॥५७॥ इसीलिये सन्ध्योपासन कर्म का कभी भी उल्लंघन करना अनुचित है । सन्ध्योपासन न करने वाला पुरुष सूर्यघाती माना गया है ॥५८॥ फिर भगवान् सूर्य बालखिल्यादि ऋषियों से रक्षित होते हुए जगत का पालन में प्रवृत्त होकर जाते हैं ॥५९॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला होती है। तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तों की दिन-रात्रि होती है ॥६०॥ दिनों का क्षय और वृद्धि क्रमश प्रात, मध्याह्न आदि दिन के अंशों के क्षय अथवा वृद्धि के कारण है। परंतु दिनों के घटने-बढ़ने पर सन्ध्या सदा एक समान एक मुहूर्त्त की ही होती है ॥६१॥ उदय होने के पश्चात् सूर्य के तीन मुहूर्त्त गमन करने को प्रात काल कहते हैं। यह पूरे दिन का पाँचवाँ भाग होता है ॥६२॥ इस प्रात काल के व्यतीत होने पर तीन मुहूर्त्त के समय को सङ्गव कहा जाता है, और सङ्गव के समाप्त होने पर तीन मुहूर्त्त तक का समय मध्याह्न होता है ॥६३॥ मध्याह्न के पश्चात् अपराह्न काल होता है, ज्ञानियों ने इसे भी तीन मुहूर्त्तों का ही बताया है ॥६४॥ जब अपराह्न बीत जाता है तब सायाह्न उपस्थित होता है। इस प्रकार पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन तथा तीन मुहूर्त्त का दिवसान्त होता है ॥६५॥

दशपञ्चमुहूर्तं वै अहर्वैषुवतं स्मृतम् ।
वर्द्धते ह्रसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे ।६६।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिर्ग्रसति वासरम् ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभाव्यते ।६७।
तुलामेषगते भानौ समरात्रिदिनं तु तत् ।
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते ।६८।
उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे ।
त्रिंशन्मुहूर्तं कथितमहोरात्रं तु यन्मया ।६९।

तानि पञ्चदश यद्वत् पक्ष इत्यभिधीयते ।
मास पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतु ।७०।
ऋतुत्रय चाप्ययन द्वेऽयने वर्षसज्ञिते ।
सवत्सरादय पञ्च चतुर्मासविकल्पिता ।७१।
निश्चय सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ।
सवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।७२।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ।
वत्सर पञ्चमश्चात्र कालोऽय युगसज्ञित. ।७३।

वैषुवत दिन पद्रह मुहूर्त्तों का कहा है, परन्तु उत्तरायण मे उसकी वृद्धि और दक्षिणायन मे ह्रास होता है ।।६-।। इस प्रकार उत्तरायण मे दिन, रात्रि को ग्रसने लगता है और दक्षिणायन मे रात्रि, दिन को ग्रसने लगती है । शरद् और वसन्त ऋतु के बीच मे जब सूर्य तुला या मेष राशि पर जाता है तब दिन रात्रि के समान होने से 'विषुव' होता है । जब सूर्य कर्क राशि मे पहुँचता है तब दक्षिणायन कहा जाता है ।।६७ ६८।। तथा मकर राशि मे पहुँचता है तब उसे उत्तरायण कहते हैं । हे ब्रह्मन् ! मैंने तीस मुहूर्त का जो अहोरात्र कहा है, वैसे पद्रह अहोरात्र के समय को पक्ष कहते हैं । दो पक्ष का एक मास और दो मास की एक ऋतु होती है । तीन ऋतुओ का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष कहा जाता है । चार प्रकार के मास कल्पना तथा पाँच प्रकार के सवत्सरादि वर्ष कहे गये हैं ।।६९-७१।। यही युग सब प्रकार के कालों का निर्णायक है । प्रथम सवत्सर, द्वितीय परिवत्सर तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर और पचम वत्सर कहा है । यह समय ही युग के नाम से प्रसिद्ध है ।।७२-७३।।

स श्वेतस्योत्तर शैल शृङ्गवानिति विश्रुत. ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि यैरय शृङ्गवान्स्मृत. ।७४।
दक्षिण चोत्तर चैव मध्य वैषुवत तथा ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये तद्भानु प्रतिपद्यते ।७५।

मेषादौ च तुलादौ च मैत्रेय विषुवत्स्थित ।
तदा तुल्यमहोरात्र करोति तिमिरापह ।७६।
दशपञ्चमुहूर्तं वै तदेतदुभय स्मृतम् ।
प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्वास्तदा शशी ।७७।
विशाखाना चतुर्थेऽशे मुने तिष्ठत्यसशयम् ।
विशाखाना यदा सूर्यश्चरत्यश तृतीयकम् ।७८।
तदा चन्द्र विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ।
तदैव विषुवाख्योऽय काल पुण्योऽभिधीयते ।७९।

श्वेतवर्ष के उत्तर मे तीन शृङ्ग वाला एक पर्वत है जो उन शृङ्गों के कारण ही शृङ्गवान् नाम से विख्यात है ।।७४।। उसका एक शृङ्ग उत्तर की ओर, एक दक्षिण की ओर तथा एक बीच मे है । वह बीच वाला शृङ्ग ही 'वैषुवत' है । शरद और बसन्त ऋतु के बीच मे सूय इसी वैषुवत शृङ्ग पर स्थित होते हैं ।७५। इसलिये हे मैत्रयजी ! मेष या तुला राशि के आरभ मे अन्धकार नष्ट करने वाले सूय विषुवत पर आकर दिन और रात को एक जैसे परिमाण का कर देते हैं ।।७६।। उस समय दिन और रात दोनो ही पद्रह पद्रह दिन के होते हैं । हे मुने ! जब सूर्य कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम भाग मे और चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र के चौथे भाग मे हो अथवा जब सूय विशाखा मे तीसरे भाग का और चन्द्रमा कृत्तिका के प्रथम भाग का भोग करते हो, तब यह विषुव नामक अत्यत पुनीत समय होता है ।।७७ ७८।।

तदा दानानि देयानि देवेभ्य प्रयतात्मभि ।
ब्राह्मणेभ्य पितृभ्यश्च मुखमेतत्तु दानजम् ।८०।
दत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ।
अहोरात्रार्द्धमासास्तु कला काष्ठा क्षणास्तथा ।८१।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।८२।
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्र शुचिश्चायनमुत्तर स्यात् ।
नभोनभस्यौ च इषस्तथोर्जे स्सह सहस्याविति दक्षिण तत् ।८३

लोकालोकश्च यश्शैलः प्रागुक्तो भवतो मया ।
लोकपालास्तु चत्वारस्तत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ।८४।
सुधामा शङ्खपाच्चैव कर्दमस्यात्मजो द्विज ।
हिरण्यरोमा चैवान्यश्चतुर्थः केतुमानपि ।८५।
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ।८६।

इस समय देवता, ब्राह्मण, पितर आदि के निमित्त संयत चित्त से दानादि कर्म करे । दान ग्रहण करने के लिये यह काल देवताओं के खुले हुए मुख के तुल्य है ॥८०॥ इसलिये विषुव काल मे जो दान करता है, वह धन्य हो जाता है । यज्ञादि का समय निश्चित करने के लिये दिन, रात, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदि कालो के विषय मे भले प्रकार ज्ञान करना चाहिये ॥८१॥ पूर्णमासी के दो भेद हैं :—राका और अनुमति और अमावस भी सिनीवाली और कुहू के भेद मे दो प्रकार की ही है ॥८२॥ उत्तरायण मे माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ—यह छः मास होते हैं तथा श्रावण, भादो, क्वार, कार्तिक, अगहन, पौष—यह छः मास दक्षिणायन के कहे गये हैं ॥८३॥ पहिले मैं तुमसे जिस लोकालोक पर्वत के विषय में कह चुका हूँ, उस पर चार व्रत परायण लोकपाल रहते हैं ॥८४॥ सुधामा, कर्दम-पुत्र शङ्खपाद, हिरण्यरोमा और केतुमान् नामक यह चारों लोकपाल द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रह आदि से दूर रह कर लोकालोक पर्वत की चारों दिशाओं मे निवास किये हुए हैं ॥८५-८६॥

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ।८७।
तत्रासते महात्मान ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः ।
भूतारम्भकृतं ब्रह्म शंसन्तो ऋत्विगुद्यताः ।
प्रारभन्ते तु ये लोकास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।८८।
चलितं ते पुनर्ब्रह्म स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।८९।

जायमानास्तु पूर्वे च पश्चिमाना गृहेषु वै ।
पश्चिमाश्चैव पूर्वेषा जायन्ते निधनेष्विह ।९०।
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्ति नियतव्रता ।
सवितुर्दक्षिण मार्ग श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।९१।

अगस्त्य के उत्तर और अजवीथि के दक्षिण मे जो वैश्वानर मार्ग से भिन्न मार्ग है, वही पितृयान मार्ग कहा गया है ॥८७॥ उस मार्ग मे ऋषि-महात्मा निवास करते है। जो अग्निहोत्र करने वाले होकर प्राणियो के सर्ग का आरम्भ करने वाले ब्रह्म की स्तुति सहित यजन करते हैं वह पितृयान उनका दक्षिण मार्ग है ॥८८॥ वे युगयुगान्तर मे सन्तान, तप, वर्णाश्रम तथा विविध शास्त्रो और श्रुतियो के द्वारा पुनःस्थापन कार्य करते है ॥८९॥ पूर्व देह के धर्म प्रवर्तक अपनी सन्तान के यहाँ जन्म लेते और वे धर्म प्रचारक गण अपने यहाँ सन्तान रूप से उत्पन्न हुए उन पितरो के पुत्रों में उत्पन्न होते हैं ॥९०॥ इस प्रकार वे व्रत-परायण ऋषिगण जब तक सोम और तारे स्थित रहते हैं, तब तक सूर्य के दक्षिण मार्ग मे बारबार आवागमन करते रहते हैं ॥९१॥

नागवीथ्युत्तर यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तर सवितु पन्था देवयानश्च स स्मृत ।९२।
तत्र ते वशिन सिद्धा विमला ब्रह्मचारिण. ।
सन्तति ते जुगुप्सन्ति तस्मान्मृत्युर्जितश्च तै ।९३।
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्ण स्थितान्याभूतसम्प्लवम् ।९४।
तेऽसम्प्रयोगाल्लोभस्य मैथुनस्य च वर्जनात् ।
इच्छाद्वेषाप्रवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ।९५।
पुनश्च कामासयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात् ।
इत्येभि कारणै. शुद्धास्तेऽमृतत्व हि भेजिरे ।९६।
आभूतसम्प्लव स्थानममृतत्व विभाव्यते ।
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते ।९७।

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पापपुण्यकृतो विधिः ।
आभूतसम्प्लवान्तन्तु फलमुक्तं तयोर्द्विज ।९८।

जो नागवीथि के उत्तर और सप्तर्षियों के दक्षिण में सूर्य का उत्तरीय पथ है, वही देवयान मार्ग कहा जाता है ॥९२॥ उसमें जिन स्वच्छ स्वभाव वाले जितेन्द्रिय ब्रह्मचारियों का निवास है, वे कभी सन्तान की कामना नहीं करते, इस प्रकार उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त करली है ॥९३॥ सूर्य के उस उत्तरीय मार्ग में अस्सी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषियों का निवास है ॥९४॥ उन्होंने लोभ, मैथुन, इच्छा, द्वेष, कर्मानुष्ठान, वासना तथा शब्दादि विषयों के दोष-दर्शन आदि का पूर्णतया त्याग किया हुआ है। इसीलिये उन्होंने अमरत्व को प्राप्त कर लिया है ॥९५-९६॥ प्राणियों का प्रलय काल तक स्थिर रहना ही अमरत्व कहा गया है। तीनों लोकों के स्थित रहने तक के इस समय को अपुनर्मार कहते हैं ॥९७॥ हे द्विज ! ब्रह्म हत्या और अश्वमेध-यज्ञ के करने से जो पाप-पुण्य हो जाते हैं, उनका फल भी प्रलय काल की उपस्थिति तक ही कहा गया है ॥९८॥

यावन्मात्रे प्रदेशे तु मैत्रेयावस्थितो ध्रुवः ।
क्षयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसम्प्लवात् ।९९।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भासुरम् ।१००।
निर्धूतदोषपङ्कानां यतीनां संयतात्मनाम् ।
स्थानं तत्परमं विप्र पुण्यपापपरिक्षये ।१०१।
अपुण्यपुण्योपरमे क्षीणाशेषाप्तिहेतवः ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।१०२।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाक्षिणः ।
तत्सार्ष्ट्योत्पन्नयोगेद्धास्तद्विष्णोः परमं पदम् ।१०३।
यत्रोतमेतत्प्रोतं च यद्भूतं सचराचरम् ।
भाव्यं च विश्वं मैत्रेय तद्विष्णोः परमं पदम् ।१०४।

दिवीव चक्षुराततयोगिना तन्मयात्मनाम् ।
विवेकज्ञानदृष्ट च तद्विष्णोः परम पदम् ।१०५।

हे मैत्रेयजी ! जितने प्रदेश मे ध्रुव की स्थिति है, पृथिवी से लेकर वह प्रदेश तक सब प्रलय काल मे विलीन हो जाता है ॥९९॥ वह ध्रुव सप्तर्षियों के उत्तर ओर तथा ऊपर अत्यन्त तेजोमय स्थान है, उसे आकाश में भगवान् विष्णु का तीसरा दिव्यधाम समझो ॥१००॥ पुण्य पाप तथा दोष पक के नष्ट होने से यतात्मा हुए ऋषियों का परम स्थान यही है ॥१०१॥ पुण्य पाप के नष्ट होने तथा देह-प्राप्ति के सब कारणो के क्षीण हो जाने पर जहाँ जाकर प्राणियो को शोक नही रहता, वही भगवान् विष्णु का परम पद है ॥१०२॥ जहाँ विष्णु के समान ऐश्वर्यवान् हुए और योग से तेजस्विता को प्राप्त हुए धर्म और ध्रुव लोक के साक्षि रूप से रहते हैं, वही उन भगवान् का परमपद है ॥१०३॥ हे मैत्रेयजी ! जिसमे भूत, भविष्यत् वर्तमान मय यह चराचर विश्व ओत-प्रोत है, वही भगवान् विष्णु का परमपद है ॥ १०४ ॥ जो तन्मय हुए योगियो को आकाश मे प्रकाशित सूर्य के समान सबका प्रकाश करने वाला प्रतीत होता है, तथा जो विवेक द्वारा ही प्रत्यक्ष हो सकता है, वह भगवान् विष्णु का परमपद ही है ॥१०५॥

यस्मिन्प्रतिष्ठितो भास्वान्मेढीभूत स्वय ध्रुव ।
ध्रुवे च सर्वज्योतीषि ज्योति ष्वम्भोमुचो द्विज ।१०६।
मेघेषु सङ्गता वृष्टिर्वृष्टे सृष्टेश्च पोष्णम् ।
आप्यायन च सर्वेषा देवादीना महामुने ।१०७।
ततश्चाज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्भुज ।
वृष्टे कारणता यान्ति भूताना स्थितये पुन ।१०८।
एवमेतत्पद विष्णोस्तृतीयममलात्मकम् ।
आधारभूत लोकाना त्रयाणा वृष्टिकारणम् ।१०९।
तत प्रभवति ब्रह्मन्सर्वपापहरा सरित् ।
गङ्गा देवाङ्गनाङ्गानामनुलेपनपिञ्जरा ।११०।
वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम् ।
विष्णोर्बिभर्ति या भक्त्या शिरसाहर्निश ध्रुव ।१११।

हे द्विज ! उसी विष्णु पद में सबके आश्रयभूत अत्यन्त तेजस्वी ध्रुव की स्थिति है और ध्रुव में सब नक्षत्र स्थित हैं। नक्षत्रों में मेघ तथा मेघों में वृष्टि आश्रय लिये हुए है। उसी वृष्टि के द्वारा सृष्टि का पोषण होता है तथा वही सब देवता, मनुष्यादि प्राणियों को पुष्ट करती है ॥ १०६-१०७ ॥ फिर गवादि प्राणियों से उत्पन्न दुग्ध, घी आदि की आहुतियों से तृप्त हुए अग्नि ही प्राणियों का पालन करने के लिये पुनः वृष्टिकारक होते हैं ॥१०८॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु का यह तीसरा लोक ही तीनों लोकों का आधार भूत तथा वर्षा आदि का करने वाला है ॥ १०९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसी विष्णुपद से देवांगनाओं के अंगराग के मिश्रण से पाण्डु वर्ण की सी होकर सब पापों को नष्ट करने वाली सरिता श्रीगंगाजी प्रकट हुई हैं ॥ ११० ॥ भगवान् विष्णु के बाँए चरण कमल के अंगुष्ठ नख रूपी स्रोत से निर्गत उन गंगाजी को ध्रुव अहर्निशि अपने सिर पर धारण किये रहता है ॥१११॥

ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरायणाः ।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटा जले ॥११२॥
वार्योघैः सन्ततैर्यस्याः प्लावितं शशिमण्डलम् ।
भूयोऽधिकतरां कान्तिं वहत्येतदुह क्षये ॥११३॥
मेरुपृष्ठे पतत्युच्चैर्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात् ।
जगतः पावनार्थाय प्रयाति च चतुर्दिशम् ॥११४॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च संस्थिता ।
एकैव या चतुर्भेदा दिग्भेदगतिलक्षणा ॥११५॥
भेदं चालकनन्दाख्यं यस्याः सर्वोऽपि दक्षिणम् ।
दधार शिरसा प्रीत्या वर्षाणामधिकं शतम् ॥११६॥
शम्भोर्जटाकलापाच्च विनिष्क्रान्तास्थिशर्करा. ।
प्लावयित्वा दिवं निन्ये या पापान्सगरात्मजान् ॥११७॥

फिर जिनके जल में स्थित हुए प्राणायाम परायण सप्तर्षि उनकी तरंगों से जटाओं के कम्पित होते हुए भी पापों का मर्दन करने वाले मन्त्र को जपते रहते हैं और जिनकी महान जल-राशि से आप्लावित हुआ चन्द्र मण्डल क्षीण

होने के पश्चात् अधिक कान्तिवान् हो जाता है, वे गगाजी उस चन्द्रमण्डल से निकलकर मेरु पर्वत पर गिरती हुई जगत् को पवित्र करने के लिये चारों दिशाओं को गमन करती है ॥११२-११४॥ चार दिशाओं मे जाती हुई एक ही गङ्गाजी चार धाराओ के रूप मे होकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा कही जाती हैं ।.११५॥ जिनकी अलकनन्दा नामक दक्षिणीय धारा को शिवजी ने सौ वर्ष से भी अधिक समय तक अपने मस्तक पर प्रीति सहित धारण किया था तथा जिसने उन शिवजी की जटाओ से निकलकर पाप कर्मा सगर पुत्रों की हड्डियो के चूरे को आप्लावित कर उन्हे स्वर्ग प्राप्त करा दिया था ॥ ११६-११७ ॥

स्नातस्य सलिले यस्या सद्य पाप प्रणश्यति ।
अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मैत्रेय जायते ।११८।
दत्ता पितृभ्यो यत्रापस्तनयै श्रद्धयान्वितै ।
समाशत प्रयच्छन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम् ।११९।
यस्यामिष्ट्वा महायज्ञै यंज्ञेश पुरुषोत्तमम् ।
द्विज भूपा परा सिद्धिमवापुर्दिवि चेह च ।१२०।
स्नानाद्विधूतपापाश्च यज्जलैर्यतयस्तथा ।
केशवासक्तमनस प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम् ।१२१।
श्रुताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टापीतावगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने ।१२२।
गङ्गा गङ्गे ति यैर्नाम योजनाना शतेष्वपि ।
स्थितैरुच्चारित हन्ति पाप जन्मत्रयार्जितम् ।१२३।
यत सा पावनायाल त्रयाणा जगतामपि ।
समुद्भूता पर तत्तु तृतीय भगवत्पदम् ।१२४।

हे मैत्रेयजी ! जिसके जल मे स्नान करने मात्र से पापों का शीघ्र ही क्षय हो जाता है, तथा अभूत पूर्व पुण्य प्राप्त होता है ॥ ११८ ॥ पुत्रो के द्वारा अपने पितरों के लिये जिसके प्रवाह मे एक दिन श्रद्धा पूवक किया गया तर्पण उन्हें सौ वर्ष दुर्लभ तृप्ति प्राप्त कराता है ॥११९॥ हे द्विज ! राजाओ ने जिसके

किनारे पर यज्ञेश्वर भगवान् का महायज्ञों के द्वारा यजन करके इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया ॥ १२० ॥ जिसमें स्नान करके निष्पाप हुए, यतियों ने भगवान् श्रीकेशव में आसक्त चित्त रहकर श्रेष्ठ निर्वाण पद को प्राप्त किया ॥१२१॥ जो श्रवण, दर्शन, इच्छा, स्पर्श, जलपान, स्नान और कीर्तन से ही प्राणियों को नित्य पवित्र करती रहती है ॥१२२॥ जिसके 'गंगा' नाम को सौ योजन दूर से भी उच्चारण करने पर वह उसके तीन जन्म के एकत्र हुए पापों को भी निर्मूल कर देता है ॥ १२३ ॥ तीनों लोक को पवित्र करने वाली वह गङ्गा, जिससे आविर्भूत हुई, वह भगवान् विष्णु का तृतीय परमपद ही है ॥१२४॥

नवाँ अध्याय

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो ।
दिवि रूप हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ।।१।
सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।२।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह ।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रु वे बद्धानि तानि वै ।३।
शिशुमाराकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि ।
नारायणोऽयन धाम्ना तस्याधार स्वय हृदि ।४।
उत्तानपादपुत्रस्तु तमाराध्य जगत्पतिम् ।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ।५।
आधार शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दन ।
ध्रुवस्य शिशुमारस्तु ध्रुवे भानुर्व्यवस्थित ।६।
तदाधार जगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्र विधानेन तन्ममैकमना शृणु ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—शिशुमार की आकृति वाला भगवान् विष्णु का जो तारामय स्वरूप आकाश में देखने में आता है, उसी की पूँछ में ध्रुव स्थित है ॥१॥ यह ध्रुव स्वयं घूमता रहकर चन्द्रमा तथा सूर्यादि ग्रहों को घुमाता रहता है। उस घूमने वाले ध्रुव के साथ ही नक्षत्रगण भी चक्र के समान घूमते हैं ॥२॥ सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र तथा अन्य सभी ग्रह वायुमण्डल रूपी डोर से ध्रुव के साथ बँधे हैं ॥३॥ ग्रहों का जो शिशुमार स्वरूप मैंने तुम्हें बताया है, उसके हृदय स्थित आश्रय अनन्त तेज वाले भगवान् विष्णु ही हैं ॥४॥ उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने ही उन जगत्पति भगवान् विष्णु की आराधना करके उस तारामय शिशुमार की पूँछ में स्थान प्राप्त किया है ॥५॥ शिशुमार के आधार स्वयं सर्वेश्वर जनार्दन हैं, वह शिशुमार ध्रुव का आश्रय है और ध्रुव सूर्य का आश्रय है ॥६॥ तथा हे द्विज! देव, असुर, मनुष्यादि युक्त यह सम्पूर्ण विश्व सूर्य का आश्रित है, उसका वृत्तान्त सावधान चित्त से सुनो ॥७॥

विवस्वानष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादप्यखिलं जगत् ॥८॥
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमं पुष्णात्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि ॥९॥
नालैर्विक्षिपतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः ॥१०॥
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः ॥११॥
सरित्समुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता मुने ॥१२॥
आकाशगङ्गासलिलं तथादाय गभस्तिमान्।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥१३॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तम।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१४॥

सूर्य आठ महीने तक अपनी किरणों के द्वारा रस रूप जल को ग्रहण करता और चार महीने उसे बरसाता है। उस जल वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, जिस पर सम्पूर्ण विश्व का पोषण निर्भर है ॥ ८ ॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों के द्वारा विश्व से जल खींचकर उससे चन्द्रमा का पोषण करता है और चन्द्रमा वायुमयी नाड़ियों से उसे धूम, अग्नि और मेघ में पहुँचाता है। चन्द्रमा द्वारा प्राप्त यह जल मेघों से शीघ्र ही भ्रष्ट होने के कारण, वे मेघ 'अभ्र' कहे जाते हैं ॥ ९ १० ॥ हे मैत्रेयजी ! काल जनित संस्कार से यह मेघों में स्थित जल निर्मल होकर वायु द्वारा प्रेरित किये जाने पर पृथिवी पर बरसता है ॥११॥ हे मुने ! नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियों से उत्पन्न इन चार प्रकार के जलों को भगवान् सूर्य अपनी ओर खींचते हैं ॥ १२ ॥ वे आकाशगंगा के जल को लेकर मेघादि के बिना, केवल अपनी किरणों से ही द्वारा पृथिवी पर बरसाते हैं ॥१३॥ हे विप्र श्रेष्ठ ! उसके स्पर्श मात्र से पाप रूपी कीचड़ धुल जाती है, जिससे मनुष्य नरक प्राप्ति से बच जाता है। इसीलिये इसे दिव्य स्नान कहा है ॥ १४ ॥

दृष्टसूर्यं हि यद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः ।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ।१५।
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः ।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ।१६।
युग्मर्क्षेषु च यत्तोयं पतत्यर्कोज्झितं दिवः ।
तत्सूर्यरश्मिभिः सर्वं समादाय निरस्यते ।१७।
उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापभयापहम् ।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं महामुने ।१८।
यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत्प्राणिनां द्विज ।
पुष्णात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत् ।१९।
तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानां द्विज जायते ।२०।
तेन यज्ञान्यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः ।
कुर्वन्त्यहरहस्तैश्च देवानाप्याययन्ति ते ।२१।

सूर्य के दिखाई देते हुए मेघो के बिना ही जो जल वृष्टि होती है, वह आकाशगंगा का जल सूर्य की किरणों द्वारा ही बरसाया हुआ होता है ॥१५॥ कृत्तिकादि विषम नक्षत्रो मे बिना मेघो के तथा सूर्य के दिखाई देते हुए बरसने वाला जल भी आकाशगङ्गा का ही होता है, उसे दिग्गजों द्वारा बरसाया हुआ समझो ॥ १६ ॥ सम संख्यक नक्षत्रो मे सूर्य द्वारा बरसाया जाने वाला जल सूर्य की किरणो द्वारा ग्रहण करके ही पृथिवी पर बरसाया जाता है ॥१७॥ हे महामुने ! आकाश गङ्गा के यह दो प्रकार के जलमय दिव्य स्नान हैं, जिनसे मनुष्यो के पापादि भयो का उन्मूलन होता है ॥१८॥ हे द्विज ! मेघो के द्वारा बरसाया जाने वाला जल प्राणियो के जीवन के लिये अमृत तुल्य तथा औषधियों का पोषक है ॥१९॥ उस वृष्टि-जल से सब औषधियाँ परम वृद्धि को प्राप्त होती और पककर सूखने वाले तथा प्रजाओ के पोषक होते हैं ॥ २० ॥ उनसे शास्त्रो के ज्ञाता विज्ञजन प्रति दिन विधिवत् यज्ञो के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ २१ ॥

एव यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च वृष्टिपूर्वका ।
सर्वे देवनिकायाश्च सव भूतगणाश्च ये ।२२।
वृष्टया धृतमिद सर्वमन्न निष्पाद्यते यया ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टि सवित्रा मुनिसत्तम ।२३।
आधारभूत सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम ।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मक ।२४।
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य सस्थित ।
विभर्ता सर्वभूतानामादिभूत सनातन ।२५।

इस प्रकार सब यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण, समस्त देवता तथा अन्यान्य प्राणी वर्षा के ही आश्रित हैं ॥२२॥ अन्न को उत्पन्न करने वाली वर्षा ही इन सबका धारण करने वाली है और वह वर्षा सूर्य से उत्पन्न होती है ॥२३॥ हे मुनिवरों मे श्रेष्ठ ! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का आधार शिशुमार है और उस शिशुमार के भी आधार भगवान् श्री नारायण हैं ॥२४॥ उस शिशुमार के हृदय मे श्रीनारायण का निवास है, जो सब प्राणियों के रक्षक, आदिभूत एव सनातन हैं ॥२५॥

दसवाँ अध्याय

साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः ।
आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः ।१।
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ।२।
धाता क्रतुस्थला चैव पुलस्त्यो वासुकिस्तथा ।
रथभृद्ग्रामणीर्हेतिस्तुम्बुरुश्चैव सप्तमः ।३।
एते वसन्ति वै चैत्रे मधुमासे सदैव हि ।
मैत्रेय स्यन्दने भानोः सप्त मासाधिकारिणः ।४।
अर्यमा पुलहश्चैव रथौजाः पुञ्जिकस्थला ।
प्रहेतिः कच्छवीरश्च नारदश्च रथे रवेः ।५।
माधवे निवसन्त्येते शुचिसंज्ञे निबोध मे ।६।
मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका ।
हाहा रथस्वनश्चैव मैत्रेयैते वसन्ति वै ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—आरोह अवरोह से एक वर्ष में सूर्य के रथ की जितनी गति है, उस पूरे मार्ग की दोनों काष्ठाओं का अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल होता है ॥ १ ॥ सूर्य का वह रथ ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसों से अधिष्ठित होता है ॥ २ ॥ मधुमास चैत्र में धाता, क्रतुस्थला, अप्सरा, पुलस्त्य, वासुकि, रथभृत् यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बरु नामक गंधर्व-यह सात मासाधिकारी सूर्य के रथ में निवास करते हैं ॥ ३-४ ॥ वैशाख मास में अर्यमा, पुलह, रथौजा, पुंजिकस्थला, प्रहेति, कच्छवीर और नारद सूर्य के रथ में रहते हैं । अब ज्येष्ठ मास में निवास करने वालों के नाम कहता हूँ, सुनो ॥ ५-६ ॥ मित्र, अत्रि, तक्षक, पौरुषेय, मेनका, हाहा और रथस्वन यक्ष उस रथ में रहते हैं ॥ ७ ॥

वरुणो वसिष्ठो नागश्च सहजन्या हूहू रथः ।
रथचित्रस्तथा शुक्रे यमन्त्यापादसंज्ञके । ८ ।

इन्द्रो विश्वावसु स्रोत एलापुत्रस्तथाङ्गिरा ।
प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पश्चार्के वसन्ति वै ।९।
विवस्वानुग्रसेनश्च भृगुरापूरणस्तथा ।
अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा ।१०।
पूषा वसुरुचिर्वातो गौतमोऽथ धनञ्जय ।
सुषेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ ।११।
विश्वावसुर्भरद्वाज पर्जन्यैरावती तथा ।
विश्वाची सेनजिच्चाप कार्तिके च वसन्ति वै ॥१२॥
अंशकाश्यपतार्क्ष्यास्तु महापद्मस्तथोर्वशी ।
चित्रसेनस्तथा विद्युन्मार्गशीर्षेऽधिकारिण ।१३।
क्रतुर्भगस्तथोर्णायु स्फूर्ज कर्कोटकस्तथा ।
अरिष्टनेमिश्चैवान्या पूर्वचित्तिर्वराप्सरा ।१४।
पौषमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले ।
लोकप्रकाशनार्थाय विप्रवर्याधिकारिण ।१५।

त्वष्टाथ जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा ।
ब्रह्मोपेतोऽथ ऋतजिद् धृतराष्ट्रोऽथ सप्तम ।१६।
माघमासे वसन्त्येते सप्त मैत्रेय भास्करे ।
श्रूयतां चापरे सूर्ये फाल्गुने निवसन्ति ये ।१७।
विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञोपेतो महामुने ।१८।
मासेष्वेतेषु मैत्रेय वसन्त्येते तु सप्तकाः ।
सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णुशक्त्युपबृंहिताः ।१९।
स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।
नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः ।२०।
वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसङ्ग्रहः ।
वालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ।२१।
सोऽपि सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनिसत्तम ।
हिमोष्णवारिवृष्टीनां हेतुः स्वसमयं गतः ।२२।

माघ में त्वष्टा, जमदग्नि, कम्बल नामक सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गंधर्व सूर्य के रथ में रहते हैं । अब फाल्गुन मास में सूर्य-रथ पर निवास करने वाले मासाधिकारियों के नाम सुनो ॥१६-१७॥ विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा, सूर्यवर्चा गंधर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र और यज्ञोपेत नामक राक्षस इसमें रहते हैं ॥१८॥ (हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवान् विष्णु की शक्ति से तेजस्विता प्राप्त कर यह सात-सात गण एक-एक महीने में सूर्य के रथ में रहते हैं ॥१९॥ उस समय मुनिगण स्तुति करते, गंधर्व गण सूर्य का गुण-गान करते, अप्सराएँ नृत्य करतीं, राक्षसगण रथ के पीछे-पीछे चलते, सर्पगण उस रथ को वहन योग्य बनाते, यक्षगण उसकी बागडोर ग्रहण करते और बालखिल्यादि उसे सब ओर से घेरे रहते हैं ॥२०-२१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्य मण्डल के यही सात-सात गण अपने काल में शीत, उष्णता और वृष्टि आदि के हेतु होते हैं ॥२२॥)



ग्यारहवाँ अध्याय

यदेतद्भगवानाह गणः सप्तविधो रवेः ।
मण्डले हिमतापादेः कारणं तन्मया श्रुतम् ॥१॥
व्यापारश्चापि कथितो गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ऋषीणां वालखिल्यानां तथैवाप्सरसां गुरो ॥२॥
यक्षाणां च रथे भानोर्विष्णुशक्तिधृतात्मनाम् ।
किं चादित्यस्य यत्कर्म तन्नात्रोक्तं त्वया मुने ॥३॥
यदि सप्तगणो वारि हिममुष्णं च वर्षति ।
तत्किमत्र रवेर्येन वृष्टिः सूर्यादितीर्यते ॥४॥
विवस्वानुदितो मध्ये यात्यस्तमिति किं जनः ।
ब्रवीत्येतत्समं कर्म यदि सप्तगणस्य तत् ॥५॥
मैत्रेय श्रूयतामेतद्यद्भवान्परिपृच्छति ।
यथा सप्तगणेऽप्येकः प्राधान्येनाधिको रविः ॥६॥
सर्वशक्तिः परा विष्णोरृग्यजुःसामसंज्ञिता ।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या ॥७॥

है ॥३॥ भगवान् विष्णु की ऋक, यजु, साम नाम की सर्व शक्तिमयी जो पराशक्ति है, वही वेदमयी सूर्य को ताप देती है और वही जगत् के सब पापों का नाश करती है ॥५॥

सैष विष्णु स्थित स्थित्या जगत पालनोद्यत ।
ऋग्यजु सामभूतोऽन्त सवितुर्द्विज तिष्ठति ॥८॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा ।
त्रयमयी विष्णुशक्तिरवस्थान करोति वै ॥९॥
ऋच स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै ।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्न क्षये रविम् ॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजु सामसंज्ञिता ।
विष्णुशक्तिरवस्थान सदादित्ये करोति सा ॥११॥
न केवल रवे शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी ।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत्त्रयीमयम् ॥१२॥
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मय ।
रुद्र साममयोऽन्ताय तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनि ॥१३॥

तया चाधिष्ठित सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभि ।
तम समस्त जगता नाश नयति चाखिलम् ।१५।
स्तुवन्ति चैन मुनयो गन्धर्वैर्गीयते पुर ।
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति तस्य चानु निशाचरा ।१६।
वहन्ति पन्नगा यक्ष क्रियतेऽभीपुसङ्ग्रह ।
वालखिल्यास्तथैवैन परिवार्य समासते ।१७।
नोदेता नास्तमेता च कावचिच्छक्तिरूपधृक् ।
विष्णुर्विष्णो पृथक् तस्य गणस्सप्तविधोऽप्ययम् ।१८।
स्तम्भस्थदर्पणस्येव योऽयमासन्नता गत ।
छायादर्शनसयोग स त प्राप्नोत्यथात्मन ।१९।
एव सा वैष्णवी शक्तिर्नैवापैति ततो द्विज ।
मासानुमास भास्वन्तमध्यास्ते तत्र सस्थितम् ।२०।

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्विकी वैष्णवी शक्ति अपने सात गणों में स्थित सूर्य मे ही अवस्थान करती है ॥१४॥ उससे अधिष्ठित हुए सूर्य भी अपनी रश्मियो से और भी प्रखर होते हुए जगत के अन्धकार को मिटा देते हैं ॥१५॥ (ऐसे उन सूर्य की मुनि स्तुति करते, गंधर्व यश कीर्तन करते, अप्सराएँ नृत्य करतीं, राक्षस पीछे चलते, सर्प रथ को सजाते, यक्ष घोडो की बागडोर पकडते और बालखिल्यादि उस रथ को सब ओर से घेरे हुए चलते हैं ॥१६-१७॥) उन त्रयीमयी शक्ति वाले भगवान् विष्णु का कभी उदयास्त नहीं होता और यह सात प्रकार के गण उनसे अलग ही हैं ॥१८॥ जैसे स्तम्भस्थ दर्पण के पास जाने वाले को सदा उसकी छाया दिखाई देती है वैसे ही विष्णु की यह शक्ति सूर्य के रथ में सदा रहती है तथा प्रत्येक मास म सूर्य के पृथक् पृथक् रूप में स्थित होने वह वही शक्ति उनकी अधिष्ठात्री होती है ॥२०॥

पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययन्प्रभु ।
परिवर्तत्यहोरात्रकारण सविता द्विज ।२१।
सूर्यरश्मि सुषुम्ना यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमा ।
कृष्णपक्षेऽमरै शश्वत्पीयते वै सुधामय ।२२।

पीत तं द्विकलं सोमं कृष्णपक्षक्षये द्विज ।
पिबन्ति पितरस्तेषां भास्करात्तर्पणं तथा ।२३।
आदत्ते रश्मिभिर्यन्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः ।
तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये ।२४।
तेन प्रीणात्यशेषाणि भूतानि भगवान्रविः ।
पितृदेवमनुष्यादीनेवमाप्याययत्यसौ ।२५।
पक्षतृप्तिं तु देवानां पितृणां चैव मासिकीम् ।
शश्वत्तृप्तिं च मर्त्यानां मैत्रेयार्कः प्रयच्छति ।२६।

हे द्विज ! दिन और रात्रि को उत्पन्न करने वाले सूर्य पितर, देवता और मनुष्यादि को सदा तृप्त करते हुए भ्रमण करते हैं ॥२१॥ सूर्य की सुषुम्ना नाम्नी किरण शुक्लपक्ष में चन्द्रमा को पुष्ट करती है और कृष्ण पक्ष में देवगण। उस अमृतमय चन्द्रमा की एक एक कला को पीते रहते हैं ॥२२॥ कृष्णपक्ष के क्षीण होने पर पितरगण दो कला वाले चन्द्रमा का पान करते रहते हैं। इस प्रकार सूर्य के द्वारा पितरों का तर्पण किया जाता है ॥२३॥ अपनी किरणों के द्वारा सूर्य पृथिवी जितने जल को आकर्षित करता है, उसको प्राणियों के पोषण और अन्न की वृद्धि के लिये पृथिवी पर ही बरसा देता है ॥२४॥ इस प्रकार सूर्य समस्त प्राणियों को प्रसन्न करते हुए देवगण, मनुष्य गण और पितरगण आदि सभी को तृप्त करते हैं ॥२५॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार से भगवान् सूर्य देवताओं की पाक्षिक, पितरों की मासिक और मनुष्यों की दैनिक तृप्ति के कारण हैं ॥२६॥

बारहवाँ अध्याय

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ।१।

वीथ्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रुवाधारेण वेगिना ।
ह्रासवृद्धिक्रमस्तस्य रश्मीना सवितुर्यथा ।२।
अर्कस्येव हि तस्याश्वा सकृद्युक्ता वहन्ति ते ।
कल्पमेक मुनिश्रेष्ठ वारिगर्भसमुद्भवा ।३।
क्षीण पीत सुरै सोममाप्याययति दीप्तिमान् ।
मैत्रेयैककल सन्त रश्मिनैकेन भास्कर ।४।
क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम् ।
आप्याययत्यनुदिन भास्करो वारितस्कर ।५।
सम्भृत चार्धमासेन तत्सोमस्य सुधामृतम् ।
पिबन्ति देवा मैत्रेय सुधाहारा यतोऽमरा ।६।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवा पिबन्ति क्षणदाकरम् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—चन्द्रमा के रथ में तीन पहिये हैं उसके बाँए और दाँए ओर कुन्द पुष्प के समान सफेद रंग के दस घोड़े जुते हुए हैं। वह रथ ध्रुव के आधार पर स्थित है। चन्द्रमा उसी वेगवान् रथ पर चढ़कर भ्रमण करते हैं तथा नागवीथि पर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रों को भोगते हैं। सूर्य के समान इनकी किरणें भी न्यूनता और वृद्धि को प्राप्त होती रहती हैं ॥१, २॥ हे मुनिवर ! सूर्य के समान उनके घोड़े भी समुद्र के गर्भ से उत्पन्न होकर एक बार जोते जाने पर एक कल्प तक रथ को खींचते रहते हैं ॥३॥ हे मैत्रेयजी ! देवताओं द्वारा पान किये जाने के कारण क्षीण हुए कला मात्र चन्द्रमा को सूर्य अपनी किरणों से पुनः पुष्ट करते हैं ॥४॥ जिस क्रम से देवता उनका पान करते हैं उसी क्रम से शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से जल का अपहरण करने वाले सूर्य उन्हें नित्य प्रति पोषित करते हैं ॥५॥ इस प्रकार अर्धमास में संचित हुए चन्द्रमा के उस अमृत का देवगण पुनः पान करने लगते हैं क्योंकि उन देवताओं का आहार वही अमृत है ॥६॥ तेंतीस सहस्र, तेंतीस सौ तेंतीस देवता चन्द्रमा के उस अमृत को पीते रहते हैं ॥७॥

कलाद्वयावशिष्टस्तु प्रविष्टः सूर्यमण्डलम् ।
अमाख्यरश्मौवसति अमावास्या ततः स्मृता ।८।
अप्सु तस्मिन्नहोरात्रे पूर्वं विशति चन्द्रमा ।
ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यर्कं ततः क्रमात् ।९।
छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे ।
पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ।१०।
सोमं पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते ।११।
पिबन्ति द्विकलाकारं शिष्टा तस्य कला तु या ।
सुधामृतमयी पुण्या तामिन्दोः पितरो मुने ।१२।
निस्सृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः सुधामृतम् ।
मासं तृप्तिमवाप्याग्र्यां पितरः सन्ति निर्वृताः ।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।१३।
एवं देवान् सिते पक्षे कृष्णपक्षे तथा पितॄन् ।
वीरुधश्चामृतमयैः शीतैरप्परमाणुभिः ।१४।
वीरुधौषधिनिष्पत्त्या मनुष्यपशुकीटकान् ।
आप्यायमति शीतांशुः प्राकाश्याह्लादनेन तु ।१५।

जब चन्द्रमा कला-मात्र रह जाता है और सूर्य मण्डल में प्रविष्ट होकर उसकी अमा नाम की किरण में रहता है, तब उस दिन को अमावस्या कहते हैं ॥८॥ उस दिन वह रात्रि काल में प्रथम जल में प्रविष्ट होता, फिर वृक्ष-लतादि में रहता और फिर क्रम से सूर्य में पहुँच जाता है ॥९॥ जब चन्द्रमा वृक्ष और लतादि में रहता है तब उस अमावस तिथि को यदि कोई उसका एक पत्ता भी तोड़ता है तो उसे ब्रह्म हत्या का भागी होना होता है ॥१०॥ केवल पन्द्रहवीं कला के बच रहने पर उस क्षीणकाय चन्द्रमा को मध्याह्नोत्तर काल में पितरगण सब ओर से आ घेरते हैं ॥ ११॥ उस समय उस चन्द्रमा की एक अवशिष्ट सुधामयी कला को वे पितरगण पीते हैं ॥१२॥ अमावस में दिन चन्द्रमा की किरण से निकले हुए उस अमृत को पीकर तृप्त हुए वे सौम्य,

बर्हिपद् और अग्निष्वात्त पितरगण एक महीने तक तृप्त रहते हैं ॥१३॥ इस प्रकार चन्द्रमा से शुक्ल पक्ष मे देवताओं की और कृष्ण पक्ष मे पितरो की पुष्टि होती है तथा यह चन्द्रमा अपने शीतल जल-कणो से लता, वृक्ष औषधि आदि को उत्पन्न और अपनी चन्द्रिका द्वारा आह्लादित करके मनुष्य, पशु, कीटादि प्राणियो को परिपुष्ट करते हैं ॥ १४-१५ ॥

वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च ।
पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्त सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभि ।१६।
सवरूथ सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयै ।
सोपासङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान् ।१७।
अष्टाश्व काञ्चन श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान् ।
पद्मरागारुणैरश्वै सयुक्तो वह्निसम्भवै ।१८।
अष्टाभि पाण्डुरैर्युक्तो वाजिभि काञ्चनो रथ ।
तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पति ।१९।
आकाशसम्भवैरश्वै शबलै स्यन्दन युतम् ।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चर ।२०।

चन्द्रमा का पुत्र बुध है । उसका रथ वायु और अग्नि से बना है, वायु-वेग वाले पिशङ्ग वर्ण आठ अश्व उसमे जुते हैं ॥१६॥ लोह आवरण, रथ का निचला भाग, शस्त्र-स्थान, पताका तथा पृथिवी से उत्पन्न हुए अश्वो के सहित शुक्र का रथ भी बहुत बड़ा है ॥१७॥ मगल का रथ आठ घोडो से युक्त अत्यन्त शोभायमान, स्वर्ण से बना हुआ है, उसमे अग्नि से उत्पन्न हुए पद्मरागमणि जैसे अरुण वर्ण के घोडे जुते हैं ॥१८॥ पाण्डुरवर्ण के आठ अश्वो वाले स्वर्ण रथ मे वर्ष के अतिम काल मे प्रत्येक राशि मे बृहस्पतिजी बैठते हैं ॥१९॥ जिस रथ में आकाश से उत्पन्न हुए अद्भुत वर्ण वाले अश्व जुड़े हैं, उस पर चढ़कर शनैश्चरजी मन्दगति से चलते हैं ॥२०॥

स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभा धूसर रथम् ।
सकृद्युक्तास्तु मैत्रेय वहन्त्यविरत सदा ।२१।

आदित्यान्निसृतो राहु सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुन सौरेषु पर्वसु ।२२।
तथा केतुरथस्याश्वा अप्यष्टौ वातरंहस ।
पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणा ।२३।
एते मया ग्रहाणां वै तवाख्याता रथा नव ।
सर्वे ध्रुवे महाभाग प्रबद्धा वायुरश्मिभि ।२४।
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषत ।
भ्रमन्त्युचितचारेण मैत्रेयानिलरश्मिभि ।२५।
यावन्त्यश्चैव तारास्तास्तावन्तो वातरश्मय ।
सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ।२६।
तैलपीडा यथा चक्रं भ्रमन्तो भ्रामयन्ति वै ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातविद्धानि सर्वश ।२७।
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
यस्माज्ज्योतींषि वहति प्रवहस्तेन स स्मृत ।२८।

राहु का रथ धूसर वर्ण वाला है। उसमें भौंरे के समान काले रंग के आठ अश्व जुते हैं। उन घोड़ों को एक बार जोड़ दिया जाय तो वे निरन्तर अबाध गति से चलते रहते हैं ॥२१॥ चन्द्रमा के पर्वों पर यह राहु से निकल- कर चन्द्रमा में जाता और सूर्य के पर्वों पर चन्द्रमा से निकलकर सूर्य में स्थित होता है ॥२२॥ ऐसे ही केतु के रथ में जुड़े हुये वायुवेग वाले आठ घोड़े पलाल धूम वर्ण जैसी आभा और लाख जैसे लाल वर्ण के हैं ॥२३॥ हे महाभाग! यह नवग्रह के रथों का वर्णन मैंने तुम से किया है यह सभी ग्रह वायुमयी रस्सी के साथ ध्रुव से बँधे हैं ॥२४॥ हे मैत्रेयजी! सभी ग्रह, नक्षत्र और तारे वायुमयी डोर से ध्रुव के साथ बँधकर भ्रमण करते रहते हैं ॥२५॥ जितने तारे हैं, उतनी ही वायुमयी रस्सियाँ हैं, उनसे बँधकर यह घूमते हुए ध्रुव को भी घुमाते रहते हैं ॥२६॥ जैसे तेली स्वयं घूमते हुये कोल्हू को घुमाते रहते हैं, वैसे ही सब ग्रह वायु के बन्धन में घूमते रहते हैं ॥२७॥ इस वातमय चक्र के प्रेरण से समस्त ग्रह अलात चक्र के समान घूमने के कारण इसे 'प्रवह' कहा गया है ॥२८॥

शिशुमारस्तु य प्रोक्त स ध्रुवो यत्र तिष्ठति ।
सन्निवेश च तस्यापि श्रृणुष्व मुनिसत्तम ।२६।
यदह्ना कुरुते पाप त दृष्ट्वा निशि मुच्यते ।
यावन्त्यश्चैव तारास्ता शिशुमाराश्रिता दिवि ।३०।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि च ।
उत्तानपादस्तस्यायो विज्ञेयो ह्युत्तरो हनु ।३१।
यज्ञोऽधरश्च विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रित ।
हृदि नारायणश्चास्ते अश्विनौ पूर्वपादयो ।३२।
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी ।
शिश्न सवत्सरस्तस्य मित्रोऽपान समाश्रित ।३३।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च कश्यपोऽथ ततो ध्रुव ।
तारका शिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम् ।३४।
इत्यपसन्निवेशोऽय पृथिव्या ज्योतिषा तथा ।
द्वीपानामुदधीना च पर्वताना च कीर्तित ।३५।
वर्षाणा च नदीना च ये च तेषु वसन्ति वै ।
तेषा स्वरूपमाख्यात सक्षेप श्रूयता पुन ।३६।

पहले जिस शिशुमार चक्र का वर्णन किया जा चुका है और जहाँ ध्रुव स्थित है, अब उसकी स्थिति के विषय में कहता हूँ, सुनो ॥२६॥ दिन में जिन मनुष्य से पाप कर्म होगये हों, वह मनुष्य रात्रि काल उसका दर्शन करने से उन पापों से छूट जाता है तथा आकाश मण्डल में जितने तारागण इस चक्र के आश्रित है, उतने वर्ष अधिक वर्ष तक जीवित रहता है उत्तानपाद उसकी ऊपर की ठोडी मानी जाती है ॥३०-३१॥ यज्ञ उसके नीचे की ठोडी है धर्म उसके मस्तक पर स्थित है नारायण उसके हृदय देश में हैं तथा अश्विनी कुमार उसके दोनों पूर्वीय चरणों में हैं ॥३२॥ जाँघों में वरुण और अर्यमा, लिंग में संवत्सर तथा अपान देश में मित्र हैं ॥३३॥ पुच्छ भाग में अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव है। यह अग्नि आदि चारों तारे कभी अस्त नहीं होते ॥३४॥ इस प्रकार पृथिवी, ग्रह, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदी अथवा

अन्यान्य जो भी यहाँ हैं, उन सबका स्वरूप मैंने तुम से कह दिया। इसे अब संक्षिप्त रूप से फिर सुन लो ॥३५-३६॥

यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा।
पद्माकारा समुद्भूता पर्वताब्ध्यादिसंयुता ॥३७॥
ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥३८॥
ज्ञानस्वरूपो भगवान्यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभूतः।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ॥३९॥
यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि सङ्कल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः ॥४०॥
वस्त्वस्ति किं कुत्रचिदादिमध्यपर्यन्तहीनं सततैकरूपम्।
यच्चान्यथात्वं द्विज याति भूयो न तत्तथा तत्र कुतो हि तत्त्वम् ॥४१॥
मही घटत्वं घटतः कपालिका कपालिका चूर्णरजस्ततोऽणुः।
जनैः स्वकर्मस्तिमितात्मनिश्चयैरालक्ष्यते ब्रूहि किमत्र वस्तु ॥४२॥
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्क्वचित्कदाचिद्द्विज वस्तुजातम्।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेदविभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम् ॥४३॥
ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम्।
एकं सदैकं परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥४४॥

हे विप्र! भगवान् विष्णु के देह रूप जल से पर्वत और समुद्रादि से युक्त पद्माकार वाली यह पृथिवी उत्पन्न हुई है ॥३७॥ हे विप्रश्रेष्ठ! तारे, भुवन, वन, पर्वत, दिशा, नदी और समुद्र यह सभी भगवान् विष्णु हैं तथा अन्यान्य जो कुछ भी है, अथवा नहीं है वह भी सब केवल भगवान् ही हैं ॥३८॥ भगवान् विष्णु ज्ञानरूप होने से सर्वात्मक हैं, परिच्छिन्न पदार्थ के समान नहीं हैं। इसलिए इन पर्वत, समुद्र, पृथिवी आदि भेदों को केवल विज्ञान का विलास ही समझो ॥३९॥ जब आत्मज्ञान पाकर निर्दोष हुआ प्राणी सभी कर्मों का क्षय हो जाने पर अपने शुद्ध स्वरूप को धारण कर लेता है, तब आत्म वस्तु में संकल्प तरु के फलस्वरूप पदार्थ-भेद दिखाई नहीं देता ॥४०॥ कोई

भी वस्तु कहाँ है ? आदि, मध्य और अन्त से परे, एक रूप, नित्य एवं चित् स्वरूप ही तो सर्वव्याप्त है। जो वस्तु बारम्बार परिवर्तित होती रहती है वह यथार्थ रूप वाली कहाँ रही ? ॥४१॥ मिट्टी ही घट हो जाती है, घट से कपाल, कपाल से चूरा, चूरे से रज और रज से अणु रूप होकर पुन मिट्टी बन जाती है, तो फिर अपने कर्म-बन्धन के आश्रित हुए मनुष्य आत्म स्वरूप को भूलकर किस सत्य वस्तु का दर्शन करते हैं ? ॥४२॥ विज्ञान के सिवाय कहीं कुछ नहीं है। वही एक विज्ञान अपने-अपने कर्मों के भेद से विभिन्न चित्तों द्वारा अनेक भेद वाला मान लिया है ॥४३॥ परन्तु वह विज्ञान अत्यन्त शुद्ध, मल रहित, तथा शोक लोभादि सभी दोषों से शून्य केवल एक सत्स्वरूप, वासुदेव, परमेश्वर है, उससे पृथक् कुछ नहीं है ॥४४॥

सद्भाव एव भवतो मयोक्तो ज्ञान यथा सत्यमसत्यमन्यत् ।
एतत्तु यत्सव्यवहारभूत तत्रापि चोक्तं भुवनाश्रित्त ते ।४५।
यज्ञ पशुर्वह्निरशेषऋत्विक्सोम सुरा स्वर्गमयश्च काम ।
इत्यादिकर्माश्रितमार्गदृष्ट भूरादिभोगाश्च फलानि तेषाम् ।४६।
यच्चैतद्भुवनगत मया तवोक्त सर्वत्र व्रजति हि तत्र कर्मवश्य ।
ज्ञात्वैव ध्रुवमचल सदैकरूप तत्कुर्याद्विशति हि येन वासुदेवम् ।४७।

इस प्रकार तुम्हारे प्रति यह परमार्थ-विषय मैने कहा है, एकमात्र ज्ञान ही सत्य और उससे भिन्न जो कुछ है, वह सब असत्य समझो। जो केवल व्यवहार भूत है, उस भुवन विषयक वृत्तान्त को भी तुमसे कह चुका हूँ ॥४५॥ यज्ञ, पशु, अग्नि, ऋत्विक्, सोम, देवगण और स्वर्गमय अभिलाषा आदि विषय भी बता दिया। पृथिवी आदि लोकों के सब भोग इन कर्मों के ही आश्रित हैं ॥४६॥ यह जो भुवनगत लोकों के विषय में मैंने कहा है, उन्हीं में यह प्राणी अपने कर्म के वशीभूत हुआ घूमता रहता है, यह जानकर वही करना उचित है जिससे ध्रुव, अचल और सदैव एक रूप वाले भगवान् वासुदेव की प्राप्ति हो सके ॥४७॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवन्सम्यगाख्यातं यत्पृष्टोऽसि मया किल ।
भूसमुद्रादिसरितां संस्थानं ग्रहसंस्थितिः ।१।
विष्ण्वाधारं यथा चैतत्त्रैलोक्यं समवस्थितम् ।
परमार्थस्तु ते प्रोक्तो यथा ज्ञानं प्रधानतः ।२।
यत्त्वेतद्भगवानाह भरतस्य महीपतेः ।
श्रोतुमिच्छामि चरितं तन्ममाख्यातुमर्हसि ।३।
भरतः स महीपालः शालग्रामेऽवसत्किल ।
योगयुक्तः समाधाय वासुदेवे सदा मनः ।४।
पुण्यदेशप्रभावेन ध्यायतश्च सदा हरिम् ।
कथं तु नाभवन्मुक्तिर्यदभूत्स द्विजः पुनः ।५।
विप्रत्वे च कृतं तेन यद्भूयः सुमहात्मना ।
भरतेन मुनिश्रेष्ठ तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।६।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! पृथिवी, समुद्र, नदी, ग्रह स्थिति आदि विषयक मेरे सब प्रश्नों को आपने कह दिया ।।१।। यह त्रैलोक्य भगवान् विष्णु के किस प्रकार आश्रित है और परमार्थ रूप ज्ञान ही किस प्रकार प्रधान है, यह सब भी आपने कह दिया ।।२।। परन्तु, भगवन् ! आपने जिस राजा भरत के विषय में पहले कहा था, उनके चरित्र को सुनने की मेरी इच्छा है, उसे कृपा-पूर्वक कहिये ।।३।। कहा जाता है कि वह राजा भरत निरन्तर योग-मग्न रहकर भगवान् में ध्यान लगाये शालग्राम क्षेत्र में निवास करते रहते थे ।।४।। परन्तु, पुण्य देश के वास और हरि-चिन्तन से भी वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए, उन्हें ब्राह्मण रूप में पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ा ।।५।। हे मुनिवर ! उन महात्मा भरत ने ब्राह्मण होकर क्या-क्या किया वह सब कृपा-पूर्वक बताइये ।।६।।

शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः ।
स उवास चिरं कालं मैत्रेय पृथिवीपतिः ।७।

अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिना वरः ।
अवाप परमा काष्ठा मनसश्चापि सयमे ।८।
यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तुते ।९।
इति राजाह भरतो हरेर्नामानि केवलम् ।
नान्यज्जगाद मैत्रेय किञ्चित्स्वप्नान्तरेऽपि च ।
एतत्पदन्तदर्थं च विना नान्यदचिन्तयत् ।१०।
समित्पुष्पकुशादान चक्रे देवक्रियाकृते ।
नान्यानि चक्रे कर्माणि निस्सङ्गो योगतापस. ।११।
जगाम सोऽभिषेकार्थमेकदा तु महानदीम् ।
सस्नौ तत्र तदा चक्रे स्नानस्यानन्तरक्रिया. ।१२।
अथाजगाम तत्तीरं जलं पातुं पिपासिता ।
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् ।१३।
ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तथा ।
सिंहस्य नादः सुमहान्सर्वप्राणिभयङ्करः ।१४।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! उन महाभाग राजा भरत ने भगवान् का ध्यान करते हुए चिर काल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया ॥७॥ गुणियों में श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणों के पालन पूर्वक मन को संयम रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की ॥८॥ हे यज्ञेश ! अच्युत ! गोविन्द ! माधव ! अनन्त ! केशव ! कृष्ण ! विष्णो ! हृषीकेश ! वासुदेव ! आपको नमस्कार है ॥९॥ इस प्रकार राजा भरत केवल श्रीहरि के नामों का उच्चारण करते रहते थे । स्वप्न में भी वह इसी पद को जपते रहते और इसके अतिरिक्त कुछ भी चिन्तन न करते थे ॥१०॥ वह संग-रहित, योगी और तपस्वी राजा प्रभु-पूजन के निमित्त समिध, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इनके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं करते थे ॥११॥ एक दिन की बात है—उन्होंने नदी पर जाकर स्नान किया और फिर स्नान के बाद की क्रियाएँ की ॥१२॥ इतने ही में उस नदी के तट पर एक प्यासी हरिणी जल पीने के लिये आई,

वह हरिणी आसन्न प्रसवा थी ॥१३॥ वह जैसे ही जल पी चुकी, वैसे ही सब जीवों को भयभीत करने वाला भयंकर सिंहनाद सुनाई दिया ॥१४॥

ततः सा सहसा त्रासादाप्लुता निम्नगातटम् ।
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह ।१५।
समूह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ।
जग्राह स नृपो गर्भात्पतितं मृगपोतकम् ।१६।
गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन च ।
मैत्रेय सापि हरिणी पपात च ममार च ।१७।
हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां नृपतापसः ।
मृगपोतं समादाय निजमाश्रममागतः ।१८।
चकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः ।
पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ।१९।
चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः ।
दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः ।२०।
प्रातर्गत्वातिदूरं च सायमायात्यथाश्रमम् ।
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे ।२१।

इससे वह अत्यन्त भयभीत हुई और उछल कर नदी तट पर आगई । बहुत ऊँचे स्थान पर उछलने के कारण उसका गर्भ नदी के जल में आ गिरा ॥१५॥ नदी की तरंगों में बहते हुये उस गर्भ से गिरे मृगशावक को राजा भरत ने पकड़ लिया ॥१६॥ हे मैत्रेयजी ! गर्भपात होने और बहुत ऊँचे छलांग मारने के कारण वह हरिणी भी पृथिवी पर गिर गई ॥१७॥ उस हरिणी को मरी देखकर तपस्वी भरत उस मृग बालक को लेकर अपने आश्रम पर आगये ॥१८॥ हे मुने ! राजा भरत उस मृगशावक का पालन पोषण करने लगे, जिससे वह उनसे पोषित हुआ नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥१९॥ वह बालक कभी उनके आश्रम के निकटवर्ती प्रदेश में चरा करता और कभी सुदूर जंगल में चला जाता और फिर सिंहादि के डर से लौट आता ॥२०॥ प्रातःकाल

होने पर यदि दूर चला जाता तो भी सायंकाल होने पर आश्रम में लौटकर पर्ण-शाला के आँगन में लेट जाता ॥२१॥

तस्य तस्मिन्मृगे दूरसमीपपरिवर्तिनि ।
आसीच्चेतः समासक्तं न ययावन्यतो द्विज ।२२।
विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः ।
ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन्हरिणबालके ।२३।
किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः ।
चिरायमाणे निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम् ।२४।
एषा वसुमती तस्य खुराग्रक्षतकर्बुरा ।
प्रीतये मम जातोऽसौ क्व ममैणकबालकः ।२५।
विषाणाग्रेण मद्बाहुं कण्डूयनपरो हि सः ।
क्षेमेणाभ्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ।२६।
एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्गतैः ।
कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव ।२७।
इत्थं चिरगते तस्मिन्स चक्रे मानसं मुनिः ।
प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ।२८।
समाधिभङ्गस्तस्यासीत्तन्मयत्वादृतात्मनः ।
सन्त्यक्तराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ।२९।
चपलं चपले तस्मिन्दूरगं दूरगामिनि ।
मृगपोतेऽभवच्चित्तं स्थैर्यवत्तस्य भूपतेः ।३०।
कालेन गच्छता सोऽथ कालं चक्रे महीपतिः ।
पितेव साश्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ।३१।
मृगमेव तदाद्राक्षीत्त्यजन्प्राणानसावपि ।
तन्मयत्वेन मैत्रेय नान्यत्किञ्चिदचिन्तयत् ।३२।

इस प्रकार कभी निकट और कभी दूर चले जाने वाले उस मृग के प्रति राजा का मोह बढ़ गया और वह अन्य विषयों से विरक्त हो गये ॥२२॥ जिन्होंने अपना राज्य, वैभव, पुत्र कलत्र, बन्धु बान्धव सब कुछ त्याग दिया था, वही

भरत उस मृग-शावक के मोह में भर गये ॥२३॥ जब वह बाहर जाकर देर से लौटता, तब उन्हें चिन्ता होती कि कहीं उसे कोई भेड़िया तो नहीं खा गया ? किसी सिंह ने तो नहीं धर दबाया ? ॥२४॥ अहा, उसके खुरों के चिह्न बनने से यह भूमि कैसी चितकबरी लगती है। मेरा प्रसन्नता के लिये ही प्रकट हुआ वह मृग-शावक आज न जाने किधर चला गया ? ॥२५॥ क्या वह वन से सकुशल लौटेगा और अपने सींगों के अग्र भाग से मेरे बाहुओं को खुजाकर मुझे सुख देगा ? ॥२६॥ उसके अभी उत्पन्न हुए दाँतों से जिनकी शिखाएँ कट गई हैं, ऐसे यह कुश शिखा रहित ब्रह्मचारियों के समान कैसे विराज रहे हैं ॥२७॥ उस मृग शावक को गये हुए अधिक देर होने पर भरत इस प्रकार चिन्ता किया करते और जब वह लौटकर उनके पास आ जाता, तब उसे देख-कर स्नेह वश उनका मुख खिल उठता था ॥२८॥ इस प्रकार उसी में ऐसी आसक्ति रहने से राज्य, भोग, ऋद्धि और स्वजनों को भी छोड़कर आने वाले राजा भरत की समाधि में विघ्न उपस्थित हो गया ॥२९॥ मृग के चंचल होने पर राजा का स्थिर चित्त भी तन्मय हो उठता और जब वह दूर चला जाता, तब उनका चित्त भी उनके पास नहीं रहता था ॥३०॥ कालान्तर में जब राजा भरत ने अपने प्राण का त्याग किया, तब वह मृग बालक, जैसे मरते हुए पिता को पुत्र सजल नयनों से देखता है, वैसे ही उन्हें देखता रहा ॥३१॥ हे मैत्रेयजी ! प्राण त्याग करते समय राजा भी उस मृग को ही स्नेह पूर्वक देखते रहे और उसी में तन्मय चित्त रहने के कारण, उससे कुछ अन्य चिन्तन नहीं हो सका ॥३२॥

ततश्च तत्कालकृता भावना प्राप्य तादृशीम् ।
जम्बूमार्गे महारण्ये जातो जातिस्मरो मृगः ।३३।
जातिस्मरत्वादुद्विग्न संसारस्य द्विजोत्तम ।
विहाय मातरं भूय शालग्राममुपाययौ ।३४।
शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्वन्नात्मपोषणम् ।
मृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृतिं ययौ ।३५।
तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः ।
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले ।३६।

सर्वविज्ञानसम्पन्नः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
अपश्यत्स च मैत्रेय आत्मानं प्रकृतेः परम् ।३७।
आत्मनोऽधिगतज्ञानो देवादीनि महामुने ।
सर्वभूतान्यभेदेन स ददर्श तदात्मनः ।३८।

उस समय उनकी जो भावना थी, उससे वह जम्बू द्वीप के एक महावन मे जाकर मृग रूप मे जन्मे । इस जन्म मे भी उन्हें पूर्व जन्म की याद बनी रही ॥३३॥ उस पूर्व स्मृति के बने होने से वह ससार से विरक्त हो रहे और अपनी माता का त्यागकर शालग्राम क्षेत्र मे निवास करने लगे ॥३४॥ वहाँ शुष्क तृण-पत्रादि के भक्षण द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हुए वह अपने मृग-योनि प्राप्ति करने के कारण भूत कर्मों का क्षय करने लगे ॥३५॥ फिर अपने उस देह को त्यागकर उन्होंने सदा चाररत योगियो के पावन वश मे ब्राह्मण रूप में जन्म लिया ॥३६॥ हे मैत्रेयजी ! उस समय वह सर्व विज्ञानो के ज्ञाता और सभी शास्त्रो के मर्मज्ञ हुए और अपने आत्मा को प्रकृति से सर्वथा परे देखने लगे ॥३७॥ हे महामुने ! वह आत्मज्ञानी होने के कारण देवतादि सब जीवो को अपने से भिन्न नही देखते थे ॥३८॥

न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतिम् ।
न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च ।३९।
उक्तोऽपि बहुशः किञ्चिज्जडवाक्यमभाषत ।
तदप्यसंस्कारगुणं ग्राम्यवाक्योक्तिसंश्रितम् ।४०।
अपध्वस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृग्द्विजः ।
क्लिन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः ।४१।
सम्माननां परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ।४२।
तस्माच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन्गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम् ।४३।
हिरण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महामतिः ।
आत्मानं दर्शयामास जडोन्मत्ताकृतिं जने ।४४।

भुङ्क्ते कुल्मापव्रीह्यादिशाक वन्य फल कणान् ।
यद्यदाप्नोति सुवहु तदत्ते कालसयमम् ।४५।

जब उपनयन सस्कार हो गया, तब गुरु के पढाने पर भी वेद ग्रथवा ग्रन्य शास्त्रो को नही पढता और न किसी को ही देखता था ।।३९।। जब उससे कोई कुछ प्रश्न करता, तब वह सस्कारहीन, सारहीन ग्रथवा ग्रामीण वाक्य मिले हुये ग्रस्फुट वचन कहता था ।।४०।। ग्रस्वच्छ शरीर, मैले वस्त्र और मलीन दाँतों वाले उन ब्राह्मण को नागरिको से सदा ग्रपमानित होना पडता था ।।४१।। हे मैत्रेयजी ! योग सिद्धि म सबस बडी बाधा सम्मान है, सदा ग्रपमानित होने वाला योगी शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त होता है ।।४२।। इसलिये सन्मार्ग को निर्दोष रखता हुग्रा योगी ऐसा ग्राचरण करता रहे, जिससे कारण लोग उसका ग्रपमान करें और सगति से बचन रहें ।।४३।। हिरण्यगर्भ के इन वचनो का स्मरण करते हुए वह महामति ब्राह्मण लोगों के सामने जड और उन्मत्त जैसे रहते थे ।।४४।। कुल्माप, व्रीहि ग्रादि, शाक, वन के फल या ग्रन्नकण ग्रादि जो कुछ भी मिल जाता, यदि वह थोडा भी होता तो उसे ग्रधिक मानकर ग्राहार करते हुए ग्रपना समय व्यतीत करने लगे ।।४५।।

पितर्युपरते सोऽस्य भ्रातृभ्रातृव्यवान्धवै ।
कारित क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषित ।४६।
स तूक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि ।
सर्वलोकोपकरण वभूवाहारवेतन ।४७।
त तादृशमसस्कार विप्राकृतिविचेष्टितम् ।
क्षत्ता पृषतराजस्य काल्यै पशुमकल्पयत् ।४८।
रात्रौ त समलङ्कृत्य वैशसस्य विधानत ।
ग्रधिष्ठित महाकाली ज्ञात्वा योगेश्वर तथा ।४९।
तत खड्ग समादाय निशित निशि सा तथा ।
क्षत्तार क्रूरकर्माणमच्छिनत्कण्ठमूलत ।
स्वपार्षदयुता देवी पपौ रुधिरमुल्वणम् ।५०।

जब उनके पिता की मृत्यु हो गई, तब उनके भाई, भतीजे और बाधव-गण निकृष्ट अन्न से उनका पोषण करते हुए, उनसे कृषि कार्य कराने लगे ॥४६॥ वह भी बैल के समान पुष्ट देह वाले और कर्म मे जड़ के समान चेष्टा-रहित होने के कारण आहार मात्र प्राप्त करके सबका कार्य यन्त्र के समान करते थे ॥४७॥ पृषतराज के सेवको ने उन्हें ब्राह्मण वेश के विरुद्ध आचरण वाला तथा सस्कारहीन देखकर महाकाली की बलि के लिये विधिवत सजाया परन्तु एक परम योगी को बलि रूप मे उपस्थित देखकर स्वयं महाकाली ने अपने तीक्ष्ण खड्ग से उस क्रूर कर्म वाले राजसेवक का कण्ठ मूल सहित काटकर अपने पार्षदो सहित उसका रक्त पी लिया ॥४८-५०॥

ततस्सौवीरराजस्य प्रयातस्य महात्मन ।
विष्टिकर्त्तथ मन्येत विष्टियोग्योऽयमित्यपि ॥५१॥
त तादृश महात्मान भस्मच्छन्नमिवानलम् ।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोग्यममन्यत ॥५२॥
स राजा शिविकारूढो गन्तु कृतमतिर्द्विज ।
बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेवराश्रमम् ॥५३॥
श्रय विमत्र ससारे दु खप्राये नृणामिति ।
प्रष्टु त मोक्षधर्मज्ञ कपिलाख्य महामुनिम् ॥५४॥
उवाह शिविका तस्य क्षत्तुर्वचनचोदित ।
नृणा विष्टिगृहीतानामन्येपा सोऽपि मध्यग ॥५५॥
गृहीतो विष्टिना विप्र सर्वज्ञानैकभाजन ।
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम् ॥५६॥
ययौ जडमति सोऽथ युगमात्रावलोकनम् ।
कुर्वन्मतिमता श्रेष्टस्तदन्ये त्वरित ययु ॥५७॥

फिर एक दिन सौवीर नरेश कहीं जा रहे थे, उनके बेगारियो ने उन्हें बेगार के योग्य समझा ॥५१॥ राख मे छिपे हुए अग्नि के समान उनकी आकृति आदि देख कर राज सेवकों ने भी उन्हें बेगार करने के लिये उपयुक्त समझ लिया ॥५२॥ उन सौवीर नरेश मोक्ष धर्म के जानने वाले महर्षि कपिल से 'दु खमय

संसार में श्रेय क्या है' इस जिज्ञासा के समाधान पाने के विचार से, पालकी पर चढ़कर उन महर्षि के आश्रम पर इक्षुमती नदी के तट पर आने का निश्चय किया था ॥५३-५४॥ उस समय राजसेवक के कहने से अन्य कहारियों के साथ लग कर वह ब्राह्मण भी उनकी पालकी को उठा कर चले ॥५५॥ अपने पूर्व जन्म की याद रखने वाले, सम्पूर्ण विज्ञान के एक ही भाजन वह ब्राह्मण इस प्रकार बेकार द्वारा अपने पापमय प्रारब्ध का क्षय करने के लिये उस पालकी के वहन-कार्य में लगे ॥५६॥ वह जड़मति ब्राह्मण तो चार हाथ पृथिवी देखते हुए धीमी गति से चलते थे, परन्तु उनके अन्य सब साथी शीघ्रता पूर्वक चल रहे थे ॥५७॥

विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमां शिविकागतिम् ।
किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः ॥५८॥
पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हि सः ।
नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ॥५९॥
भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः ।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम् ॥६०॥
किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम ।
किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ॥६१॥
नाहं पीवान्न चैवोढा शिबिका भवतो मया ।
न श्रान्तोऽस्मि न चायासो सोढव्योऽस्ति महीपते ॥६२॥
प्रत्यक्षं दृश्यसे पीवानद्यापि शिबिका त्वयि ।
श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ॥६३॥

इस प्रकार उस पालकी की समान गति न देख कर राजा बोले—अरे पालकी चलाने वालो ! यह क्या कर रहे हो, एक-सी चाल से चलो ॥५८॥ उसके बाद भी उसकी वैसी ही विषम गति देखकर राजा ने कहा—अरे क्या करते हो ? इस प्रकार विषम भाव से क्यों चल रहे हो ? ॥५९॥ इस प्रकार राजा द्वारा बारबार टोके जाने पर पालकी चलाने वालों ने कहा—हममें यह एक व्यक्ति बहुत मंदगति से चलता है ॥६०॥ राजा बोले—अरे, तूने तो इस

पालकी को अभी थोड़ी दूर ही ढोया है, क्या इतने मे ही श्रान्त हो गया ? देखने मे तो तू इतना मोटा ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नही कर सकता ? ॥६१॥ तब उन ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! मैं न तो मोटा ताजा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और न मुझे परिश्रम करने की ही आवश्यकता है ॥६२॥ राजा ने कहा—अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिख रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कंधे पर रखी है, और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है ॥६३॥

प्रत्यक्ष भवता भूप यद्दृष्ट मम तद्वद ।
बलवानबलश्चेति वाच्य पश्चाद्विशेषणम् ।६४।
त्वयोढा शिविका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता ।
मिथ्यैतदत्र तु भवाञ्छृणोतु वचनं मम ।६५।
भूमौ पादयुग त्वास्ते जङ्घे पादद्वये स्थिते ।
ऊर्वोर्जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ।६६।
वक्ष स्थल तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ ।
स्कन्धाश्रितेयं शिबिका मम भारोऽत्र किं कृतः ।६७।
शिबिकाया स्थित चेद वपुस्त्वदुपलक्षितम् ।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ।६८।
अहं त्वं च तथान्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव ।
गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम् ।६९।
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते ।
अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ।७०।

इस पर ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ । उसके बलवान् या निर्बल विशेषणों की बात तो फिर कहना ॥६४॥ तुम्हारा यह कहना मिथ्या है कि तूने मेरी पालकी उठायी है, इस समय भी यह तेरे कंधे पर रखी है । अब तुम मेरा वचन सुनो ॥६५॥ पृथिवी पर दोनों पाँव, पाँवों पर जाँघें, जाँघों पर ऊरु और ऊरुओं पर उदर स्थित है ॥६६॥ उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कंधे हैं और उन कंधों पर यह पालकी,

रखी है तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? ॥६७॥ इस पालकी मे तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है। यथार्थ मे तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ। ॥६८॥ हे राजन् ! तुम अथवा अन्यान्य सब प्राणी पचभूतो द्वारा ही वहन किये जाते हैं और यह भूतवर्ग भी गुणो के द्वारा प्रवाहित हो रहा है ।६६। हे भूपते ! यह सत्वादि गुण कर्मो के आधीन हैं और सब प्राणियो मे कर्म की उत्पत्ति अविद्या से हुई है ॥७०॥

आत्मा शुद्धोऽक्षर शान्तो निर्गुण प्रकृते पर ।
प्रवृद्धयपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ।७१।
यदा नोपचयस्तस्य न चैवापचयो नृप ।
तदा पीवानसीतीत्थ कया युक्त्या त्वयेरितम् ।७२।
भूपादजङ्घाकटच् रुजठरादिषु सस्थिते ।
शिबिकेयं यथा स्कन्धे तथा भार समस्त्वया ।७३।
तथान्यैर्जन्तुभिर्भूप शिबिकोढा न केवलम् ।
शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवी सम्भवोऽपि वा ।७४।
यदा पु स पृथग्भाव प्राकृतै कारणैर्नृप ।
सोढव्यस्तु तदायास कथ वा नृपते मया ।७५।
यद्द्रव्या शिबिका चेय तद्द्रव्यो भूतसग्रह ।
भवतो मेऽखिलस्यास्य ममत्वेनोपबृ हित ।७६।
एवमुक्त्वाभवन्मौनी स वहञ्छिबिका द्विज ।
सोऽपि राजावतीर्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन् ।७७।

परन्तु आत्मा शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुण रहित तथा प्रकृति से परे है तथा सब प्राणियो मे एक ही वह ओत प्रोत है, इसलिये उसका न कभी वृद्धि है और न क्षय है ॥७१॥ हे राजन् ! जब उसके उपचय या अपचय ही नही होते तो तुमने यह किस आधार पर कहा कि तू तो मोटा ताजा है ॥७२॥ यदि भूमि, पाँव, जाँघ, कटि, ऊरु और उदर पर स्थित कधो पर रखी हुई यह पालकी मेरे बोझ रूप हो सकती है तो यह तुम्हारे लिये भी उसी प्रकार हो सकती है ॥७३॥ इसी युक्ति से अन्य सभी प्राणियो ने केवल यह पालकी ही

नहीं, सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, घर और भूमि आदि का बोझ उठा रखा है ॥७४॥ हे नृप! जब प्रकृति द्वारा उत्पन्न होने वाले कारणों से पुरुष का पृथक् भाव है, तो मुझे उसमें थकान भी कैसे हो सकती है? ॥७५॥ जिस जिस द्रव्य से यह पालकी बनी है, उसी-उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर बना है, जिसमें ममता का आरोप मात्र है ॥७६॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर वह ब्राह्मण उस पालकी को कंधे पर रखे हुए ही मौन हो गये और राजा तत्काल भूमि पर उतर आये और उन्होंने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिये ॥७७॥

भो भो विसृज्य शिविका प्रसाद कुरु मे द्विज।
कथ्यता को भवानत्र जाल्मरूपधर स्थित ॥७८॥
यो भवान्यन्निमित्त वा यदागमनकारणम्।
तत्सर्व कथ्यता विद्वन्मह्य शुश्रूषवे त्वया ॥७९॥
श्रूयता सोऽहमित्येतद्वक्तु भूप न शक्यते।
उपभोगनिमित्त च सर्वत्रागमनक्रिया ॥८०॥
सुखदु खोपभोगौ तु तौ देहाद्युपपादकौ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तु जन्तुर्देहादिमृच्छति ॥८१॥
सर्वस्यैव हि भूपाल जन्तो सर्वत्र कारणम्।
धर्माधर्मौ यत कस्मात्कारण पृच्छ्यते त्वया ॥८२॥
धर्माधर्मौ न सन्देहस्सर्वकार्येषु कारणम्।
उपभोगनिमित्त च देहाद्देहान्तरागम ॥८३॥
यस्त्वेतद्भवता प्रोक्त सोऽहमित्येतदात्मन।
वक्तु न शक्यते श्रोतु तन्ममेच्छा प्रवर्तते ॥८४॥
योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथ वक्तु न शक्यते।
आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ॥८५॥

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! आप इस पालकी को छोड़ने की कृपा करिये। हे भगवन्! आप इस छद्मवेश में कौन हैं, यह मुझे बताइये ॥७८॥ हे विद्वन्! बताइये आप कौन हैं? यहाँ किस कारण आये हैं? मुझे आपके विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है ॥७९॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्!

मैं कौन हूँ यह कह नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मेरे यहाँ आने का कारण पूछा, तो आवागमनादि क्रियाएँ कर्म-फल भोग के लिये होती ही हैं ॥८०॥ सुख-दुःख का भोग शरीरादि को प्राप्त कराता है और धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग करने के लिए ही प्राणी को देहादि ग्रहण करने होते हैं ॥८१॥ हे राजन्! यह धर्म-अधर्म ही सब जीवों को समस्त अवस्थाओं के कारण हैं, फिर मेरे ही आने के कारण को पूछने में क्या विशेषता है? ॥८२॥ राजा ने कहा—सब कार्यों में धर्म-अधर्म ही कारण है तथा कर्मफल का भोग करने के निमित्त ही जीव का देहान्तर होता है, इसमें संदेह नहीं है ॥८३॥ परन्तु आपने कहा कि मैं कौन हूँ यह नहीं कह सकता, इसी को सुनने की मेरी इच्छा है ॥८४॥ हे ब्राह्मन्! जो है वही मैं हूँ, यह क्यों नहीं कह सकते? यह अहं शब्द तो आत्मा को दूषित करने का कारण नहीं है ॥८५॥

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येष तथैव तत् ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ॥८६॥
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुके नृप ।
एते नाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥८७॥
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् ।
अतः पीवानसीत्येतद्वक्तुमित्थं न युज्यते ॥८८॥
पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरःपाण्यादिलक्षणः ।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ॥८९॥
यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम ।
तदैषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते ॥९०॥
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः ।
तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः ॥९१॥

ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! अहं शब्द से आत्मा में दोष नहीं आता, यह कहना तो यथार्थ है, परन्तु अहं शब्द अनात्म में आत्मत्व की भ्रांति कराने वाला होने से दोष का कारण हो जाता है ॥८६॥ हे राजन्! अहं शब्द जिह्वा, दाँत, ओष्ठ और तालु से उच्चारण किया जाता है परन्तु यह सब उसके उच्चारण

के कारण तो हैं, परन्तु स्वयं ही ग्रहं नहीं हैं ॥८७॥ तो क्या जिह्वादि कारणों के द्वारा वाणी ही अपने आप को ग्रह कहती है ? यदि नहीं तो फिर 'तू मोटा' ताजा है' ऐसा कहना भी ठीक नहीं है ॥८८॥ मस्तक, हाथ, पाँव आदि रूप वाला यह देह भी आत्मा से भिन्न ही है। इसलिए इस अहं शब्द को प्रयुक्त किया जाय ? ॥८९॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ ! यदि मुझ से भिन्न कोई अन्य सजातीय ही आत्मा होता तो भी 'यह मैं हूँ' यह भिन्न है ऐसा कह सकते थे ॥९०॥ परन्तु जब समस्त देहों मे एक ही आत्मा स्थित है, तब तुम कौन और मैं कौन यह सब निःप्रयोजन ही है ॥९१॥

त्वं राजा शिविका चेयमिमे वाहा पुरः सरा. ।
अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ।९२।
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता ।
किं वृक्षसंज्ञा वास्याः स्याद्दारुसंज्ञाथ वा नृप ।९३।
वृक्षारूढो महाराजो नाय वदति ते जन. ।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम् ।९४।
शिविका दारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः ।
अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिविका त्वया ।९५।
एवं छत्रशलाकानां पृथग्भावे विमृश्यताम् ।
क्व यातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि ।९६।
पुमान् स्त्री गौरजो वाजी कुञ्जरो विहगस्तरु. ।
देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ।९७।
पुमान्न देवो न नरो न पशुर्न च पादप. ।
शरीराकृतिभेदास्तु भूपैते कर्मयोनय. ।९८।

तुम राजा हो, यह पालकी तुम्हारी है, यह पालकी ढोने वाले हैं, यह सब तुम्हारी प्रजा हैं—इन सब वाक्यों में से यथार्थ रूप में तो कोई भी सत्य नहीं है ॥९२॥ हे राजन् ! वृक्ष से काठ हुआ और काष्ठ से तेरी पालकी बनी सो इस पालकी को काष्ठ कहें अथवा वृक्ष ? ॥९३॥ परन्तु महाराज वृक्ष पर बैठे हैं, ऐसा कोई नहीं कहता और न काष्ठ पर ही बैठे हुए बताता है, सभी पालकी

मे बैठे हुए कहते हैं ।।९४।। हे नृपोत्तम ! रचना विशेष से एकत्रित हुआ काष्ठ-समूह ही तो यह पालकी है। यदि यह काष्ठ से भिन्न है तो काष्ठ को इससे पृथक् करके उसकी खोज करो ।।९५।। इसी प्रकार छत्रशलाकाओं को पृथक् रख कर सोचो कि फिर वह छत्र कहाँ रहता है ? यही न्याय अपने और मेरे देह के प्रति रखो ।।९६।। पुरुष, स्त्री, गौ, बकरा, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्षादि लोक संज्ञाएँ कर्म हेतु वाले देह में माननी चाहिये ।।९७।। हे भूपते ! आत्मा तो देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है। यह सब तो कर्म से उत्पन्न देहों के आकृति-भेद ही हैं ।।९८।।

वस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् ।
यतान्यच्च नृपेत्थ तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ।९९।
यत्तु कालान्तरेणापि नान्या संज्ञामुपैति वै ।
परिणामादिसम्भूता तद्वस्तु नृप तच्च किम् ।१००।
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः किं त्वां भूप वदाम्यहम् ।१०१।
त्वं किमेतच्छिरः किं नु ग्रीवा तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वा तवैतत्किं महीपते ।१०२।
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूय व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ।१०३।
एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भाषितुम् ।
पृथक्करणनिष्पाद्यं शक्यते नृपते कथम् ।१०४।

संसार में राजा, राजा के वीर सैनिक तथा अन्यान्य सभी वस्तुएँ यथार्थ में सत्य नहीं हैं, वह तो निरी कल्पना है ।।९९।। परमार्थ वस्तु तो वही है, जिसके परिणामादि के कारण से होने वाली संज्ञा कालान्तर के उपस्थित होने पर भी नहीं होती ? हे नृप ! वह वस्तु क्या है ? ।।१००।। सब प्रजाजनों के लिये तुम राजा हो, पिता के लिये पुत्र हो, पत्नी के लिये पति हो, पुत्र के लिये पिता हो तथा शत्रु के लिये शत्रु हो। अब हे भूपते ! तुम्हीं बताओ कि मैं तुम्हें क्या कहूँ ? ।।१०१।। हे राजन् ! तुम सिर, ग्रीवा, उदर अथवा पाँव में से

कुछ हो ? और क्या यह सिर आदि भी तुम्हारे अपने हैं ? ॥१०२॥ तुम इन सब अवयवो से भिन्न हो इसलिये यत्न पूर्वक सोचो कि मैं कौन हूँ ॥१०३॥ हे राजन् ! इस प्रकार व्यवस्थित आत्म तत्व को सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे अहं शब्द द्वारा किस प्रकार कह सकता हूँ ? ॥१०४॥



चौदहवाँ अध्याय

निशम्य तस्येति वच परमार्थसमन्वितम् ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम् ॥१॥
भगवन्यत्त्वया प्रोक्त परमार्थमय वच ।
श्रुते तस्मिन्भ्रमन्तीव मनसो मम वृत्तय ॥२॥
एतद्विवेकविज्ञान यदशेषेषु जन्तुषु ।
भवता दर्शित विप्र तत्पर प्रकृतेर्महत् ॥३॥
नाह वहामि शिबिका शिबिका न मयि स्थिता ।
शरीरमन्यदस्मत्तो येनेय शिबिका धृता ॥४॥
गुणप्रवृत्त्या भूताना प्रवृत्ति कर्मचोदिता ।
प्रवर्तन्ते गुणा ह्येते कि ममेति त्वयोदितम् ॥५॥
एतस्मिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपथ गते ।
मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थिता गतम् ॥६॥

कहे हुए परमार्थमय वचनों को सुन कर मेरी मनोवृत्तियों में भ्रान्ति आगई है ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त जिस असम विज्ञान का आपने मुझे दिग्दर्शन कराया है, वह अवश्य ही प्रकृति से परे ब्रह्म है ॥३॥ परन्तु, आपने जो यह कहा कि मैं पालकी को नहीं ढो रहा हूँ, पालकी मेरे ऊपर नहीं है अथवा जिस देह ने इसे उठाया हुआ है, वह मुझसे भिन्न है। गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रवृत्ति होती है और गुण कर्मों के द्वारा प्रेरित होते हैं तो इसमें मेरा कर्तृत्व कैसे माना जायगा ? ॥४-५॥ हे परमार्थ के ज्ञाता ! यह सुनते ही मेरा चित्त परमार्थ को जानने के लिये अत्यन्त उत्कंठित हो रहा है ॥६॥ हे द्विज ! 'संसार स्थित मनुष्यों का श्रेय' पूछने के लिये ही मैं महाभाग महर्षि कपिल के पास जाने को तत्पर हूँ ॥७॥ परन्तु मार्ग में ही आपके वचन सुन कर परमार्थ को जानने की अभिलाषा से मेरा चित्त आपके प्रति झुक गया है ॥८॥

कपिलर्षिर्भगवतः सर्वभूतस्य वै द्विज ।
विष्णोरंशो जगन्मोहनाशायोर्वीमुपागतः ।९।
स एव भगवान्नूनमस्माकं हितकाम्यया ।
प्रत्यक्षतामत्र गतो यथैतद्भवतोच्यते ।१०।
तन्मह्यं प्रणताय त्वं यच्छ्रेयः परमं द्विज ।
तद्वदाखिलविज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान् ।११।
भूप पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं नु पृच्छसि ।
श्रेयांस्यपरमार्थानि अशेषाणि च भूपते ।१२।
देवताराधनं कृत्वा धनसम्पदमिच्छति ।
पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ।१३।
कर्म यज्ञात्मकं श्रेयः फलं स्वर्गाप्तिलक्षणम् ।
श्रेयः प्रधानं च फले तदेवानभिसंहिते ।१४।
आत्मा ध्येयः सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परम् ।
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः ।१५।

हे द्विज ? महर्षि कपिल सर्वात्मक भगवान् विष्णु के ही अंश हैं, वह जगत् के मोह को नष्ट करने के लिये ही पृथिवी पर अवतरित हुए हैं ॥९॥

परन्तु, आपकी इस प्रकार की वाणी सुन कर मुझे निश्चय हो रहा है कि वही भगवान् कपिल मेरा हित करने की इच्छा से यहाँ आपके रूप में प्रकट हुए हैं ॥१०॥ इसलिये हे द्विज ! जिसमें परम श्रेष्ठ हो, वह आप मुझे प्रसन्नता से बताइये। आप तो सम्पूर्ण विज्ञान तरंगों से सम्पन्न समुद्र के समान हैं ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा—हे भूपते ! तुम श्रेय जानना चाहते हो अथवा परमार्थ ? क्योंकि श्रेय तो सभी अपरमार्थिक हैं ॥१२॥ हे राजन् ! देवताओं की आराधना के द्वारा जो मनुष्य धन, सम्पत्ति, पुत्र, राज्यादि की कामना करता है, उसके लिये तो उनकी प्राप्ति ही परम श्रेय है ॥१३॥ स्वर्ग प्राप्ति रूप फल वाले यज्ञादिक कर्म भी श्रेय हैं, परन्तु प्रमुख श्रेय तो कर्म के फल की कामना न करने में है ॥१४॥ इसलिये हे राजन् ! योगी पुरुषों को तो प्रकृति आदि से परे उस आत्मा का ही चिन्तन करना चाहिये, क्योंकि उसी का संयोग रूप श्रेय यथार्थ श्रेय है ॥१५॥

श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु न त्वेते श्रूयतां च मे ।१६।
धर्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि ।
व्ययश्च क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः ।१७।
पुत्रश्चेत्परमार्थः स्यात्सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर ।
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि तत्पिता ।१८।
एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यस्मिश्चराचरे ।
परमार्थो हि कार्याणि कारणानामशेषतः ।१९।
राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि ।
परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः ।२०।
ऋग्यजुः सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव ।
परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां गदतो मम ।२१।
यत्तु निष्पाद्यते कार्यं मृदा कारणभूतया ।
तत्कारणानुगमनाज्ज्ञायते नृप मृण्मयम् ।२२।

एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यकुशादिभिः ।
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी ॥२३॥

इस प्रकार ये श्रेय सैकड़ों-सहस्रों भाँति के हैं, परन्तु यह सब परमार्थिक नहीं हैं, अब मैं परमार्थ कहता हूँ—उसे सुनो ॥१६॥ यदि धन को परमार्थ समझें तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों करें ? और इच्छित भोगों की प्राप्ति के लिये उसका व्यय क्यों करें ? ॥१७॥ यदि पुत्र को परमार्थ कहें तो वह अन्य का परमार्थभूत है और उसका पिता भी अन्य का पुत्र होने से उसका परमार्थ हुआ ॥१८॥ इसलिये इस चराचर विश्व में पिता का कार्य रूप पुत्र भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता । यदि ऐसा हो जाय तो सभी कारणों के कार्य परमार्थ ही न बन जाँय ! ॥१९॥ यदि राज्यादि की प्राप्ति को परमार्थ कहें तो यह सदैव प्राप्त नहीं रहते, इसलिये यह भी परमार्थ नहीं हो सकते ॥२०॥ यदि ऋक्, यजुः साम रूप वेदत्रयी से सम्पन्न होने वाले यज्ञ को परमार्थ समझें तो उसके विषय में भी मेरी बात सुनो ॥२१॥ हे राजन् ! जो वस्तु कारण रूपा मिट्टी का कार्य होती है [जैसे घड़ा इत्यादि], वह वस्तु कारण की अनुगामिनी होने से मिट्टी ही समझी जाती है ॥२२॥ इसलिये जो कर्म समिधा, घृत और कुशादि नष्ट होने वाले पदार्थों से सम्पन्न होती है वह भी नष्ट होने वाली ही होगी ॥२३॥

अनाशी परमार्थश्च प्राज्ञैरभ्युपगम्यते ।
तत्तु नाशि न सन्देहो नाशिद्रव्योपपादितम् ॥२४॥
तदेवाफलदं कर्म परमार्थो मतस्तव ।
मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम् ॥२५॥
ध्यानं चैवात्मनो भूप परमार्थार्थशब्दितम् ।
भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान् ॥२६॥
परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते ।
मिथ्यैतदन्यद्द्रव्यं हि नैति तद्द्रव्यतां यतः ॥२७॥
तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः ।
परमार्थस्तु भूपाल सङ्क्षेपाच्छ्रूयतां मम ॥२८॥

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ।२६।
परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ।
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव योक्ष्यते ।३०।

ज्ञानीजन परमार्थ को अविनाशी कहते हैं और नाशवान द्रव्यों से सम्पन्न होने के कारण कर्म नाशवान हैं, इसमें संदेह नहीं है ।।२४।। यदि फल की आशा से रहित निष्काम कर्म को परमार्थ कहें तो वह मोक्ष रूप फल का साधक होने से ही है, परमार्थ नहीं हो सकता ।।२५।। यदि शरीरादि से आत्मा की भिन्नता विचार कर उसके चिंतन को परमार्थ कहें तो वह अनात्मा से आत्मा का भेद करने वाला है और परमार्थ भेद-रहित है ।।२६।। यदि परमात्मा और जीवात्मा के संयोग को परमार्थ कहें तो अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य का संयोग नहीं हो सकता, इसलिये वैसा कथन भी मिथ्या है ।।२७।। इसलिये हे राजन् ! यह सभी श्रेय हैं, अब जो परमार्थ है, उसे संक्षिप्त रूप से सुनो ।।२८।। आत्मा एक है, वह सर्वव्यापी, सम, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे तथा जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगामी और अव्यय है ।।२९।। हे राजन् ! वह परम ज्ञानमय है, असत् नाम तथा जाति आदि से वह कभी भी संयुक्त होने वाला नहीं है ।।३०।।

तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि यत् ।
विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः ।३१।
वेणुरन्ध्रप्रभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः ।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथास्य परमात्मनः ।३२।
एकस्वरूपभेदश्च बाह्यकर्मप्रवृत्तिजः ।
देवादिभेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणे हि सः ।३३।

वह आत्मा अपने तथा अन्यान्य प्राणियों के देहों में स्थित रहता हुआ भी एक है—इस प्रकार का विशेष ज्ञान ही परमार्थ है जो लोग द्वैत भावना वाले हैं वे अपरमार्थ का दर्शन करते [redacted] ।।३१।। जैसे अभिन्न भाव वाले एक ही वायु के द्वारा बाँसुरी के छेदों के भेद से षड्ज आदि विभिन्न भेद हो जाते

है वैसे ही एक ही परमात्मा के अनेक भेद जान पड़ते हैं ॥३२॥ एक रूप आत्मा के अनेक भेद बाह्य शरीरादि की कर्म प्रवृत्ति से हुए हैं। देवादि शरीरों के भेद को जान लेने पर वह भेदज्ञान नष्ट हो जाता है, क्योंकि जब तक अविद्या का आवरण रहता है तभी तक वह स्थित रहता है ॥३३॥



पंद्रहवाँ अध्याय

इत्युक्ते मौनिनं भूयश्चिन्तयानं महीपतिम् ।
प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ॥१॥
श्रूयतां नृपशार्दूल यद्गीतमृभुणा पुरा ।
अवबोधं जनयता निदाघस्य महात्मनः ॥२॥
ऋभुर्नामाभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादेव भूपते ॥३॥
तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा ।
प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ॥४॥
अवाप्तज्ञानतन्त्रस्य न तस्याद्वैतवासना ।
स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर ॥५॥
देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम् ।
समृद्धमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ॥६॥
रम्योपवनपर्यन्ते स तस्मिन्पार्थिवोत्तम ।
निदाघो नाम योगज्ञ ऋभुशिष्योऽवसत्पुरा ॥७॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! यह सुन कर राजा मौन हो मन ही मन सोचने लगे। यह देख कर उन ब्राह्मण ने राजा को अद्वैत विषयक यह वृत्तान्त सुनाया ॥१॥ ब्राह्मण ने कहा—हे नृपशार्दूल ! पूर्वकाल की बात है—महर्षि ऋभु ने महात्मा निदाघ को जो उपदेश दिया था, उसे श्रवण

करो ॥२॥ हे राजन् ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो ऋभु नामक पुत्र था, वह स्वभाव से ही परमार्थ तत्व का ज्ञाता था ॥३॥ महर्षि पुलस्त्य का पुत्र निदाघ उनका शिष्य था । उसे अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि ऋभु ने तत्वोपदेश दिया ॥४॥ हे नरेश्वर ! उस समय ऋभु को प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान होने पर भी निदाघ अद्वैत के प्रति निष्ठावान नहीं हैं ॥५॥ देविका-नदी के किनारे पुलस्त्यजी ने वीर नगर नामक एक अति सुरम्य और समृद्ध नगर की स्थापना की थी ॥६॥ वह नगर उपवनादि से सुशोभित था, जिसमें योग वेत्ता ऋभुशिष्य निदाघ निवास करता था । ७॥

दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम् ।
जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोकवः ।८।
स तस्य वैश्वदेवान्ते द्वारालोकनगोचरे ।
स्थितस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ।९।
प्रक्षालिताङ्घ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम् ।
उवाच स द्विजश्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम् ।१०।
भो विप्रवर्य भोक्तव्यं यदन्नं भवतो गृहे ।
तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम ।११।
सक्तुयावकवाट्यानामपूपानां च मे गृहे ।
यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तत्त्वं भुङ्क्ष्व यथेच्छया ।१२।
कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमन्नं प्रयच्छ मे ।
संयावपायसादीनि द्रप्सफाणितवन्ति च ।१३।
हे हे शालिनि मद्गेहे यत्किञ्चिदतिशोभनम् ।
भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनास्यान्नं प्रसाधय ।१४।

एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघ को देखने की इच्छा से उस नगर में गये ॥८॥ जब निदाघ बलिवैश्वदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा में खड़ा था, तभी वे महर्षि उसे दिखाई दिये और वह उन्हें अर्घ्य देकर अपने घर में ले गया ॥९॥ उसने उनके हाथ-पाँव धुलाकर उन्हें आसन पर उन्हें आसन पर बिठाया और आदर

सहित बोला—भोजन करिये ॥१०॥ ऋभु ने कहा—हे विप्र श्रेष्ठ ! आपके यहाँ जिस अन्न का भोजन करना है, वह मुझे बताओ । क्योंकि कुत्सित अन्न के प्रति मुझे अरुचि है ॥१२॥ निदाघ बोला—हे द्विजोत्तम ! मेरे यहाँ सत्तू, जौ की लप्सी, बाटी और पूए बनाये गये हैं, इनमें से जो आप खाना चाहें, वही भोजन करें ॥१२॥ ऋभु ने कहा—हे द्विज ! यह सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो हलुआ, खीर, मट्ठा, मिष्टान्नादि स्वादिष्ट अन्न का भोजन कराओ । ॥१३॥ निदाघ ने अपनी पत्नी से कहा—हे शालिनि ! मेरे घर में जो श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पदार्थ हों, उसी से इनके लिये अति सुस्वादु भोजन तैयार करो ॥१४॥

इत्युक्ता तेन सा पत्नी मृष्टमन्नं द्विजस्य यत् ।
प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात् ।१५।
तं भुक्तवन्तमिच्छातो मृष्टमन्नं महामुनिम् ।
निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः ।१६।
अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च ।
अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज ।१७।
क्व निवासो भवान्विप्र क्व च गन्तुं समुद्यतः ।
आगम्यते च भवता यतस्तच्च द्विजोच्यताम् ।१८।
क्षुद्यस्य तस्य भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्राह्मण जायते ।
न मे क्षुदभवत्तृप्तिं कस्मान्मां परिपृच्छसि ।१९।
वह्निना पार्थिवे धातौ क्षपिते क्षुत्समुद्भवः ।
भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते ।२०।
क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ।
ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा ।२१।

सन्तुष्ट हो गये ? ॥१७॥ हे भगवन् ! आप कहाँ के निवासी हैं ? कहाँ जा रहे हैं और कहाँ से आरहे हैं ? ॥१८॥ ऋभु ने कहा—हे विप्र ! भूखे को ही तृप्ति होती है। परन्तु, मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगती, फिर तृप्ति विषयक प्रश्न ही कैसा ? ॥१९॥ जब जठराग्नि ठोस धातुओं को क्षीण कर देती है तब भूख जल को शुष्क कर देती है तब प्यास लगती है ॥२०॥ हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों लगती है ॥२०॥ हे द्विज ! यह भूख और प्यास दोनों ही देह के धर्म हैं मेरे नहीं। इसलिये मैं कभी भूखा न होकर सदा ही तृप्त रहता हूँ ॥२१॥

मनस. स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज ।
चेतसो यस्य तत्पृच्छ पुमानेभिर्न युज्यते ।२२।
क्वनिवासस्तवेत्युक्त क गन्तासि च यत्त्वया ।
कुतश्चागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ।२३।
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदय यतः ।
कुत कुत्र क गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम् ।२४।
सोऽह गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः ।
त्वं चान्ये च न च त्वं च नान्ये नैवाहमप्यहम् ।२५।
मृष्ट न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव ।
किं वक्ष्यसीति तत्रापि श्रूयता द्विजसत्तम ।२६।
किमस्वाद्वथ वा मृष्ट भुञ्जतोऽस्ति द्विजोत्तम ।
मृष्टमेव यदामृष्ट तदेवोद्वेगकारकम् ।२७।
अमृष्ट जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजते जन. ।
आदिमध्यावसानेषु किमन्न रुचिकारकम् ।२८।

स्वस्थता और सतुष्टि यह भी मन के धर्म हैं। आत्मा से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये हे विप्र ! जिसके यह धर्म हैं, उसी से इनके विषय में प्रश्न करो ॥२२॥ तथा तुमने मेरे विषय में यह पूछा कि कहाँ का निवासी हूँ, कहाँ जा रहा हूँ और कहाँ से आया हूँ, सो इसके विषय में मेरे विचार सुनो ॥२३॥ आत्मा आकाश के समान व्यापक होने से सर्वगत है, इसलिये कहाँ

रहते, कहाँ से आये, कहाँ जाते हो यह प्रश्न भी निरर्थक ही है ॥२४॥ क्योंकि मैं तो न कहीं जाता हूँ, न कहीं आता हूँ और न कहीं रहने का मेरा स्थान है। यथार्थ में तो न तू तू है, न मैं मैं हूँ और न अन्य अन्य है ॥२५॥ वास्तव में मधुर मधुर नहीं है। मैंने तुमसे जो मधुर अन्न माँगा था उससे भी तुम्हारे विचार ही सुनना चाहता था ॥२६॥ हे द्विजोत्तम ! खाने वाले के लिये सुस्वादु और अस्वादु का विचार ही कैसा ? क्योंकि जब कालान्तर में स्वादिष्ट पदार्थ ही स्वाद-रहित हो जाता हैं तो वही उद्वेग उत्पन्न करने वाला हो जाता है ॥२७॥ इसी प्रकार जो अरुचिकर पदार्थ हैं वह कभी रुचिकर प्रतीत होने लगते हैं और रुचिकर पदार्थ कभी उद्विग्न करने वाले हो जाते हैं। बताओ ऐसा पदार्थ कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों समय ही रुचिकर प्रतीत हो ? ॥२८॥

मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरं भवेत्।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ।२९।
यवगोधूममुद्गादि घृतं तैलं पयो दधि ।
गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः ।३०।
तदेतद्भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत् ।
तन्मनस्समतालम्बि कार्यं साम्यं हि मुक्तये ।३१।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप ।
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत् ।३२।
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यस्त्वमागतः ।
नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज ।३३।
ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज ।
इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ।३४।
एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ।३५।
तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम् ।
पूजितः परया भक्त्या इच्छातः प्रययावृभुः ।३६।

जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लिप पुत कर दृढ होता है, वैसे ही यह पार्थिव शरीर पार्थिव अन्न कणों से परिपुष्ट होता है ॥२९॥ जो, गेंहू, मूँग, घी, तैल, दूध, दही, गुड और फलादि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही हैं। ॥३०॥ ऐसा जानकर तुम अपने सुस्वादु-अस्वादु की चिन्ता करने वाले अपने चित्त को समदर्शी बनाओ, क्योंकि समत्व ही मोक्ष का एकमात्र उपाय है। ॥३१॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! ऋभु के यह परमार्थमय वचन सुन कर महाभाग निदाघ ने उन्हें प्रणाम किया और ऋषि से कहने लगा ।३२। हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों। मेरे कल्याण- साधन की इच्छा से आने वाले आप कौन हैं, आपकी वाणी से मेरा सब मोह दूर हो गया है ॥३३॥ ऋभु बोले—हे विप्र ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ। तुझे सत्-असत् का विवेक कराने वाली बुद्धि देने की इच्छा से ही मैं यहा आया था। जो परमार्थ है, वह मैं तुझे बता चुका। अब मैं जा रहा हूँ ॥३४॥ इस परमार्थ तत्व का विचार करके तू इस सम्पूर्ण विश्व को एक परमात्मा भगवान् वासुदेव का रूप ही समझ। इसमें किंचित् भी भेद नहीं हैं ॥३५॥ ब्राह्मण ने कहा—इसके पश्चात् निदाघ ने उनका वचन स्वीकार करके उन्हे प्रणाम किया और उसके द्वारा परम भक्ति पूर्वक आदर को प्राप्त हुए ऋभु स्वेच्छा पूर्वक वहाँ से चले गये ॥३६॥



सोलहवाँ अध्याय

ऋभुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर ।
निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ ।१।
नगरस्य वहिः सोऽथ निदाघं ददृशे मुनिः ।
महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे ।२।
दूरे स्थितं महाभाग जनसम्मर्दवर्जकम् ।
क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम् ।३।

दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपगम्याभिवाद्य च ।
उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज ॥४॥
भो विप्र जनसम्मर्दो महानेष नरेश्वरः ।
प्रविविक्षुः पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥५॥
नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः ।
कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम ॥६॥
योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिलोकस्तथेतरः ॥७॥

ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! फिर एक हजार वर्ष बीत जाने पर महर्षि ऋभु निदाघ को ज्ञानोपदेश करने के लिये पुनः उसी नगर में पहुँचे ॥१॥ वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उस देश का राजा बहुत सी सेनादि के सहित धूम-धाम सहित नगर में प्रविष्ट हो रहा है तथा वन से कुशा और समिधा लेकर आया हुआ निदाघ भीड़ से दूर हटकर भूखा-प्यासा एक ओर खड़ा है ॥२-३॥ यह देखकर महर्षि ऋभु उन निदाघ के पास गये और अभिवादन पूर्वक बोले—हे द्विज ! तुम यहाँ एकान्त में क्यों खड़े हो ? ॥४॥ निदाघ ने कहा—आज इस अत्यन्त रमणीक नगर में राजा प्रवेश कर रहा है, इसलिये मार्ग में बहुत भीड़ होने के कारण मैं यहाँ खड़ा हूँ ॥५॥ ऋभु ने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम यहाँ की सब बातें जानते प्रतीत होते हो । इसलिये बताओ कि इनमें राजा कौन-सा है तथा अन्य पुरुष कौन हैं ? ॥६॥ निदाघ ने कहा—पर्वत जैसे ऊँचे इस हाथी पर जो चढ़ा हुआ है, वही राजा है तथा अन्य पुरुष इसके परिवार के हैं ॥७॥

एतौ हि गजराजानौ युगपद्दर्शितौ मम ।
भवता न विशेषेण पृथक्चिह्नोपलक्षणौ ॥८॥
तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वानराधिपः ॥९॥
गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्यस्यैष भूपतिः ।
वाह्यवाहकसम्बन्धं को न जानाति वै द्विज ॥१०॥

जानाम्यहं यथा ब्रह्मंस्तथा मामवबोधय ।
अध शब्दनिगद्यं हि किं चोर्ध्वमभिधीयते ॥११॥
इत्युक्तः सहसारुह्य निदाघः प्राह तमृभुम् ।
श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१२॥
उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ।
अवबोधाय ते ब्रह्मन्दृष्टान्तो दर्शितो मया ॥१३॥
त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि ।
तदेतत्त्वं समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा ॥१४॥

ऋभु ने कहा—तुमने मुझे राजा और हाथी दोनों एक साथ दिखाये परन्तु इन दोनों के पृथक्-पृथक् लक्षण नहीं बताये ॥८॥ इसलिये हे महाभाग ! इन दोनों की पृथक्-पृथक विशेषताएँ मुझे बताओ, जिससे मैं यह जान सकूँ कि इनमें कौन राजा और कौन हाथी है ? ॥९॥ निदाघ ने कहा—इनमें से नीचे वाला हाथी और उसके ऊपर वाला राजा है । हे द्विज ! इन दोनों के वाह्य-वाहक सम्बन्ध को कौन नहीं जानता ? ॥१०॥ ऋभु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे तो इस प्रकार समझाओ जिससे मैं 'नीचे' और 'ऊपर' शब्दों के वाच्यार्थ समझ सकूँ ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा—ऋभु की बात सुनकर निदाघ ने सहसा उनके ऊपर चढ़कर कहा—आपने जो पूछा है, उसे कहता हूँ, सुनिये ॥१२॥ इस समय मैं तो राजा के समान ऊपर हूँ और आप हाथी के समान नीचे हैं । हे ब्रह्मन् ! आपको समझाने के लिये ही मुझे यह दृष्टान्त दिखाना पड़ा है ॥१३॥ ऋभु ने कहा—हे द्विजवर ! यदि तुम राजा के समान हो तो मैं हाथी के समान हूँ, तो यह बताओ कि तुम कौन हो और मैं कौन हूँ ? ॥१४॥

तदेतदुपदिष्टं ते सङ्क्षेपेण महामते ।
परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः ॥१८॥
एवमुक्त्वा ययौ विद्वान्निदाघं स ऋभुर्गुरुः ।
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ॥१९॥
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनः ।
यथा ब्रह्मपरो मुक्तिमवाप परमां द्विज ॥२०॥
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मरिपुबान्धवः ।
भव सर्वगतं जानन्नात्मानमवनीपते ॥२१॥
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक् ॥२२॥
एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥२३॥
इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणाप्तबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ॥२४॥
इति भरतनरेन्द्रसारवृत्तं कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं भवति च संसरणेषु मुक्तियोग्यः ॥२५॥

ब्राह्मण बोले—ऋभु की बात सुनते ही निदाघ ने उनके चरण पकड़ लिए और बोला कि अवश्य ही आप आचार्य श्रेष्ठ महर्षि ऋभु हैं ॥१५॥ क्योंकि हमारे आचार्यजी के समान अद्वैत चित्त वाला अन्य कोई नहीं है, इसलिए मैं समझता हूँ कि आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हैं ॥१६॥ महर्षि ऋभु ने कहा—हे निदाघ ! तुम पहले मेरी बहुत सेवा-शुश्रूषा कर चुके हो, इसलिये तुम्हारे स्नेह से वशीभूत होकर ही मैं तुम्हारा ऋभु नामक गुरु तुम्हें उपदेश देने के लिए ही यहाँ आया हूँ ॥१७॥ हे महामते ! सब पदार्थों में अद्वैत एवं आत्म-बुद्धि रखना, परमार्थ का यही सार है, जो मैंने तुम्हारे प्रति संक्षेप में कह दिया है ॥१८॥ ब्राह्मण ने कहा—निदाघ को ऐसा उपदेश देकर गुरुवर ऋभु चले गए और तब निदाघ भी अद्वैत-चिन्तन में लग गया ॥१९॥ फिर वह सब जीवों को अपने से अभिन्न देखने लगा । हे राजन् ! जैसे उस ब्रह्म परायण ने मोक्ष-

पद की प्राप्ति हुई, वैसे ही तू भी अपने आत्मा, शत्रु तथा मित्रादि मे अभेद रखकर स्वय को ही सर्वगत मानता हुआ मोक्ष को प्राप्त हो ॥२०-२१॥ जैसे एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक रूप दिखाई देता है, वैसे ही भ्रान्त दर्शियो को एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई देता है ॥२२॥ इस ससार में सब कुछ एक आत्मा ही है, वही अविनाशी है, उससे भिन्न कुछ भी नही। मैं और तू यह सब भी आत्म रूप है, इसलिये भेद वाले ज्ञान रूपी मोह का त्याग कर ॥२३॥ श्री पराशरजो ने कहा—उनका उपदेश सुनकर सौवीरराज ने परमार्थ दृष्टि के आश्रय से भेद-बुद्धि का त्याग किया और वह पूर्व जन्म के स्मरण वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ भी ज्ञानमय होने से उसी जन्म मे मोक्ष को प्राप्त हुए ॥२४॥ राजेन्द्र भरत के इतिहास के इस सारभूत वृत्तान्त को कहने या सुनने वाली की बुद्धि स्वच्छ हो जाती है, उसे कभी आत्म विस्मृति नही होती और वह जन्म-जन्मान्तर मे सदा मोक्ष के योग्य रहता है ॥२५॥



तृतीय अंश

पहला अध्याय

कथिता गुरुणा सम्यग्भूसमुद्रादिसंस्थिति. ।
सूर्यादीनां च संस्थानं ज्योतिषां चातिविस्तरात् ॥१॥
देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणां चापि वर्णिता ।
चातुर्वर्ण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्यग्योनिगतस्य च ॥२॥
ध्रुवप्रह्लादचरितं विस्तराच्च त्वयोदितम् ।
मन्वन्तराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात् ॥३॥
मन्वन्तराधिपांश्चैव शक्रदेवपुरोगमान् ।
भवता कथितानेताञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ॥४॥
अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै ।
तान्यहं भवतः सम्यक्कथयामि यथाक्रमम् ॥५॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं परः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥६॥
षडेते मनवोऽतीतास्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम् ॥७॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! पृथिवी, समुद्र और सूर्यादि की स्थिति का आपने विस्तार सहित मुझसे वर्णन किया ॥१॥ आपने देवताओं और ऋषियों आदि की उत्पत्ति, चारों वर्ण और तिर्यक् योनि के प्राणियों की रचना का भी भले प्रकार वर्णन किया ॥२॥ ध्रुव और प्रह्लाद के चरित्र भी आपने विस्तृत रूप से सुनाए । अब मैं आपके मुख कमल से सभी मन्वन्तरों और देवता-इन्द्रादि के सहित मन्वन्तराधिपति मनुष्यों का वृत्तान्त सुनने की इच्छा करता हूँ ॥३-४॥ श्री पराशरजी ने कहा—अब तक जितने मन्वन्तर हो चुके तथा

भविष्य मे जो भी होंगे, उन सभी का क्रम पूर्वक वर्णन करता हूँ ।।५।। पहिले मनु स्वायभुव हुए, उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए ।।६।। यह छः मनु पहिले हो चुके हैं । यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है, जिसके मनु सूर्य-पुत्र वैवस्वत हैं ।।७।।

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।
देवास्सप्तर्षयश्चैव यथावत्कथिता मया ।८।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोस्स्वारोचिषस्य तु ।
मन्वन्तराधिपान्सम्यग्देवर्षीस्तत्सुतांस्तथा ।९।
पारावतास्सतुषिता देवास्स्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चित्तत्र देवेन्द्रो मैत्रेयासीन्महाबलः ।१०।
ऊर्ज्जः स्तम्भस्तथा प्राणो वातोऽथ पृषभस्तथा ।
निरयश्च परीवाश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ।११।
चैत्रकिम्पुरुषाद्याश्च सुतास्स्वारोचिषस्य तु ।
द्वितीयमेतद्व्याख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम् ।१२।
तृतीयेऽप्यन्तरे ब्रह्मन्नुत्तमो नाम यो मनुः ।
सुशान्तिर्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत्सुरेश्वरः ।१३।
सुधामानस्तथा सत्या जपाश्चाथ प्रतर्दनाः ।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकास्स्मृताः ।१४।
वसिष्ठतनया ह्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।
अजः परशुदीप्ताद्यास्तथोत्तममनोस्सुताः ।१५।

कल्प के आदि मे हुए जिस स्वायंभुव-मन्वन्तर के विषय में मैंने कहा था, उसके देवता और सप्तर्षियों को भी मैं पहिले ही बता चुका हूँ ।।८।। अब मैं स्वारोचिष मन्वन्तर के अधिकारी देवता, ऋषि और मनु-पुत्रों का वर्णन करूँगा ।।९।। हे मैत्रेयजी ! स्वारोचिष मन्वन्तर मे पारावत और तुषितगण देवता और महाबली विपश्चित् इन्द्र थे ।।१०।। उस समय जो सप्तर्षि थे उनके नाम ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान् थे ।।११।। चैत्र और किम्पुरुष आदि उन स्वारोचिष मनु के पुत्र हुए । इस प्रकार जो वर्णन किया गया वह

दूसरे मन्वन्तर का है, अब तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तर का विवरण श्रवण करो ॥१२॥ हे ब्रह्मन् ! उस मन्वन्तर में उत्तम नामक मनु उसके अधिपति और सुशान्ति नामक देवेन्द्र हुए ॥१३॥ उस काल में सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती इन पाँच गणों में बारह-बारह देवता थे ॥१४॥ वशिष्ठजी के सात पुत्र सप्तर्षि तथा अज, परशु, दीप्त आदि नाम वाले उत्तम मनु के पुत्र थे ॥१५॥

तामसस्यान्तरे देवास्सुपारा हरयस्तथा ।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः ।१६।
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः ।
सप्तर्षयश्च ये तेषां तेषां नामानि मे शृणु ।१७।
ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा ।
पीवरश्चर्षयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे ।१८।
नरः ख्यातिः केतुरूपो जानुजङ्घादयस्तथा ।
पुत्रास्तु तामसस्यासन्राजानस्सुमहाबला. ।१९।
पञ्चमे वापि मैत्रेय रैवतो नाम नामतः ।
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्चात्रान्तरे शृणु ।२०।
अमिताभा भूतरया वैकुण्ठास्ससुमेधस. ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ।२१।
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ।
वेदबाहुस्सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।
एते सप्तर्षयो विप्र तत्रासन्रैवतेऽन्तरे ।२२।
बलबन्धुश्च सम्भाव्यस्सत्यकाद्याश्च तत्सुताः ।
नरेन्द्राश्च महावीर्या बभूवुर्मुनिसत्तम ।२३।

तामस मन्वन्तर में सुपार, हरि, सत्य और सुधि-इन चार देव-गणों में से प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस गण थे ॥१६॥ सौ अश्वमेध यज्ञ का कर्त्ता राजा शिबि उस समय का इन्द्र था और जो सप्तर्षि थे उनके भी नाम सुनो—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर ॥१८॥ तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजंघ आदि उन तामस मनु के महाबलवान् पुत्र राज्य के

अधिकारी थे ॥१६॥ हे मैत्रेयजी ! पाँचवें मन्वन्तर के मनु रैवत थे। विभु नामक इन्द्र और जो-जो देवगण हुए उनके नामों को सुनो ॥२०॥ इस मन्वन्तर में अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक देवताओं के वर्ग थे, प्रत्येक वर्ग में चौदह गण थे ॥२१॥ हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—यह उस मन्वन्तर के सप्तर्षि थे ॥२२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय रैवत मनु के अत्यन्त पराक्रमी पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राज्य के अधिकारी हुए ॥२३॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्स्मृता ।२४।
विष्णुमाराध्य तपसा स राजर्षि. प्रियव्रत. ।
मन्वन्तराधिपानेतांल्लब्धवानात्मवंशजान् ।२५।
षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषाख्यस्तथा मनु' ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोध मे ।२६।
आप्या प्रसूता भव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकस ।
महानुभावा लेखाश्च पञ्चैते ह्यष्टका गणा. ।२७।
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधु ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षय. ।२८।
ऊरु पूरुदशतद्युम्नप्रमुखास्सुमहाबला ।
चाक्षुषस्य मनो पुत्रा पृथिवीपतयोऽभवन् ।२९।

हे मैत्रेयजी ! स्वारोचिष, उत्तम,तामस और रैवत—यह चार मनु राजा प्रियव्रत के कुल में उत्पन्न हुए बताए जाते हैं। २४॥ राजर्षि प्रियव्रत ने तप के द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके अपने वंश में उद्भूत हुए इन चार मनुओं को पाया था ॥२५॥ छटवें मन्वन्तर में चाक्षुष नामक मनु हुए। उस समय के इन्द्र का नाम मनोजव था। अब उस मन्वन्तर के देवताओं के नाम सुनो ॥२६॥ आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक् और लेख यह पाँच प्रकार के देवता थे। इनके प्रत्येक गण में आठ देवता हुए ॥२७॥ उस समय सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम,

मधु, ग्रतिनामा ग्रौर सहिष्णु नामक सप्तर्षि थे ॥२८॥ चाक्षुष मनु के ग्रत्यन्त बली पुत्र ग्ररु, पूरु ग्रौर शतद्युम्नादि राज्य के ग्रधिकारी हुए ॥२९॥

विवस्वतस्सुतो विप्र श्राद्धदेवो महाद्युति ।
मनुस्सवर्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे ।३०।
आदित्यवसुरुद्राद्या देवाश्चात्र महामुने ।
पुरन्दरस्तथैवात्र मैत्रेय त्रिदशेश्वरः ।३१।
वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निस्सगौतमः ।
विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।३२।
इक्ष्वाकुश्च नृगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागोऽरिष्ट एव च ।३३।
करूषश्च पृषध्रश्च सुमहाँल्लोकविश्रुतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः सुधार्मिकाः ।३४।

हे द्विज ! इस समय यह सातवाँ मन्वन्तर है । इसमें महा तेजस्वी ग्रौर धीमान् सूर्य पुत्र श्राद्धदेव मनु हैं ॥३०॥ ग्रादित्य, वसु ग्रौर रुद्रादि देवता तथा पुरन्दर नामक इन्द्र इस मन्वन्तर के हैं ॥३१॥ वसिष्ठ काश्यप, ग्रत्रि जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, ग्रौर भरद्वाज नामक सप्तर्षि हैं ॥३२॥ वैवस्वत मनु के नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, ग्ररिष्ट, करूष ग्रौर पृषध्र हुए । यह सभी धर्मात्मा ग्रौर संसार प्रसिद्ध थे ॥३३-३४॥

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता ।
मन्वन्तरेष्वशेषेषु देवत्वेनाधितिष्ठति ।३५।
अंशेन तस्या जज्ञेऽसौ यज्ञस्स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
आकूत्यां मानसो देव उत्पन्नः प्रथमेऽन्तरे ।३६।
ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ।
तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सह ।३७।
औत्तमेऽप्यन्तरे देवस्तुषितस्तु पुनस्स वै ।
सत्यायामभवत्सत्य सत्यैस्सह सुरोत्तमः ।३८।

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ।
हर्याया हरिभिस्सार्धं हरिरेव बभूव ह ।३९।
रैवतेऽप्यन्तरे देवस्सम्भूत्या मानसो हरिः ।
सम्भूतो रैवतैस्सार्धं देवैर्देववरो हरिः ।४०।
चाक्षुषे चान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्देवतैः सह ।४१।

सभी मन्वन्तरो मे देव रूप से अधिष्ठित भगवान् विष्णु की अनुपम एवं सत्वगुण प्रधान वाली शक्ति ही विश्व की स्थिति मे अधिष्ठान करने वाली होती है ।।३५।। सबसे पहिले मन्वन्तर मे मानस देव यज्ञ पुरुष उसी विष्णु शक्ति के अंश से आकूति के उदर से प्रकट हुए थे ।।३६।। फिर स्वारोचिष मन्वन्तर आया तब वही मानस देव अजित तुषिता के गर्भ से सब तुषित नामक देवताओं के सहित उत्पन्न हुए ।।३७।। फिर वही तुषित देव उत्तम मन्वन्तर मे सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवताओ के साथ उत्पन्न हुए ।।३८।। जब तामस मन्वन्तर आया तब वह हरि रूप से हर्या के उदर से हरि नामक देवताओं के साथ प्रकट हुए ।।३९।। रैवत मन्वन्तर मे वही देवश्रेष्ठ हरि, सम्भूति के गर्भ से उस समय के देवताओ के साथ मानस नाम से प्रकट हुए ।।४०।। फिर चाक्षुष मन्वन्तर में विकुण्ठा के गर्भ से तत्कालीन देवताओ के साथ उत्पन्न होकर वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ।।४१।।

मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज ।
वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्या सम्बभूव ह ।४२।
त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।४३।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ।
सप्तस्वेवाभवन्विप्र याभिः संवर्द्धिताः प्रजाः ।४४।
यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।४५।

सर्वे च देवा मनवस्समस्तास्सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च ।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ता. ।४६।

हे द्विज ! अब इस वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर भगवान् विष्णु कश्यप के द्वारा अदिति के उदर से वामन रूप में अवतरित हुए ॥४२॥ उन्हीं वामन-देव ने तीनों लोकों को अपने तीन पदों में नापकर जीत लिया और उन्हें कण्टक-हीन करके इन्द्र को सौंप दिया था ॥४३॥ इस प्रकार सातों मन्वन्तरों में भग-वान् विष्णु की यह सात मूर्तियाँ अवतरित हुई, जिनसे इस सम्पूर्ण प्रजा की वृद्धि हुई है ॥४४॥ यह सम्पूर्ण जगत उन्हीं परमेश्वर की शक्ति से व्याप्त है, इसीलिये वह विष्णु नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि 'विश' धातु का तात्पर्य प्रवेश करने से है ॥४५॥ सब देवता, मनु, सप्तर्षि, मनु पुत्र और इन्द्र-यह सब उन्हीं भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं ॥४६॥

दूसरा अध्याय

प्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमन्वन्तराणि वै ।
भविष्याण्यपि विप्रर्षे ममाख्यातु त्वमर्हसि ।१।
सूर्यस्य पत्नी सञ्ज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मण. ।
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ।२।
असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजश्छाया युयोज वै ।
भर्तृ शुश्रूषणेऽरण्य स्वयं च तपसे ययौ ।३।
सञ्ज्ञेयमित्यथार्कश्च छायायामात्मजत्रयम् ।
शनैश्चर मनु चान्य तपतीं चाप्यजीजनत् ।४।
छायासञ्ज्ञा ददौ शाप यमाय कुपिता यदा ।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद्यमसूर्ययो· ।५।
ततो विवस्वानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् ।
समाधिदृष्टया ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ।६।

वाजिरूपधरः सोऽथ तस्यां देवावथाश्विनौ।
जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्करः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मर्षे! आपने बीते हुए सात मन्वन्तरों का वर्णन किया, अब आप आगे होने वाले मन्वन्तरों के विषय में कहिये ॥१॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी हुई। उसने मनु और यम दो पुत्र तथा यमी नाम की पुत्री को जन्म दिया ॥२॥ संज्ञा अपने पति का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने समान छाया उत्पन्न कर और उसे अपने पति की सेवा सौंप कर, स्वयं तपस्विनी बनकर चली गई ॥३॥ सूर्य ने छाया को संज्ञा समझा और उससे शनैश्चर, एक दूसरा मनु और तपती-इन तीन सन्तानों को जन्म दिया ॥४॥ एक दिन की बात है—उस छाया संज्ञा ने क्रोध करके यम को शाप दिया, तब सूर्य और यम को सदेह हुआ कि यह संज्ञा नहीं है ॥५॥ तब छाया के द्वारा रहस्य का उद्घाटन हुआ और सूर्य ने समाधि लगाकर यह जान लिया कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण किये हुए वन में तप कर रही है ॥६॥ इससे उन्होंने भी घोड़े का रूप धारण कर घोड़ी रूपिणी संज्ञा से दो अश्विनीकुमार और रेत स्राव के पश्चात् रेवन्त को उत्पन्न किया ॥७॥

आनिन्ये च पुनः संज्ञां स्वस्थानं भगवान्रविः ।
तेजसश्शमनं चास्य विश्वकर्मा चकार ह ।८।
भ्रममारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं स व्यशातयदव्ययम् ।९।
यत्तस्माद्वैष्णवं तेजश्शातितं विश्वकर्मणा ।
जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम ।१०।
त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ।
त्रिशूलं चैव शर्वस्य शिबिकां धनदस्य च ।११।
शक्तिं गुहस्य देवानामन्येषां च यदायुधम् ।
तत्सर्वं तेजसा तेन विश्वकर्मा व्यवर्धयत् ।१२।

छायासज्ञासुतो योऽसौ द्वितीय कथितो मनु ।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सार्वाणिस्तेन कथ्यते ।१३।
तस्य मन्वन्तर ह्येतत्सावर्णिकमथाष्टमम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग भविष्यत्कथयामि ते ।१४।

इसके बाद भगवान् सूर्य सज्ञा को अपने यहाँ लाये और विश्वकर्मा ने भी उनका तेज न्यून कर दिया ॥८॥ उन्होने सूर्य को सान पर चढाकर उनके तेज को छीलना आरम्भ किया, परन्तु वह उसका आठवाँ अश ही कम कर सके ॥९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्य के जिस अत्यन्त प्रकाशमान वैष्णव तेज को छीला, वह तेज पृथिवी पर आ गिरा ॥१०॥ उसी गिरे हुये तेज से विश्वकर्मा ने भगवान् विष्णु का चक्र, शिवजी का त्रिशूल, कुबेर का विमान तथा कार्तिकेय की शक्ति का निर्माण किया और अन्यान्य देवताओ के जो अस्त्रशस्त्र थे, वे भी उस तेज से पुष्ट किये ॥११-१२॥ पहिले जिस छाया सज्ञा के पुत्र द्वितीय मनु के विषय मे कह चुके हैं वह अपने पूर्वज मनु का सवर्ण होने के कारण सार्वणि कहा गया ॥१३॥ हे महाभाग ! मैं उन्ही सार्वणि के सावर्णिक मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ। यह अष्टम मन्वन्तर आगे होने वाला है ॥१४॥

सार्वणिस्तु मनुर्योऽसौ मैत्रेय भविता तत ।
सुतपाश्चाभिताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुरा ।१५।
तेषा गणश्च देवानामेकैको विशक स्मृत ।
सप्तर्षीनपि वक्ष्यामि भविष्यान्मुनिसत्तम ।१६।
दीप्तिमान् गालवो राम कृपो द्रौणिस्तथा पर ।
मत्पुत्रश्च तथा व्यास ऋष्यशृङ्गश्च सप्तम ।१७।
विष्णुप्रसादादनघ पातालान्तरगोचर ।
विरोचनसुतस्तेषा बलिरिन्द्रो भविष्यति ।१८।
विरजाश्चोर्वरीवाश्च निर्मोकाद्यास्तथापरे ।
सावर्णेस्तु मनो पुत्रा भविष्यन्ति नरेश्वरा ।१९।
नवमो दक्षसावर्णिर्भविष्यति मुने मनु ।
पारा मरीचिगर्भाश्च सुधर्माणस्तथा त्रिधा ।२०।

भविष्यन्ति तथा देवा ह्येकैको द्वादशो गण. ।
तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भुतो द्विज ।२१।
सवनो द्युतिमान् भव्यो वसुर्मेधातिथिस्तथा ।
ज्योतिष्मान् सप्तम सत्यस्तत्रैते च महर्षय ।२२।
धृतकेतुर्दीप्तिकेतु पञ्चहस्तनिरामयौ ।
पृथुश्रवाद्याश्च तथा दक्षसार्वणिकात्मजा ।२३।

हे मैत्रेयजी ! यही सावर्णि उस मन्वन्तर मे मनु एव सुतप, अमिताभ और मुख्यगण देवता होंगे ।।१५।। उन देवताओ के प्रत्येक गण मे बीस देवता होंगे । अब मैं उस मन्वन्तर के सप्तर्षियो के विषय मे कहता हूँ ।।१६।। दीप्तिमान् गालव, राम, कृप, अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋषि ऋष्यशृङ्ग होंगे ।।१७।। उस समय पाताल लोकवासी विरोचन-पुत्र बलि भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र होंगे तथा विरजा, उर्वरीवान् और निर्मोक आदि सावर्णि मनु-पुत्र उस मन्वन्तर के राजा होंगे ।।१८-१९।। हे मुने ! नौवें मन्वन्तर के मनु दक्ष सावर्णि होंगे । उनके समय मे पार, मरीचि गर्भ और सुधर्मा नामक देवताओ का त्रिवर्ग होगा, जिन तीनो मे से प्रत्येक वर्ग में बारह देवता होंगे और उनका अधिपति अद्भुत नामक अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र होगा ।।२०-२१।। सवन, द्युतिमान्, भव्य वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सत्य नामक सप्तर्षि होंगे ।।२२।। तथा दक्ष सावर्णि मनु के पुत्र धृतकेतु, दीप्तिकेतु, निरामय, पृथुश्रवा आदि उस समय के राजा होंगे ।।२३।।

दशमो ब्रह्मसावर्णिर्भविष्यति मुने मनु ।
सुधामानो विशुद्धाश्च शतसंख्यास्तथा सुरा ।२४।
तेषामिन्द्रश्च भविता शान्तिर्नाम महाबल ।
सप्तर्षयो भविष्यन्ति ये तथा ताञ्छृणुष्व ह ।२५।
हविष्मान्सुकृतस्सत्यस्तपोमूर्तिस्तथापर ।
नाभागोऽप्रतिमौजाश्च सत्यकेतुस्तथैव च ।२६।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणादयो दश ।
ब्रह्मसावर्णिपुत्रास्तु रक्षिष्यन्ति वसुन्धराम् ।२७।

एकादशश्च भविता धर्मसावर्णिको मनुः ।
विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरतयस्तथा ।२८।
गणास्त्वेते तदा मुख्या देवानां च भविष्यताम् ।
एकैकस्त्रिंशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ।२९।
निःस्वरश्चाग्नितेजाश्च वपुष्मान्घृणिरारुणिः ।
हविष्माननघश्चैव भाव्याः सप्तर्षयस्तथा ।३०।
सर्वत्रगस्सुधर्मा च देवानीकादयस्तथा ।
भविष्यन्ति मनोस्तस्य तनयाः पृथिवीश्वराः ।३१।

हे मुने ! दसवें मन्वन्तर के अधिपति ब्रह्म सावर्णि होंगे । उस समय सुधामा और विशुद्ध नामक दो गण सौ सौ देवताओं के होंगे ।।२४।। महाबली शान्ति उनका इन्द्र होगा, अब उस समय के सप्तर्षियों के नाम सुनो ।।२५।। हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु—यह सप्तर्षि थे ।।२६।। उस समय ब्रह्म सावर्णि मनु के सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथिवी के रक्षक होंगे ।।२७।। ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा तथा विहंगम, कामगम और निर्वाण रति नामक तीस-तीस देवताओं के गण होंगे और वृष नामक इन्द्र होगा ।।२८-२९।। निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि आरुणि, हविष्मान् और अनघ नामक सप्तर्षि होंगे ।।३०।। धर्मसावर्णि मनु के सर्वत्रग, सुधर्मा और देवानीकादि पुत्र उस समय पृथिवी पालक होंगे ।।३१।।

रुद्रपुत्रस्तु सावर्णिर्भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतुधामा च तत्रेन्द्रो भविता शृणु मे सुरान् ।३२।
हरिता रोहिता देवास्तथा सुमनसो द्विज ।
सुकर्माणः सुरापाश्च दशकाः पञ्च वै गणाः ।३३।
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्तिस्तपोरतिः ।
तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः ।३४।
सप्तर्षयस्त्विमे तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयस्तथा ।३५।

मनोस्तस्य महावीर्या भविष्यन्ति महानृपा ।
त्रयोदशो रुचिर्नामा भविष्यति मुने मनु ।३६।
सुत्रामाण सुकर्माण सुधर्माणस्तथामरा ।
त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवाना यत्र वै गणा ।३७।
दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ।
निर्मोहस्तत्त्वदर्शी च निष्प्रकम्प्यो निरुत्सुक ।३८।
धृतिमानव्ययश्चान्यस्सप्तमस्सुतपा मुनि ।
सप्तर्षयस्त्वमी तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।३९।

बारहवें मनु रुद्र सावर्णि होगे । उस समय के इन्द्र का नाम ऋतुधामा होगा । अब देवताओं के नाम सुनो ॥३२॥ हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक देवताओं के पाँच गण होगे । प्रत्येक गण मे दस देवता होंगे ॥३३॥ तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन उस समय के सप्तर्षि होगे । रुद्र सावर्णि मनु के देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि महावीयवान् पुत्र उस समय के राज्याधिकारी होंगे । तेरहवें मनु रुचि होगा और सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक देवताओं के गण होंगे । प्रत्येक गण में तैंतीस देवता होगे तथा अत्यन्त बली दिवस्पति नामक उनका इन्द्र होगा । निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान, अव्यय और सुतपा नामक सप्तर्षि होगे । अब मनु पुत्रो के नाम बताता हूँ ॥३७-३९॥

चित्रसेनविचित्राद्या भविष्यन्ति महीक्षित ।
भौमश्चतुर्दशश्चात्र मैत्रेय भविता मनु ।४०।
शुचिरिन्द्र सुरगणास्तत्र पञ्च शृणुष्व तान् ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजिकास्तथा ।४१।
वाचावृद्धाश्च वै देवास्सप्तर्षीनपि मे शृणु ।
अग्निबाहु शुचि शुक्रो मागधोऽग्निध्र एव च ।४२।
युक्तस्तथा जितश्चान्यो मनुपुत्रानत शृणु ।
उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या मनोस्तस्य सुता नृपा ।४३।
कथिता मुनिशार्दूल पालयिष्यन्ति ये महीम् ।४४।

उन रुचि नामक मनु के चित्रसेन और विचित्रादि पुत्र राज्याधिकारी होंगे। चौदहवें मनु भौम होंगे ॥४०॥ उस मन्वन्तर में शुचि नामक इन्द्र और चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक पाँच देवगण होंगे। अब सप्तर्षियों के नाम सुनो—अग्निबाहु शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित नामक सप्तर्षि होंगे। अब मनु पुत्रों के नाम सुनो। हे मुनिश्रेष्ठ ! भौम नामक उन मनु के ऊरु और गम्भीर बुद्धि आदि पुत्र पृथिवी का पालन करने वाले होंगे ॥४१-४४॥

चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः ।
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः ॥४५॥
कृते कृते स्मृतेर्विप्र प्रणेता जायते मनुः ।
देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत् ॥४६॥
भवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरं तु तैः ।
तदन्वयोद्भवैश्चैव तावद्भूः परिपाल्यते ॥४७॥
मनुस्सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः ॥४८॥
चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरैर्द्विज ।
सहस्रयुगपर्यन्तः कल्पो निःशेष उच्यते ॥४९॥
तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम ।
ब्रह्मरूपधरश्शेते शेषाहावम्बुसम्प्लवे ॥५०॥
त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद्विभुः ।
स्वमायामास्थितो विप्र सर्वभूतो जनार्दनः ॥५१॥
ततः प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
सृष्टिं करोत्यव्ययात्मा कल्पे कल्पे रजोगुणः ॥५२॥
मनवो भूभुजस्सेन्द्रा देवास्सप्तर्षयस्तथा ।
सात्त्विकोंऽशः स्थितिकरो जगतो द्विजसत्तम ॥५३॥

प्रत्येक चतुर्युगी के अन्त में जब वेद लुप्त हो जाते हैं, तब सप्तर्षि ही स्वर्ग से पृथिवी पर उतर कर उनका प्रचार करते हैं ॥४५॥ प्रत्येक सत्युग

मन्वन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव ।
मन्वन्तराधिपाश्चैव किमन्यत्कथयामि ते ।६१।

हे मैत्रेय जी ! विश्व की स्थिति के करने वाले भगवान् विष्णु जिस प्रकार चारों युग में व्यवस्था करते हैं, उसे सुनो ॥५४। सभी जीवों के कल्याण में तत्पर हुए वे सर्वभूतात्मा भगवान् सतयुग में कपिल आदि के रूप में परम ज्ञानोपदेश करते हैं ॥५५॥ त्रेता में चक्रवर्ति सम्राट् होकर दुष्टों का निग्रह करते हुए वही तीनों लोकों की रक्षा करते हैं ॥५६॥ द्वापर में वेद व्यास रूप से एक वेद को चार भागों में विभक्त करके, उसे सैंकड़ों शाखाओं में बाँट कर उसका अत्यन्त प्रसार कर देते हैं । ५७॥ इस प्रकार द्वापर युग में वेदों का विस्तार करने के पश्चात् कलियुग के अन्त में कल्कि रूप धारण करके दुराचरण में प्रवृत्त हुए लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं । ॥५८॥ इसी प्रकार वह सर्वात्मा भगवान् निरन्तर इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करते रहते हैं । संसार की कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है ॥५६॥ हे विप्र ! इहलोक और परलोक में अतीत में हुए, आगे होने वाले तथा अब जो स्थित हैं, वे सम्पूर्ण पदार्थ भगवान् विष्णु से ही प्रकट हुए हैं, इस विषय में सब कुछ तुम्हारे प्रति कह चुका हूँ ॥६२॥ सभी मन्वन्तरों तथा उनके अधिकारियों का वृत्तान्त भी मैं तुम्हें सुना चुका हूँ । अब तुम्हें और क्या सुनाऊँ ? यह मुझसे कहो ॥६१॥



तीसरा अध्याय

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथा सर्वमिदं जगत् ।
विष्णुर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ।१।
एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना ।
वेदव्यासस्वरूपेण तथा तेन युगे युगे ।२।

के आरम्भ मे स्मृतिकार मनु की उत्पत्ति होती है और उस मन्वतर के समाप्त होने तक उस काल के देवता यज्ञ-भागो को ग्रहण करते हैं ॥३६॥ मनु के पुत्र तथा उनके वंशधर मन्वन्तर की समाप्ति पर्यंत पृथिवी का परिपालन करते रहते है ॥४७। इस प्रकार मनु सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनु-पुत्र नृपतिगण—यह सभी उस मन्वन्तर के अधिकारी माने जाते हैं ॥४८॥ हे विप्र ! इन चौदह मन्वन्तरो के व्यतीत होने पर एक हजार युगो तक का कल्प समाप्त हुआ बताया जाता है ॥४६॥ इसके पश्चात् इतने ही समय की रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपी विष्णु प्रलयकाल के उस जल के ऊपर स्थित शेष शय्या पर सोते हैं ॥५०॥ तब आदि कर्त्ता सर्वभूत भगवान् जनार्दन अखिल त्रैलोक्य का ग्रास करके अपनी ही माया मे स्थित हो जाते हैं ॥५१॥ प्रत्येक कल्प के आरम्भ मे वह अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत होकर रजोगुण के आश्रय से सृष्टि को रचते हैं ॥५२॥ हे द्विज सत्तम ! मनु, उनके पुत्र नृपगण, इन्द्र, देवगण और सप्तर्षि गण—यह सभी विश्व पालक भगवान् श्रीहरि के सात्विक अंश हैं ॥५३॥

चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णु स्थितिव्यापारलक्षण ।
युगव्यवस्था कुरुते यथा मैत्रेय तच्छृणु ।५४।
कृते युगे पर ज्ञान कपिलादिस्वरूपधृक् ।
ददाति सर्वभूतात्मा सर्वभूतहिते रत ।५५।
चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभु ।
दुष्टाना निग्रह कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ।५६।
वेदमेक चतुर्भेद कृत्वा शाखाशतैर्विभु ।
करोति बहुल भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ।५७।
वेदास्तु द्वापरे व्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरि ।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान्मार्गे स्थापयति प्रभु ।५८।
एवमेतज्जगत्सर्वं शश्वत्पाति करोति च ।
हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नास्त्यस्माद्व्यतिरेकि यद् ।५६।
भूत भव्य भविष्य च सर्वभूतान्महात्मन ।
तदत्रान्यत्र वा विप्र सद्भाव कथितस्तव ।६०।

मन्वन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव ।
मन्वन्तराधिपाश्चैव किमन्यत्कथयामि ते ।६१।

हे मैत्रेय जी ! विश्व की स्थिति के करने वाले भगवान् विष्णु जिस प्रकार चारों युग में व्यवस्था करते हैं, उसे सुनो ।।५४। सभी जीवों के कल्याण में तत्पर हुए वे सर्वभूतात्मा भगवान् सत्ययुग में कपिल आदि के रूप में परम ज्ञानोपदेश करते हैं ।।५५।। त्रेता में चक्रवर्ति सम्राट् होकर दुष्टों का निग्रह करते हुए वही तीनों लोकों की रक्षा करते हैं ।।५६।। द्वापर में वेद व्यास रूप से एक वेद को चार भागों में विभक्त करके, उन्हें सैकड़ों शाखाओं में बाँट कर उसका अत्यन्त प्रसार कर देते हैं ।५७।। इस प्रकार द्वापर युग में वेदों का विस्तार करने के पश्चात् कलियुग के अन्त में कल्कि रूप धारण करके दुराचरण में प्रवृत्त हुए लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते हैं ।।५८।। इसी प्रकार वह सर्वात्मा भगवान् निरन्तर इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करते रहते हैं। संसार की कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है ।।५९।। हे विप्र ! इहलोक और परलोक के अतीत में हुए, आगे होने वाले तथा अब जो स्थित हैं, वे सम्पूर्ण पदार्थ भगवान् विष्णु से ही प्रकट हुए हैं, इस विषय में सब कुछ तुम्हारे प्रति कह चुका हूँ ।।६०।। सभी मन्वन्तरों तथा उनके अधिकारियों का वृत्तान्त भी मैं तुम्हें सुना चुका हूँ। अब तुम्हें और क्या सुनाऊँ ? यह मुझसे कहो ।।६१।।

तीसरा अध्याय

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथा सर्वमिदं जगत् ।
विष्णुर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ।१।
एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना ।
वेदव्यासस्वरूपेण तथा तेन युगे युगे ।२।

यस्मिन्यस्मिन्युगे व्यासो यो य आसीन्महामुने ।
त तमाचक्ष्व भगवञ्छाखाभेदाश्च मे वद ।३।

वेदद्रुमस्य मैत्रेय शाखाभेदास्सहस्रश ।
न शक्तो विस्तराद्वक्तु सक्षेपरण श्रृणुष्व तम् ।४।
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने ।
वेदमेक सुबहुधा कुरुते जगतो हित. ।५।

वीर्य तेजो बल चाल्प मनुष्याणामवेक्ष्य च ।
हिताय सर्वभूताना वेदभेदान्करोति सः ।६।

ययासौ कुरुते तन्वा वेदमेक पृथक् प्रभु. ।
वेदव्यासाभिधाना तु सा च मूर्तिर्मधुद्विप. ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—आपके कहने से मैंने यह जान लिया कि यह विश्व विष्णुरूप, विष्णु मे स्थित तथा उन्ही से उत्पन्न हुआ है । उन भगवान् विष्णु के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नही है ॥१॥ अब मुझे यह सुनने की जिज्ञासा है कि उन्होंने वेदव्यास रूप से युग-युग मे प्रकट होकर वेदो का विभाग किस प्रकार किया ? ॥२॥ हे महामुने ! जिस-जिस युग मे जो-जो वेदव्यास हुए, उन सबका तथा वेदो के सब शाखा भेदो को आप मेरे प्रति कहिये ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! वेद रूपी वृक्ष के हजारो शाखा-भेद हैं, उनका विस्तृत वर्णन करने मे तो कोई भी सक्षम नही है, इसलिये उसे सक्षेप मे श्रवण करो ॥४॥ हे महामुने ! जब-जब द्वापर युग आता है, तभी-तभी भगवान् विष्णु वेद व्यास के रूप मे अवतीर्ण होकर विश्व-कल्याणार्थ एक वेद के अनेक कर देते हैं ॥५॥ वे उस समय के मनुष्यो के बल, वीर्य, तेज को घटता हुआ देख कर वे सब जीवो का हित करने की इच्छा से वेदो को विभक्त करते हैं ॥६॥ जिस देह से एक वेद के अनेक भेद करते हैं, भगवान् की उस मूर्ति को वेदव्यास कहते हैं ॥७॥

यस्मिन्मन्वन्तरे व्यासा ये ये स्युस्तान्निबोध मे ।
यथा च भेदश्शाखाना व्यासेन क्रियते मुने ।८।

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदो व्यस्तो महर्षिभिः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्द्वापरेषु पुनः पुनः ।६।
वेदव्यासा व्यतीता ये ह्यष्टाविंशति सत्तम ।
चतुर्धा यै. कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ।१०।
द्वापरे प्रथमे व्यस्तस्स्वय वेदः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।११।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमेः व्यासः षष्ठे मृत्युस्स्मृत. प्रभुः ।१२।
सप्तमे च तथेवेन्द्रो वशिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ।१३।
एकादशे तु त्रिशिखो भरद्वाजस्ततः परः ।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो वर्णी चापि चतुर्दशे ।१४।

हे मुने ! जिस-जिस मन्वन्तर मे जो-जो व्यास होते हैं और वह जिस-जिस प्रकार से वेदो का विभाग करते हैं, वह सब मुझसे श्रवण करो ॥८॥ इसी वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग मे व्यास ऋषियो ने अब तक अट्ठाईस बार वेदो को विभक्त किया है ।६। अब उन अट्ठाईस व्यासो का वृत्तान्त सुनों, जिन्होंने द्वापर युग मे वेदों के बारबार चार-चार विभाग किये हैं ॥१०॥ प्रथम द्वापर मे स्वय ब्रह्माजी ने वेदो का विभाग किया और दूसरे द्वापर मे प्रजापति वेदव्यास हुए ॥११॥ तीसरे द्वापर मे शुक्राचार्य वेदव्यास हुए, चौथे मे बृहस्पतिजी, पाँचवें मे सूर्य और छठे मे मृत्यु वेद व्यास बने ॥१२॥ सातवें में इन्द्र, आठवें में वसिष्ठ, नौवें मे सारस्वत और दसवें मे त्रिधामा वेदव्यास कहलाये ॥१३॥ ग्यारहवें मे त्रिशिख, बारहवें में भारद्वाज, तेरहवें मे अन्तरिक्ष और चौदहवें मे वर्णी वेद व्यास हुए ॥१४॥

त्रय्यारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः ।
क्रतुञ्जय. सप्तदशे तदूर्ध्वं च जयस्स्मृतः ।१५।
ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजाच्च गौतमः ।
गौतमादुत्तरो व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते ।१६।

अथ हर्यात्मनोऽन्ते च स्मृतो वाजश्रवा मुनि ।
सोमशुष्मायणस्तस्मात्तृणबिन्दुरिति स्मृत ।१७।
ऋक्षोऽभू द्भार्गवस्तस्माद्वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ।
तस्मादस्मत्पिता शक्तिर्व्यासस्तस्मादह मुने ।१८।
जातुकर्णोऽभवन्मत्त कृष्णद्वैपायनस्तत ।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासा पुरातना ।१६।
एको वेदश्चतुर्धा तु तैं कृतो द्वापरादिषु ।२०।
भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने ।२१।

पन्द्रहवें द्वापर मे त्र्य्यारुण, सोलहवें मे धनञ्जय सत्रहवें मे कृतञ्जय और अठारहवें मे जय नामक वेदव्यास हुए ॥१५॥ उन्नीसवें द्वापर मे भरद्वाज बीसवें मे गौतम और गौतम के बाद इक्कीसवें द्वापर में हर्यात्मा नामक व्यास हुए ॥१६॥ बाईसवें मन्वन्तर मे वाजश्रवा मुनी वेद व्यास हुए, और उनके बा" सोम शुष्म वंश के तृणबिन्दु नामक तेईसवें द्वापर के व्यास हुए ॥१७॥ उनके पश्चात् भृगुवंश के ऋक्ष चौबीसवें व्यास हुए, यही कालान्तर म वाल्मीकि कहेलाये, उनके पश्चात् मेरे पिता शक्ति हुए और फिर मैं छब्बीसवाँ व्यास हुआ ॥१८॥ मेरे बाद जातुकर्ण और फिर कृष्ण द्वैपायन व्यास हुए । इस प्रकार यह अट्ठाईस व्यास प्राचीन कह हैं । इन्होने सब द्वापरो म एक एक वेद के चार चार विभाग किय ॥१६ २०॥ हे मुन ! मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन के पश्चात् आगामी द्वापर युग मं द्रोणाचार्य जी के पुत्र अश्वत्थामा होंगे ॥२१॥

ध्रु वमेकाक्षर ब्रह्म ओमित्येव व्यवस्थितम् ।
बृहत्त्वादबृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मे त्यभिधीयत ।२२।
प्रणवावस्थित नित्य भूर्भुवस्स्वरितीर्यते ।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाणा यत्तस्मै ब्रह्मणे नम ।२३।
जगत प्रलयोत्पत्त्यार्यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।
महत् परम गुह्य तस्मै सुब्रह्मण नम ।२४।

अगाधापारमक्षय्य जगत्सम्मोहनालयम् ।
स्वप्रकाशप्रवृत्तिभ्या पुरुषार्थप्रयोजनम् ।२५।
सांख्यज्ञानवता निष्ठा गतिश्शमदमात्मनाम् ।
यत्तदव्यक्तममृत प्रवृत्तिब्रह्म शाश्वतम् ।२६।
प्रधानमात्मयोनिश्च गुहासस्य च शब्द्यते ।
अविभाग तथा शुक्रमक्षय बहुधात्मकम् ।२७।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नम. ।
यद्रूप वासुदेवस्य परमात्मस्वरूपिण ।२८।

यह अविनाशी ॐ रूप एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् एवं व्यापक होने के कारण 'ब्रह्म' कहा जाता है ॥२२॥ भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक—यह तीनों ही प्रणव रूप ब्रह्म में स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व रूप चारों वेद हैं, इसलिये उस प्रणव रूप ब्रह्म को नमस्कार है ॥२३॥ जो ब्रह्म विश्व की उत्पत्ति और प्रलय का कारण कहा गया है तथा जो महत् तत्व से भी परम गुह्य है, उस प्रणव रूप को नमस्कार है ॥२४॥ जो अगाध, अपार और अक्षय तथा जगत् को मोहित करने वाले तमोगुण का आधार एवं स्वप्रकाश युक्त सत्वगुण और प्रवृत्ति रूप रजोगुण से भोग तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण है ॥२५॥ जो सांख्य ज्ञानियों की निष्ठा और शम-दम वालों का गन्तव्य स्थान है तथा जो अव्यक्त, अविनाशी और नित्य ब्रह्म होकर सदा स्थित है ॥२६॥ जो स्वयम्भू, प्रधान और अन्तर्यामी कहा गया है तथा जो अविभाग, अक्षय और बहुत रूप वाला है ॥२७॥ तथा जो परमात्म स्वरूप वासुदेव भगवान् का ही रूप है, उस प्रणव रूप परब्रह्म को बारम्बार नमस्कार है ॥२८॥

एतद्ब्रह्म त्रिधा भेदमभेदमपि स प्रभु ।
सर्वभेदेष्वभेदोऽसौ भिद्यते भिन्नबुद्धिभि ।२९।
सऋङ्मयस्साममय. सर्वात्मा स यजुर्मय ।
ऋग्यजुस्सामसारात्मा स एवात्मा शरीरि[illegible]

स भिद्यते वेदमयस्स्ववेदं करोति भेदैर्बहुभिस्सशाखम् ।
शाखाप्रणेता स समस्तशाखाज्ञानस्वरूपो भगवानसङ्गः ।३१।

यह प्रणव रूप ब्रह्म अभेद होकर भी तीन भेद वाला और सभी भेदों से अभिन्न रूप से स्थित है, परन्तु भेद बुद्धि वालों को पृथक् पृथक् प्रतीत होता है ।।२६।। वह सर्वात्मा ऋङ्मय, साममय और यजुर्मय है तथा ऋक्, यजु, साम का सार रूप वह प्रणव ही सब देहधारियों का आत्मा है ।।३०।। वह वेदमय है, वही ऋग्वेदादि रूप से भिन्न भिन्न होता और प्रथम वेद रूप को विभिन्न शाखों में विभक्त करता है । वही सङ्ग-रहित ज्ञान स्वरूप परमात्मा सब शाखों का रचने वाला है ।।३१।।



चौथा अध्याय

आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः ।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक् ।१।
ततोऽत्र मत्सुतो व्यासो अष्टाविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ।२।
यथा च तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्तैर्व्यस्ता व्यस्तैस्तथा मया ।३।
तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान्द्विजोत्तम ।
चतुर्युगेषु पठितान्समस्तेष्ववधारय ।४।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद्भवेत् ।५।
तेन व्यस्ता यथा वेदा मत्पुत्रेण महात्मना ।
द्वापरे ह्यत्र मैत्रेय तस्मिञ्छृणु यथातथम् ।६।
ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान् ।७।

श्री पराशरजी ने कहा—सृष्टि के आदि में वेद चार पदों से युक्त तथा एक लाख मन्त्रों का था, जिससे समस्त कामना प्रद अग्निहोत्रादि दस प्रकार के यज्ञों का प्रचार हुआ ॥१॥ फिर अट्ठाईसवें द्वापर में मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने इन चार पाद वाले एक वेद के चार विभाग किये ॥२॥ परम मेधावी वेदव्यास ने जैसे उनका विभाग किया, वैसे ही मैंने तथा अन्यान्य वेद-व्यासों ने भी किया था ॥३॥ इसलिये हे द्विजश्रेष्ठ ! सब चतुर्युगियों में इन्हीं शाखा-भेदों वाले वेद का पाठ होता हुआ समझो ॥४॥ भगवान् कृष्ण द्वैपायन को साक्षात् नारायण ही मानो क्योंकि भगवान् नारायण के अतिरिक्त किस में महाभारत रचने की सामर्थ्य हो सकती है ? ॥५॥ हे मैत्रेयजी ! द्वापर में मेरे महात्मा पुत्र कृष्ण द्वैपायन वेदों को जिस प्रकार विभक्त किया था, उसे अब यथातथ्य सुनो ॥६॥ ब्रह्माजी की प्रेरणा से जब उन्होंने वेदों का विभाग करना चाहा, तब उन्होंने वेदाध्ययन में समर्थ चार शिष्यों को इस कार्य में नियुक्त किया ॥७॥

ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ॥८॥
जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।
सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्वेदव्यासस्य धीमतः ॥९॥
रोमहर्षणनामानं महाबुद्धिं महामुनिः ।
सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयोः ॥१०॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥११॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥१२॥
ततस्स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान्मुनिः ।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः ॥१३॥

इन चार शिष्यों में से पैल नामक शिष्य को उन महामुनि ने ऋग्वेद दिया। फिर वैशम्पायन को यजुर्वेद और जैमिनि को सामवेद का अध्ययन

कराया। उन्होने अपने सुमन्तु नामक शिष्य को अथर्ववेद मे पारगत किया ॥८-९॥ इनके अतिरिक्त सूत जाति मे उत्पन्न रोमहर्षण नाम महा मेधावी को व्यासजी ने इतिहास-पुराण के विद्यार्थी के रूप मे शिष्य बनाया ॥१०॥ पहिले यजुर्वेद एक ही था। उन्होने उसके चार विभाग किये, इसलिये उसमें चातुर्होत्र की प्रवृत्ति हुई और इसी विधि से उन्होने यज्ञो के अनुष्ठानों को व्यवस्थित किया ॥११॥ व्यासजी ने यजुर्वेद से अध्वर्यु का कर्म निश्चय किया, ऋग्वेद से होता का कर्म कल्पित किया, सामवेद से उद्गाता के कर्म की और अथर्ववेद से ब्रह्मा के कर्म की स्थापना की ॥१२॥ फिर उन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद की श्रुतियो का उद्धार करके ऋग्यजु साम की श्रुतियों से सामवेद की रचना की ॥१३॥

राज्ञा चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि च प्रभु ।
कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्व च यथास्थिति ।१४।
सोऽयमेको यथा वेदस्तरुस्तेन पृथक्कृत ।
चतुर्धाथ ततो जात वेदपादपकाननम् ।१५।
विभेद प्रथम विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम् ।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद्बाष्कलाय च सहिते ।१६।
चतुर्धा स विभेदाथ बाष्कलोऽपि च सहिताम् ।
बोध्यादिभ्यो ददौ ताश्च शिष्येभ्यस्स महामुनि ।१७।
बोध्याग्निमाढको तद्वद्याज्ञवल्क्यपराशरौ ।
प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्ते जगृहुर्मुने ।१८।
इन्द्रप्रमितिरेका तु सहिता स्वसुत तत ।
माण्डुकेय महात्मान मैत्रेयाध्यापयत्तदा ।१९।
तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्य पुत्रशिष्यक्रमाद्ययौ ।
वेदमित्रस्तु शाकल्य सहिता तामधीतवान् ।२०।

हे मैत्रेयजी ! अथर्ववेद के द्वारा उन वेदव्यास ने समस्त राजकर्म की ब्रह्मत्व की व्यवस्था की ॥१४॥ इस प्रकार उन्होंने एक वेदरूप वृक्ष के चार भाग किये और उन चारो भागों से वेद रूपी वृक्षों का वन ही लग गया ॥१५॥

प्रथम पैल ने ऋग्वेद रूपी वृक्ष को दो भागों में बाँटा और अपने शिष्य इन्द्र-प्रमिति और वाष्कल को उनका अध्ययन कराया ॥१६॥ वाष्कल ने भी अपनी शाखा के चार भाग करके उन्हें अपने बोध्य आदि शिष्यों को पढ़ाया ॥१७॥ हे मुने ! वाष्कल की शाखा की जो चार प्रतिशाखाएँ हुईं, उन्हें उनके शिष्य बोध्य, अग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशर ने ग्रहण किया ॥१८॥ हे मैत्रेयजी ! इन्द्रप्रमिति ने अपनी प्रति शाखा का अध्ययन अपने पुत्र माण्डुकेय को कराया ॥१९॥ इस प्रकार शिष्य और शिष्य के भी शिष्य के क्रम से उस शाखा की उनके पुत्र और शिष्यों ने वृद्धि की। इसी शिष्य-परम्परा में शाकल्य वेदमित्र ने उस संहिता का अध्ययन किया ॥२०॥

चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः ।
तस्य शिष्यास्तु ये पञ्च तेषां नामानि मे शृणु ।२१।
मुद्गलो गोमुखश्चैव वात्स्यश्शालीय एव च ।
शरीरः पञ्चमश्चासीन्मैत्रेय सुमहामतिः ।२२।
संहितात्रितयं चक्रे शाकपूर्णस्तथेतरः ।
निरुक्तमकरोत्तद्वच्चतुर्थं मुनिसत्तम ।२३।
क्रौञ्चो वैतालिकस्तद्वद्बलाकश्च महामुनिः ।
निरुक्तकृच्चतुर्थोऽभूद्वेदवेदाङ्गपारगः ।२४।
इत्येताः प्रतिशाखाभ्यो ह्यनुशाखा द्विजोत्तम ।
वाष्कलश्चापरास्तिस्रस्संहिताः कृतवान्द्विज ।२५।
शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजवः ।
इत्येते बह्वृचाः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः ।२६।

इसके पश्चात् शाकल्य वेदमित्र ने उस शाखा की पाँच अनुशाखाएँ और अपने पाँच शिष्यों को उनका अध्ययन कराया। अब उनके नाम सुनो ।२१। मुद्गल, गोमुख, वात्स्य, शालीय और पाँचवें अत्यंत बुद्धिमान शरीर थे ।२२। हे मुने ! उनके एक अन्य शिष्य शाकपूर्ण ने तीन वेद संहिताओं तथा एक निरुक्त ग्रन्थ को रचा था ॥२३॥ महामुनि क्रौंच, वैतालिक और बलाक नामक उनके शिष्यों ने तीनों संहिताओं का अध्ययन किया तथा उनके एक चतुर्थ शिष्य ने

वेद-वेदाङ्ग में पारंगता प्राप्त की और निघण्टु की रचना की ॥२४॥ इस प्रकार वेद-वृक्ष की शाखाओं से प्रति शाखाएँ और उनसे भी अनुशाखाएँ उत्पन्न हुईं। हे द्विजोत्तम ! बाष्कल ने अन्य तीन संहिताओं की भी रचना की थी ॥२५॥ कालायनि, गार्ग्य और कथा जव उनके शिष्य थे। जिन्होंने इन संहिताओं का प्रसार किया, वे बह्वृच कह कर विख्यात हुए ॥२६॥



पाँचवाँ अध्याय

यजुर्वेदतरोश्शाखास्सप्तविंशन्महामुनि ।
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ।१।
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
याज्ञवल्क्यस्तु तत्राभूद्ब्रह्मरातसुतो द्विज ।२।
शिष्य परमधर्मज्ञो गुरुवृत्तिपरस्सदा ।
ऋषिर्योऽद्य महामेरौ समाजे नागमिष्यति ।३।
तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति ।
पूर्वमेव मुनीगणैस्समयो य कृतो द्विज ।४।
वैशम्पायन एकस्तु त व्यतिक्रान्दवास्तदा ।
स्वस्रीय बालक सोऽय पदा स्पृष्टमघातयत् ।५।
शिष्यानाह स भो शिष्या ब्रह्महत्यापह व्रतम् ।
चरध्व मत्कृते सर्वे न विचार्यमिद तथा ।६।
अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्भगवन्द्विजैः ।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिद व्रतम् ।७।

हे महामुने ! व्यास-शिष्य वैशम्पायन जी ने यजुर्वेद रूपी वृक्ष की सत्ताईस शाखाओं को रचा ॥१॥ वे शाखाएँ उन्होंने अपने शिष्यों को पढ़ाईं तथा शिष्यों ने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया। हे विप्र ! उनका एक परमधार्मिक

शिष्य ब्रह्मरात-पुत्र याज्ञवल्क्य था। जो सदा ही गुरु-सेवा में तत्पर रहता था। जो महामेरु स्थित हमारे समाज में सम्मिलित न होगा, उसे सात रातों में ब्रह्महत्या लगेगी। इस प्रकार मुनियों ने पहले निश्चित किया था, परन्तु उनके उस नियम का सर्व प्रथम वैशम्पायन ने ही उल्लंघन किया था। इसके पश्चात् उसका चरण छू जाने मात्र से उसके भानजे की मृत्यु हो गई ॥२-५॥ तब वह अपने शिष्यों से बोले—हे शिष्यो ! तुम किसी प्रकार का विचार न करते हुए मेरी ब्रह्म हत्या को दूर करने के निमित्त व्रत करो ॥६॥ इस पर याज्ञवल्क्य जी ने कहा—हे भगवन् ! यह ब्राह्मण अल्प तेज वाले हैं, इन्हें कष्ट देने से क्या लाभ है ? मैं ही अकेला व्रत का अनुष्ठान करूँगा ॥७॥

ततः क्रुद्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामुनिम् ।
मुच्यतां यत्त्वयाधीतं मत्तो विप्रावमानक ।८।
निस्तेजसो वदस्येनान्यत्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान् ।
तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा ।९।
याज्ञवल्क्यस्ततः प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम् ।
ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज ।१०।
इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः ।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः ।११।
यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज ।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः ।१२।
ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं गुरुणा चोदितैस्तु यैः ।
चरकाध्वर्यवस्ते तु चरणान्मुनिसत्तम ।१३।
याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेय प्राणायामपरायणः ।
तुष्टाव प्रयतस्सूर्यं यजूंष्यभिलषंस्ततः ।१४।

याज्ञवल्क्य की बात से वैशम्पायनजी क्रोधित हो गये और उन्होंने उन महामुनि याज्ञवल्क्य जी से कहा—अरे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले मूर्ख ! तूने मुझसे जो कुछ भी पढ़ा है, उस सब का त्याग करदे ॥८॥ तुम इन सब विप्र पुंगवों को निस्तेज कहता है, इसलिये तेरे जैसे आज्ञा भंग करने वाले

शिष्य से मैं कोई प्रयोजन नही रखता ॥६॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे ब्रह्मन् ! मैंने तो आपकी भक्ति के वश ही यह बात कही थी, अब मुझे भी आपसे कुछ प्रयोजन नही है, आपसे जो कुछ मैंने पढ़ा था, वह सब यह उपस्थित है ॥१०॥ श्री पराशर जी ने कहा—यह कह कर महामुनि याज्ञवल्क्यजी रुधिर से लथपथ यजुर्वेद मूर्तिमान रूप मे वमन करके उन्हे दिया और अपनी इच्छानुसार वहाँ से चले गये ॥११॥ हे द्विज ! याज्ञवल्क्यजी के द्वारा वमन की हुई उन यजुर्वेद की श्रुतियो को अन्य शिष्यो ने तीतर का रूप धारण कर ग्रहण किया, इसीलिये वे सब शिष्य तैत्तिरीय संज्ञक हुए ॥१२॥ हे मुनिवर ! गुरु की प्रेरणा से जिन ब्राह्मणो ने ब्रह्म हत्या को नष्ट करने वाले व्रत का अनुष्ठान किया था, वे व्रत करने के कारण चरकाध्वर्यु कहे गये ॥१३॥ फिर याज्ञवल्क्यजी ने भी यजुर्वेद की कामना से प्राणायाम परायण रह कर सूर्य का स्तवन किया ॥१४॥

नमस्सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमिततेजसे ।
ऋग्यजुस्सामभूताय त्रयीधाम्ने च ते नम ।१५।
नमोऽग्नीषोमभूताय जगत कारणात्मने ।
भास्कराय पर तेजस्सौषुम्नरुचिबिभ्रते ।१६।
कलाकाष्ठानिमेषादिकालज्ञानात्मरूपिणे ।
ध्येयाय विष्णुरूपाय परमाक्षररूपिणे ।१७।
बिभर्त्ति यस्सुरगणानाप्यायेन्दु स्वररश्मिभि ।
स्वधामृतेन च पितॄ स्तस्मै तृप्त्यात्मने नम ।१८।
हिमाम्बुघर्मवृष्टीना कर्ता भर्ता च य प्रभु ।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमस्सूर्याय वेधसे ।१९।
अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगत्पति ।
सत्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते ।२०।
सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवाप शुद्धिकारणम् ।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते ।२१।

याज्ञवल्क्यजी ने कहा—अमित तेजोमय, मोक्ष द्वार स्वरूप, वेदत्रयी रूपी तेज से सम्पन्न तथा ऋक्, यजु और साम के साक्षात् रूप सूर्य भगवान्

को नमस्कार है ॥१५॥ अग्नि और चन्द्रमा रूपी, विश्व के कारण और सुषुम्न नामक परम तेज के धारक भगवान् भास्कर को नमस्कार है ॥१६॥ कला, काष्ठा, निमेषादि काल ज्ञान के कारण रूप और चिन्तनीय परब्रह्म विष्णु मय श्री सूर्यदेव को नमस्कार है ॥१७॥ जो अपनी किरणों द्वारा चन्द्रमा को पुष्ट कर सुधा से देवताओं को तथा स्वधा से पितरों को तृप्त करते हैं, उन तृप्ति रूप भगवान् सूर्य को नमस्कार है ।१८। जो शीत, वर्षा, ग्रीष्म आदि के कर्त्ता तथा विश्व के पोषक हैं, उन त्रिकाल मूर्ति भगवान् सूर्य को नमस्कार है ॥१९॥ जो जगत्पति इस सम्पूर्ण संसार के अन्धकार को नष्ट करते हैं, उन सत्वधामधर विवस्वान् को नमस्कार है ॥२०॥ जिनके उदय होने पर ही मनुष्यगण सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा जल भी उनके उदय हुए बिना शुद्धि करने वाला नहीं होता, उन भास्वान् को नमस्कार है ॥२ ॥

स्पृष्टो यदंशुभिर्लोक क्रियायोग्यो हि जायते ।
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नम ।२२।
नम सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीना नमो नम ।२३।
हिरण्मय रथ यस्य केतवोऽमृतवाजिन ।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुष त नमाम्यहम् ।२४।
इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानस्य वै रवि ।
वाजिरूपधर प्राह व्रियतामिति वाञ्छितम् ।२५।
याज्ञवल्क्यस्तदा प्राह प्रणिपत्य दिवाकरम् ।
यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ।२६।
एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान्रवि ।
अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरु ।२७।
यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रैर्द्विजोत्तम ।
वाजिनस्ते समाख्याता सूर्योऽप्यश्वोऽभवद्यत ।२८।
शाखाभेदास्तु तेषा वै दश पञ्च च वाजिनाम् ।
काण्वाद्यास्तु महाभाग याज्ञवल्क्या प्रकीर्तिता ।२९।

जिनकी किरणों के स्पर्श होने पर ही संसार कर्मों का अनुष्ठान करने के योग्य होता है, उन पवित्रता के कारण, शुद्ध स्वरूप को नमस्कार है ॥२२॥ सवितादेव, सूर्य, भास्कर और विवस्वान् को नमस्कार है, देवादि सब भूतों के आदिभूत भगवान् आदित्य को नमस्कार है ॥२३॥ जिनका हिरण्मय रथ और ध्वजाएँ हैं, अमरत्व प्राप्त अश्व वहन करते हैं और जो त्रिभुवन को प्रकाशित करने में नेत्र स्वरूप हैं, उन सूर्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥ श्री पराशर जी ने कहा—याज्ञवल्क्यजी द्वारा इस प्रकार स्तुत होने पर भगवान् सूर्य अश्व रूप से प्रकट हुए और उनसे बोले कि तुम अपना इच्छित वर माँगो ॥२५॥ यह देख कर याज्ञवल्क्यजी ने प्रणाम पूर्वक उनसे निवेदन किया—आप मुझे वे यजुः श्रुतियाँ प्रदान करें, जिनका ज्ञान मेरे गुरुजी को भी न हो ॥२६॥ याज्ञवल्क्यजी के ऐसा कहने पर उन्होंने उन्हें अयातयाम नामक यजु. श्रुतियों का उपदेश दिया। उन श्रुतियों का उनके गुरु वैशम्पायनजी को भी ज्ञान नहीं था ॥२७॥ हे द्विज श्रेष्ठ! भगवान् सूर्य ने उन श्रुतियों का उपदेश अश्व रूप में प्रकट होकर दिया था इसलिये उन श्रुतियों को पढ़ने वाले ब्राह्मण वाजी संज्ञक हुए ॥२८॥ हे महाभाग! उन वाजि-श्रुतियों की काण्व आदि पद्रह शाखाएँ है, जो महर्षि याज्ञवल्क्यजी द्वारा प्रवृत्त की हुई बताई जाती हैं ॥२९॥



छठा अध्याय

सामवेदतरोश्शाखा व्यासशिष्यस्स जैमिनि ।
क्रमेण येन मैत्रेय विभेद श्रृणु तन्मम ।१।
सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुकर्मास्याप्भूत्सुत ।
अधीतवन्तौ चैकैका संहिता तो महामती ।२।
सहस्रसंहिताभेद सुकर्मा तत्सुतस्तत ।
चकार त च तच्छिष्यौ जगृहाते महाव्रतौ ।३।

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्पिञ्जिश्च द्विजोत्तम ।
उदीच्यास्सामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चशताः स्मृताः ।४।
हिरण्यनाभात्तावत्यस्संहिता यैर्द्विजोत्तमैः ।
गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः ।५।
लोकाक्षिर्नौधमिश्चैव कक्षीवाँल्लाङ्गलिस्तथा ।
पौष्पिञ्जिशिष्यास्तद्भेदैस्संहिता बहुलीकृताः ।६।
हिरण्यनाभशिष्यस्तु चतुर्विंशतिसंहिताः ।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ।७।
तैश्चापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्बहुली कृतः ।
अथर्वणामथो वक्ष्ये संहितानां समुच्चयम् ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेय जी ! जिस क्रम से व्यास शिष्य जैमिनि ने सामवेद की शाखाओं को विभक्त किया था अब उसे श्रवण करो ॥१॥ जैमिनि का पुत्र सुमन्तु और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ । उन दोनों श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुत्र-पौत्र ने सामवेद की एक-एक शाखा को पढ़ा ॥२॥ फिर सुमन्तु-पुत्र सुकर्मा ने अपनी सामवेद संहिता के एक हजार शाखा-भेद किये, जिन्हें उनके कौसल्य, हिरण्यनाभ और पौष्पिञ्जि नामक महाव्रती शिष्यों ने ग्रहण किया । हिरण्यनाभ के जो पाँच सौ शिष्य हुए, वे सब उदीच्य सामग नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३४॥ और जिन अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने हिरण्यनाभ से इतनी ही संहिताएँ और ग्रहण की थीं, वे सब प्राच्यसामग नाम से विख्यात हुए । ॥५॥ पौष्पिञ्जि के शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवान् और लाङ्गलि हुए । उनके शिष्य तथा प्रशिष्यों ने भी अपनी-अपनी संहिताओं की शाखा करके उनका विस्तार किया ॥६॥ हिरण्यनाभ के एक अन्य शिष्य महामुनि कृति ने अपने शिष्यों को सामवेद की चौबीस संहिताओं का अध्ययन कराया ॥७॥ उन शिष्यों ने भी सामवेद की इन शाखाओं को बहुत बढ़ाया । अब मैं अथर्वेद संहिताओं के समुच्चय को कहता हूँ ॥८॥

अथर्ववेदं स मुनिस्सुमन्तुरमितद्युतिः ।
शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि तं द्विधा ।
कृत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ।९।

देवदर्शस्य शिष्यास्तु मेधो ब्रह्मबलिस्तथा ।
शौल्कायनि पिप्पलादस्तथान्यो द्विजसत्तम ।१०।
पथ्यस्यापि त्रयश्शिष्या कृता यैर्द्विज संहिता ।
जाबालि कुमुदादिश्च तृतीयश्शौनको द्विज ।११।
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेका तु बभ्रवे ।
द्वितीया संहिता प्रादात्सैन्धवाय च संज्ञिने ।१२।
सैन्धवान्मुञ्जिकेशश्च द्वेधा भिन्नस्त्रिधा पुन ।
नक्षत्र कल्पो वेदाना संहिताना तथैव च ।१३।
चतुर्थस्स्यादाङ्गिरसश्शान्तिकल्पश्च पञ्चम ।
श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहिताना विकल्पका ।१४।

सुमन्तु मुनि ने अथर्ववेद का अध्ययन सब से पहले अपने शिष्य कबन्ध को कराया, जिसने उसके दो विभाग करके उन्हे अपने शिष्य देवदर्श और पथ्य को दिया ॥६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! देवदर्श के शिष्य मेध, ब्रह्मबलि, शौल्कायन और पिप्पलाद हुए ॥१०॥ पथ्य के तीन शिष्य जाबालि, कुमुदादि और शौनक हुए, जिन्होने संहिताओ को शाखा रूप मे विभक्त किया ॥११॥ शौनक ने भी अपनी संहिता के दो विभाग किये उनमे से एक बभ्रु को और दूसरी सैन्धव को प्रदान की ॥१२॥ सैन्धव से मुञ्जिकेश ने उसका अध्ययन किया और उसके प्रथम दो और फिर तीन विभाग किये । नक्षत्र कल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प चौथा आंगिरस कल्प और पाँचवाँ शान्ति कल्प — इन पाँच कल्पो की उन्होंने रचना की जो अथर्व-संहिताओ मे सर्वोत्कृष्ट मानी गई हैं ॥१३-१४॥

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि कल्पशुद्धिभि ।
पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारद ।१५।

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षण ।
पुराणसंहिता तस्मै ददौ व्यासो महामति ।१६।

सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुश्शांशपायन ।
अकृतव्रणसावर्णी षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ।१७।

यदेतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया ।
एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम् ।२६।
सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु ।
कथ्यते भगवान्विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम ।२७।

इसी प्रकार आठवाँ पुराण आग्नेय है । नौवाँ भविष्य पुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्त तथा ग्यारहवाँ लिंग पुराण कहा जाता है ।।२२।। बारहवाँ वाराह तेरहवाँ स्कान्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म, सोलहवाँ मात्स्य, सत्रहवाँ गारुड़ और अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है । हे महामुने ! अठारह महापुराण यही हैं ।।२३-२४।। इनके अतिरिक्त और बहुत-से उपपुराण मुनिजनों ने बताये हैं । इन सबमें सृष्टि, प्रलय, देवादि के वंशों का वर्णन, मन्वन्तर और विभिन्न राजवंशों के वृतान्त हैं ।।२५।। हे मैत्रेयजी ! मैं तुम्हें जो पुराण इस समय सुना रहा हूँ वह पाद्मपुराण के पश्चात् कहा गया वैष्णव नामक महापुराण है ।।२६।। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तरादि का वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल भगवान् विष्णु का ही यश कीर्तन किया गया है ।।२७।।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।२८।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ।२९।
ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः ।
राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ।३०।
इति शाखास्समाख्याताश्शाखाभेदास्तथैव च ।
कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतुस्तथोदितः ।३१।
सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदास्समाः स्मृताः ।
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज ।३२।
एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
मैत्रेय वेदसम्बन्धः किमन्यत्कथयामि ते ।३३।

सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतु यमस्य वशवर्तिन ।
न भवन्ति नरा येन तत्कर्म कथयस्व मे ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे गुरो ! मेरे समस्त प्रश्न का आपने यथावत् उत्तर दिया है। अब एक बात और सुनने की इच्छा है उसे आप मेरे प्रति कहिये ॥१॥ हे महामुने ! इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जो सात द्वीप, सात पाताल और सात लोक हैं वे सब स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर प्राणियों से परिपूर्ण हैं ॥२-३॥ एक अ गुल का अष्टमांश भी ऐसा नहीं है जहाँ कम क ब धन म बँधे हुए जीवों का निवास न हो ॥४॥ परन्तु हे भगवन् ! जब आयु का अ त होता है, तब ये सब यम के वश मे पडकर उन्हीं के निर्देशन म नरकादि की विभिन्न यन्त्रणाएँ भोगते हैं ॥५॥ फिर पाप भोग के नि शेष होने पर उन्हे देवादि योनियो मे भ्रमण करना होता है—सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं ॥६॥ इसलिये, आप मुझे उस कर्म को बताइये, जिसे करके मनुष्य को यमराज के वश मे नही पडना होता, मुझे इसी के जानने की इच्छा है ॥७॥

अयमेव मुने प्रश्नो नकुलेन महात्मना ।
पृष्ट पितामह प्राह भीष्मो यत्तच्छृणुष्व मे ।८।
पुरा ममागतो वत्स सखा कालिङ्गको द्विज ।
स मामुवाच पृष्टो वै मया जातिस्मरो मुनि ।६।
तेनाख्यातमिद सर्वमित्थ चैतद्भविष्यति ।
तथा च तदभूद्वत्स यथोक्त तेन धीमता ।१०।
स पृष्टश्च मया भूय श्रद्धानेन वै द्विज ।
यद्यदाह न तद्दृष्टमन्यथा हि मया क्वचित् ।११।
एकदा तु मया पृष्टमेतद्यद्भवतोदितम् ।
प्राह कालिङ्गको विप्रस्स्मृत्वा तस्य मुनेर्वच ।१२।
जातिस्मरेण कथितो रहस्य परमो मम ।
यमकिङ्करयोर्योऽभूत्सवादस्त ब्रवीमि ते ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! ऐसा ही प्रश्न पितामह भीष्म से महात्मा नकुल ने किया था। उन्होंने उसका जो उत्तर दिया, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो ॥८॥ भीष्मजी ने कहा—हे वत्स ! पहिले की बात है—मेरे पास कलिंग देश का एक ब्राह्मण आया। वह मेरा मित्र था। उसने मुझसे कहा—मेरे प्रश्न करने पर पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जानने वाले एक मुनि ने मुझे बताया था कि यह सब बातें अमुक-अमुक प्रकार होंगी। हे वत्स ! उस मतिमान ने जो बात जिस प्रकार बताई, वह ज्यों प्रकार हुई ॥९-१०॥ इससे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई और मैंने उससे कुछ अन्य प्रश्न किये। उनका भी जो उत्तर उस द्विजश्रेष्ठ ने दिया, उन सबके विपरीत कभी कुछ होता मैंने नहीं देखा ॥११॥ जो बात तुमने मुझसे पूछी है, वही बात एक दिन मैंने उस कलिंग देशीय ब्राह्मण से पूछी, तब उस ब्राह्मण ने उस मुनि के वचनों का स्मरण करके मुझे बताया कि उस जातिस्मर मुनि ने यमराज और उनके दूतों के मध्य हुए संवाद के अत्यन्त गूढ़ रहस्य को मुझे सुनाया। उसे ही मैं वैसे का वैसा तुम्हें सुनाता हूँ ॥१२-१३॥

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥१४॥
अहममरवरार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ॥१५॥
कटकमुकुटकर्णिकादिभेदैः कनकमभेदमपीष्यते यथैकम् ।
सुरपशुमनुजादिकल्पनाभिर्हरिरखिलाभिरुदीर्यते तथैकः ॥१६॥
क्षितितलपरमाणवोऽनिलान्ते पुनरुपयान्ति यथैकतां धरित्र्याः ।
सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते गुणकलुषेण सनातनेन तेन ॥१७॥
हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः ।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ॥१८॥
इति यमवचनं निशम्य पाशी यमपुरुषस्तमुवाच धर्मराजम् ।
कथय मम विभो समस्तधातुर्भवति हरेः खलु यादृशोऽस्य भक्तः ॥१९॥

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् २०
कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतस्तमेनम् ।
मनसि कृतजनार्दनं मनुष्य सततमवेहि हरेरतीवभक्तम् ।२१।

कालिंग ने कहा—यमराज ने अपने अनुचर को हाथ पाश धारण किये देखकर, उसके कान में कहा—हे अनुचर ! मैं भगवान् विष्णु के भक्तों का ही स्वामी हूँ, इसलिये भगवान् के शरणागतों को मत पकड़ना ॥१४॥ देवताओं के पूजनीय विधाता ने मुझे 'यम' नामक पद देकर लोकों के पाप-पुण्य के विचारार्थ नियुक्त किया है । मैं अपने गुरु श्रीहरि के आधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ । वे भगवान् श्रीहरि मुझ पर भी शासन करने में समर्थ हैं ॥१५॥ जैसे एक ही स्वर्ण कटक, मुकुट, कर्णिकादि के भेद से अनेक रूप वाला दिखाई देता है, वैसे ही एक ही श्रीहरि के देवता, मनुष्य और पशु आदि के रूप में नाना भेद कल्पित किये जाते हैं ॥१६॥ जैसे वायु के शान्त होने पर, उससे उड़ते हुए परमाणु भूमि में मिल जाते हैं, वैसे ही गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुए सब देव, मनुष्य, पशु आदि अन्त में उसी सनातन ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ॥१७॥ जो मनुष्य देवताओं द्वारा वन्दित भगवान् के चरण कमलों की वन्दना परमार्थ बुद्धि से करता है, वह घृताहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान पाप-बन्धन से छूट जाता है । तुम ऐसे पुरुष को दूर से देखकर ही वहाँ से चल देना ॥१८॥ यमराज की बात सुनकर पाशधारी उस यमदूत ने उनसे पूछा—हे विभो ! सबके स्वामी भगवान् श्रीहरि का भक्त किस प्रकार का होता है, यह मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥१९॥ यमराज ने कहा—जो अपने वर्णाश्रम धर्म से विचलित नहीं होता, अपने सुहृदों और वैरियों में समान भाव रखता है, किसी के धन का हरण नहीं करता तथा किसी जीव की हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता, उस स्वच्छ चित्त मनुष्य को भगवान् विष्णु का भक्त समझो ॥२०॥ जिस स्वच्छ बुद्धि का चित्त कलियुग के कल्मष से मलिन नहीं हुआ, जिसने अपने हृदय में सदैव भगवान् श्रीजनार्दन को धारण कर रखा है, उस मनुष्य को भगवान् श्रीहरि का अतीव भक्त मानो ॥२१॥

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्ध्या तृणमिव यस्समवैति वै परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवर तमवेहि विष्णुभक्तम् ।२२।
स्फटिकगिरिशिलामल: क विष्णुर्मनसि नृणां क च मत्सरादिदोषः ।
न हि तुहिनमयूखरश्मिपुञ्जे भवति हुताशनदीप्तिज: प्रताप: ।२३।
विमलमतिरमत्सर: प्रशान्तःशुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूत: ।
प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो वसति सदा हृदि तस्य वासुदेव: ।२४।
वसति हृदि सनातने च तस्मिन् भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूप: ।
क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्त: कथयति चारुतयैव शालपोत: ।२५।
यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।
अपगतमदमानमत्सराणां त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ।२६।
हृदि यदि भगवाननादिरास्ते हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।
तदघमघविघातकर्तृ भिन्नं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ।२७।
हरति परधनं निहन्ति जन्तून् वदति तथानृतनिष्ठुराणि यश्च ।
अशुभजनितदुर्मदस्य पुंस: कलुषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्त: ।२८।

जो निर्जन स्थान में पराये स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है और भगवान् श्रीहरि का अनन्य भाव से निरन्तर चिन्तन करता है, उस मनुष्य श्रेष्ठ को भगवान् का भक्त समझो ॥२२॥ कहाँ तो स्फटिक शिला के तुल्य अत्यन्त स्वच्छ भगवान् श्रीहरि और कहाँ मनुष्य के मन में सदा बने रहने वाले राग द्वेषादि दोष चन्द्रमा के रश्मिजाल में अग्नि के तेज जैसी गर्मी का रहना कभी भी सम्भव नहीं है ॥२३॥ जो मनुष्य स्वच्छ चित्त, मत्सरता-हीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियों का प्रेमी, सुहृद तथा हित की बात कहने वाला, निरभिमान और माया से अलग रहता है, उसके हृदय में भगवान् श्रीवासुदेव का सदा निवास रहता है ॥२४॥ जब वे सनातन भगवान् हृदय में प्रतिष्ठित होते हैं, तब वह मनुष्य संसार के लिये शान्त रूप हो जाता है, जैसे नवीन शालिवृक्ष अपने सौन्दर्य से ही अपने में भरे हुए श्रेष्ठ रस का मान करा देता है ॥२५॥ हे दूत ! जिनके पाप-समूह यम नियम से नष्ट हो गये और जिनका हृदय निरन्तर भगवान् अच्युत में रमा रहता है तथा जिनमें मद

और मात्सर्य नाम मात्र को भी शेष नहीं है, उन मनुष्यों को दूर से छोड़ देना ॥२६॥ जिसके हृदय में खड्ग, शंख, गदा आदि के धारण करने वाले अव्ययात्मा श्रीहरि निवास करते हैं, तो उनके निवास से उसके सम्पूर्ण पापों का क्षय हो जाता है। भला सूर्य के स्थित रहते हुए अँधेरा कैसे रह सकता है ? ॥२७॥ पर-धन का अपहरण करने वाले, प्राणियों के हिंसक, मिथ्या और कटु भाषी अथवा अशुभ कर्मों के करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य के हृदय में अनन्त भगवान् कभी भी निवास नहीं करते ॥२८॥

न सहति परसम्पद विनिन्दा कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।
न जयति न ददाति यश्च सन्त मनसि न तस्य जनार्दनोऽधमस्य ।२६।
परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे ।
शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णा तमधमचेष्टमवेहि नास्य भक्तम् ।३०।
अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तस्सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयुक्तः पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ।३१।
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरस्स एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ।३२।
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ।३३।
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथ वा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्य ।३४।

जो मतिहीन मनुष्य पराये वैभव से ईर्ष्या करता है, परायी निन्दा में लगा रहता है, सज्जनों का तिरस्कार करता है, भगवान् श्रीहरि का पूजन नहीं करता अथवा दान नहीं देता, उस अधम के हृदय में भगवान् श्रीजनार्दन कभी भी निवास नहीं करते ॥२६॥ जो दुष्ट मति मनुष्य अपने परम सुहृद, बन्धु-बाधव, स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता, सेवकादि के प्रति धन की तृष्णा दिखाता है, उस पाप का आचरण करने वाले को तुम कभी भी भगवद्भक्त मत समझना ॥३०॥ जो खोटी बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्या कर्मों में तत्पर रहता है, नीच मनुष्यों के साथ रहता या उन जैसा आचरण करता है तथा पाप युक्त

कर्मों के बन्धन में दिनों दिन बँधता जाता है उसे मनुष्य के रूप में पशु ही समझो। ऐसा पुरुष कभी भी भगवान् का भक्त नहीं हो सकता ॥३१॥ तथा भगवान् के हृदय में स्थित होने के कारण, जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गई है कि मैं और यह समस्त प्रपंच एक मात्र वासुदेव ही हैं उन मनुष्यों को तुम दूर से ही त्याग देना ॥३२॥ जो मनुष्य 'हे पद्माक्ष ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शङ्ख-चक्र पाणे ! हमें शरण दीजिये' इस प्रकार भगवान् को पुकारते हों उन पाप-रहित मनुष्यों को तुम दूर से ही छोड़ देना। ॥३३॥ जिस पुरुषवर के अन्तःकरण में उन अव्ययात्मा भगवान् का निवास रहता है, वह जहाँ तक देखता है, वहाँ तक प्रभु-चक्र के प्रभाव से तुम या मैं अपने बल-वीर्य के क्षीण हो जाने के कारण नहीं पहुँच सकते, क्योंकि वह तो अन्य लोकों का अधिकारी है ॥३४॥

इति निजभटशासनाय देवो रवितनयस्स किलाह धर्मराजः।
यम कथितमिदं च तेन तुभ्यं कुरुवर सम्यगिदं मयापि चोक्तम्
नकुलैतन्ममाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना।
कलिङ्गदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना ।३६।
मयाप्येतद्यथान्याय सम्यग्वत्स तवोदितम्।
यथा विष्णुमृते नान्यत्त्राणं संसारसागरे ।३६।
किङ्कराः पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा ।३८।
एतन्मुने समाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत्।
त्वत्प्रश्नानुगतं सम्यक्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।३६।

कालिंग ने कहा—हे कुरु श्रेष्ठ ! सूर्य पुत्र धर्मराज ने अपने दूत को इस प्रकार शिक्षामय आदेश दिया। उस जातिस्मर मुनि ने मुझे यह प्रसंग सुनाया था, जिसे मैंने यथावत् तुमसे कहा है ॥३५॥ भीष्मजी ने कहा—हे नकुल ! कलिंग देश से आये हुए उस ब्राह्मण ने प्रसन्नता सहित मुझ से यह सब कथा कही थी ॥३६॥ हे वत्स ! जिस प्रकार, इस संसार सागर में केवल भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी रक्षक जीव का नहीं हो सकता,

वह सब वृत्तान्त यथावत तुमसे कहा है ।।३७।। जिसका हृदय निरंतर श्री केशव भगवान् मे लगा है उसका यमराज, उनके दूत, उनकी पाश, उनका दण्ड तथा यातनाएँ कुछ भी अनिष्ट करने मे समर्थ नहीं हो सकते ।।३८।। श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसके समाधान स्वरूप मैंने तुम्हें स्वयं यमराज का कथन ही भले प्रकार सुना दिया है । अब और क्या सुनने की इच्छा करते हो, सो कहो ।।३९।।

आठवाँ अध्याय

भगवन्भगवान्देवः ससारविजिगीषुभिः ।
समाख्याहि जगन्नाथो विष्णुराराध्यते यथा ।१।
आराधिताच्च गोविन्दादाराधनपरैर्नरैः ।
यत्प्राप्यते फल श्रोतु तच्चेच्छामि महामुने ।२।
यत्पृच्छति भवानेतत्सगरेण महात्मना ।
और्वः प्राह यथा पृष्टस्तन्मे निगदतश्शृणु ।३।
सगरः प्रणिपत्यैनमौर्वं पप्रच्छ भार्गवम् ।
विष्णोराराधनोपायसम्बन्ध मुनिसत्तम ।४।
फल चाराधिते विष्णौ यत्पु सामभिजायते ।
स चाह पृष्टो यत्नेन तस्मै तन्मेऽखिलं शृणु ।५।
भौमं मनोरथं स्वर्गं स्वर्गिवन्द्यं च यत्पदम् ।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम् ।६।
यद्यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते ।
तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! संसार को जीतने की इच्छा वाले पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना किस प्रकार करते है, वह मुझे बताइये ।।१।।

हे महामुने ! उन भगवान् गोविन्द का आराधन करने पर, उन्हें जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे भी सुनने की मैं इच्छा करता हूँ ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! तुमने जो प्रश्न किया है, वैसा ही महात्मा सगर ने और्व ऋषि से किया था, तब उन ऋषि ने उन्हें जो उत्तर दिया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ॥३॥ हे मुनिवर ! सगर ने उन भृगुवंशी और्व को प्रणाम किया और उनसे भगवान् श्री हरि की आराधना-विधि और उसके प्राप्त होने वाले फल के विषय में प्रश्न किया। उनके प्रश्न का और्व ऋषि ने जो उत्तर दिया, उस सब को सावधानी से सुनो ॥४-५॥ और्व ने कहा—भगवान् विष्णु की आराधना करके मनुष्य पृथिवी विषयक सभी मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्ग में रहने वालों के लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद तथा परम निर्वाणपद भी पा लेता है ॥६॥ हे राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फल की जितनी अभिलाषा करता है, वह थोड़ा हो अथवा कितना भी अधिक हो, भगवान् श्री अच्युत की आराधना से उसे अवश्य ही सब मिल जाता है ॥७॥

यत्तु पृच्छसि भूपाल कथमाराध्यते हरिः ।
तदहं सकलं तुभ्यं कथयामि निबोध मे ॥८॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥९॥
यजन्यज्ञान्यजत्येनं जपत्येनं जपन्नृप ।
निघ्नन्नन्यान्हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ॥१०॥
तस्मात्सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः ।
आराध्यते स्ववर्णोक्तधर्मानुष्ठानकारिणा ॥११॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते ।
स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥१२॥
परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते ।
अन्योद्वेगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः ॥१३॥
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम् ।
न करोति पुमान्भूप तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥

हे मानवेन्द्र ! जो पुरुष किसी देहधारी को अथवा अन्य किसी जीव को पीड़ित नहीं करता या उसकी हिंसा नहीं करता उस पर श्री केशव भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१५॥ जो मनुष्य सदा ही देव, ब्राह्मण और गुरुजन की सेवा में लगा रहता है, उससे भगवान् गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१६॥ जो सभी प्राणियों का हित चिन्तन अपनी सन्तान के समान करता है, वह भगवान् श्रीहरि को सुख पूर्वक प्रसन्न कर लेता है ॥१७॥ जिसका मन रागादि दोषों से मलिन नहीं हुआ है, उस शुद्धचेता पुरुष पर भगवान् विष्णु सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥१८॥ हे नृपसत्तम ! शास्त्रों ने जिन जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन किया है, उन-उन के आचरण पूर्वक ही मनुष्य उन भगवान विष्णु की आराधना कर सकता है, अन्य प्रकार से नहीं । १९॥ सगर ने कहा—हे द्विजवर ! अब मैं सभी वर्ण-धर्मों और आश्रम धर्मों को सुनने की इच्छा करता हूँ, आप उन्हें कहने की कृपा करिये ॥२०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
त्वमेकाग्रमतिर्भूत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान् ।२१।
दानं दद्याद्यजेद्देवान्यज्ञैस्स्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ।२२।
वृत्त्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहादानं शुक्लार्थान्न्यायतो द्विज ।२३।
सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विज ।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ।२४।
ग्राव्णि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विजः ।
ऋतावभिगमः पत्न्या शस्यते चास्य पार्थिव ।२५।
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ।२६।
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ।२७।

हे राजन् ! तुमने श्रीहरि की आराधना कैसे की जाय, ऐसा जो प्रश्न किया है, वह सभी तुम्हें, बतलाता हूँ, यत्न पूर्वक सुनो ।८।। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला पुरुष ही भगवान् विष्णु की आराधना का अधिकारी है, उसके बिना उनकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती ।।६।। हे राजन् ! यजनकर्त्ता पुरुष उन्ही भगवान् का यजन करता है, जापक उन्ही का जप करता है तथा पराई हिंसा करने वाला भी उनकी ही हिंसा करता है, क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्व-भूतात्मक है ।।१०।। इसीलिये सदाचारी पुरुष को अपने वर्ण के अनुकूल धर्म का आचरण करते हुए भगवान् जनार्दन की ही उपासना करनी चाहिए ।।११।। हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपने अपने वर्ण धर्म के पालन पूर्वक विष्णु का आराधन करते हैं, किसी और प्रकार से नहीं करते ।।१२।। जो किसी की निन्दा, पैशुन्य और मिथ्या भाषण नहीं करता और किसी को खेदजनक वचन नहीं कहता, उस पर भगवान् केशव अवश्य ही प्रसन्न होते हैं ।।१३।। हे राजन् ! जो परनारी, पर-धन तथा पर हिंसा में कभी भी मन को नहीं लगाता, उससे भगवान् केशव सदा ही संतुष्ट रहते हैं ।।१४।।

न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिन ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशव ।१५।

देवद्विजगुरूणा च शुश्रूषासु सदोद्यत ।
तोष्यते तेन गोविन्द पुरुषेण नरेश्वर ।१६।

यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा ।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम् ।१७।

यस्य रागादिदोषेण न दुष्ट नृप मानसम् ।
विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा ।१८।

वर्णाश्रमेषु ये धर्माश्शास्त्रोक्ता नृपसत्तम ।
तेषु तिष्ठन्नरो विष्णुमाराधयति नान्यथा ।१९।

तदहं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषत ।
तथैवाश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान् ।२०।

हे मानवेन्द्र ! जो पुरुष किसी देहधारी को अथवा अन्य किसी जीव को पीड़ित नहीं करता या उसकी हिंसा नहीं करता उस पर श्री केशव भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१५॥ जो मनुष्य सदा ही देव, ब्राह्मण और गुरुजन की सेवा में लगा रहता है, उससे भगवान् गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१६॥ जो सभी प्राणियों का हित चिन्तन अपनी सन्तान के समान करता है, वह भगवान् श्रीहरि को सुख पूर्वक प्रसन्न कर लेता है ॥१७॥ जिसका मन रागादि दोषों से मलिन नहीं हुआ है, उस शुद्धचेता पुरुष पर भगवान् विष्णु सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥१८॥ हे नृपसत्तम ! शास्त्रों ने जिन-जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन किया है, उन-उन के आचरण पूर्वक ही मनुष्य उन भगवान विष्णु की आराधना कर सकता है, अन्य प्रकार से नहीं। १९॥ सगर ने कहा—हे द्विजवर ! अब मैं सभी वर्ण-धर्मों और आश्रम धर्मों को सुनने की इच्छा करता हूँ, आप उन्हें कहने की कृपा करिये ॥२०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
त्वमेकाग्रमतिर्भूत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान् ।२१।
दानं दद्याद्यजेद्देवान्यज्ञैस्स्वाध्यायतत्पर. ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ।२२।
वृत्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहादानं शुक्लार्थान्न्यायतो द्विज. ।२३।
सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विज. ।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ।२४।
ग्राव्णि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विज. ।
ऋतावभिगम. पत्न्या शस्यते चास्य पार्थिव ।२५
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा
यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव. ।२६।
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तत्रापि प्रथम. कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ।२७।

और्व ने कहा—मैं जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म को कहता हूं, उन्हें एकाग्र मन से सुनो ॥२०॥ ब्राह्मण को उचित है कि वह दान करे, यज्ञों से देवताओं का यजन करे, स्वाध्याय करे, नित्य स्नान, तर्पण तथा अग्न्याधानादि कर्मों को करे, ॥२१॥ अपनी वृत्ति के लिये यज्ञ करावे, शिक्षा दे तथा न्याय से उपार्जित धन में से ही न्याय के अनुकूल द्रव्य का संचय करे ।२३। कभी किसी का अहित-चिन्तन न करे और सदा सब जीवों के हित में तत्पर रहे । सब प्राणियों से मैत्रि-भाव रखना ब्राह्मण का परम धर्म कहा है ॥२४॥ पराये धन में और पाषाण में समान बुद्धि रखे । पत्नी का ऋतु काल में ही सेवन करे, यही ब्राह्मण के लिये उचित कर्म है ॥२५॥ क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान दे, नाना प्रकार के यज्ञों को करे और अध्ययन शील रहे ॥२६॥ शस्त्र-धारण पूर्वक पृथिवी की रक्षा करना ही क्षत्रिय की श्रेष्ठ आजीविका है, इनमें भी पृथिवी का परिपालन तो सर्वोत्कृष्ट ही है ॥२७॥

धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपा ।
भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ।२८।
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् ।
प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान्वर्णसंस्थां करोति य. ।२९।
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर ।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ।३०।
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ।३१।
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा ।३२।
शूद्रस्य सन्नतिश्शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ।३३।

पृथिवी का पालन करने से ही राजागण धन्य हो जाते हैं, क्योंकि पृथिवी पर जो यज्ञादि कर्म होते हैं, उनका अंश राजा को भी मिलता है ॥२८॥ जो राजा अपने वर्ण-धर्म के प्रति आस्थावान् होता है, वह दुष्टों को दण्ड और

साधुजन का पालन करने वाले अपने कर्म के प्रभाव से ही इच्छित लोकों को प्राप्त कर लेता है ॥२६॥ हे नरेश्वर ! लोक पितामह ब्रह्माजी ने वैश्यों के कर्म पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि—यह सब आजीविका के रूप दिये हैं। ॥३०॥ वैश्य के लिये भी अध्ययन, यज्ञ, दान और नित्य नैमित्तिकादि कर्म करना आवश्यक है ॥३१॥ शूद्र को द्विजातियों के प्रयोजनानुकूल कर्म करना चाहिये, वही उसकी आजीविका है इसके अतिरिक्त वस्तुओं का क्रय विक्रय या कारीगरी के कार्य से जीवनयापन करे ॥३२॥ नम्रता, शौच, सेवा, स्वामि भक्ति, मन्त्ररहित यज्ञ, अस्तेय सत्संग, और ब्राह्मण की रक्षा, शूद्र के यह प्रमुख कर्त्तव्य हैं ॥३३॥

दानं च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च ।
पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ।३४।
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहः ।
ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते ।३५।
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता ।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ।३६।
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर ।
अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ।३७।
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः ।
गुणास्तथापद्धर्मांश्च विप्रादीनामिमाञ्छृणु ।३८।
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि ।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्म न चैतयोः ।३९।
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव ।
तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसङ्करम् ।४०।
इत्येते कथिता राजन्वर्णधर्मा मया तव ।
धर्मानाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतो मे निशामय ।४१।

हे राजन् ! शूद्र के लिये भी दान देना बलिवैश्वदेव, नमस्कार और मन्त्र यज्ञों का अनुष्ठान करना, पितृ श्राद्धादि करना, अपने आश्रितों के परि

पालनार्थ सब वर्णों से धन ग्रहण करना और अपनी ही भार्या मे ऋतुगामी होना उचित कर्म है ॥३४-३५॥ हे राजन् ! इनके अतिरिक्त सब जीवो पर दया, तितिक्षा, अमानिता, सत्य, शौच, भगवाचरण, प्रियवादिता, मित्रता, अकृपणता, परदोष दर्शन-शून्यता आदि गुण तो सभी वर्णों द्वारा समान रूप से पालनीय हैं ॥३६-३७॥ सब वर्णों के यह सामान्य लक्षण कहे गये, अब इन विप्रादि चारो वर्णों के आपद्धर्म और गुणों को सुनो ॥३८॥ आपत्ति काल मे ब्राह्मण को क्षत्रिय या वैश्य की वृत्ति का अवलम्बन करना उचित है और क्षत्रिय को केवल वैश्य वृत्त का आश्रय लेना चाहिये। इनको शूद्र वृत्ति का आश्रय लेना कभी भी उचित नही है ॥३९॥ जब पुनः समर्थ हो जाय तो इन उपरोक्त वृत्तियो को छोड दे, क्योकि यह तो आपद्काल मे ही अवलम्बन करने योग्य है, अन्यथा कर्म संकरत्व की प्राप्ति होगी ॥४०॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने वर्ण धर्मों का वर्णन तुम्हे सुनाया, अब आश्रम धर्मों का जो निरूपण करता हूँ उसे यत्न से सुनो ॥४१॥



नवाँ अध्याय

बाल कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः।
गुरुगेहे वसेद्भूप ब्रह्मचारी समाहितः ॥१॥
शौचाचारव्रतं तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः।
व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ॥२॥
उभे सन्ध्ये रविं भूप तथैवाग्निं समाहितः।
उपतिष्ठेत्तदा कुर्याद् गुरोरप्यभिवादनम् ॥३॥
स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याते नीचैरासीत चासति।
शिष्यो गुरोर्नृपश्रेष्ठ प्रतिकूलं न सञ्चरेत् ॥४॥
तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरस्थितः।
अनुज्ञातश्च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ॥५॥

अवगाहेदप. पूर्वमाचार्येणावगाहिताः ।
समिज्जलादिकं चास्य कल्यं कल्यमुपानयेत् ।६।
गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य च ।
गार्हस्थ्यमाविशेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ।७।

और्व ऋषि ने कहा—बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिये ।।१।। वहाँ रह कर वह शौच और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालन पूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे ।।२।। हे राजन् ! दोनों सन्ध्याओं में एकाग्रमन से सूर्य और अग्नि की उपासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे ।।३।। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे-पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय । इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिये ।।४।। गुरुजी कहें तभी उनके सामने बैठ कर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे ।।५।। जब आचार्य जल में स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करे ।।६।। इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो ।।७।।

विधिनावाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा ।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद्भूपाल शक्तितः ।८।
निवापेन पितॄनर्च्चयेद्यज्ञैर्देवांस्तथातिथीन् ।
अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ।९।
भूतानि बलिभिश्चैव वात्सल्येनाखिलं जगत् ।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ।१०।
भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ।११।

वेदाहरणकार्याय तीर्थस्नानाय च प्रभो ।
अटन्ति वसुधा विप्रा पृथिवीदर्शनाय च ।१२।

अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायगृहाश्च ये ।
तेषा गृहस्थ सर्वेषा प्रतिष्ठा योनिरेव च ।१३।

तेषा स्वागतदानादि वक्तव्य मधुर नृप ।
गृहागताना दद्याच्च शयनासनभोजनम् ।१४।

हे राजन् ! उस समय विधिवत् किसी योग्य कन्या का पाणिग्रहण करके अपने वर्ण के अनुकूल वृत्ति से द्रव्योपार्जन करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार व्ययादि कार्य करे ॥८॥ पितरो की पिण्डदानादि से, देवताओ की यज्ञादि के अनुष्ठान से अतिथियो की अन्न दान से, ऋषियो की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रोत्पादन से, भूतो की बलि से, और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से सन्तुष्टि करे। अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है ॥९-१०॥ भिक्षावृत्ति पर निर्भर रहने वाले परिव्राजको और ब्रह्मचारियो आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ॥११॥ हे राजन् ! ब्राह्मणगण वेदाध्ययन, तीर्थ स्नान और देव-दर्शन आदि के निमित्त पृथिवी पर भ्रमण करते रहते हैं ॥१२॥ उनमे स जिनका कोई निश्चित घर और भोजनादि की व्यवस्था नही होती वे जहाँ साय काल हो जाता है, वही रात्रि विश्रमार्थ ठहर जाते हैं। उनका भी आश्रय यह गृहस्थाश्रम ही है ॥१३॥ हे राजन् ! जब ऐसे व्यक्ति अपने घर पर आवें तब उनसे मीठे वचनो और कुशलादि पूछने से स्वागत करना चाहिये । उन्हें ठहरने को निवास, शय्या, आसन और भोजनादि भी अपने सामर्थ्यानुसार देना चाहिये ॥१४॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृत तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।१५।

अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चैव गृहे सत ।
परितापोपघातौ च पारुष्य च न शस्यते ।१६।

यस्तु सम्यक्करोत्येव गृहस्थ परम विधिम् ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ।१७।
वय.परिणतो राजन्कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।१८।
पर्णमूलफलाहार केशश्मश्रुजटाधर ।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिस्सर्वातिथिर्नृप ।१ ।
चर्मकाशकुशै कुर्यात्परि नानोत्तरीयक ।
तद्वत्त्रिषवण स्नान शस्तमस्य नरेश्वर ।२०।
देवताभ्यर्चनं होमस्सर्वाभ्यागतपूजनम् ।
भिक्षा वलिप्रदान च शस्तमस्य नरेश्वर ।२१।

जिसके घर पर आया हुआ जो अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्यकर्मों को साथ लेजाता है ॥१५॥ अतिथि का अपमान, उसके प्रति गर्व और दम्भ का व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चात्ताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित है ॥१६॥ इस प्रकार अपने वर्ण-धर्म का भले प्रकार पालन करने वाला गृहस्थ सभी बन्धनों से छूट कर अत्युत्तम लोकों म जाता है ॥१७॥ हे राजन् ! जब गृहस्थ धर्म का पालन करते-करते अवस्था ढल जाय, तब अपनी स्त्री के पालन का भार पुत्रों को सौंप या उसे भी अपने साथ लेकर वन को प्रस्थान करे ॥१८॥ वहाँ फल, पुष्प, पत्रादि आहार करे, दाढ़ी, मूँछ और जटादि को धारण करे भूमि पर सोवे और मुनिवृत्ति से रहता हुआ अतिथि की सेवा में तत्पर रहे ॥१९॥ चर्म, काश और कुशों से ओढ़ने बिछाने के वस्त्र बनावे और तीनों समय स्नान करें ॥२०॥ देवपूजन, हवन, अतिथि-सत्कार, भिक्षा, बलिवैश्व देव आदि सभी कर्म उसके लिये कर्त्तव्य हैं ॥२१॥

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चास्य शस्यते ।
तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता ।२२।
यस्त्वेता नियतश्चर्यां वानप्रस्थश्चरेन्मुनि ।
स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च शाश्वतान् ।२३।

चतुर्थश्चाश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूपं गदतो मम श्रोतुं नृपार्हसि ।२४।
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्नेहो नराधिप ।
चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ।२५।
त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते ।
मित्रादिषु समो मैत्रस्समस्तेष्वेव जन्तुषु ।२६।
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ।२७।

हे नृपेन्द्र ! वन के तैलों को शरीर में मलना और शीत-ताप सहना यह उसकी तपस्या के ही अंग हैं ।।२२।। जो वानप्रस्थी इन नियत कर्मों को करता है, वह अपने सभी दोषों को भस्म कर डालता है और तब उसे नित्य लोकों की प्राप्ति होती है ।।२३।। अब मैं उस चतुर्थ आश्रम का वर्णन करता हूँ, जिसे ज्ञानीजन भिक्षु-आश्रम कहते हैं, तुम उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ।।२४।। हे राजन् ! तीसरे आश्रम के पश्चात् पुत्र, धन और स्त्री आदि की प्रीति को छोड़ कर और मात्सर्य-रहित होकर चौथे आश्रम में प्रवेश करना चाहिये ।।२५।। हे अवनीपते ! भिक्षु को धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग विषयक सब कर्मों का नितान्त त्याग करना चाहिये । शत्रु-मित्रादि के प्रति समता का भाव तथा सभी जीवों के सुहृदता यह उसके आवश्यक कर्त्तव्य हैं ।।२६।। निरन्तर समाहित रहे । जरायुज, अण्डज, स्वेदज आदि सब प्राणियों से मन, वचन, कर्म से द्वेष न करे और सब प्रकार की वासनाओं का त्याग करे ।।२७।।

एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे ।
तथा तिष्ठेद्यथाप्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ।२८।
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद् गृहान् ।२९।
कामः क्रोधस्तथा दर्पमोहलोभादयश्च ये ।
तांस्तु सर्वान्परित्यज्य परिव्राड् निर्ममो भवेत् ।३०।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् ॥३१॥
कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं
शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भैक्ष्योपहितैर्हविर्भि-
श्चिताग्निकानां व्रजति स्म लोकान् ॥३२॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं
शुचिस्सुखं कल्पितबुद्धियुक्तः ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तः
स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ॥३३॥

ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पांच रात्रि निवास करे और इतने दिन भी इस प्रकार रहे, जिससे किसी से द्वेष अथवा प्रीति न हो सके ॥२८॥ जब घरों में चूल्हा ठंडा होजाय और घर के सब लोग भोजन कर चुकें तब प्राण रक्षा के निमित्त ऊँचे वर्णों में से किसी के यहाँ जाकर भिक्षा ले ॥२९॥ पारिव्राजक को काम, क्रोध, दर्प, मोह, लोभ आदि का त्याग करके ममता-रहित होना चाहिये ॥३०॥ सभी प्राणियों को अभय प्रदान करता हो जो मुनि पृथिवी पर विचरण करता है, उसे भी कभी किसी से भय प्राप्त नहीं होता । ॥३१॥ चतुर्थ आश्रम स्थित जो ब्राह्मण अपने देह में स्थित प्राणादि के उद्देश्य से ही अपने मुख में भिक्षान्न रूपी हवि को जठराग्नि में होमता है, उसके कारण उसे अग्नि होत्रियों के लोकों की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जो ब्राह्मण बुद्धियोग वाला होकर विधिवत् आचरण करता हुआ, मोक्षाश्रम का पालन करता और बिना ईंधन की अग्नि के समान शान्त होता है, उसे अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥३३॥



दशवाँ अध्याय

कथित चतुराश्रम्य चातुर्वर्ण्यक्रियास्तथा ।
पुंसः क्रियामहं श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम ।१।
नित्यनैमित्तिकाः काम्याः क्रिया पुंसामशेषतः ।
समाख्याहि भृगुश्रेष्ठ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ।२।
यदेतदुक्तं भवता नित्यनैमित्तिकाश्रयम् ।
तदहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना मम ।३।
जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः ।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम् ।४।
युग्मास्तु प्राङ्मुखान्विप्रान्भोजयेन्मनुजेश्वर ।
यथा वृत्तिस्तथा कुर्याद्दैवं पित्र्यं द्विजन्मनाम् ।५।
दध्ना यवैः सबदरैर्मिश्रान्पिण्डान्मुदा युतः ।
नान्दीमुखेभ्यस्तीर्थेन दद्याद्दैवेन पार्थिव ।६।
प्राजापत्येन वा सर्वमुपचारं प्रदक्षिणम् ।
कुर्वीत तत्तथाशेषवृद्धिकालेषु भूपते ।७।

सगर ने कहा—हे द्विजवर ! आपने चारो आश्रम और चारो वर्णों के कर्म मेरे प्रति कहे, अब मैं आपके श्रीमुख से मनुष्यो के कर्मों को श्रवण करना चाहता हूँ ।।१।। हे भृगवर ! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये कृपया मनुष्यों के नित्य-नैमित्तिक और काम्यादि समस्त कर्मों को मुझसे कहिये ।।२।। और्व ने कहा—आपने नित्य-नैमित्तिक आदि के विषय में प्रश्न किया, उसे सबको कहता हूँ, सावधान होकर सुनो ।।३।। पिता को पुत्र का जन्म होने पर उसके सब जाति कर्मादि संस्कार तथा आभ्युदयात्मक श्राद्ध करना उचित है ।।४।। युग्म ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बिठावे और भोजन करावे तथा द्विजातियों के अनुकूल व्यवहारानुसार देवता और पितरो की तृप्ति के लिये श्राद्ध करे ।।५।। तथा दैवतीर्थ द्वारा नान्दीमुख पितरो को दही, जौ और बदरीफल के मिश्रित पिण्ड दे ।।६।। अथवा कनिष्ठिका के मूल में जो प्राजापत्यतीर्थ कहा है, उससे

अथ उपचार द्रव्यों का दान करे। इसी प्रकार सब वृद्धिकालों में करना चाहिये ॥७॥

ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥८॥
शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम् ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥९॥
नार्थहीनं न चाशस्तं नापशब्दयुतं तथा ।
नामङ्गल्यं जुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात्समाक्षरम् ॥१०॥
नातिदीर्घं नातिह्रस्वं नातिगुर्वक्षरान्वितम् ।
सुखोच्चार्यं तु तन्नाम कुर्याद्यत्प्रवणाक्षरम् ॥११॥
ततोऽनन्तरसंस्कारसंस्कृतो गुरुवेश्मनि ।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रहम् ॥१२॥
गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाल कुर्याद्दारपरिग्रहम् ॥१३॥
ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्सङ्कल्पपूर्वकम् ।
गुरोश्शुश्रूषणं कुर्यात्तत्पुत्रादेरथापि वा ॥१४॥
वैखानसो वापि भवेत्परिव्राडथ वेच्छया ।
पूर्वसङ्कल्पितं यादृक् तादृक्कुर्यान्नराधिप ॥१५॥

जन्म के दसवें दिन पिता स्वयं पुत्र का नामकरण करे। नाम के पहिले देव वाचक शब्द और फिर वर्ण संज्ञक शर्मा, वर्मा आदि लगावे ॥८॥ ब्राह्मण के नाम में शर्मा, क्षत्रिय के नामान्त में वर्मा और वैश्य के लिये गुप्त और शूद्र के लिये दास शब्द का प्रयोग करे ॥९॥ जो नाम रखा जाय वह अर्थहीन, अपशब्द वाला अमांगलिक अथवा कुत्सित नहीं होना चाहिये और उसके अक्षरों में समानता होनी चाहिये ॥१०॥ बहुत बड़ा, बहुत छोटा अथवा कठिन अक्षरों से युक्त नाम भी नहीं रखना चाहिये। जिसका उच्चारण सुगमता से हो सके और जिसके पीछे के लघुवर्ण हो, ऐसा नामकरण करे ॥११॥ फिर उपनयन संस्कार होने पर गुरु-गृह में नियम पूर्वक विधिवत् विद्याध्ययन करावे ॥१२॥

हे राजन् ! जब वह शिष्य विद्याध्ययन कर चुके तब गुरुजी को दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करना चाहे तो विधि पूर्वक विवाह करे ॥१३॥ गृहास्थाश्रम-प्रवेश की इच्छा न हो तो सन्यास ग्रहण करे। हे राजन् ! इसमें विचार पूर्वक जैसा निश्चय किया गया हो, वही करना चाहिये ॥१४-१५॥

वर्षैरेकगुणा भार्यामुद्वहेत्त्रिगुणस्स्वयम् ।
नातिकेशामकेशा या नातिकृष्णा न पिङ्गलाम् ।१६।
निसर्गतोऽधिकाङ्गी वा न्यूनाङ्गी मपि नोद्वहेत् ।
नाविशुद्धा सरोमा वाकुलजा वापि रोगिणीम् ।१७।
न दुष्टा दुष्टवाक्या वा व्यङ्गिनी पितृमातृत ।
न श्मश्रुव्यञ्जनवती न चैव पुरुषाकृतिम् ।१८।
न घर्घरस्वरा क्षामा तथा काकस्वरा न च ।
नानिबन्धेक्षणा तद्वद्वृत्ताक्षी नोद्वहेद्बुध ।१९।
यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ ।
गण्डयो कूपरौ यस्या हसन्त्यास्ता न चाद्वहेत् ।२०।
नातिरूक्षच्छवि पाण्डुकरजामरुणेक्षणाम् ।
आपीनहस्तपादा च न कन्यामुद्वहेद् बुध ।२१।

यदि विवाह की इच्छा हो तो तृतीयांश आयु की कन्या का पाणिग्रहण करे। वह अधिक केश वाली अथवा अल्पकेश वाली भी न हो, अधिक साँवली या पाण्डु वर्ण वाली स्त्री को ग्रहण न करे ॥१७॥ दुष्ट स्वभावी, कडवे वचन बोलने वाली अगहीना, मूँछो वाली, पुरुष जैसी आकृति वाली, घर्घर शब्द वाली, अत्यत भिची हुई जुबान या कौए जैसे शब्द वाली, पक्ष्मशून्या अथवा वृत्ताकार नेत्र वाली स्त्री के साथ विवाह न करे ॥१८-१९॥ जांघो पर रोम वाली, ऊँचे टखने वाली और हँसते समय जिसके कपोलो मे गढे पड जाते हो, उस स्त्री के साथ भी विवाह करना अनुचित है ॥२०॥ मलीन कान्ति वाली, पीले नख वाली, लाल नेत्र वाली, भारी हाथ-पाँव वाली कन्या भी विवाह के लिये त्याज्य समझे ॥२१॥

श्रूयतां पृथिवीपाल सदाचारस्य लक्षणम् ।
सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि ।२।
साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्स उच्यते ।३।
सप्तर्षयोऽथ मनवः प्रजानां पतयस्तथा ।
सदाचारस्य वक्तारः कर्त्तारश्च महीपते ।४।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप ।
प्रबुद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम् ।५।
अपीडया तयोः काममुभयोरपि चिन्तयेत् ।
दृष्टादृष्टविनाशाय त्रिवर्गे समदर्शिता ।६।
परित्यजेदर्थकामौ धर्मपीडाकरौ नृप ।
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ।७।

सगर बोले—हे मुने ! अब मैं गृहस्थ के सदाचारों को सुनने की इच्छा करता हूँ, जिनका आचरण करने वाला मनुष्य इहलोक और परलोक से पतन को प्राप्त नहीं होता ।।१।। और्व ने कहा—हे राजन् ! अब अपने प्रश्न के अनुसार सदाचार के लक्षण सुनो । उसका पालन करने वाला मनुष्य इहलोक परलोक दोनों का जीतने वाला होता है ।।२।। सत् शब्द का अर्थ साधु होता है और दोष-रहित को ही साधु कहते है । उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है ।।३।। हे पृथिवीपते ! इस सदाचार के कहने वाले तथा इसका पालन करने वाले सप्तर्षि, मनु तथा प्रजापति हैं ।।४।। हे राजन् ! मतिमान पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर अपने धर्म तथा धर्म कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये ।।५।। और उस काम का भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो । इस प्रकार दृष्टादृष्ट अनिष्ट की शान्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों के प्रति समभावी हो ।।६।। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आगे चल कर दुःखमय होजाय अथवा समाज के विरुद्ध हो ।।७।।

ततः कल्यं समुत्थाय कुर्यान्मूत्रं नरेश्वर ।
नैऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥८॥

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च विसर्जयेत् ।
पादावनेजनोच्छिष्टं प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे ॥९॥

आत्मच्छायां तरुच्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा ।
गुरुद्विजादींस्तु बुधो नाधिमेहेत्कदाचन ॥१०॥

न कृष्टे शस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि ।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ ॥११॥

नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत् ।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ॥१२॥

उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि ।
कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव ॥१३॥
तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः ।
तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ॥१४॥

वल्मीकमूषिकोद्भूता मृद नान्तर्जला तथा ।
शौचावशिष्टा गेहाच्च नादद्याल्लेपसम्भवाम् ।१५।
अण्वप्राण्युपपन्ना च हलोत्खाता च पार्थिव ।
परित्यजेन्मृदो ह्येतास्सकलाश्शौचकर्मणि ।१६।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे नृप ।
हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृदश्शौचोपपादिकाः ।१७।
अच्छेनागन्धलेपेन जलेनाबुद्बुदेन च ।
आचामेच्च मृदं भूयस्तयादद्यात्समाहितः ।१८।
निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य तैः पुनः ।
त्रिः पिबेत्सलिलं तेन तथा द्विः परिमार्जयेत् ।१९।
शीर्षण्यानि ततः खानि मूर्द्धानं च समालभेत् ।
बाहू नाभिं च तोयेन हृदयं चापि संस्पृशेत् ।२०।
स्वाचान्तस्तु ततः कुर्यात्पुमान्केशप्रसाधनम् ।
आदर्शाञ्जनमाङ्गल्य दूर्वाद्यालम्भनानि च ।२१।

हे राजन् ! बाँबी का मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकाली हुई, जल के भीतर की, पर लीपन की, चींटी आदि जीवों द्वारा निकाली हुई, हल द्वारा उखाड़ी हुई तथा शौच कर्म न बची हुई मिट्टी का शौच कर्म में काम न ले। ।।१५-१६।। हे राजन् ! उपस्थ में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँए हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है ।।१७।। फिर निर्गंध और फेनहीन जल से आचमन करे और फिर पूर्व प्रकार मिट्टी ग्रहण करे ।।१८।। उससे पाँवों को शुद्ध करे। पाँव धोने के उपरान्त तीन बार कुल्ला करे और फिर दो बार मुख को धोवे ।।१९।। फिर जल ग्रहण करके उर्ध्व इन्द्रिय, मूर्द्धा, बाहु, नाभि और हृदय को स्पर्श करे ।।२०।। फिर भले प्रकार स्नान करके बालों को सँवारे और आवश्यकतानुसार दर्पण, अंजन, दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्यों का विधि पूर्वक प्रयोग करे ।।२१।।

ततस्स्ववर्णधर्मेण वृत्त्यर्थं च धनार्जनम् ।
कुर्वीत श्रद्धासम्पन्नो यजेच्च पृथिवीपते ।२२।

सोमसंस्था हविस्संस्थाः पाकसंस्थास्तु संस्थिताः ।
धने यतो मनुष्याणां यतेतातो धनार्जने ।२३।
नदीनदतटाकेषु देवखातजलेषु च ।
नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ।२४।
कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा भुवि ।
गृहेषूद्धृततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे ।२५।
शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् ।
तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ।२६।
त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् ।
ऋषीणां च यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ।२७।
पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते ।
पितामहेभ्यश्च तथा प्रीणयेत्प्रपितामहान् ।२८।
मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च समाहितः ।
दद्यात्पैत्रेण तीर्थेन काम्यं चान्यच्छृणुष्व मे ।२९।

हे राजन् ! इसके पश्चात् अपने वर्ण-धर्म के अनुसार आजीविका करे और धनोपार्जन पूर्वक यज्ञादि का अनुष्ठान करे ।।२२।। सोम संस्था, हविस्संस्था और पाकसंस्था—इन सभी धर्मों का आश्रय धन है, इसलिए मनुष्यों को धनोपार्जन करना भी अत्यन्त आवश्यक कर्म है ।।२३।। नित्य कर्मों का सम्पादन करने के निमित्त पहिले स्नान करना आवश्यक है। इसीलिये नदी, नद, तालाब बावड़ी या पर्वत के झरने आदि में स्नान करना उचित है ।।२४।। अथवा कुँए से जल लेकर उसके निकटवर्ती भूमि पर स्नान करे, यदि वहाँ न करे तो उस जल को अपने घर में लाकर ही उससे स्नान कर ले ।।२५।। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का उन-उन के तीर्थों से तर्पण करे ।।२६।। देवताओं और ऋषियों के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिये एक ही बार पृथिवी में जल छोड़े ।२७। पितरों और पितामहों की तृप्ति के लिये भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार प्रपिता-

ग्रहों की तृप्ति करे, मातामह और उनके पिता और पितामह को यत्न पूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे। अब मैं काम्य तर्पण कहता हूँ, उसे सुनो ॥२८-२९॥

मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे गुरुपत्न्यै तथा नृप ।
गुरूणां मातुलानां च स्निग्धमित्राय भूभुजे ।३०।
इदं चापि जपेदम्बु दद्यादात्मेच्छया नृप।
उपकाराय भूतानां कृतदेवादितर्पणम् ।३१।
देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसा ।
पिशाचा गुह्यकास्सिद्धा कूष्माण्डा पशव खगा ।३२।
जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तव ।
तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिला ।३३।
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिता ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।३४।
ये वान्धवाबान्धवा वा येऽन्य जन्मनि वान्धवा ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिण ।३५।
यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।
इदमाप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ।३६।

हे राजन्! माताको प्रमाता को उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, मामा को, प्रिय मित्र को अथवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो इस प्रकार कहता हुआ सब भूतों के लिये देवादि का तर्पण करके अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे ॥३०-३१॥ देवता, असुर, यक्ष, नाग, गंधर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, भूमिचर, वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों—ऐसा देवादि के तर्पण में कहे ॥३२-३३॥ सम्पूर्ण नरकों में स्थित हुए जो जो जीव विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं, उनकी तृप्ति के लिये जल देता हूँ ॥३४॥ जो मेरे बन्धु है अथवा अब धु हैं या पहिले किसी जन्म बन्धु थे या जो मुझ से जल प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों ॥३५॥ क्षुधा पिपासा से व्याकुल कोई भी प्राणी जहाँ कहीं भी हो, वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल जल से तृप्त हो जाँय ॥३६॥

काम्योदकप्रदानं ते मयैतत्कथितं नृप ।
यद्दत्त्वा प्रीणयत्येतन्मनुष्यस्सकलं जगत् ।३७।
जगदाप्यायनोद्भूतं पुण्यमाप्नोति चानघ ।
दत्त्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वितः ।३८।
आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ।
नमो विवस्वते ब्रह्मभास्वते विष्णुतेजसे ।३९।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे ।
ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम् ।४०।
जलाभिषेकैः पुष्पैश्च धूपाद्यैश्च निवेदनम् ।
अपूर्वमग्निहोत्रं च कुर्यात्प्राग्ब्रह्मणे नृप ।४१।
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्यादाहुतिमादरात् ।
गृह्याभ्यः काश्यपायाथ ततोऽनुमतये क्रमात् ।४२।
तच्छेषं मणिके पृथ्वीपर्जन्येभ्यः क्षिपेत्ततः ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च मध्ये च ब्रह्मणे क्षिपेत् ।
गृहस्य पुरुषव्याघ्र दिग्देवानपि मे शृणु ।४३।

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति यह काम्य तर्पण कहा है, जिसे करके मनुष्य सम्पूर्ण विश्व को तृप्ति प्रदान कर सकता है, ।।३७।। और हे निष्पाप ! इस उपरोक्त प्रकार से जीवों को श्रद्धा-भाव से काम्य जल देने के कारण उसे संसार की तृप्ति से होने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है ।।३८।। इस प्रकार तर्पण करने के पश्चात् आचमन करे और भगवान् भास्कर जलाञ्जलि प्रदान करे । भगवान् विवस्वान् को नमस्कार है । वह वेद के ज्ञाता और विष्णु तेज के समान अत्यन्त तेजोमय हैं । वही विश्व के उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त पवित्र और कर्मों के देखने वाले हैं । यह कह कर जलाभिषेक करे और पुष्प-धूपादि देता हुआ गृह देवता और इष्ट देवता की पूजा करे । हे राजन् ! इसके पश्चात् अग्नि होत्र करना चाहिये, जिसमें प्रथम ब्रह्माजी को, फिर प्रजापति, गृह्य, काश्यप और अनुमति को क्रमशः आदर भाव से आहुतियाँ प्रदान करे । ।।३९-४२।। उसमें शेष रहे हव्य को पृथिवी और पर्जन्य के निमित्त उदक पात्र

में, धाता-विधाता के निमित्त द्वार के दोनो ओर तथा ब्रह्माजी के निमित्त घर के बीच में छोड़े । अब मैं तुम्हें दिक्पालों के पूजन की विधि बतलाता हूँ, ध्यान से सुनो ॥४३॥

इन्द्राय धर्मराजाय वरुणाय तथेन्दवे ।
प्राच्यादिषु बुधो दद्याद्धुतशेषात्मकं बलिम् ।४४।
प्रागुत्तरे च दिग्भागे धन्वन्तरिर्बलि बुध ।
निर्वपेद्वैश्वदेवं च कर्म कुर्यादत परम् ।४५।
वायव्यां वायवे दिक्षु समस्तासु यथादिशम् ।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय भानवे च क्षिपेद्बलिम् ।४६।
विश्वेदेवान्विश्वभूतानथ विश्वपतीन्पितॄन् ।
यक्षाणां च समुद्दिश्य बलिं दद्यान्नरेश्वर ।४७।
ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ बुध ।
दद्यादशेषभूतेभ्यस्स्वेच्छया सुसमाहित ।४८।
देवा मनुष्या पशवो वयांसि
सिद्धास्सयक्षोरगदैत्यसङ्घा ।
प्रेता पिशाचास्तरवस्समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मयान्नदत्तम् ।४९।
पिपीलिका कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिता कर्मनिबन्धबद्धा ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्न
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ।५०।

पूर्व में इन्द्र के उद्देश्य से, दक्षिण में यम के उद्देश्य से, पश्चिम में वरुण के तथा उत्तर में चन्द्रमा के लिए बची हुई सामग्री से बलि दे ॥४४॥ पूर्व और उत्तर में धन्वन्तरि के लिये बलि देकर बलिवैश्य देव कर्म करे ॥४५॥

विश्वपतियों, पितरों और यक्षों के निमित्त बलि प्रदान करे ॥४७॥ फिर अन्न लेकर पृथिवी पर समाहित मन से बैठे और सब प्राणियों के उद्देश्य से बलि दे ॥४८॥ और कहे कि देवता, मनुष्य, पशु पक्षी, सिद्ध यक्ष, सर्प दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष, चींटी, कीट, पतगादि जो भी जीव अपने अपने कर्मबन्धन में बँध कर क्षुधातुर हुए मेरे अन्न की इच्छा करते हैं, उन सभी के लिये मैं अन्न प्रदान करता हूँ, वे इससे तृप्त और सुखी हों ॥४९-५०॥

येषां न माता न पिता न बन्धु-
नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्
ते यान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु ॥५१॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥५२॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥५३॥
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितः ।
भुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥५४॥
श्वचाण्डालविहङ्गानां भुवि दद्यान्नरेश्वर ।
ये चान्ये पतिताः केचिदपुत्रा सन्ति मानवाः ॥५५॥
ततो गोदोहमात्रं वै कालं तिष्ठेद् गृहाङ्गणे ।
अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्ध्वं तु यथेच्छया ॥५६॥

जिनके माता, पिता, बांधवादि नहीं हैं अथवा किसी के पास अन्न-दान का साधन या अन्न नहीं है, मैंने उन्हें तृप्त करने के लिये भूमि पर यह अन्न रख दिया है, वे इसे ग्रहण करके तृप्त तथा सुखी हों ॥५१॥ समस्त जीव,

मैं तथा यह अन्न—सभी कुछ विष्णु हैं, क्योंकि विष्णु से भिन्न कुछ भी कहीं नहीं है। इसलिये सब भूतों के देह रूप इस अन्न को मैं उनकी पुष्टि के निमित्त प्रदान करता हूँ ॥५२॥ इस चतुर्दश प्रकार के भूत समुदाय मे जितने भी जीव हैं उन सभी को तृप्त करने के लिये मैंने यह अन्न रखा है, इसलिये वे इससे प्रसन्न हों ॥५३॥ इस प्रकार कहता हुआ गृहस्थ पुरुष श्रद्धा-भाव पूर्वक सब जीवों के हितार्थ पृथिवी मे अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही तो सब जीवों का आश्रय स्वरूप है ॥५४॥ फिर हे राजन् ! श्वान, चाण्डाल, खगगण अथवा अन्य जो-जो भी पतित या पुत्रहीन आदि पुरुष हों, उन सब की तृप्ति के निमित्त पृथिवी मे बलि भाग को रख दे ॥५५॥ फिर गो दोहन का समय होने तक या उससे भी कुछ देर तक अतिथि की प्रतीक्षा मे घर के आँगन मे खड़ा रहे ॥५६॥

अतिथि तत्र सम्प्राप्त पूजयेत्स्वागतादिना ।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ।५७।
श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ।५८।
अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम् ।
पूजयेदतिथि सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ।५९।
अकिञ्चनमसम्बन्धमज्ञातकुलशीलिनम् ।
असम्पूज्यातिथि भुक्त्वा भोक्तुकाम व्रजत्यध ।६०।
स्वाध्यायगोत्राचरणमपृष्ट्वा च तथा कुलम् ।
हिरण्यगर्भबुद्धया त मन्यताभ्यागत गृही ।६१।
पित्रर्थं चापर विप्रमेकमप्याशयेन्नृप ।
तद्देश्य विदिताचारसम्भूति पाञ्चयज्ञिकम् ।६२।
अन्नाग्रञ्च समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पितम् ।
निर्वापभूत भूपाल श्रोत्रियायोपपादयेत् ।६३।

यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागत पूर्वक आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे और श्रद्धा पूर्वक उसे भोजन कराता हुआ मधुर वाणी से

बातचीत करना हुआ उनके गमनकाल में पीछे-पीछे जाकर उसे प्रसन्न करना चाहिये ।।५७-५८।। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे। अपने ही ग्राम में निवास करने वाला पुरुष आतिथ्य का पात्र नहीं होता ।।५६।। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वंशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति की प्राप्त कराने वाला है ।। ६० ।। आगत अतिथि का अध्ययन, गोत्र, आचरण, कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ बुद्धि से उसका पूजन करे ।।६१।। हे राजन् ! अतिथि का सत्कार करने के पश्चात् अपने ही ग्राम के एक अन्य पञ्चयज्ञिक ब्राह्मण को जिसके कुल और आचरण आदि की जानकारी हो बुलाकर पितर कार्य के लिए भोजन करावे ।।६२।। उस श्रोत्रिय ब्राह्मण को पहिले ही निकाल अलग रखे हुए हन्तकार संज्ञक अन्न से भोजन कराना चाहिये ।।६३।।

दत्त्वा च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छया च बुधो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ।६४।
इत्येतेऽतिथयः प्रोक्ताः प्रागुक्ता भिक्षवश्च ये ।
चतुरः पूजयित्वैतान्नृप पापात्प्रमुच्यते ।६५।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ।६६।
धाता प्रजापतिः शक्रो वह्निर्वसुगणोऽर्यमा ।
प्रविश्यातिथिमेते वै भुञ्जन्तेऽन्नं नरेश्वर ।६७।
तस्मादतिथिपूजायां यतेत सततं नरः ।
स केवलमघं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यतिथिं विना ।६८।
ततः स्ववासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान् ।
भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ।६९।
अभुक्तवत्सु चैतेषु भुञ्जन्भुङ्क्ते स दुष्कृतम् ।
मृतश्च गत्वा नरकं श्लेष्मभुग्जायते नरः ।७०।

इस प्रकार तीन भिक्षायें देने के उपरान्त यदि शक्ति हो तो परिव्राजको और ब्रह्मचारियों को भी विमुख न करके, उन्हे भिक्षा दे ।।६४।। पहिले के तीन (देव, अतिथि, ब्राह्मण) तथा चौथे भिक्षुक मिलकर यह चारो अतिथि ही कहे जाते है । हे नृप ! इन चारो की पूजा करने से मनुष्य सभी पापो से छूट जाता है ।।६५।। जिसके घर से अतिथि विमुख लौटता है, उसे वह अपना समस्त पाप देकर उसके सभी शुभ कर्मो को साथ ले जाता है ।।६६।। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—यह सभी देवता अतिथि के शरीर मे बैठकर उसके साथ भोजन करते हैं ।।६७।। इसलिये अतिथि सत्कार के लिये गृहस्थ पुरुष को सदा यत्नशील रहना चाहिए । जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना, स्वय ही भोजन कर लेता है वह तो केवल पाप का ही भक्षण करता है ।।६८।। इसके पश्चात् गृहस्थ अपने घर मे रहने वाली विवाहिता पुत्री, रोगिणी गर्भिणी, वृद्ध और बालको को पहिले उस शुद्ध सस्कृत अन्न से भोजन कराये और फिर स्वय भोजन करे ।।६९।। जो गृहस्थ इन सबको खिलाये बिना, स्वय खा लेता है, वह पाप-भक्षक ही होता है और अन्त म नरक को प्राप्त होकर श्लेष्म भक्षी कीट होता है ।।७०।।

अस्नाताशी मल भुड्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम् ।
असंस्कृतान्नभुड्मूत्र बालादिप्रथम शकृत् ।७१।
अहोमी च कृमीन्भुड्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते ।
तस्माच्छृणुष्व राजेन्द्र यथा भुञ्जीत वै गृही ।७२।
भुञ्जतश्च यथा पुस पापबन्धो न जायते ।
इह चारोग्यविपुल बलबुद्धिस्तथा नृप ।७३।
भवत्यरिष्टशान्तिश्च वैरिपक्षाभिचारिका ।
स्नातो यथावत्कृत्वा च देवर्षिपितृतर्पणम् ।७४।
प्रशस्तरत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही ।
कृते जपे हुते वह्नौ शुद्धवस्त्रधरो नृप ।७५।
दत्त्वातिथिभ्यो विप्रेभ्यो गुरुभ्यस्सश्रिताय च ।
पुण्यगन्धश्शस्तमाल्यधारी चैव नरेश्वर ।७६।

एकवस्त्रधरोऽथार्द्रपाणिपादो महीपते ।
विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः ।।७७।।

जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो। जप किये बिना भोजन कर लेना रुधिर और पूय पान करना है। असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला मूत्र पीता है, अथवा जो बालक वृद्धादि से पहिले स्वयं भोजन कर लेता है, उसे विष्टा का आहार करने वाला जानो ।।७१।। हवन किये बिना भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये खा लेने वाला विष का भोजन करता है। इसलिये गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि को श्रवण करो। स्नान के अनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे। जप और अग्नि होम के बाद शुद्ध वस्त्र पहिरे तथा अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और अपने आश्रितों को भोजन कराने के पश्चात् श्रेष्ठ पुष्पमालादि धारण और हाथ पाँव प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय म इधर-उधर दृष्टिपात न करे ।।७२-७७।।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नरः ।
अन्नं प्रशस्तं पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ।।७८।।
न कुत्सिताहृतं नैव जुगुप्सावदसंस्कृतम् ।।७९।।
दत्त्वा तु भक्तं शिष्येभ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही ।
प्रशस्तशुद्धपात्रे तु भुञ्जीताकुपितो नृप ।।८०।।
नासन्दिसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर ।
नाकाले नातिसङ्कीर्णे दत्त्वाग्रं च नरोऽग्नये ।।८१।।
मन्त्राभिमन्त्रितं शस्तं न च पर्युषितं नृप ।
अन्यत्र फलमूलेभ्यश्शुष्कशाखादिकात्तथा ।।८२।।
तद्वद्धारीतकेभ्यश्च गुडभक्ष्येभ्य एव च ।
भुञ्जीतोद्धृतसाराणि न कदापि नरेश्वर ।।८३।।
नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगतीपते ।
मध्वम्बुदधिसर्पिभ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ।।८४।।

अन्यमनस्क भाव को त्याग कर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पथ्य अन्न को मन्त्रपूत जल छींटे देकर उसका आहार करे ॥७८॥ किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वैश्वदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधार्त व्यक्तियों को देकर शुद्ध पात्र में अन्न रखकर उसका भक्षण करे ॥७९-८०॥ किसी खाट आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या दूषित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे। प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करे ॥८१॥ मन्त्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे। परन्तु फल, मूल और सूखी शाखाओं के और चटनी या गुड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं है। सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्देश्य है ॥८२-८३॥ हे भूपत ! मधु, जल, दूध, दही, सत्तू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे ॥८४॥

अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् ।
लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकास्ततः ।८५।
प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः ।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति ।८६।
अनिन्द्यं भक्षयेदित्थं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
पञ्चग्रासं महामौनं प्राणाद्याप्यायनं हि तत् ।८७।
भुक्त्वा सम्यगथाचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य मूलतः ।८८।
स्वस्थः प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः ।
अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः ।८९।
अग्निराप्याययेद्धातुं पार्थिवं पवनेरितः ।
दत्तावकाशो नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम् ।९०।
अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
भवत्येतत्परिणतं ममास्त्वव्याहतं सुखम् ।९१।

एकाग्र मन से भोजन करना चाहिये। पहिले मीठे, फिर नमकीन, फिर खट्टे और अन्त में कड़ुवे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे ॥८५॥ जो मनुष्य

प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता ॥८६॥ इस प्रकार अनिषिद्ध पदार्थों का वाणी के संयम पूर्वक भोजन करे। अन्न का कभी तिरस्कार न करे। पहिले पाँच ग्रास मौन रहकर खाय, वह पंचप्राणों की तृप्ति करने वाले हैं ॥८७॥ भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हाथों को उनके मूल देश तक धोकर पुनः विधिवत् आचमन करे ॥८८॥ फिर स्वस्थ और शान्त मन से आसन पर स्थित हो और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे ॥८९॥ प्राणवायु से प्रदीप्त हुआ जठराग्नि आकाश से अवकाशमय अन्न का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिव धातुओं का पोषण करे जिससे मैं सुखी रहूँ ॥९०॥ यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के बल की वृद्धि करे तथा इन्हीं चारों तत्त्वों के रूप में हुआ यह अन्न मुझे सुखदायक हो ॥९१॥

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाप्यव्याहतं सुखम् ।९२।
अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं मयान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छत्वरोगो मम चास्तु देहे ।
विष्णुस्समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान्यथैक. ।
सत्येन तेनात्तमशेषमन्नमारोग्यदं मे परिणाममेतु ।९४।
विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा ।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ।९५।
इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम् ।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रित. ।९६।
सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गादविरोधिना ।
दिनं नयेत्ततस्सन्ध्यामुपतिष्ठेत्समाहितः ।९७।

यह अन्न मेरे प्राणापान, समान, उदान और व्यान को पुष्ट करे, जिससे मुझे बाधा रहित सुख मिल सके ॥९२॥ मेरे भोजन किये हुए सब अन्न को अगस्ति नामक अग्नि और वडवानल पचावें, उसके परिणाम से उत्पन्न

होने वाला सुख दें और उससे मेरे देह को आरोग्य प्राप्त हो ॥९३॥ देह तथा इन्द्रियादि के अधिष्ठाता केवल भगवान् श्रीहरि ही प्रधान हैं, इस सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन का सब अन्न पककर मुझे आरोग्य लाभ करावे ॥९४॥ भोजन करने वाला, अन्न तथा उसका परिपाक—यह सब विष्णु ही हैं। इसी सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन किये हुए इस अन्न का परिपाक हो ॥९५॥ इस प्रकार कहकर अपने पेट पर हाथ फेरे और यत्न पूर्वक अधिक श्रम उत्पन्न न करने वाले कार्यों को करने लगे ॥९६॥ दिवस का शेष काल सत् शास्त्रों के देखने तथा श्रेष्ठ मार्ग से विरोध न करने वाले विनोदों में बितावे और सायंकाल में यत्नपूर्वक सध्योपासन करे ॥९७॥

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षैर्युतां बुधः ।
उपतिष्ठेद्यथान्याय्यं सम्यगाचम्य पार्थिव ।९८।
सर्वकालमुपस्थानं सन्ध्ययो पार्थिवेष्यते ।
अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ।९९।
सूर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सूर्येण व स्वपन् ।
अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।१००।
तस्मादनुदिते सूर्ये समुत्थाय महीपते ।
उपतिष्ठेन्नरस्सन्ध्यामस्वपंश्च दिनान्तजाम् ।१०१।
उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्वां न पश्चिमाम् ।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ।१०२।
पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते ।
वैश्वदेवनिमित्तं वै पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।१०३।
तत्रापि श्वपचादिभ्यस्तथैवान्नविसर्जनम् ।
अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेद् बुधः ।१०४।

हे राजन् ! सायंकाल में सूर्यास्त से पहिले और प्रातः काल में तारों के अस्त न होने से पूर्व विधिवत् आचमनादि करके सन्ध्योपासन करना चाहिये ॥९८॥ यदि सूतक, अशौच, उन्माद, रोग या भयादि, में से किसी प्रकार की बाधा न हो तो नित्य प्रति ही सन्ध्योपासन करना चाहिये ॥९९॥ रोग की

अवस्था के अतिरिक्त और कभी भी जो मनुष्य सूर्य के उदयास्त काल में सोता रहता है, उसे प्रायश्चित का भागी होना होता है ॥१००॥ इसलिये हे राजन् ! गृहस्थ पुरुष को सूर्योदय होने से पहिले ही उठकर प्रातः कालीन संध्या करनी चाहिये, सायंकालीन संध्या के समय भी संध्योपासन करे, शयन न करे॥१०१॥ हे राजन् ! जो मनुष्य प्रातः कालीन और सायंकालीन संध्यावंदन से विरत रहते हैं, उन दुरात्माओं को अन्धतामिस्र नरक की प्राप्ति होती है ॥१०२॥ फिर सायंकाल में परिपक्व किए अन्न से गृहिणी मन्त्रहीन बलिवैश्वदेव करे ॥१०३॥ उस समय भी श्वपचादि को अन्न दे और आगत अतिथि का भी अपनी शक्ति भर पूजन करे ॥१०४॥

पादशौचासनप्रह्वस्वागतोक्त्या च पूजनम् ।
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव ।१०५।
दिवातिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप ।
तदेवाष्टगुणं पुंसस्सूर्योढे विमुखे गते ।१०६।
तस्मात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढमतिथिं नरः ।
पूजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजितास्सर्वदेवताः ।१०७।
अन्नशाकाम्बुदानेन स्वशक्त्या पूजयेत्पुमान् ।
शयनप्रस्तरमहीप्रदानैरथवापि तम् ।१०८।
कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही ।
गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ।१०९।
नाविशाला न वै भग्ना नासमा मलिना न च ।
न च जन्तुमयी शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ।११०।
प्राच्यां दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ।१११।

हे राजन् ! अतिथि सत्कार में प्रथम पग-प्रक्षालन, आसन दान, स्वागत सूचक विनीत वचन, भोजन तथा शय्या आदि की व्यवस्था करना उचित है हे नृप ! जो पाप दिन में आये हुए अतिथि के लौटने से होता है, उससे अठ गुणे पाप सूर्यास्त के समय आये हुए अतिथि के विमुख चले जाने से होता है ॥१०६॥ इसलिए सूर्यास्त काल में आये हुए अतिथि का अवश्य ही सत्कार

भी सत्कार करना चाहिये, क्योंकि उसका पूजन होने से सभी देवताओं का पूजन निहित है ॥१०७॥ जिस प्रकार हो सके भोजन के लिये अन्न, शाक अथवा जल ही दे, शयन के लिये शय्या न हो तो घास फूस बिछा दे अथवा भूमि ही बता दे। तात्पर्य यह है कि यथाशक्ति उसका सत्कार करे ॥१०८॥ हे राजन्! फिर वह गृहस्थ सायंकालीन भोजन करे और हाथ-पाँव धोकर छिद्रादि से रहित काष्ठमयी शय्या पर शयन करे ॥१०९॥ ऐसी शय्या पर शयन न करे जो बहुत बड़ी ऊँची-नीची, टूटी अथवा मैली हो या उसमें जीव भरे हों ॥११०॥ शयन के समय पूर्व अथवा दक्षिण की ओर सिर रखे, अन्य दिशाओं में सिर रखना रोग उत्पन्न करने वाला होता है ॥१११॥

ऋतावुपगमश्शस्तस्स्वपत्न्यामवनीपते ।
पुन्नामर्क्षे शुभे काले ज्येष्ठायुग्मासु रात्रिषु ।११२।
नाद्यूना तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम् ।
नानिष्टां न प्रकुपितां न त्रस्तां न च गर्भिणीम् ।११३।
नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् ।
क्षुत्क्षामां नातिभुक्तां वा स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः ।११४।
स्नातस्स्रग्गन्धधृक्प्रीतो नाध्मातः क्षुधितोऽपि वा ।
सकामस्सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ।११५।
चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ।११६।
तैलस्त्रीमांससम्भोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान् ।
विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः ।११७।
अशेषपर्वस्वेतेषु तस्मात्संयमिभिर्बुधैः ।
भाव्यं सच्छास्त्रदेवेज्याध्यानजप्यपरैर्नरैः ।११८।

हे राजन्! ऋतुकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे। पुल्लिंग नक्षत्र में, युग्म रात्रियों में बहुत रात गये तथा श्रेष्ठ समय देख कर ही नारी से संगति करे ॥११२॥ अप्रसन्न मन वाली, रोगिणी, रजस्वला, अभिलाषा-हीन क्रोधवती, दुःखिनी या गर्भवती के साथ संगति उचित नहीं

है ।।११३।। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा-हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किये हुए हो ऐसी पत्नी अथवा परस्त्री से गमन योग्य नहीं हैं। यदि अपने में भी इन दोषों की स्थिति हो तो उस दशा में भी सगति नहीं करनी चाहिये ।।११४।। स्नान करके पुष्प-माला तथा गंध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुराग के सहित स्त्री के पास जाय और अतिभोजन करके अथवा भूखा रहने की अवस्था में सगति न करे ।।११५।। हे नृपेन्द्र ! चौदस, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की संक्रान्ति—यह सब पर्व-दिवस हैं ।।११६।। इनमें तैल-मर्दन और नारी-संयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है ।।११७।। विद्वान को पुरुषों इन सभी पर्व-दिनों में संयम पूर्वक सत्-शास्त्रों का अध्ययन, देव-वदन, यज्ञानुष्ठान, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिये ।।११८।।

नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौपधस्तथा ।
द्विजदेवगुरूणां च व्यवायी नाश्रमे भवेत् ।११९।
चैत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे ।
नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते ।१२०।
प्रोक्तपर्वस्वशेषेषु नैव भूपाल सन्ध्ययोः ।
गच्छेद्व्यवायं मतिमान्न मूत्रोच्चारपीडितः ।१२१।
पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप ।
भुवि रोगावहो नृणामप्रशस्तो जलाशये ।१२२।
परदारान्न गच्छेत्तु मनसापि कथञ्चन ।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम् ।१२३।
मृतो नरकमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुषः ।
परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा ।१२४।
इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत् ।
यथोक्तदोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि ।१२५।

गौ, बकरी आदि भिन्न योनि और अयोनि से समागम न करे। औषधि प्रयोग द्वारा भी यह कार्य वर्जित है तथा ब्राह्मण, देवता या गुरु के आश्रम में भी

भी संगति करने का निषेध है ॥११९॥ चैत्य वृक्ष के नीचे, आंगन, तीर्थ, पशुशाला, चौराहा, श्मशान उपवन और जल भी नारी-संग के लिये निषिद्ध कहे है ॥१२०॥ पहिले कहे हुए सभी पर्व-दिवसों में, प्रातः अथवा सायं समय या मल-मूत्र का वेग होने की स्थिति में भी मैथुन-कर्म वर्जित है ॥१२१॥ हे राजन्! पर्व दिनों का नारी-संग धन को नष्ट करने वाला है, दिन का मैथुन पाप फल का देने वाला है, पृथ्वी पर मैथुन कर्म रोग-प्रद है तथा जल में किया गया प्रसंग अमंगल जनक है ॥१२२॥ पर-नारी से तो वाणी या मन से भी संग न करे, क्योंकि ऐसा मैथुन अस्थि-बंधन-विहीन अर्थात् अस्थिहीन शरीर—कीटादि की योनि प्राप्त कराने वाला होता है ॥१२३॥ परनारी में आसक्ति इहलोक और परलोक दोनों स्थानों पर भयावह होती है। इहलोक में आयु का ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है ॥१२४॥ ऐसा समझ कर मतिमान पुरुष अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में संग करे और यदि किसी समय विशेष मन हो तो बिना ऋतुकाल के भी स्वनारी-प्रयोग में प्रवृत्त हो ॥१२५॥

बारहवाँ अध्याय

देवगोब्राह्मणान्सिद्धान्वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत् ।
द्विकालं च नमेत्सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ॥१॥
सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च महौषधी ।
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः ॥२॥
प्रस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धश्चारुवेषधृक् ।
सितास्सुमनसो हृद्या बिभृयाच्च नरस्सदा ॥३॥
किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्यप्रियं वदेत् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् ॥४॥
नान्यस्त्रियं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषर्षभ ।
न दुष्टं यानमारोहेत्कूलच्छाया न संश्रयेत् ॥५॥

विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिकीटकैः ।
बन्धकीबन्धकीभर्तृक्षुद्रानृतकथैस्सह ॥६॥
तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैश्शठैः ।
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ॥७॥

और्व ने कहा—गृहस्थ मनुष्य प्रतिदिन देवता गौ ब्राह्मण, सिद्धगण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रादि करे ॥१॥ संयम पूर्वक रहे छिद्रहीन दो वस्त्र, श्रेष्ठ औषधियाँ तथा गारुड़ रत्न को धारण करे ॥२॥ अपने बालों को स्वच्छ और चिकने रखे, सुगन्धमय वेशभूषा और मनोहर श्वेत-पुष्पों को धारण करे ॥३॥ किसी के किंचित् मात्र धन का भी अपहरण या स्वल्प रूप में भी अप्रिय भाषण न करे। मिथ्या वचन प्रिय हो तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे ॥४॥ परनारी में प्रीति न करे, किसी के साथ वैर करने में रुचि न रखे, निन्दित सवारी में न बैठे और नदी तट की छाया का कभी आश्रय न ले ॥५॥ बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि वह लोकनिन्दित, पतित, उन्मत्त, बहुतों के वैरी या दूसरों को पीड़ित करने वाले पुरुषों से तथा कुलटा, कुलटा के पति, मिथ्याभाषी अत्यन्त व्यय करने वाले, परनिन्दा में रुचि रखने वाले और दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे। निर्जन मार्ग में कभी अकेला न चले ॥६-७॥—

नावगाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर ।
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः ॥८॥
न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं कुष्णीयाच्च न नासिकाम् ।
नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ विसर्जयेत् ॥९॥
नोच्चैर्हसेत्सशब्दं च न मुञ्चेत्पवनं बुधः ।
नखान्न खादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत् ॥१०॥
न श्मश्रु भक्षयेन्नोष्टं न मृद्नीयाद्विचक्षणः ।
ज्योतींष्यमेध्यशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो ॥११॥
नग्नां परस्त्रियं चैव सूर्यं चास्तमयोदये ।
न हुङ्कुर्याच्छवं गन्धं शवगन्धो हि सोमजः ॥१२॥

चतुष्पथं चैत्यतरुं श्मशानोपवनानि च ।
दुष्टस्त्रीसन्निकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा ।१३।
पूज्यदेवद्विजज्योतिश्छाया नातिक्रमेद्बुध ।
नैकश्शून्याटवीं गच्छेत्तथा शून्यगृहे वसेत् ।१४।

हे नरेश्वर ! जल प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करे, जलते हुए घर में कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े ॥८॥ दाँतों का आपस में घर्षण न करे, नासिका को न कुरेदे । बन्द मुँह से जमुहाई लेना, खासना या श्वास छोड़ना वर्जित है ॥६॥ जोर से न हँसे, अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखों को न चबावे, तिनका न तोड़े तथा भूमि पर न लिखे ॥१०॥ मूँछ-दाढ़ी के बालों को भी न चबावे, दो ढेलों को परस्पर में न घिसे, तथा निन्दित और अशुद्ध नक्षत्रों का दर्शन न करे ॥११॥ नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करे, शव या शव की गन्ध से घृणा न करे, क्योंकि शव-गन्ध चन्द्रमा का अंश है ॥१२॥ चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन तथा दुष्टा स्त्री की निकटता—इन सब को रात्रिकाल में त्याग दे ॥१३॥ अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतियों की छाया को कभी भी न लाँघे तथा सूने जगल या सूने घर मे भी अकेला न रहे ॥१४॥

केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषास्तथा ।
स्नानार्द्रं धरणीं चैव दूरत. परिवर्जयेत् ।१५।
नानार्यानाश्रयेत्कांश्चिन्न जिह्मं रोचयेद् बुध. ।
उपसर्पेन्न वै व्यालं चिरं तिष्ठेन्न चोत्थित ।१६।
अतीव जागरस्वप्ने तद्वत्स्नानासने बुध ।
न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर ।१७।
दंष्ट्रिणश्शृङ्गिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।
अवश्यायं च राजेन्द्र पुरोवातातपौ तथा ।१८।
न स्नायान्न स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद् बुधः ।
मुक्तकेशश्च नाचामेद् वाद्यार्चा च वर्जयेत् ।१९।

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ।२०।
नासमञ्जसशीलैस्तु सहासीत कथञ्चन ।
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्द्धमपि शस्यते ।२१।

केश, अस्थि, काँटे, अशुद्ध वस्तु, बलि, भस्म, तुष और स्नान से गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे ।।१५।। अनार्य पुरुष का सङ्ग और कुटिल मनुष्य से आसक्ति न करे, सर्प के समीप में न जाय और नींद खुलने पर देर तक न लेटे ।।१६।। जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या पर लेटने और व्यायाम करने में अधिक देर न लगावें ।।१७।। दाँत और सींग वाले पशुओं को, ओस को, सामने की वायु को और धूप को सर्वथा छोड़ दे ।।१८।। नंगा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालों को खोल कर आचमन या देव-पूजन ही करे ।।१९।। हवन, देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जप में एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो ।।२०।। असत् हृदय पुरुषों का कभी साथ न करे। सदाचारी पुरुषों का सदा साथ करे, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के साथ तो आधे क्षण रहना भी प्रशंसनीय है ।।२१।।

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः ।
विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते ।२२।
नारभेत कलिं प्राज्ञश्शुष्कवैरं च वर्जयेत् ।
अप्यल्पहानिस्सोढव्या वैरेणार्थागमं त्यजेत् ।२३।
स्नातो नाङ्गानि सम्मार्जेत्स्नानशाट्या न पाणिना ।
न च निर्धूनयेत्केशानाचामेच्चैव चोत्थितः ।२४।
पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ।
नोच्चासनं गुरोरग्रे भजेताविनयान्वितः ।२५।
अपसव्यं न गच्छेत्तु देवागारचतुष्पथान् ।
माङ्गल्यपूज्यांश्च तथा विपरीतान्न दक्षिणम् ।२६।
सोमार्काग्न्यम्बुवायूनां पूज्यानां च न सम्मुखम् ।
कुर्यान्निष्ठीवविण्मूत्रसमुत्सर्गं च पण्डित ।२७।

तिष्ठन् मूत्रयेत्तद्वत्पथिष्वपि न मूत्रयेत् ।
श्लेष्मविण्मूत्ररक्तानि सर्वदेव न लङ्घयेत् ।२८।

श्रेष्ठ अथवा नीच पुरुषों से कभी विरोध न करे, क्योंकि विवाद और विवाह – यह दोनों ही कार्य समान पुरुषों से करने उचित हैं ॥२२॥ कलह की वृद्धि न करे, व्यर्थ का वैर हो तो उसे भी छोड़ दे । यदि थोड़ी सी हानि उठाने पर भी वैर की समाप्ति होती हो तो उसमे चूके नहीं ॥२३॥ स्नान करके स्नान से भीगी हुई धोती या हाथ से देह को न पोंछे, खड़े खड़े ही बालों को न झाड़े और न आचमन ही करे ॥२४॥ पैर पर पैर न रखे, गुरुजनों के सामने पाँव न पसारे तथा उनके सामने उच्चासन पर कभी न बैठे ॥२५॥ देव मन्दिर, चौराहा, माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य पुरुष इनको बाएं रखकर न निकले तथा इनके विपरीतों को दाँये ओर रख कर न चले ॥२६॥ चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों के समक्ष न थूके और न मल मूत्र विसर्जन करे ॥२७॥ मार्ग में या खड़े होकर मूत्र त्याग न करे और कफ, मल, मूत्र तथा रुधिर को न लाँघे ॥२८॥

श्लेष्मशिङ्घाणिकोत्सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते ।
बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ।२९।
योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।
न चैवेर्ष्या भवेत्तासु न धिक्कुर्यात्कदाचन ।३०।
मङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्यानन्नभिवाद्य च ।
न निष्क्रमेद् गृहात्प्राज्ञस्सदाचारपरो नरः ।३१।
चतुष्पथान्नमस्कुर्यात्काले होमपरो भवेत् ।
दीनानभ्युद्धरेत्साधूनुपासीत बहुश्रुतान् ।३२।
देवर्षिपूजकस्सम्यक्पितृपिण्डोदकप्रदः ।
सत्कर्ता चातिथीनां यः स लोकानुत्तमान्व्रजेत् ।३३।
हितं मितं प्रियं काले वश्यात्मा योऽभिभाषते ।
स याति लोकानाह्लादहेतुभूतान्नृपाक्षयान् ।३४।
धीमान्ह्रीमान्क्षमायुक्तो ह्यास्तिको विनयान्वितः ।
विद्याभिजनवृद्धानां याति लोकाननुत्तमान् ।३५।

भोजन, देव-पूजन, माङ्गलिक कार्य और जप होमादि के समय या श्रेष्ठ पुरुषों के समक्ष थूकना, छींकना आदि कर्म न करे ॥२९॥ स्त्रियों का अपमान, उनसे ईर्षा, उनका विश्वास न करे और न उन्हें निन्दित ही करे ॥३०॥ माङ्गलिक द्रव्य, पुष्प, रत्न, घृत तथा पूज्य पुरुषों का अभिवादन किये बिना बुद्धिमान जन अपने घर से बाहर नहीं जाते ॥३१॥ मार्ग चलते में चौराहों को नमस्कार करे, समय होने पर हवन करे, दीनों का उद्धार करे और बहुश्रुत साधुओं की संगति में रहे ॥३२॥ जो पुरुष देवताओं और ऋषियों का पूजन, पितरों को पिण्डोदक-दान तथा अतिथि का सत्कार करता है वह पुण्यलोकों को प्राप्त होता है ॥३३॥ जो पुरुष इन्द्रियों को जीत कर समय के अनुसार हितकारी, अल्प और प्रिय वचन कहता है, वह आह्लाद के हेतुभूत अक्षय लोकों में जाता है ॥३४॥ जो पुरुष बुद्धिमान, लज्जावान्, क्षमावान् आस्तिक और विनयशील होता है, वह विद्वान् और कुलीन पुरुषों के योग्य श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है ॥३५॥

अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु ।
अनध्यायं बुधः कुर्यादुपरागादिके तथा ॥३६॥
शमं नयति यः क्रुद्धान्सर्वबन्धुरमत्सरी ।
भीताश्वासनकृत्साधुः स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम् ॥३७॥
वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च ।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत् ॥३८॥
नोर्ध्वं न तिर्यग्दूरं वा न पश्यन्पर्यटेद् बुधः ।
युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ॥३९॥
दोषहेतूनशेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति ।
तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते ॥४०॥
सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः ।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः ।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥४१॥
ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे ।
सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैर्धृता मही ॥४२॥

असमय में मेघ-गर्जन कर रहे हों, पर्व-दिन हो अशौचकाल या चन्द्र-सूर्यग्रहण का अवसर हो, ऐसे समय मे बुद्धिमान् पुरुष को अध्ययन नही करना चाहिये ॥३६॥ जो पुरुष क्रोध में भरे हुए के क्रोध को शान्त करने वाला, डरे हुए को सान्त्वना देने वाला, मत्सरता-रहित, सभी का बन्धु एवं साधु स्वभाव है, उसके लिये तो अत्यल्प फल समझो ॥३७॥ देह-रक्षा की कामना वाले पुरुष को वर्षा या धूप के समय छाता धारण करना चाहिये, रात्रिकाल मे अथवा वन मे जाय तो हाथ मे दण्ड लेले और जब जहाँ कहीं भी जाना हो तो सदा जूते पहिन कर जाय ॥३८॥ ऊपर की ओर, इधर-उधर अथवा दूरस्थ पदार्थों को देखता हुआ न चले, केवल चार हाथ तक पृथ्वी को देखते हुए चलना चाहिये ॥३९॥ जो पुरुष इन्द्रियों को वश में करके दोष-प्राप्ति के सभी साधनों का त्याग करता है, उसके धर्म, अर्थ और काम का किंचित मात्र भी क्षय नही होता ॥४०॥ जो पापी के प्रति भी पारुष्य व्यवहार न करनेवाला पुरुष विद्या, विनय, सदाचार और ज्ञान से सम्पन्न है तथा अपना अन्तःकरण मित्रता से द्रवीभूत रहने के कारण जो कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है, मोक्ष सदा उसके हाथ मे स्थित रहती है ॥४१॥ जो रागादि से विरक्त हुए महापुरुष, काम, क्रोध और लोभादि के वश मे कभी न पड़ कर सदैव सदाचार मे तत्पर रहते हैं, उन्ही के प्रभाव से यह पृथ्वी टिकी हुई है ॥४२॥

तस्मात्सत्यं वदेत्प्राज्ञो यत्परप्रीतिकारणम् ।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत् ।४३।
प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् ।
श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ।४४।
प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान्भजेत् ।४५।

इस प्रकार सभी ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वह उसी प्रकार का सत्य बोलें, जिससे दूसरों को सुख मिले। यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरों का अहित होता हो तो मौन रहना ही उचित है ॥४३॥ यदि प्रिय वाक्य भी हितकारी न हो तो उसे भी न कहे, केवल हित करने वाले वाक्य ही कहे, चाहे

वह अत्यन्त अप्रिय ही क्यों न हो ॥४४॥ बुद्धिमान् पुरुष को इहलोक और परलोक में जिससे प्राणियों का हित साधन होता दीखे, उसी कार्य को मन, वचन और कर्म से करना चाहिये ॥४५॥



तेरहवाँ अध्याय

सचैलस्य पितुः स्नानं जाते पुत्रे विधीयते ।
जातकर्म तदा कुर्याच्छ्राद्धमभ्युदये च यत् ॥१॥
युग्मान्देवांश्च पित्र्यांश्च सम्यक्सव्यक्रमाद् द्विजान् ।
पूजयेद्भोजयेच्चैव तन्मना नान्यमानसः ॥२॥
दध्यक्षतैः सबदरैः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
देवतीर्थेन वै पिण्डान्दद्यात्कायेन वा नृप ॥३॥
नान्दीमुखः पितृगणस्तेन श्राद्धेन पार्थिव ।
प्रीयते तत्तु कर्तव्यं पुरुषैः सर्ववृद्धिषु ॥४॥
कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेषु च वेश्मनः ।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥५॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही ॥६॥
पितृपूजाक्रमः प्रोक्तो वृद्धावेष सनातनः ।
श्रूयतामवनीपाल प्रेतकर्मक्रियाविधिः ॥७॥

और्व ने कहा—पुत्र का जन्म होने पर पिता वस्त्रों के सहित स्नान करे और फिर जात कर्म संस्कार और आभ्युदयिक श्राद्ध करे ॥१॥ फिर तन्मयचित्त होकर देवताओं और पितरों के निमित्त क्रमशः दाँयी और बाँयी ओर दो दो ब्राह्मणों को बिठाकर उनका पूजन करे और फिर उन्हें भोजन कराये ॥२॥ पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर दही, अक्षत और बदरीफल से मिश्रित पिण्डों को देवतीर्थ या प्रजापति तीर्थ से दे ॥३॥ इस आभ्युदयिक श्राद्ध के द्वारा नान्दी-

मुख नामक पितरों की प्रसन्नता प्राप्त की जाती है। इसलिए सब प्रकार अभिवृद्धि के निमित्त इसका अनुष्ठान करना उचित है ॥४॥ पुत्री या पुत्र के विवाह मे, नामकरण संस्कार मे, चूडाकर्म मे, गृह प्रवेश में, सीमन्तोन्नयन मे और पुत्रादि का मुख देखने के समय गृहस्थ को एकाग्र मन से नान्दीमुख पितरो की पूजा करनी चाहिए ॥५-६॥ हे राजन्! आभ्युदयिक श्राद्ध मे पितर-पूजन का यह सनातन क्रम मैंने तुमसे कहा है, अब प्रेत क्रिया की विधि कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥७॥

प्रेतदेहं शुभैः स्नानैस्स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।
दग्ध्वा ग्रामाद्बहिः स्नात्वा सचैलस्सलिलाशये ।८।
यत्र तत्र स्थितायैतदमुकायेति वादिनः ।
दक्षिणाभिमुखा दद्युर्बान्धवास्सलिलाञ्जलीन् ।९।
प्रविष्टाश्च समं गोभिर्ग्रामं नक्षत्रदर्शने ।
कटकर्म ततः कुर्युर्भूमौ प्रस्तरशायिनः ।१०।
दातव्योऽनुदिनं पिण्डः प्रेताय भुवि पार्थिव ।
दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ।११।
दिनानि तानि चेच्छातः कर्तव्यं विप्रभोजनम् ।
प्रेता यान्ति तथा तृप्तिं बन्धुवर्गेण भुञ्जता ।१२।
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ।
वस्त्रत्यागबहिस्स्नाने कृत्वा दद्यात्तिलोदकम् ।१३।

शव को भले प्रकार स्नान कराने के पश्चात् पुष्प मालाओं से विभूषित शव को ग्राम से बाहर लेजाकर दाह-संस्कार करना चाहिए। फिर जलाशय मे वस्त्र सहित स्नान करके दक्षिण की ओर मुख करके 'यत्र तत्र स्थितायैतदमुकाय'—इस वाक्य का उच्चारण करते हुए जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥८-९॥ फिर गोधूलि काल मे जब तारा मण्डल दिखाई देने लगे, तब ग्राम मे प्रवेश करके कटकर्म करे घास-फूँस की शय्या पर, भूमि पर ही शयन करे ॥१०॥ मृत पुरुष के निमित्त नित्य प्रति पृथ्वी पर पिण्डदान करे और केवल दिन के समय एक बार माँस-रहित भात का भोजन करे ॥११॥ यदि अशौच,

श्राद्ध में ब्राह्मण भोजन करना चाहें तो उन्हें भोजन करावे, क्योंकि इस समय ब्राह्मण और बन्धुजन के भोजन करने से मृत जीव तृप्त होता है ॥१२॥ अशौच के प्रथम दिन, तृतीय दिन, सातवें और नौवें दिन वस्त्र त्यागकर बहिर्देश में स्नान करने के पश्चात् तिल जल देना चाहिये ॥१३॥

चतुर्थेऽह्नि च कर्तव्यं तस्यास्थिचयनं नृप ।
तदूर्ध्वमङ्गसंस्पर्शस्सपिण्डानामपीष्यते ।१४।
योग्यास्सर्वक्रियाणां तु समानसलिलास्तथा ।
अनुलेपनपुष्पादिभोगादन्यत्र पार्थिव ।१५।
शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते ।
भस्मास्थिचयनादूर्ध्वं संयोगो न तु योषिताम् ।१६।
बाले देशान्तरस्थे च पतिते च मुनौ मृते ।
सद्यश्शौचं तथेच्छातो जलाग्न्युद्बन्धनादिषु ।१७।
मृतबन्धोर्दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।१८।
विप्रस्यैतद् द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम् ।
अर्धमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य शुद्धये ।१९।
अयुजो भोजयेत्कामं द्विजानन्ते ततो दिने ।
दद्याद्दर्भेषु पिण्डं च प्रेतायोच्छिष्टसन्निधौ ।२०।
वार्य्यायुधप्रतोदास्तु दण्डश्च द्विजभोजनात् ।
स्प्रष्टव्योऽनन्तरं वर्णैः शुद्धेरन्ते ततः क्रमात् ।२१।

हे राजन् ! अशौच के चौथे दिन मृतक की अस्थि संचित करे, उसके बाद अपने सपिण्ड बाँधवों का अङ्ग स्पर्श करे ॥१४॥ उस समय से सपिण्ड पुरुष चन्दन और पुष्प धारण आदि क्रिया तो नहीं कर सकते, परन्तु अन्य सब कर्म कर सकते हैं ॥१५॥ भस्म और अस्थि- सचयन के पश्चात् सपिण्ड जनों को शय्या और आसन के उपयोग की छूट है, परन्तु स्त्री-प्रसंग वर्जित है ॥१६॥ बालक, दूसरे देश में स्थित, पतित और तपस्वी की मृत्यु होने पर या जल में डूब कर, जल कर या फाँसी आदि लगाकर आत्मघात करने पर

अशौच शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥१७॥ जिस कुटुम्ब मे मृत्यु हुई हो, उसका अन्न दस दिन तक भोजन न करे और अशौच काल मे, दान, परिग्रह हवन, स्वाध्याय आदि भी न करे ॥१८॥ यह दस दिन का अशौच ब्राह्मण का कहा है, क्षत्रिय का अशौच बारह दिन का और वैश्य का पन्द्रह दिन का होता है तथा शूद्र की अशौच से निवृत्ति एक मास मे होती है ॥१९॥ अशौच की समाप्ति पर अयुग्म अर्थात् ऊना (नौ, ग्यारह, तेरह) आदि सख्यक ब्राह्मणो को भोजन करावे और उनकी जूठन के पास ही प्रेत की तृप्ति के लिये कुश के आसन पर पिण्ड दे ॥२०॥ शुद्धि हो जाने पर तथा ब्राह्मण भोजन होने के पश्चात् ब्राह्मणादि चारो वर्ण को पहिले जल का, फिर शस्त्र का, फिर कोडा का और फिर सबके अन्त लाठी का स्पर्श करना चाहिए ॥ २१॥

ततस्स्ववर्णधर्मा ये विप्रादीनामुदाहृता ।
तान्कुर्वीत पुमाञ्जीवेन्निजधर्मार्जनैस्तथा ।२२।
मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम् ।
आह्वानादिक्रियादैवनियोगरहितं हि तत् ।२३।
एकोऽर्घस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम् ।
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु ।२४।
प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानैर्द्विजन्मनाम् ।

॥२५॥ इस प्रकार यह एकोद्दिष्ट कर्म एक वर्ष तक करना चाहिये। वर्ष के समाप्त होने पर सपिण्डीकरण (वर्षी) करे, उसका विधान सुनो ॥२६॥

एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव।
संवत्सरेऽथ षष्ठे वा मासे वा द्वादशेऽह्नि वत् ।२७।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम्।
पात्रं प्रेतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा ।२८।
सेचयेत्पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु।
ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन्प्रेते महीपते ।२९।
श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत्पूर्वानर्चयेत्पितॄन्।
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः ।३०।
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप जायते।
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ॥३१॥
मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा।
कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप ।३२।
संघातान्तर्गतैर्वापि कार्या प्रेतस्य च क्रिया।
उत्सन्नबन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः ।३३।

यह सपिण्डीकरण कर्म भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि से एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिन के पश्चात् ही किया जा सकता है ॥२७॥ इसमें तिल, गन्ध और जल सहित चार पात्र रखने चाहिए। इनमें से एक पात्र मृत व्यक्ति का तथा तीन पात्र पितरों के होते हैं ॥२८॥ फिर मृत व्यक्ति के पात्र में स्थित जल को तीनों पितरों के पात्रों को सींचे। इस प्रकार मृत व्यक्ति को पितृत्व की प्राप्ति हो जाय, तब सभी श्राद्ध कर्मों के द्वारा प्रथम मृत व्यक्ति का और फिर पितरों का पूजन करे। अपने सपिण्ड में उत्पन्न पुरुष—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भतीजा, आदि ही श्राद्धादि कर्म करने का अधिकारी होता है। यदि इनमें से कोई न हो तो समानोदक (सगोत्र) की सन्तान या मातृ पक्ष के सपिण्ड या समानोदक इस कर्म को कर सकता है। यदि मातृकुल या पितृकुल दोनों में से कोई भी न हो तो स्त्री ही इस क्रिया को कर सकती है ॥२९-३२॥

अशौच शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥१७॥ जिस कुटुम्ब में मृत्यु हुई हो, उसका अन्न दस दिन तक भोजन न करे और अशौच काल में, दान, परिग्रह, हवन, स्वाध्याय आदि भी न करे ॥१८॥ यह दस दिन का अशौच ब्राह्मण का कहा है, क्षत्रिय का अशौच बारह दिन का और वैश्य का पन्द्रह दिन का होता है तथा शूद्र की अशौच में निवृत्ति एक मास में होती है ॥१९॥ अशौच की समाप्ति पर अयुग्म अर्थात् ऊना (नौ, ग्यारह, तेरह) आदि संख्यक ब्राह्मणों को भोजन करावे और उनकी जूठन के पास ही प्रेत की तृप्ति के लिये कुश के आसन पर पिण्ड दे ॥२०॥ शुद्धि हो जाने पर तथा ब्राह्मण भोजन होने के पश्चात् ब्राह्मणादि चारों वर्ण को पहिले जल का, फिर शस्त्र का, फिर कोड़ा का और फिर इसके अन्त लाठी का स्पर्श करना चाहिए ॥ १॥

ततस्स्ववर्णधर्मा ये विप्रादीनामुदाहृता ।
तान्कुर्वीत पुमाञ्जीवेन्निजधर्मार्जनैस्तथा ।२२।
मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमत परम् ।
आह्वानादिक्रियादैवनियोगरहितं हि तत् ।२३।
एकोऽर्घ्यस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम् ।
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु ।२४।
प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानैर्द्विजन्मनाम् ।
अक्षय्यममुतस्येति वक्तव्य विरतौ तथा ।२५।
एकोद्दिष्टमयो धर्म इत्थमावत्सरात्स्मृत ।
सपिण्डीकरणं तस्मिन्काले राजेन्द्र तच्छृणु ।२६।

फिर ब्राह्मणादि के जो-जो वर्ण धर्म कहे हैं, उन्हीं का आचरण करते हुए आजीविका का उपार्जन करे ॥२२॥ इसके पश्चात् प्रतिमास मृतक की मृत्यु तिथि के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे, जो कि आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव सम्बन्धी कर्म से रहित हो ॥२३॥ उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक दे। यदि बहुत से ब्राह्मण भोजन करें तो भी मृतक के लिए एक ही पिण्ड दे ॥२४॥ फिर यजमान द्वारा पूछे जाने पर ब्राह्मण 'अभिरताः स्म' कहे और पिण्ड दान की समाप्ति पर अमुकस्य अक्षय्यम इत्यादि वाक्य का उच्चारण करें

॥२५॥ इस प्रकार यह एकोद्दिष्ट कर्म एक वर्ष तक करना चाहिये। वर्ष के समाप्त होने पर सपिण्डीकरण (वर्षी) करे, उसका विधान सुनो ॥२६॥

एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव ।
संवत्सरेऽथ षष्ठे वा मासे वा द्वादशेऽह्नि तत् ।२७।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ।
पात्रं प्रेतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा ।२८।
सेचयेत्पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु ।
ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन्प्रेते महीपते ।२९।
श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत्पूर्वानर्चयेत्पितॄन् ।
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः ।३०।
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप जायते ।
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ॥३१॥
मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा ।
कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप ।३२।
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि कार्या प्रेतस्य च क्रिया ।
उत्सन्नबन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः ।३३।

यह सपिण्डीकरण कर्म भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि से एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिन के पश्चात् ही किया जा सकता है ॥२७॥ इसमें तिल, गन्ध और जल सहित चार पात्र रखने चाहिए। इनमें से एक पात्र मृत व्यक्ति का तथा तीन पात्र पितरों के होते हैं ॥२८॥ फिर मृत व्यक्ति के पात्र में स्थित जल को तीनों पितरों के पात्रों को सींचे। इस प्रकार मृत व्यक्ति को पितृत्व की प्राप्ति हो जाय तब सभी श्राद्ध धर्मों के द्वारा प्रथम मृत व्यक्ति का और फिर पितरों का पूजन करे। अपने सपिण्ड में उत्पन्न पुरुष—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भतीजा, आदि ही श्राद्धादि कर्म करने का अधिकारी होता है। यदि इनमें से कोई न हो तो समानोदक (सगोत्र) की सन्तान या मातृ पक्ष के सपिण्ड या समानोदक इस कर्म को कर सकता है। यदि मातृकुल या पितृकुल दोनों में से कोई भी न हो तो स्त्री ही इस क्रिया को कर सकती है ।।२९-३२॥

स्त्री के अभाव में मृतक का कोई साथी करे। यदि उसका भी अभाव हो तो राजा को ही मृतक के द्रव्य से उसका सब प्रेत कर्म करना चाहिये ॥३३॥

पूर्वा क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तरा क्रिया ।
त्रिप्रकारा क्रिया सर्वास्तासां भेदं शृणुष्व मे ॥३४॥
आदाहवार्यायुधादिस्पर्शाद्यन्तास्तु या. क्रिया ।
ता पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिता ॥३५॥
प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु ।
क्रियन्ते या क्रिया पित्र्या प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तरा ॥३६॥
पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलैस्तथा ।
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा तद्धनहारिणा ॥३७॥
पूर्वा क्रियाश्च कर्तव्या पुत्राद्यैरेव चोत्तरा ।
दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥३८॥
मृताहनि च कर्तव्या स्त्रीणामप्युत्तरा क्रिया ।
प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः ॥३९॥
तस्मादुत्तरसंज्ञाया क्रियास्ता शृणु पार्थिव ।
यथा यथा च कर्तव्या विधिना येन चानघ ॥४०॥

प्रेत कर्म के तीन प्रकार हैं—पूर्व कर्म, मध्यम कर्म और उत्तर कर्म। इन सबके लक्षण पृथक्-पृथक् हैं, उन्हें भी सुनो ॥३४॥ दाह संस्कार से जल-शस्त्रादि के स्पर्श तक जितने भी संस्कार हैं, वे सब पूर्व कर्म कहे गये हैं तथा प्रतिमास किया जाने वाला एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्यम कर्म है ॥३५॥ सपिण्डीकरण के बाद जब मृतक पितृत्व को प्राप्त हो जाता है, तब उसके प्रति किये जाने वाले सब कर्म उत्तर कर्म कहे जाते हैं ॥३६॥ माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, साथी अथवा उसका धनाधिकारी राजा—यह सब उसके पूर्व कर्म करने के अधिकारी हो सकते हैं, परन्तु उत्तर कर्म पुत्र, दौहित्र या उनकी संतान ही कर सकती है ॥३६-३८॥ हे राजन्! स्त्रियों का उत्तर कर्म भी प्रतिवर्ष मृत्यु-दिवस पर एकोद्दिष्ट श्राद्ध विधि से ही अवश्य कर्तव्य है ॥३९॥

इसलिये हे निष्पाप ! वे उत्तर क्रियाएँ जिस-जिस व्यक्ति के द्वारा जिस-जिस विधान से करनी चाहिये, उन्हें भी अब ध्यान से श्रवण करो ॥४०॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान् ।
विश्वेदेवान्पितृगणान्वयांसि मनुजान्पशून् ॥१॥
सरीसृपानृषिगणान्यच्चान्यद्भूतसञ्ज्ञितम् ।
श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन्प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥२॥
मासि मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर ।
तथाष्टकासु कुर्वीत काम्यान्कालाञ्छृणुष्व मे ॥३॥
श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्टमथ वा द्विजम् ।
श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय व्यतीपातेऽयने तथा ॥४॥
विषुवे चापि सम्प्राप्ते ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।
समस्तेष्वेव भूपाल राशिष्वर्के च गच्छति ॥५॥
नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नावलोकने ।
इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमे तथा ॥६॥
अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातियोगिनी ।
श्राद्धैः पितृगणस्तृप्तिं तथाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ॥७॥

और्व ने कहा—श्रद्धा भाव से श्राद्ध कर्म करने वाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, पितरगण, पक्षी, मनुष्य, पशु सरीसृप, ऋषिगण, और भूतगण, आदि सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न करने में समर्थ होता है ॥१-२॥ हे राजन् ! प्रत्येक महीने की अमावस और अष्टका (हिमन्त और शिशिर ऋतुओं के शुक्ल पक्ष की अष्टमी) पर श्राद्ध करे। अब काम्य श्राद्ध का समय कहता हूँ, उसे सुनो ॥३॥ जब श्राद्ध के योग्य कोई पदार्थ घर में आवे अथवा किसी विशिष्ट ब्राह्मण का आगमन हो या उत्त-

रायण अथवा दक्षिणायन का आरम्भ हो या व्यतीपात हो तब काम्य श्राद्ध करे ॥४॥ विषुव सक्रांति, सूर्य चन्द्रग्रहण सूर्य का प्रत्येक राशि मे प्रवेश होते समय, नक्षत्र या ग्रह के पीडित होने पर, दुःस्वप्न देखने पर अथवा घर मे नया अन्न आवे तब काम्य श्राद्ध करना उचित है ॥५ ६॥ जिस अमावस मे अनुराधा, विशाखा या स्वाति नक्षत्र का योग हो, उसमे श्राद्ध करने से पितरो की आठ वर्ष के लिए तृप्ति हो जाती है ॥७॥

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रे चर्क्षे पुनर्वसौ ।
द्वादशाब्द तथा तृप्ति प्रयान्ति पितरोऽर्चिता ।८।
वासवाजैकपादर्क्षे पितॄणा तृप्तिमिच्छताम् ।
वारुणे वाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ।९।
नवस्वृक्षष्वमावास्या यदैतेष्ववनीपते ।
तदा हि तृप्तिद श्राद्ध पितॄणा शृणु चापरम् ।१०।
गीत सनत्कुमारेण यथैलाय महात्मने ।
पृच्छते पितृभक्ताय प्रश्रयावनताय च ।११।
वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।१२।
एता युगाद्या कथिता पुराणेष्वनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्र ।
उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ।१३।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्र दद्यात्पितृभ्य प्रयतो मनुष्य ।
श्राद्ध कृत तेन समासहस्र रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ।१४।

जिस अमावस्या मे पुष्य आर्द्रा या पुनर्वसु नक्षत्र का योग हो उसमे पूजित हुए पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं ॥८॥ परन्तु धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा या शतभिषा नक्षत्र वाली अमावस पितरों को तृप्त करने वालों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥९॥ जब अमावस इन नौ नक्षत्रो के योग से सम्पन्न होती है तब जो श्राद्ध किया जाता है वह पितरों के लिये अत्यन्त तृप्ति देने वाला होता

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—वैशाख शुक्ल पक्ष की तीज, कार्तिक शुक्ला नौमी, भादों कृष्ण तेरस और माघ मास की अमावस—यह चार तिथियाँ पुराणों में 'युगाद्या' कही गयी हैं, यह अनन्त पुण्य फल के देने वाली हैं। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय, तीन अष्टकाओं में, उत्तरायण के या दक्षिणायन के आरम्भ में जो पुरुष पितरों के निमित्त एकाग्र चित्त से तिलोदक देता है, वह उन्हें एक हजार वर्ष के लिये तृप्त कर देता है—इस परम रहस्य को स्वयं पितरों ने ही कहा है ॥१२-१४॥

माघेऽसिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।
ऋक्षेण कालस्स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ।
काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत् भूपाल तदा पितृभ्यः ।
दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ।।१६।
तत्रैव चेद्भाद्रपदा नु पूर्वा काले यथावत्क्रियते पितृभ्यः ।
श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन युगं सहस्रं पितरस्स्वपन्ति ।१७।
गङ्गां शतद्रू यमुनां विपाशां सरस्वतीं नैमिषगोमतीं वा ।
तत्रावगाह्यार्चनमादरेण कृत्वा पितृणां दुरितानि हन्ति ।१८।
गायन्ति चैतत्पितरः कदानु वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः ।
माघासिताल्ते शुभतीर्थतोयैर्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः ।१९।
चित्तं च वित्तं च नृणां विशुद्धं शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च ।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि।

यदि कभी शतभिषा नक्षत्र माघी अमावस के दिन हो तो उस दिन किया जाने वाला श्राद्ध पितरों की तृप्ति के लिये परमोत्कृष्ट काल माना कहा है। जो अल्प पुण्य वाले पुरुष हैं, उनको ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं होता ॥१५॥ यदि उस माघ की अमावस में धनिष्ठा नक्षत्र का योग हो जाय, तो अपने ही वंशोत्पन्न पुरुष द्वारा दिये गये अन्न जल से पितरगण दस हजार वर्ष तक को तृप्त रहते हैं ॥१६॥ यदि उस अमावस के साथ पूर्व भाद्रपद का योग हो जाय तब श्राद्ध करने से पितरों को परम तृप्ति-लाभ होता है और वे एक हजार युग तक सोते रहते हैं ॥१७॥ गंगा शतद्रू, यमुना, विपाशा, सरस्वती और

नैमिषारण्य में स्थित गोमती में स्नान करके पितरों का आदर सहित पूजन करे तो मनुष्य उनके सभी पापों का नाश कर देता है ॥१८॥ पितरगण सदा ही गाते रहते हैं कि वर्षाकाल के मघा नक्षत्र में तृप्त होकर फिर माघ की अमावस के दिन अपने वंशजों की पुण्यतीर्थों वाली जलाञ्जलि से हम कब तृप्त होंगे ? ॥१९॥ चित्त की शुद्धि, पवित्र धन, प्रशस्तकाल, उपरोक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति-यह सभी, मनुष्य को वाञ्छित फल प्रदान करने वाले हैं ॥२०॥

पितृगीतान्तथैवात्र श्लोकास्ताञ्छृणु पार्थिव ।
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्य तत्राहतात्मना ।२१।
अपि धन्य कुले जायादस्माक मतिमान्नर ।
अकुर्वन्वित्तशाठ्य य पिण्डान्नो निर्वपिष्यति ।२२।
रत्न वस्त्र महायान सर्वभोगादिक वसु ।
विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति ।२३।
अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन्भक्तिनम्रधी ।
भोजयिष्यति विप्राग्र्यास्तन्मात्रविभवो नर ।२४।
असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमाम स्वशक्तित ।
प्रदास्यति द्विजाग्र्येभ्य स्वल्पाल्पा वापि दक्षिणाम् ।२५।
तत्राप्यसामर्थ्ययुत कराग्राग्रस्थितास्तिलान् ।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद्भूप दास्यति ।२६।
तिलै स्सप्ताष्टभिर्वापि समवेत जलाञ्जलिम् ।
भक्तिनम्रस्समुद्दिश्य भुव्यस्माक प्रदास्यति ।२७।
यत कुतश्चित्सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवाह्निकम् ।
अभावे प्रीणयन्नस्माञ्छ्रद्धायुक्त प्रदास्यति ।२८।
सर्वाभावे वन गत्वा कक्षमूलप्रदर्शक ।
सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति ।२९।
न मेऽस्ति वित्त न धन च नान्यच्छ्राद्धोपयोग्यस्वपितृन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य।३०।
इत्येतत्पितृभिर्गीत भावाभावप्रयोजनम् ।
य करोति कृत तेन श्राद्ध भवति पार्थिव ।३१।

हे राजन् ! अब तुम पितरों द्वारा गाये हुए कुछ श्लोकों को सुनो, जिन्हें सुन लेने पर वैसा ही आचरण करना उचित है ॥२१॥ क्या हमारे वंश में कोई ऐसा बुद्धिमान और धन्य पुरुष होगा जो धन-लोलुपता को त्याग कर हमारे निमित्त पिण्ड देगा ॥२२॥ जो धन होने पर हमारे लिये ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, महायान या सर्व भोग सामग्री प्रदान करेगा ॥२३॥ या यदि केवल अन्न वस्त्र वाला होने पर श्राद्ध के समय विनम्रता पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हमारे निमित्त अन्न का ही भोजन करायेगा ॥२४॥ अथवा अन्न देने में भी समर्थ न होने पर ब्राह्मणों को कच्चा धान्य और स्वल्प दक्षिणा ही दे सकेगा ॥२५॥ कदाचित् ऐसा भी करने योग्य न होगा तो किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को एक मुट्ठी तिल ही प्रदान करेगा ॥२६॥ यदि इसमें भी असमर्थ हो तो हमारे निमित्त भक्ति भाव से झुकते हुए केवल सात-आठ तिलों के सहित जलाञ्जलि ही देगा ॥२७॥ यदि ऐसा भी न कर सके तो कहीं से चारा लाकर श्रद्धा और प्रेम के सहित गौ को भक्षण करायेगा ॥२८॥ यदि इसका मिलना भी सम्भव न हो तो वन में जाकर अपनी बगल को दिखाता हुआ सूर्यादि लोकपालों से उच्च-स्वर में रो-कर कहेगा कि श्राद्ध-कर्म के योग्य मेरे पास न वित्त है, न धन है, न कोई अन्य सामग्री ही है, इसलिये, मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ वे मेरी भक्ति से ही तृप्त हो जाँय । मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाश की ओर ऊँची कर रखी हैं ॥३०॥ और्व ने कहा—हे पार्थिव ! धन के होने या उसके अभाव में पितरों ने जो बताया है, उसके अनुकूल आचरण करने पर भी विधिवत् श्राद्ध ही हो जाता है ॥३१॥



पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मणान्भोजयेच्छाद्धे यद्गुणास्तान्निबोध मे ।
त्रिणाचिकेतस्त्रि मधुस्त्रिसुपर्णष्पडङ्गवित् ।१।
वेदविच्छ्रोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः ।
ऋत्विक्स्वस्रो यदौहित्रजामातृश्वशुरास्तथा ।२।

मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।
शिष्याः सम्बन्धिनश्चैव मातापितृरतश्च यः ।३।
एतान्नियोजयेच्छ्राद्धे पूर्वोक्तान्प्रथमे नृप ।
ब्राह्मणान्पितृतुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्वनन्तरान् ।४।
मित्रध्रुक्कुनखी क्लीबश्श्यावदन्तस्तथा द्विजः ।
कन्यादूषयिता वह्निवेदोज्झःसोमविक्रयी ।५।
अभिशस्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः ।
भृतकाध्यापकस्तद्वद्भृतकाध्यापितश्च यः ।६।
परपूर्वापतिश्चैव मातापित्रोस्तथोज्झकः ।
वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च ।७।
तथा देवलकश्चैव श्राद्धे नार्हति केतनम् ।८।

और्व ने कहा—हे राजन् ! श्राद्ध के समय जैसे-जैसे गुण वाले ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, उसे कहता हूँ, सुनो । त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, षडाङ्गविद्, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी, ज्येष्ठ-सामग, ऋत्विक्, भानजा, दौहित्र, जामातृ, श्वसुर, मामा, तपस्वी, पंचाग्नि-निष्ठ, शिष्य, सम्बन्धी तथा माता-पिता के प्रियजन—इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रित करे । इनमें से पहिले कहे हुओं को पूर्व कर्म में और पीछे कहे हुओं को पितरों की तृप्ति वाले कर्म में नियुक्त कर भोजन करावे ॥१-४॥ मित्रघाती, विकृतनखी, पुंसत्वहीन, मलीन दाँत वाला, कन्यागामी, अग्नि और वेद से हीन सोम-विक्रेता लोकनिन्दित, चोर, पिशुन कर्म वाला, ग्राम पुरोहित, वेतन-भोगी अध्यापक, पुनर्विवाहिता का पति, माता-पिता को त्याग देने वाला, शूद्र की सन्तान का पालक, शूद्रा का पति और देवता से जीविका चलाने वाला ब्राह्मण श्राद्ध में बुलाने को अयोग्य है ॥५-८॥

प्रथमेऽह्नि बुधश्शस्ताञ्छ्रोत्रियादीन्निमन्त्रयेत् ।
कथयेच्च तथैवैषां नियोगान्पितृदैविकान् ।९।
ततः क्रोधव्यवायादीनायासं तैर्द्विजैस्सह ।
यजमानो न कुर्वीत दोषस्तत्र महानयम् ।१०।

श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य च ।
व्यवायी रेतसो गर्त्ते मज्जयत्यात्मनः पितॄन् ।११।
तस्मात्प्रथममत्रोक्तं द्विजाग्र्याणां निमन्त्रणम् ।
अभिमन्त्र्य द्विजानेवमागतान्भोजयेद्यतीन् ।१२।
पादशौचादिना गेहमागतान्पूजयेद् द्विजान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ।१३।
पितॄणामयुजो युग्मान्देवानामिच्छया द्विजान् ।
देवानामेकमेकं वा पितॄणां च नियोजयेत् ।१४।

श्राद्ध से पहिले दिन ही योत्रिय आदि ब्राह्मणों को निमन्त्रित करके उन्हें बता दे कि आपको पितृ-श्राद्ध ■ और आपको विश्वेदेव-श्राद्ध में नियुक्त करता है ॥९॥ श्राद्ध करने वाला पुरुष और वे निमन्त्रित ब्राह्मण भी उस दिन क्रोधादि, नारी-संग या परिश्रम का कोई कार्य न करे, क्योंकि श्राद्ध कर्म में इसका अत्यन्त दोष कहा है ॥१०॥ श्राद्ध में निमन्त्रित होकर अथवा भोजन करके या श्राद्ध का निमन्त्रण देकर या भोजन कराकर जो नारी संग करता है, वह अपने पितरों को ही वीर्य-कुण्डी में डुबाता है ॥११॥ इसलिये श्राद्ध के पहिले दिन यत्न पूर्वक उपरोक्त विशिष्ट गुण सम्पन्न ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे और श्राद्ध के दिन यदि कोई अनिमन्त्रित सद्ब्राह्मण घर पर आ जांय, तो उन्हें भी भोजन करा दे ॥१२॥ पहिले उन ब्राह्मणों के चरण धोवे, फिर हाथ धोकर आचमन कराने के बाद उन्हें आसन प्रदान करे ॥१३॥ अपने सामर्थ्य के अनुसार पितरों के लिये अयुग्म (पांच, सात, नौ आदि) तथा देवताओं के लिये युग्म (दो, चार, छः आदि) ब्राह्मण बुलावे अथवा दोनों के लिये एक-एक ब्राह्मण ही नियुक्त करे ॥१४॥

तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम् ।
कुर्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।१५।
प्राङ्मुखान्भोजयेद्विप्रान्देवानामुभयात्मकान् ।
पितृमातामहानां च भोजयेच्चाप्युदङ्मुखान् ।१६।

पृथक्तयोः केचिदाहु: श्राद्धस्य करणं नृप ।
एकत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः ।१७।
विष्टरार्थं कुशं दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यं विधानतः ।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवाना तदनुज्ञया ।१८।
यवाम्बुना च देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवित् ।
स्रग्गन्धधूपदीपाश्च तेभ्यो दद्याद्यथाविधि ।१९।
पितृणामपसव्यं तत्सर्वमेवोपकल्पयेत् ।
अनुज्ञा च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान्द्विधाकृतान् ।२०।
मन्त्रपूर्वं पितृणा तु कुर्याद्वावाहनं बुध. ।
तिलाम्बुना चाप्यसव्य दद्यादर्घ्यादिकं नृप ।२१।

इसी प्रकार वैश्वदेव के सहित मातामह (नाना) का श्राद्ध करना चाहिए। अथवा पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष दोनों के निमित्त एक श्राद्ध ही कर सकता ॥१५॥ देवपक्ष के ब्राह्मणों को पूर्व की ओर मुख करके बैठावे और और पितृ तथा मातामह पक्ष के ब्राह्मणों के उत्तराभिमुख बैठकर भोजन करावे ॥१६॥ हे राजन ! कोई महर्षि तो पितृ-पक्ष और मातामह पक्ष के श्राद्धों को पृथक्-पृथक् करने का विधान करते हैं और किसी ने एक साथ तथा एक ही पाक में करना ठीक बताया है ॥१७॥ पहिले आमन्त्रित ब्राह्मणों के लिए कुशा बिछाकर फिर उनका अर्घ्यदानादि से पूजन करे और उनकी अनुमति प्राप्त करके देवताओं का आवाहन करे ॥१८॥ फिर श्राद्ध विधि का ज्ञाता पुरुष जौ मिले हुए जल से देवताओं को अर्घ्य दे और फिर धूप, दीप, गन्ध और पुष्पमालादि समर्पित करे ॥१९॥ पितरों के निमित्त किये जाने वाले सब उपचार अपसव्य-भाव (दाँये कन्धे पर जनेऊ करके) से करने चाहिए। फिर ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त कर दो भागों में विभक्त कुशों का दान कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक पितरों का आवाहन करे और अपसव्य रहकर ही तिलोदक से अर्घ्यादि प्रदान करे ॥२०-२१॥

काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं नृपाध्वगम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत् ।२२।

योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः ।
भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः ।२३।
तस्मादभ्यर्चयेत्प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं बुधः ।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः ।२४।
जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्जमन्नं ततोऽनले ।
अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिकृत्वः पुरुषर्षभ ।२५।
अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेत्यादौ नृपाहुतिः ।
सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम् ।२६।
वैवस्ताय चैवान्या तृतीया दीयते ततः ।
हुतावशिष्टमल्पान्नं विप्रपात्रेषु निर्वपेत् ।२७।

हे राजन् ! यदि उस काल कोई क्षुधार्त मार्ग चलता हुआ व्यक्ति अतिथि रूप से आ पहुँचे तो ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उसे भी भोजन कराना चाहिए ॥२२॥ क्योंकि बहुत से अज्ञात योगिगण जन-कल्याण की भावना से विविध रूप में भूतल पर विचरण करते रहते हैं ॥२३॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य को श्राद्ध काल में अपने घर पर आये हुए अतिथि का अवश्य पूजन करना चाहिए। वैसा न करने से वह विमुख हुआ अतिथि समस्त श्राद्ध क्रिया को विफल कर देता है ॥२४॥ हे राजन् ! फिर उन ब्राह्मणों की आज्ञा से नमक हीन तथा शाक-रहित अन्न से अग्नि में तीन आहुतियाँ प्रदान करे ॥२५॥ उनमें से 'अग्नये कव्यवाहाय स्वाहा' कहकर प्रथम, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' कहकर द्वितीय और 'वैवस्वताय स्वाहा' कहकर तीसरी आहुति देनी चाहिए। फिर हुतावशिष्ट अन्न में से थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणों के पात्रों में परोसे ॥२६-२७॥

ततोऽन्नं मृष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम् ।
दत्त्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम् ।२८।
भोक्तव्यं तैश्च तच्चित्तैर्मौनिभिस्सुमुखैः सुखम् ।
अक्रुद्ध्यता चात्वरता देयं तेनापि भक्तितः ।२९।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः ।
कृत्वा ध्येयास्स्वपितरस्त एव द्विजसत्तमाः ।३०।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह. ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः ।३१।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तय. ।३२।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह. ।
तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ।३३।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
तृप्तिं प्रयान्तु मे भक्त्या मयैतत्समुदाहृतम् ।३४।
मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्य ।
विश्वे च देवा. परमां प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधाना. ।
यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ।३६।

फिर भले प्रकार सिद्ध किये हुए मधुर अन्न को इच्छानुसार सब ब्राह्मणों को परोस कर अत्यन्त मीठी वाणी से भोजन करने को कहे ।।२८।। ब्राह्मण भी उस भोजन को मन लगाकर मौन धारणपूर्वक सुख से भोजन करें तथा यजमान भी क्रोध और लोभता को त्याग कर भक्ति सहित उनके भोजन करते मे परोसता रहे ।।२९।। फिर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके श्राद्ध के स्थान पर तिल छिड़के और उन ब्राह्मणों का पितृ रूप से इस प्रकार ध्यान करे ।।३०।। इन ब्राह्मणो के देहो मे प्रतिष्ठित हुए और मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि तृप्ति को प्राप्त हों ।।३१।। होम के द्वारा मेरे पिता पितामह और प्रपितामह बलवान होते हुए तृप्ति को प्राप्त हो ।।३२।। पृथिवी पर मैंने जो पिण्ड दिये हैं, उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्त हो ।।३३।। मैंने भक्तिभाव से इस समय जो कुछ निवेदन किया है, उसी के द्वारा ,मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्त हों ।।३४।। मेरे नाना, नाना के पिता और उनके भी पिता तथा विश्वेदेवगण परम तृप्ति को प्राप्त हो तथा सभी राक्षस नष्ट हो जाय ।।३५।। समस्त हव्य कव्य के भोक्ता यज्ञेश्वर अव्ययात्मा श्री हरि यहाँ विराजमान हैं, इसलिये उनकी सन्निधि से सभी राक्षसगण और असुरगण यहाँ से इसी समय पलायन करें ।।३६

तृप्तेष्वेतेषु विकिरेदन्नं विप्रेषु भूतले ।
दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत्सकृत् ।३७।
सुतृप्तैस्तैरनुज्ञातस्सर्वेणान्नेन भूतले ।
सतिलेन ततः पिण्डान्सम्यग्दद्यात्समाहितः ।३८।
पितृतीर्थेन सतिलेन तथैव सलिलाञ्जलिम् ।
मातामहेभ्यस्तेनैव पिण्डांस्तीर्थेन निर्वपेत् ।३९।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम् ।
स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ।४०।
पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथापरम् ।
दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेल्लेपघर्षणैः ।४१।
पिण्डैर्मातामहांस्तद्वद्गन्धमाल्यादिसंयुतैः ।
पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्याच्चाचमनं ततः ।४२।
पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर ।
सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान् ।
प्रीयन्तामिह ये विश्वेदेवास्तेन इतीरयेत् ।४४।
तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः ।
पश्चाद्विसर्जयेद्देवान्पूर्वं पित्र्यान्महीपते ।४५।

फिर जब ब्राह्मण भोजन करलें तब थोड़ा सा अन्न लेकर पृथ्वी पर डाले और आचमन के लिये उन्हें और एक बार जल दे ।।३७।। तदनन्तर अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट हुए उन ब्राह्मणों की अनुमति से पृथिवी पर अन्न और और तिल के पिण्ड दे ।।३८।। फिर पितृतीर्थ से तिलोदक की जलाञ्जलि दे । नाना आदि के निमित्त भी उसी पितृतीर्थ से पिण्डदान आदि करना चाहिए ।।३९।। ब्राह्मणों की जूठन के पास ही दक्षिण दिशा की ओर अग्र भाग करके जो कुश बिछाये हों, उन पर प्रथम अपने पिता के निमित्त पुष्प धूपादि से अर्चित पिण्ड दे ।।४०।। फिर एक पिण्ड पितामह के निमित्त और पश्चात् एक पिण्ड प्रपितामह के लिये दान करे । फिर कुश मूल में लगे अन्न को पोंछ

कर लेपभोजी पितरों की तृप्ति करे ॥४१॥ इसी प्रकार गन्ध पुष्पमाल आदि से पूजित पिण्डों से नाना आदि को तृप्त करे और ब्राह्मणों को आचमन करावे ॥४२॥ फिर भक्ति भाव पूर्वक खड़े होकर प्रथम पितृपक्ष के ब्राह्मणों से 'सुस्वधा' कहलाता हुआ आशीर्वाद प्राप्त करे और यथाशक्ति भर दक्षिणा दे ॥४३॥ विश्वेदेव पक्ष के ब्राह्मणों के पास जाकर उन्हें दक्षिणा दे और निवेदन करे कि विश्वदेवता प्रसन्न हों ॥४४॥ जब वे ब्राह्मण 'ऐसा ही हो' कह तब उनसे आशीर्वाद माँगे और पितृपक्ष के ब्राह्मणों को पहिले और देवपक्ष के ब्राह्मणों को उनके पश्चात् विदा करे ॥४५॥

मातामहानामप्येव सह देवैः क्रमः स्मृतः ।
भोजने च स्वशक्त्या च दाने तद्वद्विसर्जने ।४६।
आपादशौचनात्पूर्वं कुर्याद्देवद्विजन्मसु ।
विसर्जनं तु प्रथमं पैत्रमातामहेषु वै ।४७।
विसर्जयेत्प्रीतिवचस्सम्मान्याभ्यर्थितास्ततः ।
निवर्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारं ताननुव्रजेत् ।४८।
ततस्तु वैश्वदेवाख्यं कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ।
भुञ्जाच्चैव समं पूज्यभृत्यबन्धुभिरात्मनः ।४९।
एवं श्राद्धं बुधः कुर्यात्पित्र्यं मातामहं तथा ।
श्राद्धैराप्यायिता दद्युस्सर्वान्कामान्पितामहाः ।५०।
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः ।
रजतस्य कथा दानं तथासङ्कीर्तनादिकम् ।५१।
वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा ।
भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन्न शस्यते ।५२।
विश्वेदेवास्सपितरस्तथा मातामहा नृप ।
कुलं चाप्यायते पुंसां सर्वं श्राद्धं प्रकुर्वताम् ।५३।
सोमाधारः पितृगणो योगाधारश्च चन्द्रमाः ।
श्राद्धं योगिनियोगस्तु तस्माद्भूपाल शस्यते ।५४।
सहस्रस्यापि विप्राणां योगी चेत्पुरतः स्थितः ।
सर्वान्भोक्तॄंस्तारयति यजमानं तथा नृप ।५५।

विश्वदेवताओं के सहित नाना आदि के श्राद्ध में भी ब्राह्मण भोजन, दान, विसर्जनादि का यही क्रम कहा गया है ॥४६॥ पितृपक्ष तथा [redacted] नानश—दोनों प्रकार के श्राद्धों में पग-प्रक्षालनादि सभी कर्म प्रथम देवपक्षीय ब्राह्मणों के करे। परन्तु पितृपक्षीय या नानापक्षीय ब्राह्मणों को पहिले विदा करे ॥४७॥ प्रीतिमय वचनों सहित सम्मान करते हुये उन ब्राह्मणों को विदा करे तथा उनके पीछे-पीछे द्वार तक जाकर उनकी आज्ञा होने पर घर में लौट आवे ॥४८॥ इसके पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्य कर्म करके अपने पूज्नीय व्यक्तियों, बन्धुजनों और भृत्यगणों के सहित भोजन करे ॥४६॥ इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष को पितृ श्राद्ध और मातामह श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिए। श्राद्ध से तृप्त हुए पितरगण सभी अभिलाषाओं के पूर्ण करने वाले हैं ॥५०॥ श्राद्ध के समय पुत्री का पुत्र, दिन का अठवां मुहूर्त, तिल, चाँदी का दान तथा उसकी बात कहना—यह सब पवित्र समझे जाते हैं ॥५१॥ श्राद्ध करने वाले को क्रोध करना, कहीं जाना और श्राद्ध कर्म में उतावलापन करना वर्जित माना गया है और श्राद्ध में भोजन करने वालों को भी उक्त तीनों बातें निषिद्ध हैं ॥५२॥ हे नृप ! श्राद्ध कर्त्ता पुरुष से विश्वेदेव-गण, पितरगण, नाना और कुटुम्बीजन-सभी प्रसन्न रहते हैं ॥५३॥ पितरों का आधार चन्द्रमा और चन्द्रमा का आधार योग हैं, इसीलिए श्राद्ध में योगियों का नियुक्त किया जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥५४॥ हे नृप ! श्राद्धमें भोजन करने वाले एक हजार ब्राह्मणों के सामने यदि एक योगी हो, तो वह एक ही योगी यजमान के सहित उन सबका उद्धार करने में समर्थ है ॥५५॥

सोलहवाँ अध्याय

हविष्यमत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन च ॥१॥
औरभ्रगव्यैश्च तथा मासवृद्धया पितामहा ।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्ध्रीणसामिषैः ॥२॥

खड्गमांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु ।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानि नरेश्वर ।३।
गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथिवीपते ।
सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ।४।
प्रशान्तिकास्सनीवाराश्श्यामाका द्विविधास्तथा ।
वन्यौषधीप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्षभ ।५।
यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीह्यस्तिलाः ।
निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः ।६।

और्व ने कहा—हविष्यादि का भोजन करने से पितरों की एक मास तक तृप्ति रहती है। श्राद्ध कर्म में काल शाक और मधु अत्यन्त प्रशस्त तथा अधिकाधिक तृप्ति के देने वाले हैं ॥१-३॥

हे राजन् ! गया में जाकर श्राद्ध करने से मनुष्य का पितरों को तृप्त करने वाला वह जीवन सफल होता है ॥४। देवधान्य, नीवार तथा सफेद या काले रङ्ग के श्यामा और प्रमुख प्रमुख वनौषधि श्राद्ध के लिए उपयुक्त मानी गई हैं ॥५॥ जौ, प्रियगु, मूँग, गेहूँ धान, तिल, मटर, कचनार तथा सरसों को श्राद्ध में श्रेष्ठ माना गया है॥६॥

अकृताग्रयणं यच्च धान्यजातं नरेश्वर ।
राजमाषानणूश्चैव मसूरांश्च विसर्जयेत् ।७।
अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् ।
गान्धारकरम्भादिलवणान्यौषराणि च ।८।
आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ।९।
नक्ताहृतमनुच्छिन्नं तृप्यते न च यत्र गौः ।
दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ।१०।
क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च ।
मार्गं च माहिषं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ।११।

षण्ढापविद्धचाण्डालपापिपाषण्डिरोगिभिः ।
कृकवाकुश्वनग्नैश्च वानरग्रामसूकरैः ॥१२॥
उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते ।
श्राद्धे सुरा न पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ ॥१३॥

जिसमें नवान्न यज्ञ न हुआ हो वह अन्न, बड़े छोटे उरद, मसूर, काशीफल, गाजर, प्याज, शलजम, शालि, धान्य का आटा, ऊसर भूमि में उत्पन्न नमक, हींग आदि वस्तुएँ तथा वे अन्य पदार्थ, जिनका शास्त्रों में विधान नहीं है, सब श्राद्ध में वर्जित हैं ।।७-९।। हे राजन् ! रात्रि काल में लाया हुआ जल, क्षुद्र जलाशय का अथवा जिसमें गौ भी तृप्त न हो सकती हो ऐसे गड्ढे का जल या फेन और दुर्गन्धमय जल श्राद्ध में त्याज्य है ।।१०।। एक खुर वाले पशु का, भेड़, ऊँटनी या मृगी का तथा भैंस का दूध भी श्राद्ध में उपयुक्त नहीं है ।।११।। हे पुरुष श्रेष्ठ ! नपुंसक, समाज-बहिष्कृत, चाण्डाल, पातकी, पाखण्डी, रोगी, कुक्कुट, कुत्ता, बन्दर, ग्राम्य शूकर, नग्न पुरुष, रजस्वला स्त्री, जन्म मरण के सूतक या अशौच वाले मनुष्य तथा शव उठाने वाले पुरुष—इनमें से किसी की दृष्टि पड़ जाय तो देवता या पितर कोई भी अपना भाग श्राद्ध में ग्रहण नहीं करते ।।१२-१३।।

तस्मात्परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः ।
उर्व्यां च तिलविक्षेपाद्यातुधानान्निवारयेत् ॥१४॥
नखादिना चोपपन्नं केशकीटादिभिर्नृप ।
न चैवाभिषवैर्मिश्रमन्नं पर्युषितं तथा ॥१५॥
श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः ।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥१६॥
श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा महीपते ।
इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने पुरा ॥१७॥
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥१८॥

अपि नस्स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायस मधुसर्पिभ्यां वर्षासु च मघासु च ।१६।
गौरी वाप्युद्वहेत्कन्या नील वा वृषमुत्सृजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ।२०।

इसलिये किसी घिरे हुए स्थान मे (घर आदि मे) श्रद्धा सहित श्राद्ध करना चाहिये । राक्षसों की निवृत्ति के लिये पृथिवी मे तिल छिड़के ।।१४।। जिस अन्न मे नख, केश, या कीटादि पड़े हों अथवा जो निचोड कर निकाले हुऐ रस से युक्त या बासी हो, वह अन्न श्राद्ध मे वर्जित है ।।१५।। श्रद्धा पूर्वक तथा नाम-गोत्र का उच्चारण करते हुए दिया जाने वाला अन्न पितरो के योग्य होकर उन्हे प्राप्त होता है ।।१६।। इस विषय मे सुना जाता है कि पूर्वकाल मे पितरों ने मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा था ।।१७।। क्या हमारे वश मे सन्मार्ग पर चलने वाले ऐसे पुरुष होगे जो गया मे आकर हमारे निमित्त पिण्ड देंगे ।।१८।। क्या हमारे कुल मे कोई ऐसा भी होगा जो मघानक्षत्र वाली वर्षाकालीन त्रयोदशी को हमारे निमित्त मधु और घृत से युक्त खीर प्रदान करेगा ? ।।१६।। या गौरी कन्या का दान करेगा (अर्थात् दस वर्ष की आयु मे ही उसका विवाह कर देगा) नीला साँड छोड़ेगा अथवा विधिपूर्वक दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करेगा ? ।।२०।।



सत्रहवाँ अध्याय

इत्याह भगवानौर्वस्सगराय महात्मने ।
सदाचार पुरा सम्यड् मैत्रेय परिपृच्छते ।१।
मयाप्येतदशेषेण कथित भवतो द्विज ।
समुल्लङ्घ्य सदाचार कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ।२।
षण्ढापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन्मया ।
उदक्याद्याश्च मे सम्यड् नग्नमिच्छामि वेदितुम् ।३।

को नग्नः किं समाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत् ।
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया ।
श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव ।४।
ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज ।
एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विज ।५।
त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः ।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ।६।
इदं च श्रूयतामन्यद्भीष्माय महात्मने ।
कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽस्मत्पितामहः ।७।

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेय जी ! भगवान् और्व ने महात्मा सगर के प्रश्न का उत्तर देते हो गृहस्थ के सदाचार की इस प्रकार व्याख्या की थी ।।१।। हे द्विज ! मैंने भी इस विषय को तुम्हारे प्रति भले प्रकार कह दिया है । सदाचार का उल्लंघन करने वाले किसी भी पुरुष को सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती ।।२।। श्री मैत्रेय जी ने कहा—हे भगवन् ! नपुंसक, बहिष्कृत तथा रजस्वलादि को तो मैं भले प्रकार समझता हूँ, परन्तु इस समय मैं 'नग्न' के विषय में जानने की इच्छा करता हूँ ।।३।। नग्न कौन है, कैसे आचरण वाले पुरुष को नग्न कहा है? मैं आपसे नग्न का स्वरूप ही सुनना चाहता हूँ, क्योंकि आपसे कोई भी विषय छिपा हुआ नहीं है ।।४।। श्री पराशर जी ने कहा—हे द्विज ! ऋक्, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णों के आवरण रूप हैं । मोहवश इसे त्याग देने वाला पापी पुरुष ही 'नग्न' कहा जाता है ।।५।। सब वर्णों का आवरण वेदत्रयी ही है, उसका त्याग कर देने पर ही पुरुष 'नग्न' संज्ञक होता है ।।६।। हमारे पितामह वसिष्ठजी ने महात्मा भीष्म से इस विषय में जो कहा था, उसे सुनो ।।७।।

मयापि तस्य गदतश्श्रुतमेतन्महात्मनः ।
नग्नसम्बन्धि मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।८।
देवासुरमभूद्युद्धं दिव्यमब्दशतं पुरा ।
तस्मिन्पराजिता देवा दैत्यैर्ह्लादपुरोगमैः ।९।

क्षीरोदस्योत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः।
विष्णोराराधनार्थाय जगुश्चेमं स्तवं तदा ।।१०।
आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम् ।
वक्ष्यामो भगवानाद्यस्तया विष्णुः प्रसीदतु ।।११।
यतो भूतान्यशेषाणि प्रसूतानि महात्मनः ।
यस्मिश्च लयमेष्यन्ति कस्त स्तोतुमिहेश्वरः ।।१२।
तथाप्यरातिविध्वस्तवीर्याभयार्थिनः ।
त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीना याथार्थ्यनैवगोचरे ।।१३।

हे मैत्रेय जी ! तुमने जो नग्न विषयक प्रश्न किया है, उसी विषय में मैंने भी महात्मा वशिष्ठ जी ने भीष्म से कुछ कहा था, वह सब सुना था ।।८।। प्राचीनकाल की बात है—सौ दिव्य वर्षों तक देवताओं और दैत्यों में परस्पर संग्राम हुआ । उसमें ह्राद-प्रभृति दैत्यों ने देवताओं को हरा दिया ।।९।। इसलिये देवताओं ने क्षीर सागर के उत्तरी तट पर जाकर तप किया और भगवान् श्री हरि को प्रसन्न करने के लिए इस स्तोत्र को गाया ।।१०।। देवताओं ने कहा—लोकनायक भगवान् विष्णु की आराधना के हेतु हम जिस वाणी को कहते हैं, उससे वे आदि पुरुष भगवान् हम पर प्रसन्न हों ।।११।। जिनसे सब भूतों की उत्पत्ति हुई है और वे भूत उन्हीं में लीन हो जायेंगे, ऐसे उन परमात्मा की स्तुति करने की सामर्थ्य किस में है ? ।।१२।। यद्यपि आपके यथार्थ रूप का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी हम शत्रुओं द्वारा पराजित एवं पराक्रम हीन होकर हम विजय और पराक्रम की प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं ।।१३।।

त्वमुर्वी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
समस्तमन्तः करणं प्रधानं तत्परः पुमान् ।।१४।
एकं तवैतद्भूतात्मन्मूर्त्तामूर्त्तमयं वपुः ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ।।१५।
तत्रेश तव यत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् ।
रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।।१६।

शक्रार्करुद्रवस्वश्विमरुत्सोमादिभेदवत् ।
वयमेक स्वरूप ते तस्मै देवात्मने नम. ।१७।
दम्भप्रायमसम्बोधि तितिक्षादमवर्जितम् ।
यद्रूपं तव गोविन्द तस्मै दैत्यात्मने नम. ।१८।
नातिज्ञानवहा यस्मिन्नाड्यः स्तिमिततेजसि ।
शब्दादिलोभि यत्तस्मै तुभ्य यक्षात्मने नम ।१९।
क्रौर्यमायामयं घोरं यच्च रूप तवामितम् ।
निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम ।२०।
स्वर्गस्थधर्मिसद्धर्मफलोपकरणं तव ।
धर्माख्य च तथा रूप नमस्तस्मै जनार्दन ।२१।

हे प्रभो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण, मूल-प्रकृति तथा प्रकृति से परे—यह सब आप ही हैं ॥१४॥ ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जीव तथा कालादि भेद वाले इन मूर्त और अमूर्त पदार्थों से युक्त यह प्रपंच आप ही का देह है ॥१५॥ उसमें आपके नाभि-पद्म से जगत् के हितार्थ उत्पन्न हुआ जो आपका प्रथम स्वरूप है, उस ब्रह्मात्मा को नमस्कार है ॥१६॥ इन्द्र, सूर्य, रुद्र, वसुगण, अश्विनीद्वय, मरुद्गण और चन्द्रमा आदि के भेद से उत्पन्न हुए हम भी आपके ही रूप हैं, इसलिये आपके इस देव रूप को नमस्कार है ॥१७॥ हे गोविन्द ! आपकी जो मूर्ति दम्भ और अज्ञान से युक्त तथा तितिक्षा और दम से परे है, उस दैत्य रूप को नमस्कार है ॥१८॥ जिस मन्द-सत्व रूप में हृदयस्थ नाड़ियाँ ज्ञान का अत्यन्त वहन करने वाली नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विषयों का अभिलाषी होता है, आपके उस यक्ष रूप को नमस्कार है ॥१९॥ हे पुरुषोत्तम ! आपका जो तमोमय स्वरूप क्रूरता और माया से सम्पन्न है, उस राक्षस रूप को नमस्कार है ॥२०॥ हे जनार्दन ! आपका जो रूप स्वर्गवासी धार्मिकों के यज्ञादि धर्मों के फल की प्राप्ति कराने वाला है उस धर्म रूप को नमस्कार है ॥२१॥

हर्षप्रायमसंसर्गि गतिमद्गमनादिषु ।
सिद्धाख्यं तव यद्रूपं तस्मै सिद्धात्मने नम ।२२।

अतितिक्षायन क्रूरमुपभोगसह हरे ।
द्विजिह्व तव यद्रूप तस्मै नागात्मने नम ।२३।
अवबोधि च यच्छान्तमदोषमपकल्मषम् ।
ऋषिरूपात्मने तस्मै विष्णो रूपाय ते नम ।२४।
भक्षयत्यथ कल्पान्ते भूतानि यदवारितम् ।
त्वद्रूप पुण्डरीकाक्ष तस्मै कालात्मने नम ।२५।
सम्भक्ष्य सर्वभूतानि देवादीन्यविशेषत ।
नृत्यत्यन्ते च यद्रूप तस्मै रुद्रात्मने नम ।२६।
प्रवृत्त्या रजसो यच्च कर्मणा करणात्मकम् ।
जनार्दन नमस्तस्मै त्वद्रूपाय नरात्मने ।२७।
अष्टाविंशद्वधोपेत यद्रूप तामस तव ।
उन्मार्गगामि सर्वात्मस्तस्मै वश्यात्मने नम ।२८।

आपका जो रूप जल अग्नि आदि गमन योग्य स्थानों को प्राप्त होकर भी सदा निर्लेप और प्रसन्न रहता है, आपके उस सिद्ध नामक स्वरूप को नमस्कार है ।।२२।। आपका जो स्वरूप अक्षमा का आधार, अत्यन्त क्रूर तथा भोग म अत्यन्त समर्थ है, उस दो जीभ वाले नाग रूप को नमस्कार है ।।२३।। हे विष्णो ! आपका जो रूप ज्ञान युक्त शान्त, निर्दोष तथा कल्मष रहित है, उस मुनि रूप को नमस्कार है ।।२४।। आपका जो स्वरूप कल्प के अन्त में सभी भूतों का अनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है ।।२५।। प्रलयकाल मे देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है ।।२६।। आपका जो रूप रजोगुण की प्रवृत्ति के कारण कर्मों का करने वाला है, उस मनुष्य रूप को नमस्कार है ।।२७।। हे सर्वात्मन् ! जो अट्ठाइस वध युक्त तमोमय तथा उन्मार्गगामी रूप है, उस पशु रूप का नमस्कार है ।।२८।।

यज्ञाङ्गभूत यद्रूप जगत स्थितिसाधनम् ।
वृक्षादिभेदैष्षड्भेदि तस्मै मुख्यात्मने नम ।२९।

तिर्यङ् मनुष्यदेवादि व्योमशब्दादिकं चयत् ।
रूपं तवादेः सर्वस्य तस्मै सर्वात्मने नमः ।२०।
प्रधानबुद्ध्यादिमयादशेषाद्यदन्यदस्मात्परमं परात्मन् ।
रूपं तवाद्यं यदनन्यतुल्यं तस्मै नमः कारणकारणाय ।२१।
शुक्लादिदीर्घादिघनादिहीनमगोचरं यच्च विशेषणानाम् ।
शुद्धातिशुद्धं परमर्षिदृश्यं रूपाय तस्मै भगवन्नताः स्मः ।२२।
यच्च शरीरेषु यदन्यदेहेष्वशेषवस्तुष्वजमक्षयं यत् ।
तस्माच्च नान्यद्व्यतिरिक्तमस्ति ब्रह्मस्वरूपाय नताः स्म तस्मै
सकलमिदमजस्य यस्य रूपं परमपदात्मवतस्सनातनस्य ।
तमनिधनमशेषबीजभूतं प्रभुममलं प्रणताःस्म वासुदेवम् ।३४।

जो विश्व की स्थिति का साधन स्वरूप तथा यज्ञ का अंगभूत है और जो वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध, तृण और गिरि—इन छः भेदों वाला है, उस मुख्यात्मक रूप को नमस्कार है ॥२६॥ तिर्यक्, मनुष्य-देवतादि जीव, आकाशादि भूत और शब्दादि गुण—इन सभी आदि भूत आप सर्वात्मा को नमस्कार है ॥३०॥ हे परमात्मन् ! प्रधानादि जो सम्पूर्ण जगत् से परे आपका रूप सबका आदि कारण और अनुपम है, आपके उस प्रकृति आदि के कारणों के भी कारण रूप को नमस्कार है ॥३१॥ जो शुक्ल आदि रंग से, दीर्घता आदि परिमाण से और घनता आदि गुणों से रहित होने के कारण सब विशेषणों का अविषय, परमर्षियों के लिये दर्शनीय तथा शुद्ध से भी शुद्ध है आपके उस रूप को नमस्कार है ॥३२॥ हमारे या अन्य जीवों के देहों में और सभी पदार्थों में जो वर्तमान है तथा जो अजन्मा और अविनाशी है, उससे पृथक् कोई भी नहीं है उस ब्रह्म स्वरूप को हमारा नमस्कार है ॥३३॥ जिनका आत्मा परमपद ब्रह्म ही है, ऐसे जिन सनातन, अजन्मा भगवान् का रूप ही यह सम्पूर्ण प्रपंच है और जो सबके बीज भूत, अविनाशी तथा मल-रहित हैं, उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥३४॥

स्तोत्रस्य चावसाने ते ददृशुः परमेश्वरम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्थं सुरा हरिम् ।३५।

तमूचुस्सकला देवा प्रणिपातपुरस्सरम् ।
प्रसीद नाथ दैत्येभ्यस्त्राहि नश्शरणार्थिनः ।३६।
त्रैलोक्ययज्ञभागाश्च दैत्यैर्ह्लादपुरोगमैः ।
हृता नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लङ्घ्य परमेश्वर ।३७।
यद्यप्यशेषभूतस्य वयं ते च तवांशजाः ।
तथाप्यविद्याभेदेन भिन्नं पश्यामहे जगत् ।३८।
स्ववर्णधर्माभिरता वेदमार्गानुसारिणः ।
न शक्यास्तेऽरयो हन्तुमस्माभिस्तपसावृताः ।३९।
तमुपायमशेषात्मन्नस्माकं दातुमर्हसि ।
येन तानसुरान्हन्तुं भवेम भगवन्क्षमाः ।४०।
इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो मायामोहं शरीरतः ।
समुत्पाद्य ददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान् ।४१।
मायामोहोऽयमखिलान्दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति ।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गबहिष्कृताः ।४२।
स्थितौ स्थितस्य मे वध्या यावन्तः परिपन्थिनः ।
ब्रह्मणो ह्यधिकारस्य देवदैत्यादिकाः सुराः ।४३।
तद्गच्छत न भीः कार्या मायामोहोऽयमग्रतः ।
गच्छन्नद्योपकाराय भवतां भविता सुराः ।४४।
इत्युक्ता प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागतम् ।
मायामोहोऽपि तैस्सार्द्धं ययौ यत्र महासुराः ।४५।

श्रीपराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! स्तुति के पूर्ण होते ही उन देवताओं ने शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् श्रीहरि को गरुड़ पर चढ़े हुए अपने सामने देखा ।।३५।। उन्हें देखते ही सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे नाथ ! हम पर प्रसन्न होकर दैत्यों से हम शरणागतों को बचाइये ।।३६।। हे परमेश्वर ! ह्लाद प्रभृति दैत्यों ने ब्रह्माजी की आज्ञा न मानकर हमारे और त्रैलोक्य के यज्ञ भागों का अपहरण किया है ।।३७।। यद्यपि हम और वे आप सर्वभूत के अंश से उत्पन्न हुए हैं फिर भी हम अविद्या के वशीभूत होकर

इस विश्व को पृथक्-पृथक् देखते हैं ॥३८॥ हमारे वैरी भी अपने वर्ण धर्म के पालक, वेद मार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ, इस लिये हम उनका वध करने मे समर्थ नहीं हैं ॥३९॥ इसलिये हे सर्वात्मन् ! हमें कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे कि हम उनको मारने मे समर्थ हो सकें ॥४०॥ श्री पराशरजी ने कहा—उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु ने अपने देह से माया-मोह की उत्पत्ति कर उसे देवताओं को देते हुए कहा ॥४१॥ यह माया-मोह उन सभी दैत्यों को मोहित कर देगा, तब वे वेद मार्ग को त्याग देंगे, जिससे तुम उनका वध करने में समर्थ होगे ॥४२॥ हे देवताओ ! कोई भी देवता हो अथवा दैत्य, ब्रह्माजी के कार्य मे बाधक होने से सृष्टि की रक्षा के कारण मेरे द्वारा मारने योग्य होते हैं ॥४३॥ इसलिये हे देवताओ ! तुम अब जाओ। भय का त्याग करो। यह माया-मोह वहाँ जाकर तुम्हारे लिए उपकारी होगा ॥४४। श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की आज्ञा सुनकर देवतागण उन्हें प्रणाम कर अपने अपने स्थान को गये और माया-मोह भी असुरों के पास पहुँचा ॥४५॥



अठारहवाँ अध्याय

तपस्यभिरतान्सोऽथ मायामोहो महासुरान् ।
मैत्रेय ददृशे गत्वा नर्मदातीरसंस्थितान् ।१।
ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज ।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत् ।२।
हे दैत्यपतयो ब्रूत यदर्थं तप्यते तप. ।
ऐहिकं वाथ पारत्र्यं तपस. फलमिच्छथ ।३।
पारत्र्यफललाभाय तपश्चर्या महामते ।
अस्माभिरियमारब्धा किं वा तेऽत्र विवक्षितम् ।४।
कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ।
अर्हध्वमेनं धर्मं च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ।५।

धर्मो विमुक्तेरर्होऽयं नैतस्मादपरो वरः ।
अत्रैव संस्थिता स्वर्गं विमुक्तिं वा गमिष्यथ ।६।

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! फिर माया-मोह ने वहाँ पहुँच कर देखा कि वे महान् असुर नर्मदा नदी के तीर पर तपस्या में तत्पर हैं ॥१॥ तब उस मयूर पक्ष धारण करने वाले नग्न एवं मुड़े हुए बाल वाले माया-मोह ने उन असुरों से अत्यन्त मीठे वचनों में कहा ॥२॥ माया-मोह ने कहा—हे दैत्यपतियो ! कहो, तुम यह तप किस हेतु कर रहे हो तुम किसी लौकिक फल की कामना करते हो अथवा कोई पारलौकिक फल पाना चाहते हो ? ॥३॥ असुरों ने कहा—हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले ! पारलौकिक कामना की सिद्धि के लिये ही हमने यह तप आरम्भ किया है । इस विषय में तुम हम से क्या कहना चाहते हो ? ॥४॥ माया-मोह ने कहा—यदि आप मोक्ष की कामना करते हैं तो मैं जो कहता हूँ वह करो । आप इस मोक्ष के खुले द्वार रूप इस धर्म का पालन करो ॥५॥ यह धर्म मोक्ष की सिद्धि में अत्यन्त उपयोगी है, इससे श्रेष्ठ धर्म कोई भी नहीं है । इसके अनुष्ठान से आप स्वर्ग अथवा मोक्ष-जो भी चाहेंगे वही प्राप्त होगा ॥६॥

अर्हध्वं धर्ममेतं च सर्वे यूयं महाबलाः ।
एवंप्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनचर्चितैः ।७।
मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गादपाकृताः ।
धर्मायैतदधर्माय सदेतन्न सदित्यपि ।८।
विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्तिं सम्प्रयच्छति ।
परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम् ।९।
कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवं स्फुटं त्विदम् ।
दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ।१०।
इत्यनेकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा ।
तेन दर्शयता दैत्याः स्वधर्मं त्याजिता द्विज ।११।
अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन् ।१२।

आप सब महाबली हैं, इसलिये इस धर्म में श्रद्धा करिये । श्री पराशर जी ने कहा – इन अनेक प्रकार की युक्तियों से परिपूर्ण वाक्यों से माया-मोह ने उन दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया । यह धर्ममय है यह अधर्म युक्त है, यह सत् है, यह असत् है, यह मोक्षकारक है अथवा यह मोक्ष-प्राप्ति में बाधक है, यह परमार्थ है, यह परमार्थ के विपरीत है, यह कर्त्तव्य है, यह करने योग्य नहीं है, यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है, यह वस्त्र हीनों का धर्म है तथा यह वस्त्र-धारियों का धर्म है ॥७-१०॥ इस प्रकार की अनेक युक्तियां देकर माया-मोह ने उन दैत्यों को उनके धर्म से विमुख कर दिया ॥११॥ उस माया-मोह ने दैत्यों से कहा कि आप इसी महाधर्म का आदर करिये, इसलिये वे दैत्य उस धर्म के मानने वाले होने से 'आर्हत' कहे जाने लगे ॥१२॥

त्रयीधर्मसमुत्सर्गं मायामोहेन तेऽसुराः ।
कारितास्तन्मया ह्यासंस्ततोऽन्ये तत्प्रचोदिताः ॥१३॥
तैरप्यन्ये परे तैश्च तैरप्यन्ये परे च तैः ।
अल्पैरहोभिस्सन्त्यक्ता तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ॥१४॥
पुनश्च रक्ताम्बरधृङ्मायामोहो जितेन्द्रियः ।
अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम् ॥१५॥
स्वर्गार्थं यदि वो वान्छा निर्वाणार्थमथासुराः ।
तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥१६॥
विज्ञानमयमेवैतदशेषमवगच्छत ।
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् ॥१७॥
जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम् ।
रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसङ्कटे ॥१८॥
एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।
मायामोहः स दैतेयान्धर्ममत्याजयन्निजम् ॥१९॥
नानाप्रकारवचनं स तेषां युक्तियोजितम् ।
तथा तथा त्रयीधर्मं तत्यजुस्ते यथा यथा ॥२०॥

तेऽप्यन्येषां तथैवोचुरन्यैरन्ये तथोदिता.।
मैत्रेय तत्यजुर्धर्मं वेदस्मृत्युदितं परम् ।२१।

माया मोह द्वारा असुरो को त्रयीधर्म से विमुख किया जाने से वे सभी मोह में पड गये और फिर उन्होने अन्य सब दैत्यो को इसी धर्म में प्रवृत्त कर लिया ।।१३।। उन्होने दूसरो को, दूसरों ने तीसरो को, तीसरो ने फिर अन्यों को, इसी प्रकार एक दूसरे को उस धर्म का अवलम्बन कराने लगे। इस प्रकार कुछ काल मे ही सभी दैत्य त्रयीधर्म से विमुख हो गये ।।१४।। इसके पश्चात् माया-मोह ने रक्त वस्त्र धारण किये और उन असुरो से कोमल, सक्षिप्त और मीठे शब्दो में कहा ।।१५।। हे असुरगण! यदि तुम स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हो तो पशु वधादि खोटे कर्मों को छोडकर ज्ञान प्राप्त करो ।।१६।। इस सम्पूर्ण विश्व को विज्ञानमय समझो। मेरे वचनो पर यत्नपूर्वक ध्यान दो। इस विषय मे ज्ञानीजन इस जगत् को व्यर्थ बताते हैं। उनका कहना है कि यह विश्व भ्रम से उत्पन्न पदार्थों के विश्वास पर ही टिका हुआ है और रागादि दोषो के कारण दूषित हो गया है। इस भवसागर रूपी सकट से प्राणी भटकता हुआ घूमता है ।।१७-१८।। इस प्रकार जानो, समझो आदि बोधात्मक शब्दो के प्रयोग द्वारा माया मोह ने बोधमय धर्म का उपदेश कर उनको अपने धर्म से हटा दिया ।।१९।। माया-मोह के युक्ति पूर्ण वाक्यो के जाल मे फँस कर दैत्यो ने त्रयीधर्म को छोड दिया ।।२०।। उन दैत्यो ने दूसरे दैत्यो से और दूसरे दैत्यो ने दूसरे-दूसरे दैत्यो से यही बात कही। इस प्रकार हे मैत्रेयजी! उन सबने ही श्रुति-स्मृति-सम्मत अपने परम धर्म का त्याग कर दिया ।।२१।।

अन्यानप्यन्यपाषण्डप्रकारैर्बहुभिर्द्विज।
दैतेयान्मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत् ।२२।
स्वल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽसुराः।
मोहितास्तत्यजुस्सर्वा त्रयीमार्गाश्रितां कथाम् ।२३।
केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज।
यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम् ।२४।

नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेष्यते ।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम् ।२५।
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ।२६।
निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते ।२७।
तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
कुर्याच्छ्राद्धं श्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ।२८।
जनश्रद्धेयमित्येतदवगम्य ततोऽत्र वः ।
उपेक्षा श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम् ।२९।
न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।३०।

हे द्विज श्रेष्ठ ! मोह उत्पन्न करने वाले मायामोह ने अन्यान्य सभी दैत्यों को नाना प्रकार के अनेकों पाखण्डों से मोहित किया ।।२२।। इस प्रकार कुछ काल में ही मायामोह द्वारा मोहित हुए उन दैत्यों ने त्रयीधर्म की वार्ता का भी त्याग कर दिया ।।२३।। अब उन दैत्यों में से कोई वेदों की, कोई यज्ञानुष्ठान आदि की तथा कोई ब्राह्मणों की ही निन्दा करने लगे ।।२४।। उन्होंने परस्पर में कहा—हिंसा से भी धर्म है—यह कथन युक्ति सगत नहीं है और अग्नि में हवि झोंकने से फल की प्राप्ति होगी—यह भी अज्ञानियों की ही बात है ।।२५।। अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व को प्राप्त होकर यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही खाना पड़ता है तो उससे पत्रभक्षी पशु ही उत्तम है ।।२६।। यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता का बलिदान करके ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता ।।२७।। यदि किसी और के भोजन करने से कोई तृप्त हो सकता है, तो विदेश जाने के समय भोजन सामग्री साथ ले जाने का परिश्रम ही क्यों किया जाय ? फिर तो पुत्रगण घर पर श्राद्ध करके ही उसे तृप्त कर दिया करें ।।२८।। इसलिए इसे केवल अन्ध श्रद्धा समझकर इसकी उपेक्षा करना उचित है, तथा श्रेय-सिद्धि के लिये मेरे वचनों में चित्त

लगाना चाहिये ॥२९॥ हे असुरो ! आप्त वाक्यों के आकाश से वर्षा नहीं होती, हम, तुम या अन्यान्य सभी जो यथार्थ हो, उसे ही ग्रहण करलें ॥३०॥

मायामोहेन ते दैत्याः प्रकारैर्बहुभिस्तथा ।
व्युत्थापिता यथा नैषां त्रयीं कश्चिदरोचयत् ।३१।
इत्थमुन्मार्गयातेषु तेषु दैत्येषु तेऽमराः ।
उद्योगं परमं कृत्वा युद्धाय समुपस्थिताः ।३२।
ततो देवासुरं युद्धं पुनरेवाभवद् द्विज ।
हताश्च तेऽसुरा देवैः सन्मार्गपरिपन्थिनः ।३३।
स्वधर्मकवचं तेषामभूद्यत्प्रथमं द्विज ।
तेन रक्षाभवत्पूर्वं नेशुर्नष्टे च तत्र ते ।३४।
ततो मैत्रेय तन्मार्गवर्तिनो येऽभवञ्जनाः ।
नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरणं तथा ।३५।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमी ।
परिव्राड् वा चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते ।३६।
यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते ।
परिव्राट् चापि मैत्रेय स नग्नः पापकृन्नरः ।३७।

श्री पराशर जी ने कहा—ऐसी अनेक युक्तियों से मायामोह ने दैत्यों को स्वधर्म से विचलित किया, जिससे उस त्रयीधर्म में उनकी किंचित भी रुचि न रही ॥३१॥ इस प्रकार जब दैत्यगण पूर्णतया विपरीतमार्गी होगये, तब युद्ध के लिये सब प्रकार से तैयार हुए देवगण युद्ध की इच्छा से उनके पास पहुँचे । ३२॥ फिर तो देवताओं और असुरों में फिर घोर युद्ध होने लगा । उस युद्ध में सन्मार्ग-भ्रष्ट दैत्यों का भीषण संहार हुआ ॥३३॥ दैत्यों के पास का जो स्वधर्म रूपी कवच उनकी रक्षा किये हुए था, इस बार उसके नष्ट होने से वे दैत्यगण भी नाश को प्राप्त हुए ॥३४॥ हे मैत्रेय जी ! उस समय से मायामोह द्वारा प्रवर्तित मार्ग के अनुयायी ही 'नग्न' कहे जाने लगे, क्योंकि उन्होंने वेदत्रयी रूपी वस्त्र का परित्याग कर दिया था ॥३५॥ ब्रह्मचारी- गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी यही चार आश्रम हैं, पाँचवाँ आश्रम कोई नहीं है ॥३६। हे मैत्रेयजी !

जो पुरुष गृहस्थाश्रम को त्याग कर भी वानप्रस्थ या सन्यास ग्रहण नहीं करता वह पाप कर्मा भी 'नग्न' संज्ञक ही है। ३७॥

नित्यानां कर्मणां विप्र त्रस्य हानिरहर्निशम् ।
अकुर्वन्विहितं कर्म शक्तः पतति तद्दिने ।३८।
प्रायश्चित्तेन महता शुद्धमाप्नोत्यनापदि ।
पक्षं नित्यक्रियाहानेः कर्त्ता मैत्रेय मानवः ।३९।
संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसोऽभिजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यो निरोक्ष्यस्साधुभिस्सदा ।४०।
स्पृष्टे स्नानं सचैलस्य शुद्धे हेतुर्महामते ।
पुंसो भवति तस्योक्ता न शुद्धिः पापकर्मणः ।४१।
देवर्षिपितृभूतानि यस्य निःश्वस्य वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पापकृत् ।४२।
सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वतः ।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज वत्सरात् ।४३।
देवादिनिःश्वासहतं शरीरं यस्य वेश्म च ।
न तेन सङ्करं कुर्याद् गृहासनपरिच्छदैः ।४४।
अथ भुङ्क्ते गृहे तस्य करोत्यास्यां तथासने ।
शेते चाप्येकशयने स सद्यस्तत्समो भवेत् ।४५।

हे ब्रह्मन् ! सशक्त होकर भी जो विहित कर्म नहीं करता, वह उसी दिन अपने धर्म से गिर जाता है और एक दिन-रात्रि में ही उसके सब नित्यकर्म नष्ट हो जाते हैं ॥३८॥ हे मैत्रेय जी ! आपत्तिकाल के अतिरिक्त कभी भी एक पक्ष तक जो नित्यकर्म नहीं करता, उसकी शुद्धि महाप्रायश्चित्त के बिना नहीं हो सकती ॥३९॥ एक वर्ष तक नित्य क्रिया न करने वाले पुरुष पर दृष्टि पड़ जाने से जो पाप होता है, उसकी निवृत्ति के लिये सूर्य भगवान् का दर्शन करे ॥४०॥ हे महामते ! ऐसे पुरुष का स्पर्श हो जाने पर शुद्धि के लिए वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। परन्तु उस पापात्मा की शुद्धि के लिये कोई विधान नहीं है ॥४१॥ जिसके घर से देवता, ऋषि, पितर, भूतादि पूजित न

न होने के कारण निःश्वास का त्याग करते हुए विमुख चले जाते हैं उस पुरुष से बढ़कर और कोई पापी संसार में नहीं है ॥४२॥ यदि ऐसे मनुष्य के साथ कोई एक वर्ष तक सम्भाषण या कुशल प्रश्न करता हुआ बैठे उठे तो वह भी उसी के जैसा हो जाता है ।।४३॥ जिस पुरुष का शरीर या घर देवता आदि के निःश्वास से युक्त है, उसके आसन से अपने आसन का और उसके वस्त्र से अपने वस्त्र का स्पर्श न करे। न उसके घर में स्वयं जाय और न उसे आने दे ।।४४।।जो पुरुष ऐसे पुरुष के घर में जाकर भोजन या आसन ग्रहण करता या उसके साथ एक शय्या पर सोता है, वह उसी के समान हो जाता है ।।४५॥

देवतापितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन् ।
भुङ्क्ते स पातकं भुङ्क्ते निष्कृतिस्तस्य नेष्यते ।४६।
ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णास्स्वधर्मादन्यतोमुखाः ।
यान्ति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः ।४७।
चतुर्णां यत्र वर्णानां मैत्रेयात्यन्तसङ्करः ।
तत्रास्था साधुवृत्तीनामुपघाताय जायते ।४८।
अनभ्यर्च्य ऋषीन्देवान्पितृभूतातिथींस्तथा ।
यो भुङ्क्ते तस्य सँल्लापात्पतन्ति नरके नराः ।४९।
तस्मादेतान्नरो नग्नांस्त्रयीसन्त्यागदूषितान् ।
सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु ।५०।
श्रद्धावद्भिः कृतं यत्नाद्देवान्पितृपितामहान् ।
न प्रीणयति तच्छ्राद्धं यद्येभिरवलोकितम् ।५१।

जो पुरुष देव, पितर, भूत, अतिथि का पूजन किये बिना ही स्वयं भोजन कर लेता है,वह पापमय भोजन करने के कारण शुभ गति का अधिकारी नहीं होता ।।४६।। जो ब्राह्मणादि वर्ण अपने धर्म का त्याग कर अन्य वर्णों के धर्म में प्रवृत्त होवे या नीच वृत्ति का आश्रय लेते हैं, वे 'नग्न' कहे जाते हैं ।।४७।। हे मैत्रेय जी ! जिस स्थान में चारों वर्णों का अत्यन्त सङ्कर(मिश्रण) हो, वहाँ निवास करने वाले मनुष्य की साधुवृत्तियाँ भी नष्ट हो जाती हैं ।।४८।। जो पुरुष ऋषि, देवता, पितर, भूत और अतिथि का सत्कार न करके स्वयं

भोजन करना है, उससे बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है ॥४६॥ इसलिये वेदत्रयी के छोड़ने से दूषित हुए इन नग्न पुरुषों के साथ सम्भाषण और स्पर्शादि का भी त्याग करना चाहिए ॥५०॥ इनकी दृष्टि पड़ने मात्र से श्रद्धावान पुरुषों का श्रद्धा सहित किया जाने वाला श्राद्ध देवताओं, पितरों या पितामहों की तृप्ति वाला नहीं होता ॥५१॥

श्रूयते च पुरा ख्यातो राजा शतधनुर्भुवि ।
पत्नी च शैव्या तस्याभूदतिधर्मपरायणा ॥५२॥
पतिव्रता महाभागा सत्यशौचदयान्विता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना विनयेन नयेन च ॥५३॥
स तु राजा तया सार्द्धं देवदेवं जनार्दनम् ।
आराधयामास विभुं परमेण समाधिना ॥५४॥
होमैर्जपैस्तथा दानैरुपवासैश्च भक्तितः ।
पूजाभिश्चानुदिवसं तन्मना नान्यमानसः ॥५५॥
एकदा तु समं स्नातौ तौ तु भार्यापती जले ।
भागीरथ्याससमुत्तीर्णौ कार्त्तिक्यां समुपोषितौ ।
पाषण्डिनमपश्येतामायान्तं सम्मुखं द्विज ॥५६॥
चापाचार्यस्य तस्यासौ सखा राज्ञो महात्मनः ।
अतस्तद्गौरवात्तेन सखाभावमथाकरोत् ॥५७॥
न तु सा वाग्यता देवी तस्य पत्नी पतिव्रता ।
उपोषितास्मीति रविं तस्मिन्दृष्टे ददर्श च ॥५८॥
समागम्य यथान्यायं दम्पती तौ यथाविधि ।
विष्णोः पूजादिकं सर्वं कृतवन्तौ द्विजोत्तम ॥५९॥

सुनते हैं कि प्राचीन काल में एक शतधनु नामक प्रसिद्ध राजा इस भूतल पर हुआ था। उसकी धर्म परायणा पत्नी का नाम शैव्या था ॥५२॥ वह महाभागा रानी पतिव्रत, शौच, सत्य, दया, विनय, नीति आदि सभी गुणों से सम्पन्न थी ॥५३॥ उस रानी के साथ राजा शतधनु ने परम समाधि साधन द्वारा देवदेव भगवान् जनार्दन का आराधन किया ॥५४॥ वे नित्यप्रति तन्मयता

स्मर्यतां तन्महाराज दाक्षिण्यललितं त्वया ।
येन श्वयोनिमापन्नो मम चाटुकरो भवान् ।६८।

पाषण्डिन समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम् ।
प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किन्न स्मरसि तत्प्रभो ।६६।

समय पाकर वह राजा शतधनु मृत्यु को प्राप्त हुआ और रानी शैब्या ने भी चितारूढ राजा के अनुगमन पूर्वक सतीधर्म का पालन किया ॥६०॥ उस राजा ने उपवास-काल में पाषण्डी से सम्भाषण किया था, इसलिये उसे अपने उस पाप के कारण श्वान योनि में जन्म लेना पड़ा ॥६१॥ उधर उस सुलक्षणा रानी ने काशीनरेश के यहाँ जन्म लिया, वह सब प्रकार के विज्ञान को जानने वाली, सभी श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त तथा पूर्व जन्म की याद रखने वाली हुई ॥६२॥ काशीनरेश ने अब उसका विवाह करना चाहा, तब अपनी कन्या की अनिच्छा जानकर वह उस कार्य से उपरत हुए ॥६३॥ जब उस कन्या ने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि उसके पति ने कुत्ते का जन्मधारण किया है, तब उसने विदिशा नगर में जाकर उसे श्वान के रूप में देखा ॥६४॥ उसने अपने महाभाग पति को उस रूप में देखकर उसे सत्कार सहित भोजन कराया ॥६५॥ रानी के द्वारा प्राप्त हुए उस सुस्वादु, मधुर और इच्छित अन्न का सेवन कर वह अपनी जाति के अनुकूल विभिन्न प्रकार की चाटुकारिता दिखाने लगा ॥६६॥ परन्तु उस चाटुकारिता प्रदर्शन के कारण संकोच में पड़ी हुई बाला ने कुत्सित योनि को प्राप्त हुए अपने उस पति को प्रणाम करके कहा ॥६७॥ हे महाराज ! आप अपनी उस उदारता को याद करिये, जिसके कारण आप इस कुत्ते की योनि को पाकर मेरी चाटुकारिता कर रहे हैं ॥६८॥ हे प्रभो ! क्या आपको याद नहीं है कि आपने तीर्थ-स्नान के पश्चात् उस पाखण्डी से सम्भाषण किया था, जिसके कारण आपको इस कुत्सित योनि में आना पड़ा है ॥६९॥

तयैवं स्मारिते तस्मिन्पूर्वजातिकृते तदा ।
दध्यौ चिरमथावाप निर्वेदमतिदुर्लभम् ।७०।

पूर्वक होम, जप, दान, उपवास तथा पूजनादि के द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् की आराधना करने लगे ॥५५॥ एक दिन जब कार्तिकी पूर्णिमा आई तब उन, पति-पत्नी दोनो ने उपवास पूर्वक श्री गंगा जी में एक साथ स्नान किया और जब वे जल से बाहर निकले तब उन्होने एक पाखण्डी को सामने से आता हुआ देखा ॥५६॥ उस महात्मा राजा को जो धनुर्वेद सिखाने वाले आचार्य थे, उनका यह ब्राह्मण मित्र था, इसलिये आचार्य के गौरव के विचार से राजा ने उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार किया ॥५७॥ परन्तु उस पतिव्रता रानी ने उस ब्राह्मण को कोई आदर नहीं किया, वह चुप रही और अपने को उपवास युक्त मानकर उसने सूर्य भगवान् का दर्शन किया ॥५८॥ फिर उन पति पत्नी दोनो ने विधिपूर्वक भगवान श्रीहरि के पूजनादि कार्यों को सम्पन्न किया ॥५९॥

कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित् ।
अन्वारुरोह त देवी चितास्थ भूपति पतिम् ।६०।
स तु तेनापचारेण श्वा जज्ञे वसुधाधिप ।
उपोषितेन पाषण्डसंल्लापो यत्कृतोऽभवत् ।६१।
सा तु जातिस्मरा जज्ञे काशीराजसुता शुभा ।
सर्वविज्ञानसम्पूर्णा सर्वलक्षणपूजिता ।६२।
ता पिता दातुकामोऽभूद्वराय विनिवारित ।
तयैव तन्व्या विरतो विवाहारम्भतो नृप ।६३।
ततस्सा दिव्यया दृष्ट्या दृष्ट्वा श्वान निज पतिम् ।
विदिशाख्य पुरं गत्वा तदवस्थ ददर्श तम् ।६४।
त दृष्ट्वैव महाभाग श्वभूत तु पति तदा ।
ददौ तस्मै वराहारं सत्कारप्रवणं शुभा ।६५।
भुञ्जन्दत्त तया सोऽन्नमतिमृष्टमभीप्सितम् ।
स्वजातिललित कुर्वन्बहु चाटु चकार वै ।६६।
अतीव व्रीडिता बाला कुर्वता चाटु तेन सा ।
प्रणामपूर्वमाहेद दयित त कुयोनिजम् ।६७।

स्मर्यतां तन्महाराज दाक्षिण्यललितं त्वया ।
येन श्वयोनिमापन्नो मम चाटुकरो भवान् ।६८।

पाषण्डिन समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम् ।
प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किन्न स्मरसि तत्प्रभो ।६९।

समय पाकर वह राजा शतधनु मृत्यु को प्राप्त हुआ और रानी शैव्या ने भी चिताल्ड राजा के अनुगमन पूर्वक सतीधर्म का पालन किया ।।६०।। उस राजा ने उपवास-काल में पाखण्डी से सम्भाषण किया था, इसलिये उसे अपने उस पाप के कारण श्वान योनि में जन्म लेना पड़ा ।।६१।। उधर उस शुभलक्षणा रानी ने काशीनरेश के यहाँ जन्म लिया, वह सब प्रकार के विज्ञान को जानने वाली, सभी श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त तथा पूर्व जन्म की याद रखने वाली हुई ।।६२।। काशीनरेश ने जब उसका विवाह करना चाहा, तब अपनी कन्या की अनिच्छा जानकर वह उस कार्य से उपरत हुए ।।६३।। जब उस कन्या ने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि उसके पति ने कुत्ते का जन्मधारण किया है, तब उसने विदिशा नगर में जाकर उसे श्वान के रूप में देखा ।।६४।। उसने अपने महाभाग पति को उस रूप में देखकर उसे सत्कार सहित भोजन कराया ।।६५।। रानी के द्वारा प्राप्त हुए उस सुस्वादु, मधुर और इच्छित अन्न का सेवन कर वह अपनी जाति के अनुरूप विभिन्न प्रकार की चाटुकारिता दिखाने लगा ।।६६।। परन्तु उस चाटुकारिता प्रदर्शन के कारण संकोच में पड़ी हुई बाला ने कुत्सित योनि को प्राप्त हुए अपने उस पति को प्रणाम करके कहा ।।६७।। हे महाराज ! आप अपनी उस उदारता को याद करिये, जिसके कारण आप इस कुत्ते की योनि को पाकर मेरी चाटुकारिता कर रहे हैं ।।६८।। हे प्रभो ! क्या आपको याद नहीं है कि आपने तीर्थ-स्नान के पश्चात् उस पाखण्डी से सम्भाषण किया था, जिसके कारण आपको इस कुत्सित योनि में आना पड़ा है ।।६९।।

तयैव स्मारिते तस्मिन्पूर्वजातिकृते तदा ।
दध्यौ चिरमवाचाप निर्वेदमतिदुर्लभम् ।७०।

निर्विण्णचित्तस्स ततो निर्गम्य नगराद्बहिः ।
मरुत्प्रपतनं कृत्वा शार्गाली योनिमागतः ॥७१॥
सापि द्वितीये सम्प्राप्ते वीक्ष्य दिव्येन चक्षुषा ।
ज्ञात्वा शृगालं तं द्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम् ॥७२॥
तत्रापि दृष्ट्वा तं प्राह शार्गाली योनिमागतम् ।
भर्त्तारमपि चार्वङ्गी तनया पृथिवीक्षितः ॥७३॥
अपि स्मरसि राजेन्द्र श्वयोनिस्थस्य यन्मया ।
प्रोक्तं ते पूर्वचरितं पाषण्डालापसंश्रयम् ॥७४॥
पुनस्तयोक्तं स ज्ञात्वा सत्यं सत्यवतां वरः ।
कानने स निराहारस्तत्याज स्वं कलेवरम् ॥७५॥
भूयस्ततो वृको जज्ञे गत्वा तं निर्जने वने ।
स्मरयामास भर्त्तारं पूर्ववृत्तमनिन्दिता ॥७६॥
न त्वं वृको महाभाग राजा शतधनुर्भवान् ।
श्वा भूत्वा त्वं शृगालोऽभूर्वृकत्वं साम्प्रतं गतः ॥७७॥

श्री पाराशर जी ने कहा—उस काशी नरेश की पुत्री ने जब इस प्रकार याद दिलाई तब वह श्वान बहुत देर तक अपने पूर्व जन्म की याद करता रहा तब उसे दुर्लभ निर्वेद मति की प्राप्ति हुई ॥७०॥ उसने अत्यन्त दुःखित चित्त से नगर के बाहर जाकर अपने प्राणों का त्याग किया, तब उसे शृगाल योनि की प्राप्ति हुई ॥७१॥ जब काशिराज सुता ने दिव्य दृष्टि से उसे शृगाल हुआ जाना, तब वह उसे देखने के लिये उस कोलाहल पर्वत पर पहुँची ॥७२॥ वहाँ उसे शृगाल योनि में पड़ा हुआ देखकर उसने उससे कहा ॥७३॥ हे राजेन्द्र ! जब आप श्वान-योनि में थे, तब पूर्व जन्म में उस पाखण्डी से सम्भाषण करने वाली घटना को मैंने याद दिलाई थी, क्या वह बात आपको याद है ? ॥७४॥ सत्यवानों में श्रेष्ठ उस राजा शतधनु ने काशिराज की पुत्री की बात सुनकर सब वृत्तान्त जान लिया और आहार के परित्याग पूर्वक अपने देह का त्याग किया ॥७५॥ फिर उसने भेड़िया का जन्म लिया, उस समय भी वह अनिन्दिता राजपुत्री निर्जन वन में पहुँची और उसने अपने पति को पूर्व जन्म

की याद दिलाई ॥७६॥ हे महाभाग ! आप भेड़िया नहीं हैं, आप तो राजा शतधनु हैं। आपने क्रमशः कुत्ता, शृगाल और अब भेड़िया का जन्म लिया है ॥७७॥

स्मारितेन यदा त्यक्तस्तेनात्मा गृध्रता गतः ।
अपापा सा पुनश्चैनं बोधयामास भामिनी ॥७८॥
नरेन्द्र स्मर्यतामात्मा ह्यलं ते गृध्रचेष्टया ।
पाषण्डालापजातोऽयं दोषो यत्गृध्रतां गतः ॥७९॥
ततः काकत्वमापन्नं समनन्तरजन्मनि ।
उवाच तन्वी भर्तारमुपलभ्यात्मयोगतः ॥८०॥
अशेषभूभृतः पूर्वं वश्या यस्मै बलिं ददुः ।
स त्वं काकत्वमापन्नो जातोऽद्य बलिभुक् प्रभो ॥८१॥
एवमेव च काकत्वे स्मारितस्स पुरातनम् ।
तत्याज भूपतिः प्राणान्मयूरत्वमवाप च ॥८२॥

उसके इस प्रकार याद दिलाने पर राजा ने भेड़िया की योनि छोड़ दी। तब उसे गृध्र होना पड़ा। उस योनि में भी उसकी पाप-रहित पत्नी ने उसे पूर्व वृत्तान्त का स्मरण कराया ॥७८॥ हे राजन् ! आप अपने रूप की याद करिये। इन गृध्र चेष्टाओं का त्याग कीजिये, क्योंकि पाखण्डी से सम्भाषण करने के कारण ही आपको इस योनि की प्राप्ति हुई है ॥७९॥ उस योनि का परित्याग करने पर उसे कौए की योनि मिली। तब भी उस सुन्दरी ने योग बल से उसका वृत्तान्त जानकर और उसके पास पहुँचकर उससे कहा ॥८०॥ हे प्रभो ! आप वही हैं, जिनकी आधीनता को प्राप्त हुए समस्त सामन्तगण विभिन्न प्रकार की भेंट प्रस्तुत करते थे। आज आप इस काक-योनि में आकर बलि का भोजन करने वाले हुए हैं॥८१॥ इस प्रकार पूर्व जन्म की याद दिलाये जाने पर राजा ने काक-योनि को त्यागकर मोर की योनि प्राप्त की ॥८२॥

मयूरत्वे ततस्सा वै चकारानुगतिं शुभा ।
दत्तैः प्रतिक्षणं भोज्यैर्बाला तस्यातिभोजनैः ॥८३॥

ततस्तु जनको राजा वाजिमेधं महाक्रतुम् ।
चकार तस्यावभृथे स्नापयामास त तदा ।८४।
सस्नौ स्वयं च तन्वङ्गी स्मारयामास चापि तम् ।
यथासौ श्वशृगालादियोनिं जग्राह पार्थिवः ।८५।

स्मृतजन्मक्रमस्सोऽथ तत्याज स्वकलेवरम् ।
जज्ञे स जनकस्यैव पुत्रोऽसौ सुमहात्मनः ।८६।

ततस्सा पितरं तन्वी विवाहार्थमचोदयत् ।
स चापि कारयामास तस्या राजा स्वयंवरम् ।८७।
स्वयंवरे कृते सा त सम्प्राप्त पतिमात्मनः ।
वरयामास भूयोऽपि भर्तृभावेन भामिनी ।८८।

बुभुजे च तया सार्द्धं सम्भोगान्नृपनन्दन ।
पितर्युपरते राज्यं विदेहेषु जगार सः ।८९।
इयाज यज्ञान्सुबहून्ददौ दानानि चार्थिनाम् ।
पुत्रानुत्पादयामास युयुधे च सहारिभि ।९०।

उस योनि मे भी काशिराजपुत्री ने उसे प्रतिक्षण मयूरोचित श्रेष्ठ आहार देते हुए उसकी सेवा की ।।८३।। जिस समय राजा जनक ने अश्वमेध का अनुष्ठान किया। उस महायज्ञ मे अवभृथ स्नान के समय उस मोर को स्नान कराया गया ।।८४।। फिर उस राजकन्या ने स्वयं भी स्नान किया और मयूर रूपी राजा को उसकी श्वान, शृगाल आदि योनियो का स्मरण कराया ।।८५।। सब वृत्तान्त के याद आने पर उसने अपना मयूर-देह भी छोड़ दिया और राजा जनक के ही घर मे पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।।८६।। फिर उस राजकुमारी ने अपने विवाह के लिये अपने पिता को प्रेरित किया, तब राजा ने उसका स्वयंवर रचाया ।।८७।। स्वयंवर का आयोजन होने पर स्वयंवर मे आये अपने उस पति का उस राजपुत्री ने पुनः पतिभाव से वरण किया ।।८८।। फिर उस राजकुमार ने काशिराज पुत्री के साथ अनेक भोगो को भोगते हुए अपने पिता के मरणोपरान्त विदेह नगर का राजपद सम्भाला।।८९।। उसने अनेकानेक

यज्ञ किये, याचकों को इच्छित दान दिये, अनेक पुत्रों की उत्पत्ति की और शत्रुओं के साथ अनेको भीषण युद्ध किये ॥६०॥

राज्य भुक्त्वा यथान्याय पालयित्वा वसुन्धराम् ।
तत्याज स प्रियान्प्राणान्सग्रामे धर्मतो नृप ॥६१॥
तनश्चिताऽथ त भूयो भर्त्तार सा शुभेक्षणा ।
अन्वारुरोह विधिवद्यथापूर्वं मुदान्विता ॥६२॥
ततोऽवाप तया सार्द्धं राजपुत्र्या स पार्थिव ।
ऐन्द्रानतीत्य वै लोकांल्लोकान्प्राप तदाक्षयान् ॥६३॥
स्वर्गाक्षयत्वमतुल दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ।
प्राप्त पुण्यफल प्राप्य सशुद्धि ता द्विजोत्तम ॥६४॥
एप पापण्डसम्भाषादोष प्रोक्तो मया द्विज ।
तथाऽश्वमेधावभृथस्नानमाहात्म्यमेव च ॥६५॥
तस्मात्पापण्डिभि पापैरालापस्पर्शन त्यजेत् ।
विशेषत क्रियाकाले यज्ञादौ चापि दीक्षित ॥६६॥
क्रियाहानिर्गृहे यस्य मासमेक प्रजायते ।
तस्यावलोकनात्सूर्यं पश्येत मतिमान्नर ॥६७॥

। इस प्रकार उसने पृथिवी का न्यायपूर्वक पालन और राज्य-सुखों का उपभोग किया तथा अन्त म धर्म युक्त युद्ध करते हुए ही अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥६१ ।तब पहिले के समान ही उस सुन्दर नयन वाली रानी ने अपने चितारूढ पति के साथ परलोक गमन किया ॥६२॥ इस प्रकार राजकुमारी सहित उस राजा ने इन्द्रलोक से भी बढ़कर अक्षय लोको को प्राप्त किया ॥६३। हे द्विजवर । इस प्रकार शुद्धि को प्राप्त हुए उस राजा ने अतुलित एव अक्षय स्वर्ग, अत्यन्त दुर्लभ दाम्पत्य तथा अपने पुण्य के फल को प्राप्त किया ॥६४॥ हे द्विज । इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रति पाखण्डो स वार्तालाप करने का दोष और अश्वमेध यज्ञ म अवभृथ स्नान करने का माहात्म्य कहा है ॥६५॥ इसलिये पाखण्डियों और पापकर्मियों से कभी सम्भाषण या उनका स्पर्श नहीं करना चाहिए। विशेषकर नित्य नैमित्तिक कर्मों के समय या यज्ञादि क्रियाओं

मे दीक्षित होने पर तो उनके ससर्ग से बचना ही चाहिये ॥९६॥ जिसके घर में एक महीने तक नित्यकर्म न हुए हो, उस पुरुष का दर्शन मात्र होने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिए ॥९७॥

किं पुनर्येस्तु सन्त्यक्ता त्रयी सर्वात्मना द्विज ।
पाषण्डभोजिभि. पापैर्वेदवादविरोधिभि ॥९८॥
सहालापस्तु ससर्ग सहास्या चातिपापिनी ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥९९॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥१००॥
दूरतस्तैस्तु सम्पर्कस्त्याज्यश्चाप्यतिपापिभि ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥१०१॥
एते नग्नास्तवाख्याता दृष्टा श्राद्धोपघातका ।
येषा सम्भाषणात्पुसा दिनपुण्य प्रणश्यति ॥१०२॥
एते पाषण्डिन पापा न ह्येतानालपेद् बुध ।
पुण्य नश्यति सम्भाषादेतेषा तद्दिनोद्भवम् ॥१०३॥
पुसा जटाधरणमौण्ड्यवता वृथैव
मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम् ।
तोयप्रदानपितृपिण्डबहिष्कृताना
सम्भाषणादपि नरा नरक प्रयान्ति ॥१०४॥

वेदत्रयी धर्म के त्यागी, पाखण्डियो का अन्न भोजन करने वाले और वैदिक धर्म का विरोध करने वाले उन पापियों को देख लेने पर तो उपाय ही क्या कहा जाय ? ॥९८॥ इन दुराचारियों के साथ सम्भाषण करना, सम्पर्क रखना या उठना बैठना भी पाप है इसलिए उनका त्याग करना ही उचित है ॥९९॥ पाखण्डी, कुकर्मी, छिपकर पाप करने वाले, दुष्ट, स्वार्थी तथा बगुला वृत्ति वाले मनुष्यों का वचनों से भी सत्कार न करे ॥१००॥ इन पाखण्डियों, दुराचारियों और अत्यन्त पापियो का ससर्ग दूर, से ही त्याग देना चाहिए । इसलिये इनसे सदा ही बचे ॥१०१॥ इस प्रकार नग्नों के विषय में मैंने तुमसे

कहा है, जिनके देखने से ही श्राद्ध का क्षय हो जाता है तथा जिनसे वार्तालाप करने मात्र से एक दिन का पुण्य नष्ट हो जाता है ॥१०२॥ ऐसे यह पाखण्डी अत्यन्त पापी होते हैं; बुद्धिमानों को इनसे कभी भी वार्तालाप नहीं करना चाहिये। क्योंकि वार्तालाप करने से ही उस दिन का पुण्य क्षीण हो जाता है ॥१०३॥ जो अकारण ही जटा धारण करते और सिर मुँडा लेते हैं, जो देवता, अतिथि को भोजन कराये बिना ही स्वयं खा लेते हैं, तथा जो सब प्रकार से अशुद्ध और जलदान-पिण्डदान आदि से बहिष्कृत हैं, उन व्यक्तियों से बातचीत करने वालों को भी नरक की प्राप्ति होती है ॥१०४॥



चतुर्थ अंश

पहला अध्याय

भगवन्यन्नरैः कार्यं साधुकर्मण्यवस्थितैः ।
तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम् ।
वर्णधर्मास्तथाख्याता धर्मा ये चाश्रमेषु च ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशं राज्ञां तद् ब्रूहि मे गुरो ।२।

मैत्रेय श्रूयतामयमनेकयज्वशूरवीरधीरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिर्मानवो वंशः ।३। तदस्य वंशस्यानुपूर्वीमशेषवंशपापप्रणाशनाय मैत्रेयैतां कथां शृणु ।४।

तद्यथा सकलजगतामादिरनादिभूतस्स ऋग्यजुस्सामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्त्तं रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान् प्राग्बभूव ।५। ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतो मनुः ।६। मनोरिक्ष्वाकुनृगधृष्टशर्यातिनरिष्यन्तप्रांशुनाभागदिष्टकरूषपृषध्राख्या दश पुत्रा बभूवुः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! साधु कर्मों [illegible] अवस्थित पुरुषों के करने योग्य उन सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों को आपने मुझसे कह दिया ॥१॥ हे गुरो ! आपने वर्ण-धर्मों और आश्रम-धर्मों की भी व्याख्या कर दी, अब मैं राजवंशों को सुनने की इच्छा करता हूँ, इसलिये वह विषय मेरे प्रति कहिये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! जिस वंश के आदि कर्त्ता ब्रह्माजी हैं, उस अनेकों यज्ञ वाले, शूर, वीर और धीरजवान् राजाओं से सुशोभित मनु-वंश का वर्णन सुनो ॥३॥ हे मैत्रेयजी ! अपने वंश के सब पापों को मिटाने के लिये इस वंश की परम्परा-गाथा को यत्न से सुनो ॥४॥ वह इस प्रकार है—सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण भगवान् विष्णु हैं । वे अनादि

हैं। उन्हीं ब्रह्म स्वरूप भगवान् के मूर्त्त रूप में ब्रह्माण्डमय एवं हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी सर्व प्रथम उत्पन्न हुए ॥५॥ उन ब्रह्माजी के दाँए अँगूठे से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई, दक्ष से अदिति का जन्म हुआ और अदिति ने भगवान् विवस्वान् को प्रकट किया। उन्हीं विवस्वान् से मनु की उत्पत्ति हुई ॥६॥ मनु के दस पुत्र हुए जिनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र थे ॥७॥

इष्टिं च मित्रावरुणयोर्मनुः पुत्रकामश्चकार ।८। तत्र तावदपहुते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव ।९। सैव च मित्रावरुणयो प्रसादात्सुद्युम्नो नाम मनो पुत्रो मैत्रेय आसीत् ।१०। पुनश्चेश्वरकोपात्स्त्री सती सा तु सोमसूनोर्बुधस्याश्रमसमीपे बभ्राम ।११। सानुरागश्च तस्या बुधः पुरूरवसमात्मजमुत्पादयामास ।१२। जातेऽपि तस्मिन्नमिततेजोभिः परमर्षिभिरिष्टिमय ऋड्मयो यजुर्मयस्सामयोऽथर्वणमयस्सर्ववेदमयो मनोमयो ज्ञानमयो न किञ्चिन्मयोऽन्नमनो भगवान् यज्ञपुरुषस्वरूपी सुद्युम्नस्य पुंस्त्वमभिलषद्भिर्यथावदिष्टस्तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्नोऽभवत् ।१३। तस्याप्युत्कलगयविनताख्य पुत्रा बभूवु ।१४।

पुत्र की कामना से मनु ने मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिए यज्ञ किया ॥८॥ परन्तु, होता के विपरीत संकल्प से उस यज्ञ में विपर्यय हो गया और उससे इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई ॥९॥ हे मैत्रेयजी ! बाद में मित्रावरुण की कृपा से वही इला नाम्नी कन्या मनु पुत्र सुद्युम्न हो गया ॥१०॥ शिवजी के क्रोध के कारण वह इला स्त्री बनी हुई चन्द्रमा के पुत्र बुध के आश्रम के समीप भ्रमण करने लगी ॥११॥ तब बुध उस देखकर आसक्तिमय होगये और उन्होंने उससे पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१२॥ पुरूरवा के उत्पन्न होने के पश्चात् परम ऋषियों ने सुद्युम्न को पुरुषत्व प्राप्ति कराने की इच्छा से सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमाय वाले भगवान् यज्ञ पुरुष का विधिवत् यजन किया, तब उन यज्ञ पुरुष की कृपा से इला सुद्युम्न रूप में

चतुर्थ अंश

पहला अध्याय

भगवन्यन्नरैः कार्यं साधुकर्मण्यवस्थितैः
तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम्
वर्णधर्मास्तथाख्याता धर्मा ये चाश्रमेषु च ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशं राज्ञां तद् ब्रूहि मे गुरो ।२।

मैत्रेय श्रूयतामयमनेकयज्वशूरवीरधीरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिर्मानवो वंशः ।३। तदस्य वंशस्यानुपूर्वीमशेषवंशपापप्रणाशनाय मैत्रेयैतां कथां शृणु ।४।

तद्यथा सकलजगतामादिरनादिभूतस्स ऋग्यजुस्सामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्त्तं रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान् प्रागबभूव ।५। ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतो मनुः ।६। मनोरिक्ष्वाकुनृगधृष्टशर्यातिनरिष्यन्तप्रांशुनाभागदिष्टकरूषपृषध्राख्या दश पुत्रा बभूवुः ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! साधु कर्मों में अवस्थित पुरुषों के करने योग्य उन सभी नित्य नैमित्तिक कर्मों को आपने मुझसे कह दिया ॥१॥ हे गुरो ! आपने वर्ण धर्मों और आश्रम धर्मों की भी व्याख्या कर दी, अब मैं राजवंशों को सुनने की इच्छा करता हूँ इसलिये वह विषय मेरे प्रति कहिये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! जिस वंश के आदि कर्त्ता ब्रह्माजी हैं, उस अनेकों यज्ञ वाले, शूर, वीर और धीरजवान् राजाओं से सुशोभित मनु वंश का वर्णन सुनो ॥३॥ हे मैत्रेयजी ! अपने वंश के सब पापों को मिटाने के लिये इस वंश की परम्परा गाथा को यत्न से सुनो ॥४॥ वह इस प्रकार है—सम्पूर्ण जगत् के आदि कारण भगवान् विष्णु हैं । वे अनादि और निवेद रूप

है। उन्हीं ब्रह्म स्वरूप भगवान् के मूर्त रूप में ब्रह्माण्डमय एवं हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी सर्व प्रथम उत्पन्न हुए ॥५॥ उन ब्रह्माजी के दाँए अँगूठे से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई, दक्ष से अदिति का जन्म हुआ और अदिति ने भगवान् विवस्वान् को प्रकट किया। उन्हीं विवस्वान् से मनु की उत्पत्ति हुई ॥६॥ मनु के दस पुत्र हुए. जिनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूप और पृषध्र थे ॥७॥

इष्टिं च मित्रावरुणयोर्मनुः पुत्रकामश्चकार ।८। तत्र तावदपहुते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव ।९। सैव च मित्रावरुणयोः प्रसादात्सुद्युम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेय आसीत् ।१०। पुनश्चेश्वरकोपात्स्त्री सती सा तु सोमसूनोर्बुधस्याश्रमसमीपे बभ्राम ।११। सानुरागश्च तस्या बुधः पुरूरवसमात्मजमुत्पादयामास ।१२। जातेऽपि तस्मिन्नमिततेजोभिः परमर्षिभिरिष्टिमय ऋङ्मयो यजुर्मयस्साममयोऽथर्वणमयस्सर्ववेदमयो मनोमयो ज्ञानमयो न किञ्चिन्मयोऽन्नमयो भगवान् यज्ञपुरुषस्वरूपी सुद्युम्नस्य पुंस्त्वमभिलषद्भिर्यथावदिष्टस्तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्नोऽभवत् ।१३। तस्याप्युत्कलगयविनताख्यः पुत्रा बभूवुः ।१४।

पुत्र की कामना से मनु ने मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिये यज्ञ किया ॥८॥ परन्तु, होता के विपरीत संकल्प से उस यज्ञ में विपर्यय हो गया और उससे इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई ॥९॥ हे मैत्रेयजी ! बाद में मित्रावरुण की कृपा से वही इला नाम्नी कन्या मनु पुत्र सुद्युम्न हो गया ॥१०॥ शिवजी के क्रोध के कारण वह इला स्त्री बनी हुई चन्द्रमा के पुत्र बुध के आश्रम के समीप भ्रमण करने लगी ॥११॥ तब बुध उसे देखकर आसक्तिमय होगये और उन्होंने उससे पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१२॥ पुरूरवा के उत्पन्न होने के पश्चात् परम ऋषियों ने सुद्युम्न को पुरुषत्व-प्राप्ति कराने की इच्छा से सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थ वाले भगवान् यज्ञ पुरुष का विधिवत् यजन किया, तब उन यज्ञ पुरुष की कृपा से इला सुद्युम्न रूप में

परिवर्तित हुई ॥१३॥ तब उस सुद्युम्न के तीन पुत्र उत्कल, गय और विनत नामक हुए ॥१४॥

सुद्युम्नस्तु स्त्रीपूर्वकत्वाद्राज्यभागं न लेभे ।१५। तत्पित्रा तु वसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानं नाम नगरं सुद्युम्नाय दत्तं तच्चासौ पुरूरवसे प्रादात् ।१६। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वे दिक्ष्वभवन् । पृषध्रस्तु मनुपुत्रो गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ।१७। मनोः पुत्रः करूष. करूषात्कारूषाः क्षत्रिया महाबलपराक्रमा बभूवु ।१८। दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्तस्माद्बलन्धनः पुत्रोऽभवत् ।१९। बलन्धनाद्वत्सप्रीतिरुदारकीर्तिः ।२०। वत्सप्रीतेः प्रांशुरभवत् ।२१। प्रजापतिश्च प्रांशोरेकोऽभवत् ।२२।

पहिले स्त्री होने के कारण सुद्युम्न को राज्य का अधिकार नहीं मिला था, परन्तु वसिष्ठजी की आज्ञा से पिता ने उसे प्रतिष्ठान नामक नगर का राजा बनाया, वही नगर सुद्युम्न ने पुरूरवा को प्रदान कर दिया ॥१५-१६॥ उसी पुरुरवा की सन्तान सब दिशाओं में फैल गई । मनु का पुत्र पृषध्र अपने गुरू की गौ को मारने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥१७॥ मनु का जो पुत्र करूष था, उसी की सन्तान कारूष नामक अत्यन्त बल और पराक्रम वाले क्षत्रियगण हुए ॥१८॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ जो वैश्यत्व को प्राप्त हो गया, उसने बलन्धन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१९॥ बलन्धन से अत्यन्त यशस्वी वत्सप्रीति, वत्सप्रीति से प्रांशु और प्रांशु से प्रजापति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥२०-२२॥

ततश्च खनित्र. ।२३। तस्माच्चाक्षुपः ।२४। चाक्षुपाच्चातिबलपराक्रमो विंशोऽभवत् ।२५। ततो विविंशकः ।२६। तस्माच्च खनिनेत्रः ।२७। ततश्चातिविभूतिः ।२८। अतिविभूतेरतिबलपराक्रमः करन्धमः पुत्रोऽभवत् ।२९। तस्मादप्यविक्षित् ।३०। अविक्षितोऽप्यतिबलपराक्रमः पुत्रो मरुत्तो नामाभवत्: यस्येमावद्यापिश्लोकौ गीयेते ।३१।

मरुत्तस्य यथा यज्ञस्तथा कस्यामवद्भुवि ।
सर्वं हिरण्मयं यस्य यज्ञवस्त्वतिशोभनम् ।३२।
अमाद्यदिन्द्रस्सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारस्सदस्याश्च दिवौकसः ।३३।

प्रजापति का पुत्र खनित्र हुआ, खनित्र से चक्षुष और चाक्षुष से अत्यन्त बली-पराक्रमी विश हुआ ॥२३-२४॥ विश से विविंशक की उत्पत्ति हुई। विविंशक से खनिनेत्र, खनिनेत्र से अति-विभूति और अति विभूति से अत्यन्त बलवान् करन्धम हुआ ॥२६-२६॥ करन्धम से अविक्षित् और अविक्षित से मरुत्त नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके विषय में अब भी यह दो श्लोक प्रचलित हैं ॥३०-३१॥ मरुत्त के जैसा यज्ञ पृथिवी पर अभी तक किसी अन्य का नहीं हुआ, क्योंकि उसकी सभी यज्ञिक वस्तुएँ स्वर्ण युक्त और अत्यन्त सुन्दर थी ॥३२॥ उस यज्ञ में इन्द्र को सोम-रस से और ब्राह्मणों को दक्षिणा से तृप्त किया गया था। उसमें मरुद्गण परोसने वाले और देवगण सदस्य हुए थे ॥३३॥

स मरुत्तश्चक्रवर्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप ।३४। तस्माच्च दमः ।३५। दमस्य पुत्रो राजवर्द्धनो जज्ञे ।३६। राजवर्द्धनात्सुवृद्धिः ।३७। सुवृद्धेः केवलः ।३८। केवलात्सुधृतिरभूत् ।३९। ततश्च नरः ।४०। तस्माच्चन्द्रः ।४१। ततः केवलोऽभूत् ।४२। केवलाद्बन्धुमान् ।४३। बन्धुमतो वेगवान् ।४४। वेगवतो बुधः ।४५। ततश्च तृणबिन्दुः ।४६। तस्याप्येका कन्या इलविला नाम ।४७। ततश्चालम्बुसा नाम वराप्सरास्तृणबिन्दु भेजे ।४८। तस्यामप्यस्य विशालो जज्ञे यः पुरीं विशाला निर्ममे ।४९।

उसी मरुत्त के नरिष्यन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नरिष्यन्त से दम और दम से राजवर्द्धन हुआ ॥३४-३६॥ राजवर्द्धन से सुवृद्धि, सुवृद्धि से केवल और केवल से सुधृति उत्पन्न हुआ ॥३७-३९॥ सुधृति से नर, नर से चन्द्र और चन्द्र से केवल का जन्म हुआ ॥४०-४२॥ केवल से बन्धुमान्, बन्धुमान् से वेगवान्, वेगवान् से बुध बुध से तृणबिन्दु और तृणबिन्दु ने प्रथम तो इलविला नाम की एक कन्या उत्पन्न की, फिर अलम्बुसा नाम की अप्सरा के आसक्त होने पर उससे तृणबिन्दु ने विशाल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसने विशाला नाम से एक पुरी का निर्माण कराया ॥४३-४६॥

हेमचन्द्रश्च विशालस्य पुत्रोऽभवत् ।५०। ततश्चन्द्रः ।५१। तत्तनयो धूम्राक्षः ।५२। तस्यापि सृञ्जयोऽभूत् ।५३। सृञ्जयात्सहदेवः ।५४। ततश्च कृशाश्वो नाम पुत्रोऽभवत् ।५५। सोमदत्तः कृशाश्वाज्जज्ञे योऽश्वमेधानां

शतमाजहार ।५६। तत्पुत्रो जनमेजयः ।५७। जनमेजयात्सुमतिः ।५८। एते वैशालिका भूभृतः ।५९। श्लोकोऽप्यत्र गीयते ।६०।

तृणबिन्दोः प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तोऽतिधार्मिकाः ।६१।

शर्यातेः कन्या सुकन्या नामाभवत् यामुपयेमे च्यवनः ।६२। आनर्त्तनामा परमधार्मिकश्शर्यातिपुत्रोऽभवत् । ६३। आनर्त्तस्यापि रेवतनामा पुत्रो जज्ञे योऽसावानर्त्तविषयं बुभुजे पुरी च कुशस्थलीमध्युवास ।६४।

विशाल का पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्र का पुत्र धूम्राक्ष हुआ। धूम्राक्ष के सृञ्जय, सृञ्जय के सहदेव और सहदेव के कृशाश्व की उत्पत्ति हुई ।।५०-५५।। कृशाश्व से सौ अश्वमेधों का कर्त्ता सोमदत्त हुआ। सोमदत्त से जनमेजय और जनमेजय से सुमति हुआ। यह सभी राजा विशाल के वंशधर हुए। इनके विषय मे यह गाथा जाता है ।।५६-६०।। कि तृणबिन्दु के प्रसाद से विशाल वंश के सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवन्त तथा अत्यन्त धार्मिक हुए ।।६१।। मनु-पुत्र शर्याति के सुकन्या नाम की एक कन्या हुई जिसका पाणि ग्रहण च्यवन ऋषि ने किया। ६२।। शर्याति के एक अत्यन्त धर्मात्मा आनर्त्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आनर्त्त से रेवत हुआ, जिसने कुशस्थली नगरी मे निवास करते हुए आनर्त्त देश के राज्य को भोगा ।।६३-६४।।

रेवतस्यापि रैवतः पुत्रः ककुद्मिनामा धर्मात्मा भ्रातृशतस्य ज्येष्ठोऽभवत् ।६५। तस्य रेवती नाम कन्याभवत् ।६६। स तामादाय कस्येयमर्हतीति भगवन्तमब्जयोनिं प्रष्टुं ब्रह्मलोकं जगाम ।६७। तावच्च ब्रह्मणोऽन्तिके हाहाहूहूसंज्ञाभ्यां गन्धर्वाभ्यामतितानं नाम दिव्यं गान्धर्वमगीयत ।६८। तच्च त्रिमार्गपरिवृत्तैरनेकयुगपरिवृत्तिं तिष्ठन्नपि रैवतश्शृण्वन्मुहूर्त्तमिव मेने ।६९। गीतावसाने च भगवन्तमब्जयोनिं प्रणम्य रैवतः कन्यायोग्य वरमपृच्छत् ।७०। ततश्चासौ भगवानकथयत् कथय योऽभिमतस्ते वर इति ।७१। पुनश्च प्रणम्य भगवते तस्मै

यथाभिमतानात्मनस्स वरान् कथयामास । क एषां भगवतोऽभिमत इति यस्मै कन्यामिमां प्रयच्छामीति ।७२।

रेवत का पुत्र रैवत ककुद्मी हुआ जो अत्यन्त धार्मिक और अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ था ।।६२।। उसके जो कन्या हुई उसका नाम रेवती हुआ।।६६।। उस कन्या को साथ लेकर राजा रैवत ब्रह्माजी से वह कन्या किस वर के योग्य है—यह पूछने के लिये ब्रह्मलोक को गये ।।६७।। उस समय ब्रह्माजी के समक्ष हाहा और हूहू नामक दो गन्धर्व अतितान नामक दिव्य गीत गा रहे थे ।।६८।। वहाँ त्रिमार्ग परिवर्तन युक्त उस अद्भुत गीत को सुनते हुए वे राजा रैवत युगों के परिवर्तन काल तक वहाँ रुके रहे परन्तु उन्हें उतना समय केवल एक मुहूर्त के समान ही व्यतीत हुआ लगा ।।६६।। गीत के समाप्त होने पर महाराज रैवत ने कमलयोनि भगवान् श्री ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे अपनी कन्या के योग्य वर के विषय में प्रश्न किया ।।७०।। ब्रह्मा जी ने कहा—तुमने जो वर पसन्द किया हो उसे बताओ ।।७१।। इस पर उन्होंने ब्रह्माजी को पुनः प्रणाम किया और जो-जो वर उनकी दृष्टि में थे, वह वह सब उन्हें बताकर प्रश्न किया कि—इनमें से कौनसा वर आपको उचित प्रतीत होता है, जिसे मैं अपनी यह कन्या प्रदान कर दूँ ।।७२।।

ततः किञ्चिदवनतशिरास्सस्मितं भगवानब्जयोनिराह ।७३। य एते भवतोऽभिमता नैतेषां साम्प्रतं पुत्रपौत्रापत्यापत्यसन्ततिरस्त्यवनीतले ।७४। बहूनि तवात्रैव गान्धर्वं शृण्वतश्चतुर्युगान्यतीतानि ।७५। साम्प्रतं महीतलेऽष्टाविंशतितममनोश्चतुर्युगमतीतप्रायं वर्त्तते ।७६। आसन्नो हि कलिः ।७७। अन्यस्मै कन्यारत्नमिदं भवतैकाकिनाभिमताय देयम् ।७८। भवतोऽपि पुत्रमित्रकलत्रमन्त्रिभृत्यबन्धु बलकोशादयस्समस्ता कालेनैतेनात्यन्तमतीताः ।७९। ततः पुनरप्युत्पन्नसाध्वसो राजा भगवन्तं प्रणम्य पप्रच्छ ।८०। भगवन्नेवमवस्थिते मयेयं कस्मै देयेति ।८१। ततस्स भगवान् किञ्चिदवनम्रकन्धरः कृताञ्जलिर्भूत्वा सर्वलोकगुरुरम्भोजयोनिराह ।८२।

इस पर भगवान् पद्मयोनि ब्रह्माजी ने मस्तक झुकाकर कुछ मुसकाते हुए कहा—तुम्हें जो जो वर पसन्द हैं, उनमें से तो किसी की पुत्र-पौत्रादि सन्तान भी अब पृथिवी पर स्थित नहीं है ॥७४॥ क्योंकि यहाँ गंधर्वों का गीत सुनते हुए कई चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं ॥७५॥ इस समय पृथिवी पर अट्ठाइसवें मनु की चतुर्युगी समाप्त होने को है और कलियुग का प्रारम्भ निकट है ॥७६ ७७॥ अब तुम एकाकी ही रह गये हो, इसलिये इस कन्या-रत्न को किसी अन्य योग्य वर को प्रदान करो। इतने समय में तुम्हारे पुत्र, मित्र, कलत्र, मन्त्रिगण, भृत्यगण, बन्धु-बान्धव, सेना और कोषादि कुछ भी शेष नहीं रहा ॥७८-७९॥ इस बात को सुनकर भयभीत हुए राजा रैवत ने ब्रह्माजी को पुनः प्रणाम करके प्रश्न किया ॥८०॥ हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो अब मैं इस कन्या को किसे दूँ ? ॥८१॥ तब सब लोकों के गुरु ब्रह्मा जी ने कुछ मस्तक झुका कर हाथ जोड़ते हुए कहा ॥८२॥

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्मो वयं सर्वमयस्य धातुः ।
न च स्वरूपं न परं स्वभावं न चैव सारं परमेश्वरस्य ॥८३॥
कलामुहूर्त्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः ।
अजन्मनाशस्य समस्तमूर्तेरनामरूपस्य सनातनस्य ॥८४॥
यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी ।
क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात् ॥८५॥
मद्रूपमास्थाय सृजत्यजो यः स्थितौ च योऽसौ पुरुषस्वरूपी ।
रुद्रस्वरूपेण च योऽत्ति विश्वं धत्ते तथानन्तवपुस्समस्तम् ॥८६॥
पाकाय योऽग्नित्वमुपैति लोकान्बिभर्त्ति पृथ्वीवपुरव्ययात्मा ।
शक्रादिरूपी परिपाति विश्वमर्केन्दुरूपश्च तमो हिनस्ति ॥८७॥
करोति चेष्टाश्श्वसनस्वरूपी लोकस्य तृप्तिं च जलान्नरूपी ।
ददाति विश्वस्थितिसंस्थितस्तु सर्वावकाशं च नभस्स्वरूपी ॥८८॥
यस्सृज्यते सर्गकृदात्मनैव यः पाल्यते पालयिता च देवः ।
विश्वात्मकस्संह्रियतेऽन्तकारी पृथक् त्रयस्यास्य च योऽव्ययात्मा ॥८९॥

यस्मिञ्जगद्यो जगदेतदाद्यो यश्चाश्रितोऽस्मिञ्जगति स्वयम्भू ।
स सर्वभूतप्रभवो धरित्र्या स्वांशेन विष्णुर्नृपतेऽवतीर्णः ।६०।

श्री ब्रह्माजी बोले—जिन जन्म-रहित, सर्वात्मक परमेश्वर के आदि, मध्य, अन्त को हम नहीं जानते और जिनके रूप, श्रेष्ठ स्वभाव और सार का ज्ञान भी हमको नहीं है ॥८३॥ जिनकी विभूति के परिणाम का कारण कला मुहूर्तादि युक्त काल भी नहीं हो सकता तथा जो जन्म-मरण से रहित, सनातन नाम-रूप से रहित एवं सदा ही एक रूप हैं ॥८४॥ जिन अच्युत भगवान के प्रसाद से मैं प्रजोत्पत्ति का कर्त्ता हूं और जिनके क्रोध से उत्पन्न होकर रुद्र सृष्टि का अन्त करने में समर्थ होते हैं तथा जिनसे विश्व की स्थिति करने वाले विष्णु रूपी पुरुष प्रकट हुए हैं ॥८५॥ जो अजन्मा मेरे रूप में विश्व की रचना पुरुष रूप से स्थिति और रुद्र रूप से सम्पूर्ण विश्व को ग्रस लेता है तथा अनन्त रूप से उसी विश्व को धारण करता है ॥८६॥ जो अजन्मात्मा परिपाक करने के लिए अग्नि रूप होता तथा पृथिवी रूप से सब लोकों को धारण करता है, इन्द्रादि के रूप में जगत् का पालन करता तथा सूर्य, चन्द्रमा के रूप में सब अन्धकार का हरण कर लेता है ॥८७॥ जो श्वास-प्रश्वास रूप में प्राणियों को चेष्टावान् करता है, अन्न, जल के रूप में संसार की तृप्ति करता है और जगत् की स्थिति के कार्य को करता हुआ जो सभी को आकाश रूप से अवकाश प्रदान करता है ॥८८॥ जो सृष्टात्मा सृष्टि का रचने वाला होकर भी स्वयं ही विश्व रूप से उत्पन्न होता और विश्व का पालनकर्त्ता होकर भी स्वयं पालित होता तथा संहारकर्त्ता होकर भी स्वयं ही नष्ट हो जाता है ॥८९॥ जिसमें यह संसार स्थित है और जो आदि-पुरुष विश्व-रूप है और विश्व के ही आश्रित स्वयं स्वतन्त्र होने वाला है। हे राजन्! सभी भूतों का उद्भवस्थान वह विष्णु भगवान् पृथिवी पर अपने अंश से उत्पन्न होता है ॥९०॥

कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव ।
सा द्वारका सम्प्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा ।६१।
तस्मै त्वमेनां तनयां नरेन्द्र प्रयच्छ मायामनुजाय जायाम् ।
श्लाघ्यो वरोऽसौ तनया तवेयं स्त्रीरत्नभूता सदृशो हि योगः ।६२।

इतीरितोऽसौ कमलोद्भवेन भुवं समासाद्य पतिः प्रजानाम् ।
ददर्श ह्रस्वान् पुरुषान् विरूपानल्पौजसस्स्वल्पविवेकवीर्यान् ।६३।
कुशस्थलीं तां च पुरीमुपेत्य दृष्ट्वान्यरूपां प्रददौ स कन्याम् ।
सीरायुधाय स्फटिकाचलाभवक्षः स्थलायातुलधीर्नरेन्द्रः ।६४।
उच्चप्रमाणामिति तामवेक्ष्य स्वलाङ्गलाग्रेण च तालकेतुः ।
विनम्रयामास ततश्च सापि बभूव सद्यो वनिता यथान्या ।६५।
तां रेवती रैवतभूपकन्यां सीरायुधोऽसौ विधिनोपयेमे ।
दत्त्वाथ कन्यां स नृपो जगाम हिमालयं वै तपसे धृतात्मा ।६६।

हे राजन् ! अमरावती के समान तुम्हारी कुशस्थली नाम की नगरी अब द्वारावती हो गई है। वहाँ भगवान् विष्णु के अंश रूप बलदेवजी स्थित हैं ॥६१॥ तुम अपनी इस कन्या को माया से मनुष्य बने बलदेवजी को ही भार्या रूप मे प्रदान कर दो। वह बलदेवजी जगत् मे अत्यन्त प्रशंसा के पात्र हैं और तुम्हारी यह पुत्री भी रत्न है, इसलिए इन दोनों का मिलन उपयुक्त रहेगा ॥६२॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्री ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महाराज रैवत भूतल पर लौटे और उन्होंने देखा कि सब मनुष्य छोटे कद के, रूपहीन, न्यून तेज वाले, अल्प-वीर्य और मतिहीन हो गए हैं ॥६३॥ उन्होंने अपनी कुश-स्थली नाम की नगरी को नितान्त परिवर्तित रूप मे पाया और स्फटिकाचल के समान वक्षःस्थल वाले बलरामजी को अपनी कन्या प्रदान कर दी ॥६४॥ जब उन बलदेवजी ने उसे अत्यन्त ऊँचे शरीर की देखा तो अपने हल के अगले भाग से दबा कर छोटे कद की कर दी। ऐसा करने से वह रेवती भी उस समय की

दूसरा अध्याय

यावच्च ब्रह्मलोकात्स ककुद्मी रैवतो नाभ्येति तावत्पुण्यजनसंज्ञा
राक्षसास्तामस्य पुरीं कुशस्थलीं निजघ्नु ।१। तच्चास्य भ्रातृशतं पुण्य-
जनत्रासाद्दिशो भेजे ।२। तदन्वयाश्च क्षत्रियास्सर्वदिक्ष्वभवन् ।३। धृष्ट-
स्यापि धार्ष्टकं क्षत्रमभवत् ।४। नाभागस्यात्मजो नाभागसंज्ञोऽभवत् ।५।
तस्याप्यम्बरीष ।६। अम्बरीषस्यापि विरूपोऽभवत् ।७। विरूपात्पृषदश्वो
जज्ञे ।८। ततश्च रथीतर ।९। अत्राय श्लोक एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चा-
ङ्गिरसा स्मृता । रथीतराणां प्रवरा क्षत्रोपेता द्विजातय ।१०।

श्री पराशरजी ने कहा—जब तक रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोक से नहीं लौटे, तभी पुण्यजन नामक राक्षसों ने उनकी कुशस्थली पुरी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥१॥ उनके जो सौ भाई थे, वे सब उन पुण्यजन राक्षसों के भय के कारण दसों दिशाओं में भाग गये ॥२॥ उन्हीं सब के वंशधर क्षत्रियगण उन सब दिशाओं में फैल गए ॥३॥ धृष्ट का वंश धार्ष्टक नामक क्षत्रियों के रूप में हुआ ॥४॥ नाभाग का पुत्र भी नाभाग संज्ञक हुआ, जिसका पुत्र अम्बरीष और अम्बरीष का पुत्र विरूप हुआ। विरूप का पुत्र पृषदश्व हुआ और पृषदश्व से रथीतर की उत्पत्ति हुई ॥५-६॥ उन रथीतर के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—रथीतर के वंशधर क्षत्रिय होते हुए भी आङ्गिरस कहला कर क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए ॥१०॥

इति क्षुतवतश्च मनोरिक्ष्वाकु पुत्रो जज्ञे घ्राणत ।११। तस्य
पुत्रशतप्रधाना विकुक्षिनिमिदण्डाख्यास्त्रय पुत्रा बभूवु ।१२। शकुनि-
प्रमुखा पञ्चाशत्पुत्रा उत्तरापथरक्षितारो बभूवु ।१३। चत्वारिंशदष्टौ
च दक्षिणापथभूपाला ।१४। स चेक्ष्वाकुरष्टकायाश्श्राद्धमुत्पाद्य श्राद्धार्हं
मांसमानयेति विकुक्षिमाज्ञापयामास ।१५। स तथेति गृहीताज्ञो विधृत-
शरासनो वनमभ्येत्यानेकशो मृगान् हत्वा श्रान्तोऽतिक्षुत्परीतो विकुक्षि-
रेक शशमभक्षयत् । शेष च मांसमानीय पित्रे निवेदयामास ।१६।
इक्ष्वाकुकुलाचार्यो वसिष्ठस्तत्प्रोक्षणाय चोदित प्राह । अलमनेनामे-

घ्येनामिषेण दुरात्मना तव पुत्रेणैतन्मांसमुपहृत यतोऽनेन शशो भक्षितः ।१७। ततश्चासौ विकुक्षिर्गुरुणैवमुक्तश्शशादसंज्ञामवाप पित्रा च परित्यक्तः ।१८। पितर्युपरते चासावखिलामेतां पृथ्वीं धर्मतश्शशास ।१९। शशादस्य तस्य पुरञ्जयो नाम पुत्रोऽभवत् ।२०।

छींकते समय मनु की नासिका से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।११।। उनके सौ पुत्रों में विकुक्षि, निमि और दण्ड यह तीन पुत्र प्रमुख हुए और उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथ के और अड़तालीस पुत्र दक्षिणापथ के अधिकारी हुए ।।१२-१४।। राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध-योग्य अन्न लाने की आज्ञा दी ।।१५।। उसने उनकी आज्ञा मान कर धनुष-बाण ग्रहण किया और वन में जाकर मृगों को मारने लगा । उस समय अत्यन्त क्षुधार्त्त होने के कारण विकुक्षि ने उनमें से एक खरगोश भक्षण कर लिया और शेष माँस पिता के समक्ष लाकर रखा।।१६।। उस माँस को धोने की प्रार्थना किए जाने पर राजा इक्ष्वाकु के आचार्य वसिष्ठजी ने कहा कि—तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने इस माँस को अपवित्र कर दिया है, उसने इसमें से एक खरगोश का भक्षण किया है, इसलिए इस दूषित माँस की क्या आवश्यकता है ? ।।१७।। उसी समय से विकुक्षि का नाम शशाद हो गया और गुरु के वचन सुन कर पिता ने उसका त्याग कर दिया ।।१८।। परन्तु पिता की मृत्यु हो जाने पर उसी ने इस पृथिवी पर धर्म पूर्वक राज्य किया ।।१९।। उस शशाद का पुत्र पुरञ्जय हुआ ।।२०।।

तस्येदं चान्यत् ।२१। पुरा हि त्रेतायां देवासुरयुद्धमतिभीषणम् अभवत् ।२२। तत्र चातिबलिभिरसुरैरमराः पराजितास्ते भगवन्त विष्णुमाराधयाञ्चक्रुः ।२३। प्रसन्नश्च देवानामनादिनिधनोऽखिलजगत्परायणो नारायणः प्राह ।२४। ज्ञातमेतन्मया युष्माभिर्यदभिलषितं तदर्थमिदं श्रूयताम् ।२५। पुरञ्जयो नाम राजर्षेश्शशादस्य तनयः क्षत्रियवरो यस्तस्य शरीरेऽहमंशेन स्वयमेवावतीर्य तानशेषानसुरान्निहनिष्यामि तद्भवद्भिः पुरञ्जयोऽसुरवधार्थमुद्योग कार्यतामिति ।२६।

पुरञ्जय का भी एक दूसरा नाम पड़ा ॥२१॥ पूर्व काल की बात है—त्रेता युग में एक बार अत्यन्त भयङ्कर देवासुर युद्ध हुआ ॥२२॥ उसमें अत्यन्त बली दैत्यों से देवगण पराजित हो गए और तब उन्होंने भगवान् विष्णु की आराधना की ॥२३॥ उस समय आदि-अन्त से रहित, विश्व का परिपालन करने वाले भगवान् श्री नारायण ने प्रसन्न होकर उन देवताओं से कहा ॥२४॥ आपकी जो कामना है, उसे मैं जान गया हूँ, अब उसके विषय में मेरी बात सुनो ॥२५॥ राजर्षि शशाद के पुत्र पुरञ्जय के देह में स्वयं मैं ही अपने अंश से अवतीर्ण होकर उन सब दैत्यों का संहार करूँगा। इसलिए तुम उस पुरञ्जय को दैत्यों से मारने के कार्य में तत्पर करो ॥२६॥

एतच्च श्रुत्वा प्रणम्य भगवन्तं विष्णुममराः पुरञ्जयसकाशमाजग्मुरूचुश्चैनम् ।२७। भो भो क्षत्रियवर्यास्माभिरभ्यर्थितेन भवतास्माकमरातिवधोद्यतानां कर्तव्यं साहाय्यमिच्छामः तद्भवतास्माकमभ्यागतानां प्रणयभङ्गो न कार्य इत्युक्तः पुरञ्जयः प्राह ।२८। त्रैलोक्यनाथो योऽयं युष्माकमिन्द्रः शतक्रतुरस्य यद्यहं स्कन्धाधिरूढो युष्माकमरातिभिस्सह योत्स्ये तदहं भवतां सहायः स्याम् ।२६। इत्याकर्ण्य समस्तदेवैरिन्द्रेण च वाढमित्येवं समन्वीप्सितम् ।३०। ततश्च शतक्रतोर्वृषरूपधारिणः ककुदि स्थितोऽतिरोषसमन्वितो भगवतश्चराचरगुरोरच्युतस्य तेजसाप्यायितो देवासुरसङ्ग्रामे समस्तानेवासुराग्निजघान ।३१। यतश्च वृषभककुदि स्थितेन राज्ञा दैतेयबलं निषूदितमतश्चासौ ककुत्स्थसंज्ञामवाप ।३२।

यह सुन कर भगवान् को प्रणाम करके देवगण वहाँ से चल दिए और पुरञ्जय के पास पहुँच कर बोले ॥२७॥ हे क्षत्रियवर ! अपने शत्रुओं को नष्ट करने में तत्पर हुए हम अपनी सहायता के लिये यहाँ आये हैं। आप हमारी याचना को अस्वीकार न करें। इस पर पुरञ्जय बोले ॥२८॥ इन त्रैलोक्यनाथ शतक्रतु इन्द्र के कन्धे पर आरूढ़ होकर यदि मैं युद्ध कर सकूँ तो अवश्य ही आपकी सहायता कर सकता हूँ ॥२६॥ उनकी बात सुनकर सभी देवगण सहित इन्द्र ने उसे स्वीकार कर लिया ॥३०॥ और वृषभ रूपधारी इन्द्र की पीठ पर

रूढ होकर भगवान विष्णु के तेज से परिपूर्ण हुए वह राजा युद्ध मे पहुँचे और उन्होंने क्रोधपूर्वक उन सब दैत्यो का वध कर दिया ॥३१॥ उन्होने इन्द्र रूपी बैल के ककुद (कंधे) पर चढकर दैत्य-सेना का संहार किया था, इसलिये वह ककुत्स्थ नाम से विख्यात हुए ॥३२॥

ककुत्स्थस्याप्यनेनाः पुत्रोऽभवत् ।३३। पृथुरनेनसः ।३४। पृथोर्विष्टराश्वः ।३५। तस्यापि चान्द्रो युवनाश्वः ।३६। चान्द्रस्य तस्य युवनाश्वस्य शावस्तः यः पुरीं शावस्तीं निवेशयामास ।३७। शावस्तस्य बृहदश्वः ।३८। तस्यापि कुवलयाश्वः ।३९। योऽसावुदकस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायितः पुत्रसहस्रैरेकविंशद्भिः परिवृतो जघान धुन्धुमारसंज्ञामवाप ।४०। तस्य च तनयास्समस्ता एव धुन्धुमुखनिःश्वासाग्निना विप्लुष्टा विनेशुः ।४१। दृढाश्वचन्द्राश्वकपिलाश्वाश्च त्रयः केवलं शेषिताः ।४२।

ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ। ३३। अनेना का पुत्र पृथु, पृथु का विष्टराश्व था चान्द्र युवनाश्व और उसका पुत्र शावस्त हुआ, जिसने शावस्ती पुरी को बसाया ।३४-३७। शावस्त के बृहदश्व और बृहदश्वके कुवलयाश्व हुआ, जिसने भगवान् विष्णु के तेजसे परिपूर्ण होकर अपने इक्कीस हजार पुत्रोंको साथ लेकर महर्षि उदक का अपकार करने वाले धुन्धु नामक दैत्य का संहार किया था, इसलिए उसका नाम धुन्धुमार भी पड़ गया था। ॥३८-४०॥ उनके सब पुत्र धुन्धु के मुख से निर्गत हुई श्वासोच्छ्वास रूपी अग्नि में भस्म हो गये ॥४१॥ उनमे से दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र ही शेष बचे थे ॥४२॥

दृढाश्वाद्धर्यश्वः ।४३। तस्माच्च निकुम्भः ।४४। निकुम्भस्यामिताश्वः ।४५। ततश्च कृशाश्वः ।४६। तस्माच्च प्रसेनजित् ।४७। प्रसेनजितो युवनाश्वोऽभवत् ।४८। तस्य चापुत्रस्यातिनिर्वेदान्मुनीनामाश्रममण्डले निवसतो दयालुभिर्मुनिभिरपत्योत्पादनायेष्टिः कृता ।४९। तस्यां च मध्यरात्रौ निवृत्तायां मन्त्रपूतजलपूर्णं कलशं वेदिमध्ये निवेश्य ते मुनयः सुषुपुः ।५०। सुप्तेषु तेषु अतीव तृट्परीतस्स भूपालस्तमाश्रमं विवेश

।५१। सुमांश्च तानृषीन्नैवोत्थापयामास ।५२। तच्च कलशमपरिमेय-माहात्म्यमन्त्रपूतं पपौ ।५३। प्रबुद्धाश्च ऋषयः पप्रच्छु: केनैतन्मन्त्रपूतं वारि पीतम् ।५४। अत्र हि राज्ञो युवनाश्वस्य पत्नी महाबलपराक्रमं पुत्रं जनयिष्यति । इत्याकर्ण्य स राजा अजानता मया पीतमित्याह ।५५। गर्भश्च युवनाश्वस्योदरे अभवत् क्रमेण च ववृधे ।५६। प्राप्तसमयश्च दक्षिणं कुक्षिमवनिपतेर्निर्भिद्य निश्चक्राम ।५७। न चासौ राजा ममार ।५८।

इडाश्व से हर्यश्व, हर्यश्व से निकुम्भ, निकुम्भ से अमिताश्व, अमिताश्व से कृशाश्व, कृशाश्व से प्रसेनजित् और प्रसेनजित से युवनाश्व उत्पन्न हुआ ।।४१-४८।। वह युवनाश्व सन्तानहीन होने के कारण दुःखित चित्त से महर्षियों के आश्रय में रहने लगा ।।४९।। आधी रात के समय जब वह यज्ञ सम्पूर्ण हो गया, तब महर्षिगण मन्त्रपूत जल से परिपूर्ण कलश को वेदी में रख कर सो गये ।। ५० ।। उनके सोने के पश्चात् राजा को अत्यन्त प्यास लगी और उसने यज्ञ स्थान में प्रवेश किया और ऋषियों को शयन करते हुए देखकर उसने उन्हें नहीं जगाया ।।५१-५२।। प्यास को न रोक सकने के कारण उसने उसी मन्त्रपूत जल का पान कर लिया ।।५३।। जब ऋषिगण की निद्रा भंग हुई तब उन्होंने कलश को जल-रहित देखा तो उन्होंने पूछा कि इस मन्त्रपूत जल का किसने पान किया है ? ।।५४।। इसी जल को पीकर युवनाश्व की भार्या अत्यन्त बल-विक्रम युक्त पुत्र को जन्म देगी । तब राजा ने कहा—इस बात को बिना जाने मैंने ही इस जल को पी लिया है ।।५५।। इस प्रकार युवनाश्व के उदर में गर्भ स्थिति हो गई और वह गर्भ क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।।५६।। समय प्राप्त कर राजा की दाहिनी कोख को फोड़कर वह गर्भ बाहर निकल आया ।।५७।। परन्तु राजा उससे मरा नहीं ।।५८।।

जातो नामैष कं धास्यतीति ते मुनयः प्रोचुः ।५९। अथागत्य देवराजोऽब्रवीत् मामयं धास्यतीति ।६०। ततो मान्धातृनामा सोऽभवत् । वक्त्रे चास्य प्रदेशिनी देवेन्द्रेण न्यस्ता तां पपौ ।६१। तां चामृतस्राविणीमास्वाद्याह्नैव स व्यवर्द्धत ।६२। ततस्तु मान्धाता चक्रवर्ती

सप्तद्वीपा मही बुभुजे ।६८। तत्राय श्लोकः ।६४। यावत्सूर्य उदेत्यस्त यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।६५।

उस बालक के उत्पन्न होने पर ऋषिगण बोले—यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? ॥५९॥ तभी देवराज इन्द्र ने वहाँ उपस्थित होकर कहा—यह मेरे आश्रय में जीवित रहेगा ॥६०॥ इसलिए उसका मान्धाता नाम पड़ा । इन्द्र ने उसके मुख में अपनी तर्जनी अँगुली देकर अमृत-पान कराया, जिससे वह उसी दिन बढ़ गया ॥६१ ६२॥ उसी समय से मान्धाता सातों द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा हुआ ॥६३॥ इसके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है—सूर्योदय के स्थान से सूर्यास्त के स्थान पर्यंत सभी क्षेत्र युवनाश्व-पुत्र मान्धाता के आधीन है ॥६४ ६५॥

मान्धाता शतबिन्दोर्दुहितरं बिन्दुमतीमुपयेमे ।६६। पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च तस्यां पुत्रत्रयमुत्पादयामास ।६७। पञ्चाशद्दुहितरस्तस्यामेव तस्य नृपतेर्बभूवुः ।६८। तस्मिन्नन्तरे बह्वृचश्च सौभरिर्नाम महर्षिरन्तर्जले द्वादशाब्दं कालमुवास ।६९। तत्र चान्तर्जले सम्मदो नामातिबहुप्रजोऽतिमात्रप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् ।७०। तस्य च पुत्रपौत्रदौहित्रा पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वयोः पक्षपुच्छशिरसां चोपरि भ्रमन्तस्तेनैव सदाहर्निशमतिनिर्वृता रेमिरे ।७१। स चापत्यस्पर्शोपचीयमानप्रहर्षप्रकर्षो बहुप्रकारं तस्य ऋषेः पश्यतस्तैरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिः सहानुदिनं सुतरां रेमे ।७२। अथान्तर्जलावस्थितस्सौभरिरेकाग्रतस्समाधिमपहायानुदिनं तस्य मत्स्यस्यात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सहातिरमणीयतामवेक्ष्याचिन्तयत् ।७३। अहो धन्योऽयमीदृशमनभिमतं योन्यन्तरमवाप्यैभिरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सह रममाणोऽतीवास्माकं स्पृहामुत्पादयति ।७४। वयमप्येवं पुत्रादिभिस्सह ललितं रस्यामहे इत्येवमभिकाङ्क्षन् स तस्मादन्तर्जलान्निष्क्रम्य सन्तानाय निवेष्टुकाम कन्यार्थं मान्धातारं राजानमगच्छत् ।७५।

शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया, जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न

हुईं ॥६९-६८॥ उसी काल की बात है कि बह्वृच-पुत्र सौभरि ऋषि ने बारह वर्ष तक जल में रहकर तप किया ॥६९॥ उसी जल में सम्मद नामक एक विशाल देह वाला मत्स्यराज रहता था जिसके बहुत-सी सन्तानें थीं ॥७०॥ उसके पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि उसके आगे-पीछे, इधर-उधर तथा पूँछ और मस्तक पर हर्षित होते हुए घूमते हुए उसके साथ क्रीड़ा-रत रहते थे ॥७१॥ और वह भी अपने बालकों के कोमल स्पर्श से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन मुनि के सामने ही दिन-रात खेलता रहता था ॥७२॥ इस प्रकार जल में रहते हुए सौभरि ऋषि अपनी तन्मयता युक्त समाधि को त्याग कर अहर्निशि उस मत्स्यराज की उन बालकों के साथ होने वाली क्रीड़ा को देखते रहते और फिर उन्होंने सोचा ॥७३॥ अहो, यह कैसा श्लाघ्य है जो ऐसी निकृष्ट योनि को प्राप्त हुआ भी अपने पुत्र, पौत्र, दौहित्रादि के साथ निरन्तर क्रीड़ा करता हुआ हमारे हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न कर रहा है ॥७४॥ इसी प्रकार हम भी अपने पुत्रादि के साथ अत्यन्त ललित बालक्रीड़ा करें। ऐसी कामना करते हुए ऋषि उस जल से बाहर निकले और सन्तान के निमित्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अभिलाषा करते हुए कन्या-प्राप्ति के हेतु राजा मान्धाता के यहाँ पहुँचे ॥७५॥

आगमनश्रवणसमनन्तरं चोत्थाय तेन राजा सम्यगर्घ्यादिना सम्पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरिरुवाच राजानम् ॥७६॥

निवेष्टुकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्या प्रयच्छ मे मा प्रणयं विभाङ्क्षीः।
न ह्यर्थिनः कार्यवशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विमुखाः प्रयान्ति ॥७७॥
अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्या मान्धातरेषां तनयाः प्रसूताः।
किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षाकृतव्रतं श्लाघ्यमिदं कुलं ते ॥७८॥
शतार्धसंख्यास्तव सन्ति कन्यास्तासां ममैकां नृपते प्रयच्छ।
यत्प्रार्थनाभङ्गभयाद्बिभेमि तस्मादहं राजवराऽतिदुःखात् ॥७९॥

इति ऋषिवचनमाकर्ण्य स राजा जराजर्जरितदेहमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तस्माच्च शापतो बिभ्यद्किञ्चिदधोमुखश्चिरं दध्यौ च ॥८०॥

सप्तद्वीपा मही बुभुजे ।६३। तत्राय श्लोक ।६४। यावत्सूर्य उदेत्यस्त यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातु क्षेत्रमुच्यते ।६५।

उस बालक के उत्पन्न होने पर ऋषिगण बोले—यह बालक क्या पीकर जीवित रहेगा ? ॥५९॥ तभी देवराज इन्द्र ने वहाँ उपस्थित होकर कहा—यह मेरे आश्रय मे जीवित रहेगा ॥६०॥ इसलिए उसका मान्धाता नाम पड़ा । इन्द्र ने उसके मुख मे अपनी तर्जनी अँगुली देकर अमृत-पान कराया, जिससे वह उसी दिन बढ गया ॥६१ ६२॥ उसी समय से मान्धाता सातो द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा हुआ ॥६३॥ इसके विषय मे यह श्लोक प्रसिद्ध है—सूर्योदय के स्थान से सूर्यास्त के स्थान पर्यंत सभी क्षेत्र युवनाश्व-पुत्र मान्धाता के आधीन है ॥६४-६५॥

मान्धाता शतविन्दोर्दुहितर बिन्दुमतीमुपये मे ।६६। पुरुकुत्स-मम्बरीप मुचुकुन्द च तस्या पुत्रत्रयमुत्पादयामास ।६७। पञ्चाशद्दुहितरस्तस्यामेव तस्य नृपतेर्बभूवु ।६८। तस्मिन्नन्तरे वह्वृचश्च सौभरिर्नाम महर्षिरन्तर्जले द्वादशाब्द कालमुवास ।६९। तत्र चान्तर्जले सम्मदो नामातिवहुप्रजोऽतिमानप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् ।७०। तस्य च पुत्रपौत्रदौहित्रा पृष्ठतोऽग्रत पार्श्वयो पक्षपुच्छशिरसा चोपरि भ्रमन्तस्तेनैव सदाहर्निशमतिनिर्वृता रेमिरे ।७१। स चापत्यस्पर्शोपचीयमानप्रहर्षप्रकर्षो बहुप्रकार तस्य ऋषे पश्यतस्तैरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभि सहानुदिन सुतरा रेमे ।७२। अथान्तर्जलावस्थितस्सौभरिरेकाग्रतस्समाधिमपहायानुदिन तस्य मत्स्यस्यात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सहातिरमणीयतामवेक्ष्याचिन्तयत् ।७३। अहो धन्योऽयमीदृशमनभिमत योन्यन्तरगयाप्यैभिरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सह रममाणोऽतीवास्माक स्पृहामुत्पादयति ।७४। वयमप्येव पुत्रादिभिस्सह ललित रस्यामहे इत्येवमभिकाङ्क्षन् स तस्मादन्तर्जलान्निष्क्रम्य सन्तानाय निवेष्टुकाम कन्यार्थं मान्धातार राजानमगच्छत् ।७५।

शतविन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया, जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न

हुई ॥६६-६८॥ इसी काल की बात है कि बह्वृच-पुत्र सौभरि ऋषि ने बारह वर्ष तक जल में रहकर तप किया ॥६९॥ उसी जल में सम्मद नामक एक विशाल देह वाला मत्स्यराज रहता था जिसके बहुत-सी सन्तानें थीं ॥७०॥ उसके पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि उसके आगे-पीछे, इधर-उधर तथा पूँछ और मस्तक पर हर्षित होते हुए घूमते हुए उसके साथ क्रीड़ा-रत रहते थे ॥७१॥ और वह भी अपने बालकों के कोमल स्पर्श से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन मुनि के सामने ही दिन-रात खेलता रहता था ॥७२॥ इस प्रकार जल में रहते हुए सौभरि ऋषि अपनी तन्मयता युक्त समाधि को त्याग कर अहर्निशि उस मत्स्य-राज की उन बालकों के साथ होने वाली क्रीड़ा को देखते रहते और फिर उन्होंने सोचा ॥७३॥ अहो, यह कैसा कृतकृत्य है जो ऐसी निकृष्ट योनि को प्राप्त हुआ भी अपने पुत्र, पौत्र, दौहित्रादि के साथ निरन्तर क्रीड़ा करता हुआ हमारे हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न कर रहा है ॥७४॥ इसी प्रकार हम भी अपने पुत्रादि के साथ अत्यन्त ललित बालक्रीड़ा करें। ऐसी कामना करते हुए ऋषि उस जल से बाहर निकले और सन्तान के निमित्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अभिलाषा करते हुए कन्या-प्राप्ति के हेतु राजा मान्धाता के यहाँ पहुँचे ॥७५॥

आगमनश्रवणानन्तरं चोत्थाय तेन राज्ञा सम्यगर्घ्यादिना सम्पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरिरुवाच राजानम् ।७६।

निवेष्टुकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्यां प्रयच्छ मे मा प्रणयं विभाङ्क्षीः ।
न ह्यर्थिनः कार्यवशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विमुखाः प्रयान्ति ।७७।
अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां मान्धातरेषां तनयाः प्रसूताः ।
किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षाकृतव्रतं श्लाघ्यमिदं कुलं ते ।७८।
शतार्धसंख्यास्तव सन्ति कन्यास्तासां ममैकां नृपते प्रयच्छ ।
यत्प्रार्थनाभङ्गभयाद्बिभेमि तस्मादहं राजवरातिदुःखात् ।७९।

इति ऋषिवचनमाकर्ण्य स राजा जराजर्जरितदेहमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तस्माच्च शापभीतो बिभ्यत्किञ्चिदधोमुखश्चिरं दध्यौ च ।८०।

नरेन्द्र कस्मात्समुपैपि चिन्ता मसह्यमुक्तं न मयात्र किञ्चित् ।
यावश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धा ।८१।

ऋषि के आने की बात सुन कर राजा अपने सिंहासन से उठे और उन्होंने ऋषि को अर्घ्य देकर उनका पूजनादि किया। तब श्रेष्ठ आसन को प्राप्त हुये सौभरि ऋषि राजा से बोले ॥७६॥ सौभरि ऋषि ने कहा—हे राजन् ! मैं कन्या प्राप्त करने का इच्छुक हूँ, इसलिए तुम मुझे एक कन्या प्रदान करो। मेरा प्रणय भङ्ग न हो, वह कार्य करो। क्योंकि ककुत्स्थ वंश में किसी प्रकार की कामना लेकर आया हुआ कोई भी याचक खाली हाथ कभी नहीं जाता ॥७७॥ हे मान्धाता ! भूतल पर अन्य अनेक राजा हैं और उनके यहाँ कन्यायें हैं, परन्तु याचकों की इच्छित वस्तु प्रदान करने में दृढ़ प्रतिज्ञ तो तुम्हारा यही वंश विख्यात है ॥७८॥ हे राजन् ! तुम अपनी पचास कन्याओं में से मुझे केवल एक ही कन्या प्रदान कर दो, क्योंकि मैं इस समय इस कष्ट से अत्यन्त भयभीत हूँ कि कहीं मेरी प्रार्थना भङ्ग न हो जाय ॥७६॥ श्री पराशरजी ने कहा—ऋषि के वचन सुन कर उनके वृद्धावस्था से जीर्ण हुए देह को देखता हुआ राजा शाप की आशङ्का से भयभीत होकर अपने मुख को नीचा किए हुए मौन चिन्तन करने लगे ॥८०॥ सौभरि ने कहा—हे राजन् ! तुम क्या चिन्तन कर रहे हो ? मैंने कोई ऐसी बात तो कही नहीं, जो असह्य समझी जा सके। तुम्हें अपनी जो कन्या एक दिन किसी को अवश्य देनी है- उसे प्राप्त कर यदि मैं ही कृतार्थ हो सकूँ तो तुम्हें क्या उपलब्ध नहीं हो सकता ? ॥८१॥

अथ तस्य भगवतश्शापभीतस्सप्रश्रयस्तमुवाचासौ राजा ।८२। भगवन् अस्मत्कुलस्थितिरियं य एव कन्याभिरुचितोऽभिजनवान्वरस्तस्मै कन्या प्रदीयते भगवद्याच्ञा चास्मन्मनोरथानामप्यतिगोचरवर्त्तिनो कथमप्येषा सञ्जाता तदेवमुपस्थिते न विद्मः किं कुर्म इत्येतन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते च तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत् ।८३। अयमन्योऽस्मत्प्रत्याख्यानोपायो वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किमुत कन्यकानामित्यमुना सञ्चिन्त्यैतदभिहितमेवमस्तु तथा करिष्यामीति सञ्चिन्त्य मान्धातारमुवाच ।८४। यद्येवं तदादिश्यतामस्माकं प्रवेशाय कन्यान्तःपुरवर्षवरो

यदि कन्यैव काचिन्मामभिलषति तदाहं दारसंग्रहं करिष्यामि अन्यथा चेत्तदलमस्माकमेतेनातीतकालारम्भणेनेत्युक्त्वा विरराम ।८५।

श्री पराशरजी ने कहा—फिर महर्षि सौभरि के शाप की आशंका से भयभीत हुए राजा मान्धाता विनम्रता पूर्वक उन ऋषि से बोले ॥८२॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि कन्या जिस सत्कुलोत्पन्न वर को पसन्द करे उसी को वह प्रदान की जाती है। आपकी याचना हमारे अभीष्ट से भी परे है, और न जाने किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई है ? इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए, यह नहीं समझ पा रहा हूँ और इसी बात की मुझे चिन्ता है। राजा मान्धाता की यह बात सुनकर सौभरि ऋषि विचार करने लगे ॥८३॥ मुझे टालने के लिए यह एक अन्य उपाय प्रयुक्त किया गया है। यह वृद्ध है, इसे प्रौढ़ा स्त्रियां भी पसन्द नहीं कर सकतीं, तो कन्याओं का कहना ही क्या है ? राजा ने यही सोचते हुए मुझे टालने की चेष्टा की है। यदि ऐसा है तो मैं भी इसका उपाय करूंगा। ऐसा विचार करके उन्होंने राजा से कहा ॥८४॥ यदि ऐसा है तो कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को मेरे प्रवेश की आज्ञा दो। फिर यदि कोई कन्या स्वयं ही मुझे पसन्द करेगी, तभी मैं स्त्री-परिग्रह करूंगा, अन्यथा इस ढलती हुई आयु में व्यर्थ के इस उद्यम से कोई प्रयोजन ही नहीं रखूंगा। यह कहकर वह चुप हो गए ॥८५॥

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्तःपुरवर्षवरस्समाज्ञप्तः ।८६। तेन सह कन्यान्तःपुरं प्रविशन्नेव भगवानखिलसिद्धगन्धर्वेभ्योऽतिशयेन कमनीयं रूपमकरोत् ।८७। प्रवेश्य चतमृषिमन्तःपुरे वर्षवरस्ताः कन्याः प्राह ।८८। भवतीनां जनयिता महाराजस्समाज्ञापयति ।८९। अयमस्मान् ब्रह्मर्षिः कन्यार्थं समभ्यागतः ।९०। मया चास्य प्रतिज्ञातं यद्यस्मत्कन्या या काचिद्भगवन्तं वरयति तत्कन्याच्छन्दे नाहं परिपन्थानं करिष्यामीत्याकर्ण्य सर्वा एव ताः कन्याः सानुरागाः सप्रमदाः करेणव इवेभयूथपतिं तमृषिमहमहमिकया वरयाम्बभूवुरूचुश्च ।९१।

यह सुन कर ऋषि के शाप-भय से भीत हुए राजा ने कन्याओं के अन्तःपुर रक्षक को उनके प्रवेश की आज्ञा दी ॥८६॥ तब उसके साथ अन्तःपुर में

जाते हुए महर्षि सौभरि के अपने रूप को सभी सिद्धों और गन्धर्वों से भी अत्यंत कमनीय बना लिया ॥८७॥ इस प्रकार उन ऋषि श्रेष्ठ को कन्याओं के अन्तःपुर में ले जाकर उसके रक्षक ने कन्याओं से कहा ॥८८॥ तुम्हारे पिता महाराज मान्धाता ने आज्ञा दी है कि यह ब्रह्मर्षि हमारे यहां एक कन्या की इच्छा से आये हैं और मैंने इनको वचन दिया है कि मेरा जो कन्या इन्हें स्वेच्छा से वरण करना चाहेगी, मैं उसकी स्वच्छन्दता में बाधक नहीं बनूंगा। उसकी यह बात सुन कर उन सब कन्याओं ने यूथपति हाथी का वरण करने वाली हथिनियों के से समान अनुराग और आह्लाद सहित सहसा कहा कि मैं ही इनका वरण करती हूँ, मैं ही वरती हूँ। इस प्रकार कहती हुई सभी कन्याओं ने उन ऋषि को वरण कर लिया। उस समय वे सब परस्पर कहने लगी ॥८९-९१॥

अलं भगिन्योऽहमिमं वृणोमि वृणोम्यहं नैष तवानुरूपः ।
ममैष भर्त्ता विधिनैव सृष्टस्सृष्टाहमस्योपशमं प्रयाहि ।९२।
वृतो मयायं प्रथमं मयायं गृहं विशन्नेव विहन्यसे किम् ।
मया मयेति क्षितिपात्मजानां तदर्थमत्यर्थकलिर्बभूव ।९३।
यदा मुनिस्ताभिरतीवहार्दाद्वृतस्स कन्याभिरनिन्द्यकीर्तिः ।
तदा स कन्याधिकृतो नृपाय यथावदाचष्ट विनम्रमूर्तिः ।९४।

तदवगमात्किङ्किमेतत्कथमेतत्किं किं करोमि किं मयाभिहित-मित्याकुलमतिरनिच्छन्नपि कथमपि राजानुमेने ।९५। कृतानुरूपविवाहश्च महर्षिस्सकला एव ता कन्यास्स्वमाश्रममनयत् ।९६।

अहो बहिनो! तुम सब क्यों व्यर्थ चेष्टा कर रही हो, यह तुम्हारे तो अनुरूप ही नहीं है, मैं ही इनका वरण करती हूँ। विधाता ने ही इन्हें मेरा पति और मुझे इनकी पत्नी निश्चित किया है, इसलिए तुम अपने प्रयत्न से शान्त होओ ॥९२॥ इनके अन्तःपुर में घुसते ही मैंने इन्हें वरण कर लिया था, अब तुम क्यों इन पर न्यौछावर हो रही हो? इस प्रकार मैंने इनका वरण किया, मैंने प्रथम ही वरण कर लिया कहती हुई उन सभी राज-कन्याओं में कलह उपस्थित हो गया ॥९३॥ फिर उन सभी कन्याओं ने अत्यन्त अनुराग से वशीभूत होकर उन अनिन्द्य कीर्ति वाले ऋषिश्रेष्ठ का वरण कर लिया तब अन्तःपुर रक्षक

ने राजा के पास जाकर सब वृत्तान्त यथावत निवेदन किया ॥९४॥ श्री पराशर-जी बोले—सब वृत्तान्त जानकर राजा सोचने लगे कि यह क्या कह रहा है ? यह किस प्रकार सम्भव हुआ ? अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैंने उन्हें क्यों वैसा कहा ? इस प्रकार व्याकुल होते हुए राजा ने अनिच्छा पूर्वक अपने वचन को निभाया तथा अपने अनुरूप विवाह-संस्कार के सम्पन्न होने पर उन सब कन्याओं को साथ लेकर महर्षि सौभरि अपने आश्रम को गये ॥९५-९६॥

तत्र चाशेषशिल्पकल्पप्रणेतारं धातारमिवान्यं विश्वकर्माणमाहूय सकलकन्यानामेकैकस्याः प्रोत्फुल्लपङ्कजाः कूजत्कलहंसकारण्डवादिविहङ्गमाभिरामजलाशयाः सोपधानाः सावकाशास्साधुशय्यापरिच्छदाः प्रासादाः क्रियन्तामित्यादिदेश ।९७। तच्च तथैवानुष्ठितमशेषशिल्पविशेषाचार्यस्त्वष्टा दर्शितवान् ।९८। ततः परमर्षिणा सौभरिणाज्ञप्तस्तेषु गृहेष्वनिवार्यानन्दनामा महानिधिरासाञ्चक्रे ।९९। ततोऽनवरतेन भक्ष्यभोज्यलेह्याद्युपभोगैरागतानुगतभृत्यादीनहर्निशमशेषगृहेषु ताः क्षितीशदुहितरो भोजयामासुः ।१००।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिल्पकला के प्रणेता विश्वकर्मा को आहूत कर उनसे कहा कि इन सब कन्याओं के लिए पृथक्-पृथक् भवन बना दो, जिनमें खिले हुए कमल, कूजते हुये हंस और कारण्डवादि जल-पक्षियों से परिपूर्ण जलाशय, सुन्दर उपधान शय्या और परिच्छदादि हों तथा उनमें खुला हुआ स्थान भी पर्याप्त रूप से हो ॥९७॥ यह सुनकर सम्पूर्ण शिल्पकला के विशेष आचार्य विश्वकर्मा ने उनकी इच्छा के अनुसार ही सब निर्मित करके उन्हें दिखाया ॥९८॥ फिर महर्षि सौभरि की आज्ञा से उन भवनों में 'अनिवार्य आनन्द' नाम की महानिधि विराजमान हो गई ॥९९। इससे वहाँ अनवरत भक्ष्य, भोज्य, लेह्य आदि सामग्रियों के द्वारा वे राजपुत्रियाँ आगत अतिथियों और अपने अनुगत भृत्यों को तृप्त करने में रात दिन समर्थ हुईं ॥१००॥

एकदा तु दुहितृस्नेहाकृष्टहृदयस्स महीपतिरतिदुःखितास्ता उत सुखिता वा इति विचिन्त्य तस्य महर्षेराश्रमसमीपमुपेत्य स्फुरदंशुमा-

लाललामा स्फटिकमयप्रासादमालामतिरम्योपवनजलाशया ददर्श ।१०१। प्रविश्य चैकं प्रासादमात्मजां परिष्वज्य कृतासनपरिग्रहः प्रवृद्धस्नेहनयनाम्बुगर्भनयनोऽब्रवीत् ।१०२। अप्यत्र वत्से भवत्याः सुखमुत किञ्चिदसुखमपि ते महर्षिरस्नेहवानुत न स्मर्यतेऽस्मद्गृहवास इत्युक्ता तत्तनया पितरमाह ।१०३। तातातिरमणीयः प्रासादोऽत्रातिमनोज्ञमुपवनमेते कलवाक्यविहङ्गमाभिरुताः प्रोत्फुल्लपद्माकरजलाशया मनोऽनुकूलभक्ष्यभोज्यानुलेपनवस्त्रभूषणादिभोगो मृदूनि शयनासनानि सर्वसम्पत्समेतं मे गार्हस्थ्यम् ।१०४। तथापि केन वा जन्मभूमिर्न स्मर्यते ।१०५। त्वत्प्रसादादिदमशेषमतिशोभनम् ।१०६। किं त्वेकं ममैतद्दुःखकारणं यदस्मद्गृहान्महर्षिरयमन्मद्भर्त्ता न निष्क्रामति ममैव केवलमतिप्रीत्या समीपपरिवर्ती नान्यासामस्मद्भगिनीनाम् ।१०७।

फिर किसी एक दिन राजा मान्धाता अपनी कन्याओं के स्नेह से आकृष्ट हृदय सहित उनके सुखी या दुःखी होने के विषय में जानने की उत्कण्ठा से महर्षि के आश्रम के समीप पहुँचे। तब उन्हें वहाँ अत्यन्त रमणीक उपवनों और जलाशयों से सुशोभित स्फटिकमय प्रासादों की पंक्ति दिखाई पड़ी, जो स्फुरित अंशु-मालाओं से अत्यन्त मनोरम प्रतीत होती थी ॥१०१॥ फिर वह एक भवन में जाकर अपनी पुत्री को हृदय से लगाकर आसन पर बैठ गये और स्नेहसिक्त नयनों में जल भरते हुए कहने लगे ॥१०२॥ हे वत्से! तुम सब यहाँ सुख-पूर्वक तो रह रही हो? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं पातीं? महर्षि तुमसे प्रेम तो करते हैं? क्या तुम्हें अपने पितृगेह की भी कभी याद आती है? पिता की बात सुन कर राजकुमारी बोली—हे पिताजी! यह प्रासाद अत्यन्त रमणीय है, यह उपवनादि भी अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं, विकसित कमलों वाले इन जलाशयों में जलपक्षी सदा ही मधुर बोली बोलते हैं, भक्ष्य भोज्यादि खाद्य तथा अंगराग, वस्त्राभूषण, सुकोमल शय्या, मृदु आसन सभी मनोनुकूल हैं। इस प्रकार हमारा गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त सम्पन्न और सुखी है ॥१०४॥ फिर भी अपने जन्म स्थान का स्मरण क्यों किया न होगा? ॥१०५॥ यद्यपि आपके प्रसाद से सब कुछ अत्यन्त शोभामय है, फिर भी मुझे एक अत्यन्त दुःख यह है कि हमारे

पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नहीं, मुझ पर भी अत्यधिक स्नेह रहने के कारण यह मेरे ही पास रहे आते हैं, मेरी अन्य बहिनों के पास कभी नहीं जाते ॥१०६-१०७॥

एवं च मम सोदर्योऽतिदुःखिता इत्येवमतिदुःखकारणमित्युक्तस्तया द्वितीयं प्रासादमुपेत्य स्वतनयां परिष्वज्योपविष्टस्तथैव पृष्टवान् ।१०८। तयापि च सर्वमेतत्तत्प्रासादाद्युपभोगसुखं भृशमाख्यातं ममैव केवलमतिप्रीत्या पार्श्वपरिवर्ती, नान्यासामस्मद्भगिनीनामित्येवमादि श्रुत्वा समस्तप्रासादेषु राजा प्रविवेश तनयां तनयां तथैवापृच्छत् ।१०९। सर्वाभिश्च ताभिस्तथैवाभिहितः परितोषविस्मयनिर्भरविवशहृदयो भगवन्तं सौभरिमेकान्तावस्थितमुपेत्य कृतपूजोऽब्रवीत् ।११०। दृष्टस्ते भगवन् सुमहानेष सिद्धिप्रभावो नैवंविधमन्यस्य कस्यचिदस्माभिर्विभूतिभिर्विलसितमुपलक्षितं यदेतद्भगवतस्तपसः फलमित्यभिपूज्य तमृषिं तत्रैव तेन ऋषिवर्येण सह किञ्चित्कालमभिमतोपभोगान् बुभुजे स्वपुरं च जगाम ।१११।

इससे मेरी अन्य बहिनें अत्यन्त दुःखित होंगी। इसी से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। इसके पश्चात् राजा दूसरे भवन में पहुँचे और अपनी कन्या का आलिंगन कर आसन पर बैठे और उससे भी उन्होंने वही प्रश्न किया ॥१०८॥ उस राजकुमारी ने भी उसी के समान भवनादि सब सुख भोगों का वर्णन करके उसी प्रकार कहा कि मुझ से अत्यन्त प्रेम होने के कारण महर्षि केवल मेरे ही पास रहते हैं, मेरी किसी अन्य बहिन के पास नहीं जाते। इस बात को सुन कर राजा एक-एक करके सभी भवनों में गये और अपनी सभी कन्याओं से वैसा ही प्रश्न किया ॥१०९॥ तथा उन सब ने भी उन्हें वैसा ही उत्तर दिया। उन सबकी बात सुनने के अनन्तर राजा अत्यन्त आनन्दित और विस्मित हुए तथा एकान्त में स्थित महर्षि सौभरि का पूजन करके उन्होंने निवेदन किया ॥११०॥ हे भगवन्! यह सब प्रभाव आपकी ही योग-सिद्धि का दिखाई दे रहा है। इस प्रकार के ऐश्वर्य के सहित विलास करते हुए कभी किसी को नहीं देखा। यह सब आपके तप का ही प्रभाव है। राजा ने इस प्रकार महर्षि का अभिवादन कर

कुछ काल तक उनके साथ आनन्दोप भोग किया और अन्त में अपने नगर को वापिस लौटे ॥१११॥

कालेन गच्छता तस्य तासु राजतनयासु पुत्रशतं सार्धमभवत् ।११२। अनुदिनानुरूढस्नेहप्रसरश्च स तत्रातीव ममताकृष्टहृदयोऽभवत् ।११३। अप्येतेऽस्मत्पुत्राः कलभाषिणः पद्भ्यां गच्छेयुः अप्येते यौवनिनो भवेयुः अपि कृतदारानेतान् पश्येयमप्येषां पुत्रा भवेयुः अप्येतत्पुत्रान्पुत्रसमन्वितान्पश्यामीत्यादिमनोरथाननुदिनं कालसम्पत्तिप्रवृद्धानुपेक्ष्यैतच्चिन्तयामास ।११४।

अहो मे मोहस्यातिविस्तारः ।११५।
मनोरथानां न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथानामुत्पत्तयस्सन्ति पुनर्नवानाम् ।११६।
पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगमिताः प्रसूताः ।
दृष्टाः सुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा ।११७।
द्रक्ष्यामि तेषामिति चेत्प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः ।
पूर्णेऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवार्यते केन मनोरथस्य ।११८।
आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि ।११९।

कालान्तर में उन राजकुमारियों के द्वारा सौभरि मुनि ने डेढ़ सौ पुत्र उत्पन्न किए। इससे दिनों दिन बढ़ते हुए स्नेह के कारण उनका हृदय अत्यन्त ममता से भर गया। ११२-११३॥ उस समय वह सोचने लगे कि क्या मेरे यह पुत्र मधुर बोली सुनावेंगे? अपने पैरों से चलेंगे? युवावस्था को प्राप्त होंगे? क्या मैं इन सब को पत्नी सहित देख सकूँगा? फिर इनके भी पुत्र होंगे तब क्या मैं अपने को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न देख पाऊंगा? फिर इस प्रकार दिन प्रतिदिन बढ़ते हुये इन मनोरथों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने सोचा ॥११४॥ अरे, मेरा मोह कितना विस्तृत हो गया है? ॥११५॥ यह मनोरथ तो हजारों-लाखों वर्ष में भी निवृत नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें से जितने मनोरथ पूर्ण होते हैं उनके स्थान पर अन्य नवीन मनोरथ उत्पन्न हो जाते हैं ॥११६॥ मेरे

पुत्र अपने पाँवों से चलने लगे, फिर युवावस्था को प्राप्त हुये, फिर उनका विवाह हो गया, यह सभी कुछ मैंने देख लिया है। अब मैं अपने पौत्रों की उत्पत्ति देखने की अभिलाषा करता हूँ ॥११७॥ जब मैं उनकी उत्पत्ति देख लूँगा तब मेरे मन में अन्य मनोरथ की उत्पत्ति होगी और जब वह भी पूर्ण हो जायगा, तब किसी अन्य मनोरथ के उद्भव को कौन रोक सकेगा? ॥११८॥ मैं अब भले प्रकार समझ गया हूँ कि मरणकाल तक भी मनोरथों का अन्त नहीं होगा और जिन मनोरथों में आसक्त है वह परमार्थ में लग ही नहीं सकता ॥११९॥

स मे समाधिर्जलवाससमित्रमत्स्यस्य सङ्गात्सहसैव नष्टः ।
परिग्रहस्सङ्गकृतो ममायं परिग्रहोत्था च ममातिलिप्सा ।१२०।
दुःखं यदैवैकशरीरजन्म शतार्द्धसंख्याकमिदं प्रसूतम् ।
परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां सुतैरनेकैर्बहुलीकृतं तत् ।१२१।
सुतात्मजैस्तत्तनयैश्च भूयो भूयश्च तेषां च परिग्रहेण ।
विस्तारमेष्यत्यतिदुःखहेतुः परिग्रहो वै ममताभिधानः ।१२२।
चीर्णं तपो यत्तु जलाश्रयेण तस्यर्द्धिरेषा तपसोऽन्तरायः ।
मत्स्यस्य सङ्गादभवच्च यो मे सुतादिरागो मुषितोऽस्मि तेन ।१२३
निस्सङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगो विनिपात्यतेऽधस्सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ।१२४।

अरे, मेरी वह समाधि जल में साथ रहने वाले मत्स्य की सङ्गति से सहसा नष्ट हो गई। उसी से आसक्त चित्त हुए मैंने स्त्री और धनादि का ग्रहण किया तथा अब वह स्त्री धनादि का परिग्रह ही अब मेरी तृष्णा वृद्धि का कारण बन गया है ॥१२०॥ प्रथम तो देह धारण करना ही दुःख रूप है, फिर मैंने तो इन राजपुत्रियों के साथ विवाह करके उस दुःख को पचास गुना कर लिया है और अब तो इन अनेक पुत्रों के कारण उसकी अत्यन्त वृद्धि हो गई है ॥१२१॥ अब भविष्य में जब पुत्रों के पुत्र होंगे, तथा उनके भी पुत्रादि और बारम्बार विवाह सम्बन्ध होंगे से उसकी और भी वृद्धि होती जायगी। यह ममतारूप विवाह सम्बन्धादि अत्यन्त ही दुःख का कारण हो रहा है ॥१२२॥ जलाशय में निवास करते हुए मैंने जो तप किया था, उसके फल से प्राप्त यह

वैभव भी तपस्या में बाधक हो रहा है। मत्स्य के संग दोष से मेरे मन में सन्तानादि का राग उत्पन्न हुआ था, उसी से मैं ठग गया हूँ ॥१२३॥ हीनता ही यतियों के लिये मोक्षदायिनी है और सभी दोषों की प्राप्ति संग से ही होती है। संग के कारण योगसिद्ध पुरुषों का भी पतन हो जाता है, तो मन्द सिद्धि वालों का कहना ही क्या है ॥१२४॥

अहं चरिष्यामि तदात्मनोऽर्थे परिग्रहग्राहगृहीतबुद्धिः ।
यदा हि भूयः परिहीनदोषो जनस्य दुःखैर्भविता न दुःखी ।१२५।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमणोरणीयासमतिप्रमाणम् ।
सितासितं चेश्वरमीश्वराणामाराधयिष्ये तपसैव विष्णुम् ।१२६।
तस्मिन्नशेषौजसि सर्वरूपिण्यव्यक्तविस्पष्टतनावनन्ते ।
ममाचलं चित्तमपेतदोषं सदास्तु विष्णावभवाय भूयः ।१२७।
समस्तभूतादमलादनन्तात्सर्वेश्वरादन्यदनादिमध्यात् ।
यस्मान्न किञ्चित्तमहं गुरूणां परं गुरुं संश्रयमेमि विष्णुम् ।१२८।

परिग्रह रूपी ग्राह ने मेरी मति को जकड़ लिया है, इस समय मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे दोषों से छुटकारा पाकर फिर अपने कुटुम्बीजनों के दुःख से दुःख को प्राप्त न होऊं ॥१२५॥ अब मैं सर्वधातार, अचिन्त्य रूप, अणु से भी सूक्ष्म, सब से महान्, सित और असित रूप, ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्रीहरि की तप के द्वारा आराधना करूंगा ॥१२६॥ उन सवर्तेजोमय, सवरूप, अव्यक्त विस्पष्ट तन, अनन्त रूप भगवान् विष्णु में मेरा निर्दोष चित्त अविचल भाव से सदा ही लगा रहे, जिससे मुझे पुनः पृथिवी पर जन्मधारण न करना पड़े। १२७॥ जिन सवरूप, निर्मल, अनन्त, सर्वेश्वर तथा आदि, मध्य से रहित से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है मैं उन्हीं गुरुओं के परम गुरु भगवान् श्रीहरि की शरण लेता हूँ ॥१२८॥

इत्यात्मानमात्मनैवाभिधायासौ सौभरिरपहाय पुत्रगृहासनपरिच्छदादिकमशेषमर्थजातं सकलभार्यासमन्वितो वनं प्रविवेश ।१२९
तत्राप्यनुदिनं वैखानसनिष्पाद्यमशेषक्रियाकलापं निष्पाद्य क्षपितसकलपापः परिपक्वमनोवृत्तिरात्मन्यग्नीन्समारोप्य भिक्षुरभवत् ।१३०